

ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः

# गुरु कहान : दृष्टि महान

( भाग-१० )

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के  
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

: गुजराती संकलन :

जीतुभाई नागरदास मोदी

प्रशम जीतुभाई मोदी

सोनगढ़

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा ( राज. )

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार

सोनगढ़, जिला-भावनगर ( गुजरात )

मोबा. 09722833143

प्राप्त स्थान :

1. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट  
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),  
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 श्रद्धाहृदय - 1 हृदयहृदय.ष्वद्व
2. श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट ( मंगलायतन )  
अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 ( उ.प्र. ) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,  
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. श्री परमागम प्रकाशन समिति  
श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया ( म.प्र. )
5. चिन्तन जीतुभाई मोदी, क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 ( सौराष्ट्र )  
मोबा : 09662524460
6. पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन  
द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा ( राज. )  
मोबा : 09461768086
7. श्री प्रदीप मानोरिया, मिल रोड, अशोकनगर, ( म.प्र. ), मोबा : 09425132060
8. श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,  
पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर ( म.प्र. )
9. श्री अश्विनभाई ए. शाह,  
बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,  
आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड ( वेस्ट ) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़

मुद्रक :

## प्रकाशकीय

तीर्थकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात् रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्त्व लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, जैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' .... 'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुतः वे द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडि (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 11 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरशः गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले, इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की दसवीं पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्तःकरण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में निःशंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

## अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 25 प्रवचनों के संकलनरूप यह 'गुरु कहान : दृष्टि महान' भाग-10 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

- संकलनकार





## श्री समयसारजी-स्तुति



( हरिगीत )

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,  
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;  
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,  
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

( अनुष्टुप )

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साधिया अमृतने पूर्या,  
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

( शिखरिणी )

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,  
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;  
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,  
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति।

( शार्दूलविक्रीडित )

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,  
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;  
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,  
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

( वसंततिलका )

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,  
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;  
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,  
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

( अनुष्टुप )

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;  
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।



## श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

( हरिगीत )

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,  
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;  
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,  
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

( अनुष्टुप )

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।  
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

( शिखरिणी )

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,  
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;  
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,  
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

( शार्दूलविक्रीडित )

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,  
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;  
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,  
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

( वसंततिलका )

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,  
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;  
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,  
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

( स्त्रग्धरा )

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,  
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;  
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,  
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

## अध्यात्म युगस्त्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ( सम्पूर्ण जीवनदर्शन, संक्षिप्त में )

ऐवा ए कलिकालमां जगतनां कंई पुण्य बाकी हतां,  
जिज्ञासु हृदयो हतां तलसतां सद्वस्तुने भेटवा;  
ऐवा कंईक प्रभावथी गगनथी ओ क्हान! तुं ऊतरे,  
अंधारे डूबतां अखंड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थकरदेव के पूर्व के भोगभूमि के एक भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की इनकी काललब्धि पकने पर आकाश में से दो-दो मुनिराज उतरते हैं। अन्तिम तीर्थकरदेव के पूर्व के सिंह के भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की उनकी काललब्धि पकने पर, आकाश में से दो-दो मुनिराज घोर जंगल में उतरते हैं। उपादान तैयार होने पर मानो कि निमित्त को स्वयं उपस्थित होना पड़ता है—इस न्याय से, लाखों भव्य जीवों की तत्त्वजिज्ञासा-तृप्ति का काल पकने पर, सीमन्धर सभा में देशना का श्रवण-पान करके स्वर्ग जाने को सक्षम ऐसे राजकुमार का जीव, मानो कि भवीजन भाग्यवश अपना मार्ग बदलकर गगन में से यहाँ भरतभूमि में उतरा!

भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट तथा आचार्य शिरोमणि श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि निर्ग्रन्थ दिग्म्बर सन्तों द्वारा शास्त्र में सुरक्षित वीतरागमार्ग जब रूढ़िगत साम्प्रदायिकता की देहाश्रित बाह्यक्रिया और अध्यात्म तत्त्वज्ञान शून्य भक्तिमार्ग के अन्धकार में डूब रहा था, ऐसे इस कलिकाल में वीतरागमार्ग के अखण्ड सत् को प्रवर्तन करने के लिये भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जिला के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा के गर्भ से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज दिनांक 21-04-1890, रविवार को प्रातः सबेरे तेजस्वी कहान सूर्य का उदय हुआ।

सात वर्ष की उम्र में पाठशाला में लौकिक शिक्षा ग्रहण करना शुरु किया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि प्रतिभा, मधुर भाषीपना, शान्तस्वभाव, गम्भीर मुखमुद्रा तथा स्वयं करने का स्वभाव होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों में तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय में तथा जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था परन्तु विद्यालय के लौकिक अभ्यास से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और गहरे-गहरे ऐसा लगता था कि मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में मातुश्री के अवसान से पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष पश्चात् पिताजी का स्वर्गवास होने पर सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यापार में संलग्न हुए।

व्यापार की प्रवृत्ति के समय भी वे किंचित् भी अप्रमाणिकता चला नहीं लेते थे। सत्यनिष्ठ, नीतिमत्ता, निखालिसता, और निर्दोषता से उनका व्यवहारिक जीवन सुगन्धित था; इसके साथ ही उनका आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध की ओर ही था। दुकान में भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते। वैरागीचित्तवाले कहान कुँवर रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते, तब उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते, जिसके फलस्वरूप सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की सूचना करता बारह लाईन का काव्य — 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' की रचना की थी।



उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि के आहार-पानी तथा अथाणा (अचार) का त्याग किया था। सत्य की शोध के लिये दीक्षा लेने के भाव से बाईस वर्ष की युवावय से दुकान का परित्याग किया और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) जन्मनगरी उमराला में लगभग 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय के वैरागी साधु हीराजी महाराज के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा के समय हाथी पर बैठने जाते हुए धोती फटने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक गुरुवर को शंका हो जाती है कि कुछ गलत हो रहा है।

दीक्षा लेने के पश्चात् सत्य के शोधक इस महात्मा ने स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में ही पूरा किया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चाएँ चलीं—कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र तो प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व के संस्कार के बल से उन्होंने दृढ़तापूर्वक सिंह-गर्जना की कि 'जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म और पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है।'

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन उद्धार का और लाखों मुमुक्षुओं के महान् पुण्योदय सूचक एक मंगलकारी पवित्र प्रसंग बना :

बत्तीस वर्ष की उम्र में विधि की किसी धन्य पल में दामनगर में दामोदर सेठ द्वारा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के कर-कमल में आया और उसका अध्ययन तथा चिन्तवन करते-करते पूर्व के संस्कार के बल से अन्तर में आनन्द और उल्लास उमड़ने से इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी हुई परिणति ने निज घर देखा अर्थात् आपश्री को वैशाख कृष्ण आठ के दिन सम्यग्दर्शन हुआ।

विक्रम संवत् 1982 के चातुर्मास से पूर्व राजकोट में श्री दामोदरभाई लाखाणी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को प्रदान किया। जिसे पढ़ने से स्वयं के हृदय की अनेक बातों का समर्थन इस ग्रन्थ में से प्राप्त हो जाने से वे उसके वाँचन में इतने ओतप्रोत हो जाते थे कि उस समय उन्हें खाना-पीना और सोना भी नहीं रुचता था। तत्पश्चात् अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेश कुछ ऐसी स्थिति उन्हें असह्य हो गयी; इसलिए अन्तर में बहुत मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय छोड़ने का निर्णय किया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में 1991 के फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन निवास किया और महावीर जन्मकल्याणक के दिन (विक्रम संवत् 1991, चैत्र शुक्ल तेरह) दोपहर सवा बजे भगवान पार्श्वनाथ के फोटो के समक्ष सम्प्रदाय के चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया और घोषित किया कि — 'अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं, मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।' सिंह समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने, पैतालीस वर्ष की उम्र में अन्तर में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में सवा तीन वर्ष दौरान जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान अत्यन्त छोटा पड़ने लगा; इसलिए भक्तों ने इन परम प्रतापी सत्पुरुष के लिये निवास और प्रवचन का मकान 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1994 के वैशाख कृष्ण आठ के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर'

जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीर शासन की प्रभावना का केन्द्र बना रहा।

यहाँ दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे-बड़े लगभग 183 ग्रन्थों का गहराई से अभ्यास किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये; जिसमें समयसार पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की थी। प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड, परमात्मप्रकाश, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी अनेक बार प्रवचन किये।

विक्रम संवत् 1981 में गडदा में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य शान्ताबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1985 में वढ़वाण में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1986 में वींछिया में पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन और प्रवचन श्रवण के लिये दोनों बहिनों को जाना होने पर वहाँ प्रथम बार दोनों बहिनों का परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करने के पश्चात् सोनगढ़ में दोनों बहिनों ने साथ में रहना शुरू करके जीवनपर्यन्त साथ रहकर पूज्य गुरुदेवश्री की देशना द्वारा अपनी-अपनी आत्मसाधना करते रहकर शासन की अत्यन्त भक्तिपूर्वक सेवा की थी। गुरुशासन-प्रभावना में दोनों बहिनों का उल्लेखनीय विशेष योगदान रहा था।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 के फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन श्री नानालालभाई इत्यादि जसाणी भाईयों के योगदान द्वारा नवनिर्मित श्री दिगम्बर जिन मन्दिर में कहानगुरु के मंगल हस्त से श्री सीमन्धरादि भगवन्तों की पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर जिन मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही देखने को मिलते थे। ऐसे क्षेत्र में गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा से प्रथम जिन मन्दिर निर्मित हुआ। प्रतिदिन दोपहर प्रवचन के पश्चात् जिन मन्दिर में आधे घण्टे भक्ति में जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे। बहुत बार आपश्री अति भाववाही भक्तिपान कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धिपूर्वक का था।

विक्रम संवत् 1997 में दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज, श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके सोनगढ़ पधारे; पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनकर तथा तत्त्वचर्चा करके इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरुदेवश्री को लक्ष्य करके कहा कि — 'तीर्थकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ कुछ ऐसा योग है-ऐसा हमें लगता है।'—अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थकर होंगे—ऐसा दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख आचार्य को लगा था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों-मुनिवरों तथा आत्मानुभवी पण्डितवर्यों के ग्रन्थों, पण्डित श्री हिम्मतभाई जे. शाह के गुजराती में अनुवादित श्री समयसारादि परमागम और पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर प्रवचनों की पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943) से शुरू हुआ। उस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहरा रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित प्राप्त होता रहे, इस हेतु से सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के मगसर (दिसम्बर 1943) महीने से 'आत्मधर्म' नामक मासिक आध्यात्मिक

पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के स्थापक आध्यप्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी के सम्पादन तले प्रारम्भ हुआ। आज भी आत्मधर्म गुजराती तथा हिन्दी भाषा में नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्ध करता हुआ 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' सितम्बर 1950 से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभूतिविभूषित इन चैतन्य विहारी महापुरुष की मंगल वाणी पढ़कर तथा सुनकर हजारों स्थानकवासी, श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी हुए। अरे... मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का सिंचन हो इस हेतु से सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने से गर्मी का बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ। बड़ों के लिये प्रौढ़ शिक्षणवर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने में प्रारम्भ किया गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की देशना का सामर्थ्य प्रसिद्ध करता एक प्रसंग ईस्वी सन् 1946 में बना। अजमेर निवासी श्री निहालचन्द्रभाई सोगानी सोनगढ़ आये और प्रथम बार ही पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन का लाभ सम्प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनकर रात भर आत्म मन्थन करते-करते प्रातः काल अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त करके जैन जगत को प्रतीति करायी कि यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और गुरु के प्रति अर्पणता गाढ़ हो तो इन महापुरुष की देशना इतनी प्रखर है कि इनका एक ही प्रवचन-श्रवण भव्यजीवों के भवान्त का प्रबल निमित्त बनने की सामर्थ्य रखता है।

विक्रम संवत् 2003 में निर्मित भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप के शिलान्यास प्रसंग पर इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्दजी, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अत्यन्त अहोभाव से बोले थे कि 'आपके पास मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।'

विक्रम संवत् 2003 में पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' का तीसरा अधिवेशन पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी (बनारस) की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, जिसमें दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध बत्तीस विद्वानों ने लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व सम्मति से एक विशाल प्रस्ताव पारित किया था जिसमें स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया कि '....भगवान कुन्दकुन्द की वाणी समझकर महाराजश्री ने मात्र स्वयं को ही पहचान है—ऐसा नहीं परन्तु हजारों-लाखों मनुष्यों को एक जीवन उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने का उपाय दर्शा दिया है.....'

दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी ने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री की विशेषता दर्शाते हुए लिखा कि यदि कानजीस्वामी इस युग में न हुए होते तो हमारे लिये समयसार ग्रन्थ मात्र दर्शनीय रह जाता अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री के कारण समयसार जैसे ग्रन्थ का स्वयं को अभ्यास करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। फिर से उसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा कि कानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है लेकिन वे निमित्त से कुछ नहीं होता है - ऐसा मानते हैं। इस प्रकार मूल दिगम्बर सम्प्रदाय में भी समयसार स्वाध्याय युग सृजक पूज्य गुरुदेवश्री की प्रतिभा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी।

लाडनूँ निवासी श्री रतनलाल गंगवाल के पिताश्री बच्छराजजी, पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा सुनकर सोनगढ़ आये; अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने पूज्य बहिनश्री बेन की छत्रछाया में बालब्रह्मचारी बहिनों के

आवास के लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' का विक्रम संवत् 2008 में निर्माण किया।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसारादि पाँचों परमागम संगमरमर में उत्कीर्ण करके 'श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर' का उद्घाटन विक्रम संवत् 2030 में सोनगढ़ में छब्बीस हजार भक्तों की उपस्थिति में श्री साहू शान्तिप्रसादजी के हस्त से हुआ था।

ट्रस्टी श्री नेमिचन्दजी पाटनी (आगरा) के सफल संचालन में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त विक्रम संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) तथा विक्रम संवत् 2023 (ईस्वी सन् 1967) में — इस तरह दो बार समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मंगल विहार हुआ था। इसी प्रकार विक्रम संवत् 2015 (ईस्वी सन् 1959) और विक्रम संवत् 2020 (ईस्वी सन् 1964) में — इस तरह दो बार दक्षिण और मध्य भारत में मंगल विहार हुआ था। इस मंगल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासु जीवों ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये और आपश्री की भवान्तकारी अमृतमयी वाणी सुनकर अनेक भव्यजीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। फलस्वरूप भारत भर में महती धर्म प्रभावना हुई और सोनगढ़ के इन सन्त के प्रति लोगों में श्रद्धाभक्ति का उत्साह जागृत हो उठा। यात्रा के दौरान अनेक स्थानों से लगभग 80 अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये।

पौने छह महीने की 800 मुमुक्षु यात्रियों के साथ निकली हुई विक्रम संवत् 2013 की श्री सम्मेदशिखरजी की प्रथम यात्रा के समय ईसरी आश्रम में दिगम्बर जैन समाज के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की उपस्थिति में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीजी के साथ पूज्य गुरुदेवश्री की वात्सल्यता भरी बातचीत हुई; तब वर्णीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि 'स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आयी और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तत्पश्चात् मधुवन (शिखरजी) में अनेक दिगम्बर मुनियों, विद्वानों, वर्णीजी सहित अनेक त्यागियों और पाँच हजार से अधिक श्रोतागण के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन श्रवण से प्रभावित होकर सैकड़ों पण्डितों के विद्यापति पण्डित बंशीधरजी (इन्दौर) ने हिम्मतपूर्वक स्पष्ट प्रसिद्ध किया कि '.....आपकी वाणी में तीर्थकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय है।' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन-सत्समागम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपनी रूढ़िगत मान्यता छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुयायी बन गये।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले तथा कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों का रहस्योद्घाटन करनेवाले इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को श्री नवनीतभाई झबेरी की दीर्घ दृष्टि के कारण श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा ईस्वी सन् 1959 से नवम्बर 1980 तक टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षितरूप से उपलब्ध हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में ही भारत भर में-विशेषरूप से हिन्दी समाज में तथा नैरोबी, लन्दन, स्वीटजरलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, केनाडा आदि विदेशों में अगणित संख्या में टेप रील तथा कैसेटों से ट्रस्ट के कैसेट विभाग द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का मुमुक्षुओं ने लाभ प्राप्त किया था। हाल में सी.डी. युग शुरु होने पर स्वर्गीय शान्तिलाल रतिलाल शाह के परिवार द्वारा यह मंगलवाणी देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है, यह ऐसा प्रसिद्ध करती है कि

भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को पंचम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान भारतभर में अनेक स्थलों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये प्रवचनकार भेजे जाते हैं। पर्यूषण में सर्व प्रथम बाहर गाँव-राजधानी दिल्ली में-वाँचन करने के लिये सोनगढ़ से खीमचन्दभाई सेठ गये थे। वे तथा श्री लालचन्दभाई मोदी (राजकोट) और श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा), पूज्य गुरुदेवश्री की सूक्ष्म तत्त्व प्ररूपणा का प्रचार करनेवाले अग्रेसर वक्ताओं में थे / हैं। प्रवचनकारों को भेजने की इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में जागृति आयी थी और आज भी देश-विदेश में पर्यूषण पर्व में सैंकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतराग वाणी का डंका बजाते हैं। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निर्देशन में नये-नये विद्वान तैयार करने के लिये श्री पूरणचन्दजी गोदिका द्वारा आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी की स्मृतिरूप से जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन का ईस्वी सन् 1967 में निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में आपश्री के आशीर्वाद से हुआ था। नये प्रवचनकार विद्वानों को प्रवचन पद्धति के लिये प्रशिक्षित करने के लिये प्रतिवर्ष प्रशिक्षण वर्ग जयपुर से प्रारम्भ किया गया था। उत्तर गुजरात तथा हिन्दी प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में पण्डित श्री बाबूभाई फतेपुरवाले का विशेष योगदान रहा था।

भगवान श्री महावीरस्वामी के पश्चात् इस युग में जब बौद्ध सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था, तब समर्थ आचार्यश्री अकलंकदेव ने तत्कालीन प्रमुख बौद्ध आचार्य के साथ वाद-विवाद करके उनकी पराजय करने से जैन समाज में जय-जयकार हुआ था; इसी प्रकार अक्टूबर 1963 में खानियां (जयपुर) में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रखर पण्डितों और कानजीस्वामी के अनुयायीरूप से प्रसिद्ध पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री के बीच कितने ही दिनों तक लिखित प्रश्नोत्तर द्वारा तत्त्वचर्चा होने पर, पण्डित श्री फूलचन्दजी द्वारा उन पण्डितों की रूढ़िगत मान्यताओं का शास्त्रों के आधार द्वारा पराजय होने से पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावविभोर होकर जैनदर्शन के सत्यमार्ग की विजय सम्बन्धी पण्डित फूलचन्दजी के लिये अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि — पण्डित फूलचन्दजी ने बहुत काम किया है, बहुत मेहनत की है। शास्त्र से आधार देकर बराबर सच्ची श्रद्धा को टिका रखा है। ऐसा यह एक पण्डित निकला! शास्त्र के पण्डितरूप से पढ़कर स्व-आश्रय और पर-आश्रय इस बोल को टिका रखा; बहुत जोरदार बात है। हजारों बोल ओहो...हो...! बहुत ज्ञान है। अभी चलता यह पन्थ-विपन्थ, उसमें यह बात बाहर रखना! बहुत हिम्मत की है। इस ऐतिहासिक प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री की अत्यन्त भावविभोर प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर भक्त रोमांचित हो गये थे।

जन्म-मरण से रहित होने के सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्य विहारी पुरुष के मंगलकारी जन्मोत्सव मनाने की शुरुआत 59 वें वर्ष से हुई। 75 वीं हीरक जयन्ती के प्रसंग पर समस्त भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित 800 पृष्ठ का एक सजिल्द अभिनन्दन ग्रन्थ इन भावी तीर्थाधिनाथ को भारत सरकार के तत्कालीन मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में मुम्बई में अर्पण हुआ था। योगानुयोग थोड़े ही दिनों में वे भारत के प्रधानमन्त्री बने थे।

विक्रम संवत् 2037 के कार्तिक कृष्ण सात, दिनांक 28-11-1980, शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तर्ध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायक में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र में से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। जैसे नव पल्लवित वटवृक्ष शुरुआत में स्वयं अपनी

विशालता को समृद्ध करता हुआ विशालकाय बन जाने के बाद, उसमें से अनेक वटवृक्षों का नवसृजन करता है, इसी प्रकार सोनगढ़ के इन सन्त ने शुरुआत में स्वयंभूरूप से अध्यात्मयुग का नवसृजन किया और उनकी विशाल प्रभावना छाया में देश-विदेश में—जयपुर, देवलाली, अलीगढ़, दिल्ली, गाँधीनगर, सोनागिर, बांसवाड़ा, इन्दौर, द्रोणागिर, नागपुर, गजपंथा, कोटा इत्यादि तथा नैरोबी, लन्दन, अमेरिका इत्यादि क्षेत्रों में—स्थापित संस्थाओं द्वारा आपश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार द्वारा आपश्री द्वारा नवसृजित अध्यात्मयुग को युग के अन्त तक टिका रखने का भी आपके पुण्य प्रताप से बना है। इस प्रकार आपश्री वीतरागी शासन को प्राणवन्त करते गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान और असाधारण व्यक्ति थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से आत्मसात भी किया।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् इन धारावाही 45 वर्षों का समय (वीर संवत् 2061 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्ण काल था। जो कोई मुमुक्षु अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी जाते थे, उन्हें तो वहाँ चतुर्थकाल का ही अनुभव होता था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 दौरान पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के निर्देशन में तथा पूज्य शान्ताबेन के भक्ति उल्लासपूर्ण संचालन में सौराष्ट्र-गुजरात उपरान्त भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में—इस प्रकार कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मंगल प्रतिष्ठा इन धर्मयुगस्रष्टा सत्पुरुष के करकमल द्वारा हुई थी।

आपश्री की अध्यात्मदेशना के प्रभाव से श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री मानस्तम्भजी, श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर, श्री पंचमेरु-नन्दिश्वर जिनालय जैसे जिनायतनों के निर्माण से आज स्वर्णपुरी जैनजगत में आत्मसाधना का तीर्थधाम बन गया है और निकट भविष्य में 41 फीट की भगवान श्री बाहुबली के खड्गासन जिनबिम्ब की तथा जम्बूद्वीप के अनेक जिनबिम्बों की स्थापना होने पर पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि स्वर्णपुरी आकर्षक अजायबीरूप से विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त करेगी।

इन विदेहदशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल था, उतना बाह्य जीवन भी पवित्र था। पवित्रता और पुण्य का सहजयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही देखने को मिलता है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत सम्भाषण, करुण और सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव थे। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय, यही उनका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे हमेशा सतर्क और सावधान थे। वे जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित, मात्र अपनी ही साधना में तत्पर रहे। भावलिङ्गी मुनियों के वे परम उपासक थे।

स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती साधक होने पर भी उनका जीवन-व्यवहार और परिणाम की स्थिति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। तीर्थकर का द्रव्य होने से जगत के जीव आत्मकल्याण को प्राप्त करें—ऐसी करुणा वर्तती होने से 91 वें वर्ष में भी गाँव-गाँव में विहार करके भव्यजीवों की तत्त्व जिज्ञासा शान्त करते थे, तथापि वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने कभी भी किसी को भी जिनमन्दिर बनाओ या स्वाध्यायमन्दिर बनाओ, ऐसा कहना तो दूर रहा, संकेत तक नहीं किया था।

जीवों के आत्मकल्याण की करुणा होने पर भी इतने निर्ममत्वी थे कि कभी किसी को भी पूछा नहीं था कि तुम रोज स्वाध्याय करते हो न ?

कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त तत्त्वज्ञान न समझने से पूज्य गुरुदेवश्री का विरोध करता हो और उस व्यक्ति को अपने अज्ञान के लिये पश्चाताप होने पर पूज्य गुरुदेवश्री से क्षमा याचना करता हो, तब पूज्य गुरुदेवश्री को शर्म... शर्म... अनुभव में आती थी और कहते थे कि भूल जाओ... भूल जाओ... भगवान ने भी अपने भूतकाल में भूल करने में कुछ बाकी नहीं रखा था। तुम भगवान हो-ऐसा हम देखते हैं और तुम भगवानरूप से देखो-ऐसी तो निर्मानता थी।

तत्त्वविरोध के कारण दैनिक पत्र में और पत्रिका में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनुचित लेख छपें तो भक्त उनका विरोध करनेवाले हों तो आपश्री कहते हैं कि भाई! हमारा कोई विरोधी नहीं है। कोई हमारा विरोध नहीं करता, हम किसी को विरोधी नहीं देखते, हम तो सबको भगवानरूप से देखते हैं। चाहे जैसा लेख लिखकर विरोध करनेवाला भी यदि प्रवचन सुनने आता हो तो उसे सभा में आगे बैठने बुलाते और प्रवचन में वात्सल्यभाव से उसे सम्बोधित करते। पूरे जीवन दौरान किसी भी व्यक्ति ने कैसा भी विरोध किया हो, वह भी यदि एक बार पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-सत्समागम में आता तो वह जीवन भर उनका अनुयायी बन जाता। क्षमावाणी के दिन प्रवचन सभा में प्रसिद्धरूप से कहते कि किसी जीव को हमारे द्वारा पर्यायदृष्टि से देख लिया गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। सब जीव भगवान हैं - ऐसी तो उनकी करुणामय क्षमा भावना थी।

जीवन में निस्परिग्रही तो ऐसे कि पैंतालीस-पैंतालीस वर्षों तक स्वाध्यायमन्दिर के एक ही कमरे में रहे कि जहाँ जिनवाणी-स्वाध्याय के लिये एक बैठक, सोने के लिये एक गद्देवाली बेंच और त्यागी को योग्य मात्र चार जोड़ी कपड़े! और स्वाध्याय के लिये सैकड़ों शास्त्रों से भरी हुई अलमारियाँ!!

देश और दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानने का कौतुहल नहीं होने से कभी भी न्यूज पेपर तक पढ़ा नहीं था।

रसना के अलोलुपी-निःस्वादी तो इतने कि जीवनभर कभी भी दो-तीन सब्जी के अतिरिक्त न तो कोई सब्जी चखी थी, मूँग की दाल के सिवाय न तो कोई दाल या कढ़ी चखी थी, न तो कोई चटनी, मिर्च चखी थी, न तो कोई मिठाई या फरसाण अथवा मुखवास चखा था। मानो कि कोई त्यागी-व्रती हो, वैसा उनका जीवन था।

करुणाशीलता का सागर होने पर भी, तत्त्व में इतने निर्भीक और सत्यमार्ग प्रवक्ता थे कि किसी भी लौकिक महानुभाव का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी तथा एक त्यागी व्रती द्वारा उद्दिष्ट भोजन सम्बन्धी कुछ स्वयं कहने सम्बन्धी पूज्य गुरुदेवश्री को संकेत किया जाने पर आपश्री ने बहुत स्पष्टरूप से कहा कि अपने लिये बनाया हुआ आहार—उद्दिष्ट भोजन—प्राण जाये तो भी मुनिराज नहीं लेते। देशकाल के नाम से सर्वज्ञ कथित शुद्ध आम्नाय का उल्लंघन कैसे किया जाये ? विक्रम संवत् 1994 में स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन प्रसंग पर भावनगर के महाराजा श्री कृष्णकुमारसिंहजी (देश के प्रथम राज्यपाल-मद्रास के) सोनगढ़ आये; उन्हें आपश्री ने प्रवचन में कहा कि थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, बड़ा माँगे वह बड़ा भिखारी-वर्ष में पाँच हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी और पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी! श्रीमद् राजचन्द्रजी को अपने धर्मगुरु माननेवाले राष्ट्रपिता गाँधीजी विक्रम संवत् 1995 में राजकोट में प्रवचन

में आये। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी तत्त्व की मस्ती में कहा कि मैं दूसरे की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। यह बात गाँधीजी को इतनी अधिक स्पर्श कर गयी कि कितने ही वर्षों के बाद उन्होंने किसी से पूछा कि मुझे मूढ़ कहनेवाले महाराज अभी कहाँ विचरते हैं ?

गुण प्रशंसक तो इतने कि किसी ने भी शासन सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया हो - चाहे वह अपना शिष्य भले हो तो भी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे।

- ऐसी अनेक उच्चकोटि की परिणति और अध्यात्म तत्त्वज्ञान से भरपूर उपदेश के सुसंगम के कारण प्रथम परिचय में ही श्रोता उनके प्रति भावविभोर बनकर उनके अनुयायी बन जाते थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन अनुभूति विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से, सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा, युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से समझाया था। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान का स्वपरप्रकाशकपना इत्यादि समस्त आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से बाहर आये थे। 'सैंकड़ों शास्त्रों के हमारे मन्थन का यह सार अन्दर से आया है।' — इस 'क्रमबद्धपर्याय' के शंखनाद द्वारा आपश्री ने जैन जगत को आन्दोलित किया। जैसे श्री समयसार का स्मरण करे तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना नहीं रहता; इसी प्रकार क्रमबद्धपर्याय शब्द कान में पड़े तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना रहना असम्भव है। आज देश-विदेश में लाखों जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह आपश्री का ही परम प्रताप है।

करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति, सम्यग्ज्ञानविभूषित इन महात्मा की महिमा का वर्णन शब्दातीत है; मात्र अहोभाव से अनुभवगम्य है।

'तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर!' — ऐसा महामन्त्र मुमुक्षुओं को देकर, भक्तों को भगवान बनने की प्रेरणा करनेवाले इन महापुरुष ने प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पन्थ जगत् में सदा जयवन्त वर्तों!

तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासनस्तम्भ श्री कहान गुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों!

भवभीरु भव्यात्मा के भव का अभाव करनेवाले सत्पुरुष का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों!

हे ज्ञान पोषक सुमेघ तुझे नमूँ मैं  
इस दास के जीवनशिल्पी तुझे नमूँ मैं ॥

- जीतूभाई नागरदास मोदी, सोनगढ़



## अनुक्रमणिका

क्र.	शास्त्र	गाथा/श्लोक	तारीख	प्रवचन नं.	पृष्ठ
१.	श्री समयसार	७६	१४-१०-१९६१	१०५	१
२.	श्री समयसार	६	०३-१२-१९७१	१२८	१८
३	श्री समयसार	६	०४-१२-१९७१	१२९	३०
४	श्री नियमसार	११९	२४-११-१९७९	९०	४२
५	श्री समयसार	७७	१५-१०-१९६१	१०७	५३
६	श्री समयसार, स्याद्वाद के बोल ९ से १२		२६-०८-१९६२	३४७	७०
७	श्री समयसार कलश-टीका	७-८	१५-०३-१९६५	९	८७
८	श्री समयसार कलश-टीका	११५	२०-१२-१९६७	१००	१०२
९	श्री नियमसार	१७३ से १७५	२०-०५-१९७५	१२९	११८
१०	श्री समयसार	११	२४-०७-१९७८	४२	१३१
११	श्री समयसार	७६	१४-१०-१९६१	१०४	१४५
१२	श्री योगसार	३८ से ४२	२२-०६-१९६६	१५	१६१
१३	श्री परमात्मप्रकाश	५७-५८	१७-०७-१९७६	३७	१७८
१४	श्री समयसार कलश टीका	२	०२-०९-१९६७	४	१९२
१५	श्री समयसार	८९ से ९१	१६-०६-१९६९	१६६	२०८
१६	श्री समयसार	शक्ति १ से ३	२८-०८-१९६२	३४९	२२५
१७	श्री समयसार कलश टीका	२८-२९	०९-१०-१९६७	३६	२४१
१८	श्री समयसार	३०६-३०७	१५-०६-१९६२	२७६	२५७
१९	श्री नियमसार	१२४, २०२	०२-०६-१९८०	१४२	२७४
२०	श्री परमात्मप्रकाश, द्वि. अधि.	९७-९८	२३-१२-१९७६	१६६	२९०
२१	श्री समयसार (१३), स्याद्वाद के बोल		२३-०८-१९६२	३४४	३०१
२२	श्री परमात्मप्रकाश, द्वि. अधि.	१०७	०१-०१-१९७७	१०७	३१८
२३	श्री परमात्मप्रकाश, द्वि. अधि.	१९७	१२-०५-१९७७	२३६	३३२
२४	श्री समयसार	३६, ३०	१०-१०-१९७८	३०	३४४
२५	श्री बहिनश्री के वचनामृत	५१ से ६१	२३-०६-१९७८	१८	३५८

प्रवचन शुरु करने से पहले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा किया जानेवाला

## मांगलिक

॥ णमो लोए सव्व अरिहंताणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व सिद्धाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व आयरियाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व उवज्झायाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणम् ॥

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।

कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।

चित्स्वभावायभावाय सर्वभावान्तरच्छेद ॥

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी ।

मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

त्रिकाल दिव्यध्वनि दातार....



श्री परमात्मने नमः

# गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के  
द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

( भाग १० )

१

श्री समयसार, गाथा-७६, प्रवचन - १०५

दिनांक - १४-१०-१९६१

समयसार का कर्ता-कर्म अधिकार, ७६वीं गाथा में प्रश्न हुआ। शिष्य ने प्रश्न किया, भगवन्त! आत्मा पुद्गल रागादि को जानता हुआ इतना तो कार्य करता है। आत्मा कर्ता होकर राग और व्यवहार, विकल्प, शरीरादि का जानपनेरूप कार्य तो करता है। तो जानपनेरूप कार्य करने में पर के साथ कोई कर्ता-कर्म सम्बन्ध है या नहीं? यह प्रश्न हुआ। समझ में आया? जाननेरूप कार्य तो करता है, कार्य तो है। व्यवहार—राग, जड़ का जानना, निज ज्ञानस्वभाव में अपने से अपने में जाननेरूपी व्याप्य—कार्य व्यापक का करता है। तो पुद्गल के साथ उसे कर्ता-कर्म है या नहीं? अपना काम तो करता है, तो दूसरे का भी काम साथ में कर ले। एक गाय का... यह दृष्टान्त हम बहुत बार देते हैं। एक गाय का ग्वाल वैसे पाँच गाय का ग्वाल। ग्वाल समझते हो? ग्वाला होता है न। एक गाय को चराने जाये तो साथ में पाँच गायों को चरावे, उसमें क्या है? उसमें तकलीफ क्या है।

आत्मा परपदार्थ, व्यवहार, दया, दान, राग, शरीर को जाननेरूपी कार्य न करे, तब तो ठीक, परन्तु जाननेरूप कार्य तो करता है, तो पर के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध है या नहीं?

जाननेरूपी कार्य अथवा कर्ता और देहादि या शरीरादि या व्यवहारादि, रागादि उसका कार्य, ऐसा कोई सम्बन्ध है ? तो कहते हैं, ऐसा नहीं है।

**श्रोता : ...**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक काम ( करे तो साथ में ) दूसरे भी करे। यह तीसरी गाथा में आया था न ? तीसरी गाथा में—‘**एयत्तणिच्छयगदो**’। आत्मा अपने अनन्त धर्म को चुम्बन करता है। यह तीसरी गाथा में आया था।

**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।**

**बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥३॥**

इसकी टीका में आया था। भगवान आत्मा अथवा अनन्त द्रव्य, अपने अनन्त गुण-धर्म को चुम्बन करता है। इतना तो काम है तो उसके साथ परद्रव्य को चुम्बन करता है या नहीं ? तो कहा कि भगवान आत्मा या प्रत्येक द्रव्य अपने धर्म-गुण को चुम्बन करता है-स्पर्श करता है, आलिंगन ( करता ) है, आलिंगित है। तथापि परद्रव्य को चुम्बन या किसी द्रव्य को स्पर्शना, ऐसा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श करता है, यह तीन काल में नहीं है। समझ में आया ?

अपने स्वभाव को द्रव्य स्पर्श करता है—प्रत्येक परमाणु, आत्मा, धर्मास्तिकाय, परन्तु परद्रव्य को एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता है, स्पर्श करता है—(ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है। ऐसी टीका तीसरी गाथा में अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ली थी। तो क्या (कहा) ? उसमें ऐसा पाठ लिया है कि अनन्त धर्म को चूमता होने पर भी, ऐसा करता होने पर भी, इतना तो करता है, तो परद्रव्य को चूमता है या नहीं ? अपने धर्म को चूमता होने पर भी परद्रव्य को चूमता नहीं, स्पर्शता नहीं, छूता नहीं। यहाँ ऐसा प्रश्न किया है। भगवान ! आत्मा पर को जानता तो है, तो जानने के कार्य के साथ कर्ता होकर पर का-पुद्गल का, राग का कार्य उसका है, ऐसा कोई सम्बन्ध है ? तो कहते हैं, नहीं।

**टीका - प्राप्य...** यह पुद्गल की बात चलती है, हों ! प्राप्य—जो राग जिस समय में आनेवाला है, उसे पुद्गल प्राप्य अर्थात् प्राप्त करता है। वह पर्याय नियत है। ज्ञानी को जो राग ज्ञेयरूप, व्यवहाररत्नत्रयरूप, शरीर की क्रियारूप जो पर्याय जड़ में होनेवाली है, उस समय का उल्लंघन नहीं करती। वह पर्याय प्राप्य है अर्थात् निश्चित है अर्थात् वह द्रव्य उसी पर्याय को प्राप्त करता है, उसे यहाँ प्राप्य कहते हैं। है, जो होनेवाली है, होनेवाली जो है, उसे प्राप्य कहते हैं। क्या कहा ?

व्यवहाररत्नत्रय में यहाँ पुद्गल के परिणाम लेना है न? वे पुद्गल के परिणाम हैं। राग, व्यवहाररत्नत्रय का राग जिस समय में जो पर्याय में होनेवाला है, उसे पुद्गल प्राप्त करता है, प्राप्त होता है। पुद्गल पहुँचता है। उसे पुद्गल पहुँचता है। पहुँचता है, कहते हैं न? पहुँचता है। उस राग को पुद्गल पहुँचता है, इसका नाम प्राप्य। आत्मा नहीं। आत्मा तो कहेंगे, वह पुद्गल जिस राग को जिस समय प्राप्य-पहुँचता है, उसी समय आत्मा अपना ज्ञान करके, उसके ज्ञान की पर्याय के प्राप्य—वह स्वपरप्रकाशक पर्याय, उस प्रकार की होनेवाली है, उसे वह प्राप्य अर्थात् प्राप्त करता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर की चीज़ ऐसी है। निश्चय और व्यवहार सर्वथा भिन्न है। व्यवहार में निश्चय का अभाव है और निश्चय में व्यवहार का अभाव है, इसके बिना दो चीज़ सिद्ध—साबित नहीं होती। कहते हैं कि वह प्राप्य-व्यवहाररत्नत्रय का रागादि अर्थात् शरीर, वाणी, मन सब, सुख-दुःख की कल्पना इत्यादि। उसे पुद्गल पहुँचता है, पुद्गल पहुँचता है, पुद्गल उसे प्राप्त करता है। वही पर्याय निश्चित है, वह पुद्गल में से आती है और पुद्गल उसे ही प्राप्त करता है।

**विकार्य...** पूर्व की अवस्था पलटकर विकार्य—फेरफार, पूर्व की अवस्था फेरफार—व्यय होकर नयी अवस्था विकार्य अर्थात् पलटा हुआ। वह भी पुद्गल में पलटा हुआ, पुद्गल में पूर्व अवस्था का व्यय होकर विशेष अवस्था का पलटा हुआ, वह विकार्य। **निर्वर्त्य...** वर्तमान अवस्थारूप निपजा। है तो वह की वह, परन्तु एक निश्चित, एक फेरफार, एक उपजना—ऐसे तीन व्याप्य लक्षणरूपी जड़ का कार्य, वह पुद्गल का कार्य, पुद्गल का व्याप्यरूप कर्म, उसे पुद्गल पहुँचता है, आत्मा नहीं। समझ में आया?

**प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य...** निश्चित, फेरफार, उपजना। इन तीन के लक्ष्य में अन्तर है, वस्तु की वह की वह है। **व्याप्यलक्षणवाला...** अवस्था लक्षणवाला, कदाचित् होनेवाली अवस्थारूप लक्षणवाला **पुद्गल के परिणामस्वरूप कर्म...** पुद्गल के परिणामस्वरूप कर्ता का कार्य। वह पुद्गल कर्ता है और उसका वह व्याप्य-प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य उसका कार्य है। ओहोहो! पहली लाईन चलती है, भाई, मूलजीभाई! अभी तो पहली लाईन चलती है। समझ में आया? यह कर्ता का कार्य है। किसका? यह पुद्गल का बदलना हुआ, उसे पुद्गल कहा। राग का भाव आदि पुद्गल का बदलना होकर विकाररूप हुआ, वही उपजा, वही निश्चित था, उसे पुद्गल कर्ता होकर कार्य को करता है।

यहाँ तो भेद से समझाना है न। नहीं तो पर्याय और पर्यायवान उस समय में अभेद है। पुद्गल के साथ अभेद है; आत्मा के साथ अभेद नहीं। समझ में आया? रवजीभाई!

सूक्ष्म बहुत, हों! वहाँ कहीं आया नहीं होगा। क्या कहलाता है इसे? इंग्लैण्ड गया था या अमेरिका? इंग्लैण्ड। थोथा-थोथा सब। कहो, समझ में आया? ऐसा होगा? मूलजीभाई! बेरिस्टर हुए हैं न।

यह तो भगवान आत्मा अपना बेरिस्टरपना करे, वह क्या? ओहो! यह पुद्गलकर्म का कार्य है। देखो! शास्त्र में ऐसा लिया है कि व्यवहाररत्नत्रय पाप है। समझ में आया? क्या कहा? व्यवहाररत्नत्रय पाप है, निश्चय से पाप है। वह पुद्गल का कार्य पाप है, निज आत्मा का कार्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं कि पुद्गल के पाप परिणाम, पाप कार्य आत्मा के होंगे? आत्मा पवित्र स्वरूप भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्दस्वभाव, वह परिणामनेवाला अपने में पापपर्याय उत्पन्न करे? वह तो पाप को जाननेरूप और अपने को जाननेरूप ज्ञान के कार्यरूप प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य को प्राप्त करे। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

योगसार में कहते हैं न? 'पाप को पाप तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' समझ में आया? पुण्य को पाप कहे। योगसार में कहते हैं। और पुण्य-पाप के अधिकार में अन्तिम गाथा है न? पुण्य-पाप अधिकार है न? उसकी अन्तिम गाथा में शिष्य ने प्रश्न किया है कि प्रभु! आप यह किसका अधिकार कहते हो? पहले पुण्य का अधिकार तो आ गया। यह किसका अधिकार है? पाप का अधिकार है, यह व्यवहाररत्नत्रय?—कि हाँ, पाप का अधिकार है। जयसेनाचार्यदेव पुण्य-पाप (अधिकार की) अन्तिम गाथा की टीका में (कहते हैं), यह पाप अधिकार है। पाप क्यों? यह व्यवहाररत्नत्रय व्यवहार से पवित्रता का कारण परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु स्वरूप से पतित, निर्विकल्प शान्ति से पतित होता है, इसलिए व्यवहाररत्नत्रय को हम पाप कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो पुद्गल कहा, फिर तुझे क्या लेना है? पुद्गल ही उस पाप को पहुँचता है। भगवान पाप को पहुँचता है? चिदानन्दस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा, वह तो अपनी शान्ति, अविकारी परिणाम को पहुँचता है, पहुँचता है। विकार को पहुँचे, वह पुद्गल; आत्मा नहीं। विकार को मैं पहुँचता हूँ, ऐसी मान्यता, वह आत्मा नहीं है; वह अनात्मा है। आहाहा! सेठी!

कहते हैं, प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा, व्याप्यलक्षणवाला पुद्गल के परिणामस्वरूप.... पुद्गल के परिणामस्वरूप अथवा पुद्गलकर्ता और उसके कर्मस्वरूप कार्य, उसमें पुद्गलद्रव्य स्वयं अन्तर्व्यापक होकर,... ध्यान रखना! निश्चय सम्यग्दृष्टि को

व्यवहाररत्नत्रय का जो राग शुभभाव है, निश्चय सम्यग्ज्ञानी को व्यवहाररत्नत्रय का राग है, शरीर, वाणी, मन आदि सब, उसमें पुद्गलद्रव्य स्वयं अन्तर्व्यापक होकर, आदि... राग की आदि में आत्मा है? - कि नहीं। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय के राग की आदि में आत्मा है?—कि नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के राग की आदि में पुद्गल है। समझ में आया? यह तो कर्ता-कर्म अधिकार का निचोड़ है। यह ७५ से ७९ गाथा।

भगवान् ज्ञानी का लक्षण पूछा है न? ज्ञानी का चिह्न पूछा है न? ज्ञानस्वरूप हुआ, ज्ञानी हुआ, धर्मी हुआ, मोक्षमार्ग का पन्थ पकड़ा, उसका लक्षण क्या है? तो कहते हैं कि यह व्यवहाररत्नत्रय का राग और दया, दान आदि के विकल्प में पुद्गलद्रव्य स्वयं अन्तर्व्यापक होकर, अन्तर्व्यापक, पुद्गलद्रव्य अन्तर्व्यापक-पसरनेवाला है। आदि—उसमें पुद्गल आदि है। व्यवहाररत्नत्रय के राग में, शरीर की अवस्था में, वाणी की अवस्था में पुद्गल आदि में है; आत्मा की इच्छा या ज्ञान आदि में नहीं। यहाँ तो इच्छा को ही पुद्गल कह दिया है। ज्ञान की विचक्षणता हुई कि ऐसे बोलना। तो उस बोलने की पर्याय में आदि में ज्ञान की पर्याय है?—कि नहीं। समझ में आया? राग हुआ, कषाय की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की भाक्ति सुविशुद्ध, सुविशुद्ध परिणाम की आदि में आत्मा का कोई अंश है? आत्मा आदि में है? आदि में है ही नहीं। वह तो राग और मन, वाणी, देह की पर्याय और सुख-दुःख की कल्पना की आदि में तो पुद्गल ही है, उसके मध्य में पुद्गल है और अन्त में भी पुद्गल है। ओहोहो! समझ में आया?

भगवान् सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञाता-दृष्टा में व्यापक होकर व्यापता है, पर की पर्याय में व्यापता नहीं। वह परद्रव्य है, राग परद्रव्य है, व्यवहाररत्नत्रय परद्रव्य है, पाप है, तिरस्कार करनेयोग्य है, कुशील है, व्यभिचार है, अभिसारिका है। समझ में आया? ऐसा पुद्गल अन्तर्व्यापक होकर व्यभिचारी भाव में पुद्गल अन्तर्व्यापक होकर आदि में वह, मध्य में वह और अन्त में (वह व्याप्त है)। आदि, मध्य का अर्थ कोई समयभेद नहीं, समयभेद नहीं। जैसे वे प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य का समयभेद नहीं, इसी प्रकार आदि, मध्य में (समयभेद नहीं है)। यहाँ तो जोर देना है कि इन विकार के परिणाम में और शरीर की पर्याय में आदि में कहीं आत्मा प्रेरक है?

यह शरीर की अवस्था होती है न? तो आत्मा की कुछ प्रेरणा हुई तो ऐसा हुआ और वैसा हुआ, ऐसा है?—तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अरे! राग की प्रेरणा की आदि में आत्मा नहीं। आत्मा तो पवित्र सच्चिदानन्द धाम, ज्ञानपुंज स्वरूप है,

ऐसा भान हुआ तो ज्ञान का द्रव्य, ज्ञान का गुण और ज्ञान की पर्याय। शरीर-वाणी-मन की पर्याय, हलन-चलन और राग की पर्याय की आदि में आत्मा तीन काल में नहीं है। दृष्टि का विषय बनाकर दो का भेद किया है और दो का भेद न हो तो दो नहीं रहते। निश्चय का निश्चय और व्यवहार का व्यवहार। निश्चय में व्यवहार का अभाव है अर्थात् स्वद्रव्य में परद्रव्य का अभाव है और व्यवहार परद्रव्य है, उसमें स्वद्रव्य का अभाव है। समझ में आया ?

कहते हैं, ओहो! भगवान! हमने किया, हमने किया। यहाँ कर्ताकर्म की बात है न? राग की मन्दता मैंने की। व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार राग के—अट्टाईस मूलगुण के परिणाम मैंने किये। भगवान! मैंने किये (ऐसा माननेवाला तो) अनात्मा है, वह आत्मा नहीं। उसे आत्मा नहीं कहते। वह मैंने नहीं किया परन्तु वह पुद्गल द्वारा किये गये हैं। उनकी आदि में, मध्य में, अन्त में पुद्गल ही है। मैं तो उनकी आदि, मध्य और अन्त में नहीं। यह फिर आयेगा। यहाँ तो अभी पुद्गल की बात करते हैं न! समझ में आया ?

उसकी चीज़ ऐसी है! ज्ञानस्वरूप प्रभु, ज्ञान का पुंज, जैसे झूले में झूले... हिण्डोला कहते हैं न? झूलना। झूला... झूला। इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप प्रभु अपनी पर्याय में परिणमनेवाला, अपनी निर्दोष पर्याय, निर्वद्य, निर्दोष, निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की पर्याय को व्यापक व्यापक आत्मा होकर वह कार्य (होता है)। उसकी आदि में-राग की आदि में आत्मा की पर्याय, द्रव्य और गुण तीनों में से एक भी नहीं है। समझ में आया? तीनों नहीं हैं, तीनों नहीं हैं। उसका पुद्गलद्रव्य है, वह शक्तिवान, उसके गुण हैं, वह शक्ति, वह व्यापक होकर रागादि, व्यवहार राग आदि, देहादि, वाणी आदि की अवस्था होती है, आत्मा की नहीं। भारी निमित्त के झगड़े, भाई! कहो, समझ में आया ?

शरीर क्या आत्मा की प्रेरणा बिना चलता है? अंगूठा ऊँचा करना, जीभ हिलना। अरे! भगवान! सुन तो सही! तुझे क्या पर का कार्य करना है? या उसके ज्ञान का कार्य तुझे करना है? तेरा कर्तव्य क्या है? और तेरा व्यापकपना किस कर्तृत्व में है। कहते हैं कि व्यवहारी राग-द्वेष, सुख-दुःख कल्पना, दया, दान, सेवा आदि का भाव और उस सम्बन्धी होनेवाली देह की पर्याय का प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य उस समय में वही होनेवाली पर्याय है। उसकी विकार्य पूर्व अवस्था पलटकर उत्पन्न हुई, उसमें पुद्गल ही अन्तर्व्यापक होकर, अन्तःव्यापक होकर आदि, मध्य, अन्त में व्याप्त होकर पुद्गल ही व्यापता है। वह पुद्गल ही व्यापक होकर अवस्था को प्राप्त करता है, आत्मा नहीं। उसे यहाँ आत्मा कहते नहीं कि जो राग को प्राप्त करे, राग में फेरफार करे, राग में उपजे, वह आत्मा नहीं है।



यहाँ तो अभी सात तत्त्व में तत्त्वार्थश्रद्धान में आत्मा कैसा है ? आस्रव तो परतत्त्व में गये। यहाँ तो आस्रव और अजीव सबको पर में डाला है। आस्रव और अजीव सब पुद्गल में अन्तर्व्यापक होकर (कार्य) करते हैं। समझ में आया ? पुद्गलद्रव्य स्वयं अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, उसे ग्रहण करता हुआ,... यह ग्रहण अर्थात् प्राप्य। क्या कहते हैं ? यह पुद्गल ही प्राप्य—रागादि की पर्याय को पुद्गल ही ग्रहण करता है अथवा पुद्गल प्राप्त करता है। शरीर की अवस्था ऐसी होती है, उसे पुद्गल ग्रहण करता है अथवा पुद्गल उसे पहुँचता है। आत्मा उसे पहुँचता है और ऐसी अवस्था होती है—ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया ?

उसे ग्रहण करता हुआ,... उसे (अर्थात्) किसे ? उसे। किसे ? पुद्गलद्रव्य अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर जो होता है, उसे पुद्गल ग्रहण करता है। उसरूप परिणामन करता हुआ... उसरूप पुद्गल परिणामता हुआ। अध्यात्म के अन्तर आत्मा की दृष्टि का विषय चलता है। समझ में आया ? उसमें कर्ता-कर्म सम्बन्ध पुद्गल के साथ या राग के साथ आत्मा को है नहीं। जहाँ-तहाँ मैंने किया, मैंने किया, यही अज्ञान है। 'शकट का भार ज्यों श्वान ताणे।' गाड़ी का भार। गाडा... गाड़ी। ...गाड़ी होती है न ? उसे कुत्ता खींचता है। उसी प्रकार शरीर की क्रिया मेरी, राग मेरा, वाणी मेरी, मैं हूँ तो व्यवस्थितरूप से वाणी बोली जाती है। आत्मा है तो व्यवस्थितरूप से बोला जाता है। क्या आत्मा के अस्तित्व में वाणी का प्रवेश है ? या वाणी की अवस्था में परमाणु का अन्तर्व्यापक प्रवेश है ? अन्तर्व्यापक प्रवेश है। क्या आत्मा का अन्तर्व्यापक प्रवेश है ? राग व्यवहार, राग, दया, दान में पुद्गल का अन्तर प्रवेश है या पवित्र प्रभु का प्रवेश है ? समझ में आया ?

उस पुद्गल परिणाम को ग्रहण करता हुआ, कौन ?—पुद्गल। उसरूप परिणामन करता हुआ... वह विकार्य। उसरूप उत्पन्न होता हुआ,... वह निर्वर्त्य। उस पुद्गलपरिणाम को करता है... पुद्गल अन्तर्व्यापक होकर उस पुद्गलपरिणाम को करता है। समझ में आया ? अजीतप्रसादजी ! क्या कहते हैं यह ? व्यवहाररत्नत्रय में पुद्गल अन्तर्व्यापक होकर पसरता है। भगवान के धाम में तो पवित्रता पड़ी है। भगवान आत्मा के धाम में तो शुद्धता पड़ी है। अशुद्धता कहाँ से पसरे और अंकुर उसमें से फूटे ? वह तो राग और पुण्य के दया, दान के भाव, उन पुद्गलपरिणाम को पुद्गल करता है।

इस प्रकार पुद्गलद्रव्य से किये जानेवाले... अब आता है। इस प्रकार (अर्थात्) यह कहा न ? प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य, उसमें आदि, मध्य, अन्त में अन्तर्व्यापक होकर ग्रहण

करता हुआ, परिणमता हुआ, उपजता हुआ पुद्गल परिणाम में पुद्गल। इस प्रकार पुद्गलद्रव्य से किये जानेवाले... पुद्गलद्रव्य से होनेवाले, पुद्गलद्रव्य से किये जानेवाले पुद्गलपरिणाम को। पुद्गलद्रव्य से किये जानेवाले पुद्गलपरिणाम को ज्ञानी जानता हुआ भी,... अब आया। समझ में आया? जानता होने पर भी। जानता होने पर भी क्यों? पाठ में यह लिया है न? जानता है तो कर्ता-कर्म सम्बन्ध है? जानने का कार्य करता है। इतना सम्बन्ध है तो उसमें ज्ञेय-ज्ञायक का। तो ज्ञेय-ज्ञायक के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध है या नहीं? बिल्कुल सम्बन्ध नहीं हो तब तो हम पूछते नहीं, परन्तु सम्बन्ध तो है। है, सुन!

पुद्गलपरिणाम व्यभिचार राग, पुण्य का विकल्प आया और मन, वाणी, देह की जो पर्याय हुई, उस पुद्गलपरिणाम में पुद्गल अन्तर्व्यापक होकर आदि-मध्य-अन्त में प्रवेश करके, ग्रहण करता हुआ, परिणमता हुआ उत्पन्न होता है। ऐसे पुद्गलपरिणाम को ज्ञानी जानता हुआ भी,... जानता है कि है। पर की अस्ति है। उसका ज्ञान मुझमें अस्ति है। उस सम्बन्धी का ज्ञान मुझमें अस्ति है और वह रागादि है, वह मुझमें अस्ति नहीं। वह पुद्गल में अस्तिरूप है। समझ में आया? ऐसा ज्ञानी जानता हुआ भी,... क्या कहते हैं? अपने द्रव्य, गुण, पर्याय को तो जानता है, ऐसे व्यवहाररत्नत्रय को जानता होने पर भी, जानता होने पर भी, वह जानने का कार्य अपना और अपने अस्तित्व में है और वह चीज़ है, वह तो पर के अस्तित्व में और पर का कार्य है। समझ में आया?

ओहो! भेदज्ञान कला! 'भावयेद्भेदविज्ञान' यह आता है न? संवर अधिकार में आता है। 'अच्छिन्नधारया' ऐसा पाठ है। 'अच्छिन्नधारया' यहाँ एक वेदान्ती था। आया था। एक वेदान्ती था। नागर गुलाबराय। बहुत वर्ष पहले। यह श्लोक जहाँ सुना न... वह तो वेदान्ती... आहाहा! 'भावयेद्भेदविज्ञान अच्छिन्नधारया' श्लोक कण्ठस्थ किया। उसकी एक पुत्री क्षय (टीबी) में थी, क्षय में। क्या है? 'भावयेद्भेदविज्ञान' में कितनी ध्वनि है! भेदज्ञान करने में राग, विकल्प, पुण्य, देहादि है और भेदज्ञान करनेवाले को द्रव्य, गुण और उसकी पर्याय भिन्न है। ऐसा सिद्ध होने के पश्चात् उससे भेद करते... करते... करते... करते... जहाँ पूर्ण भेद हो गया, अभेद एकाकार (हुआ वहाँ) केवलज्ञान हो गया। देखो! वस्तु में ऐसी स्थिति कहनेवाले सर्वज्ञ के अतिरिक्त कौन है? समझ में आया? तीन काल-तीन लोक में दूसरी वस्तु कहाँ से लाना? भेद करना। तो भेद किसका (करना)? एक में भेद करना या दो हो उसमें (भेद करे न)। दो का अस्तित्व सिद्ध किया। विकार का-अविकार का, जड़ का-चैतन्य का और अनादि का भेद नहीं था, वह भी सिद्ध हुआ। अनादि

की भूल भी सिद्ध हुई और उसमें से निकला, भेद किया, पृथक् पड़ा। तो क्या कहते हैं ?

अभी यह रागादि वस्तु है। पूर्ण केवलज्ञान हुआ नहीं तो रागादि हैं, पुद्गल का व्यापक होकर कार्य है। उसे जानता होने पर भी जानने का कार्य, परिणमने का कार्य, परिणमन पर से भिन्न हुआ, परिणमनेवाला, द्रव्य कूटस्वरूप से रहनेवाला और विकार से भिन्न होनेवाला और विकार भी भिन्न हो गया। विकार का अस्तित्व, उसे जाननेवाली पर्याय का अस्तित्व, पर्याय का प्रवाह जिसमें से आता है, ऐसे द्रव्य-गुण का भी अस्तित्व है। समझ में आया ?

कहते हैं, इस प्रकार पुद्गलद्रव्य से किये जानेवाले... आत्मा से किया जानेवाला बिल्कुल नहीं। वह आत्मा का कार्य नहीं। चिल्लाहट मचाये। अरे रे! यह तो निश्चय... व्यवहार का लोप हो जाता है। प्रभु! तुझे व्यवहार को क्या करना है ? तुझे आत्मा का कार्य करना है या अभी तुझे पुद्गल और राग का कार्य करना है ? क्या है ? तुझे कोई कर्तव्य करना है न ? और कर्तव्य निर्दोष करना है या सदोष करना है ? यदि निर्दोष करना है तो सदोष का ज्ञान करनेवाला रहे तो निर्दोष हुआ जा सकेगा, परन्तु सदोष का कार्य करनेवाला होगा तो निर्दोष नहीं होगा। समझ में आया ? यह टीका तो अमृतचन्द्राचार्य ने (की वैसी) भरतक्षेत्र में अन्यत्र नहीं है। अन्यत्र तो कहाँ होगी परन्तु जैनदर्शन की यह कर्ता-कर्म की अलौकिक रचना... ओहोहो! केवलज्ञान को खड़ा कर दिया है।

छह द्रव्य और छह द्रव्य को जाननेवाला भगवान आत्मा भिन्न (है)। उन छह द्रव्य में राग भी आ गया। आस्रवतत्त्व उसमें (आ गया)। सब होता है, उसके समय में, उसके काल में, उसके परिणमन में उसकी पर्याय के काल में, उसे जानता हुआ भगवान, उसे जानता होने पर भी। अब दृष्टान्त देते हैं। आचार्य सरल बात करने के लिये दृष्टान्त को सरल बनाकर सिद्धान्त सरल रीति से कहते हैं।

जैसे मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर,... मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर आदि में मिट्टी। आहाहा! दृष्टान्त कड़क है। इस दृष्टान्त में आदि में मिट्टी (कहा)। बहुत बार कहते थे न दृष्टान्त कठिन, सिद्धान्त तो फिर रहे। घड़े की पर्याय में आदि में मिट्टी (व्यापी है)। कुम्हार था तो मिट्टी में से घड़ा हुआ, यह बात सत्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? क्या कहते हैं ? मिट्टी स्वयं... स्वयं। कुम्हार की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से (व्यापती है)। आहाहा! चिल्लाहट कर जाये! कुम्हार बिना घड़ा होता हो तो बता दो। परन्तु सब घड़े कुम्हार बिना ही हुए हैं, सुन तो सही! मिट्टी स्वयं घटरूप निरपेक्षरूप से

स्वयं होती है, पर की अपेक्षा बिना—निश्चय। निमित्त का ज्ञान कराने को दूसरी चीज़ कहते हैं। यह तो स्व-परप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है तो दूसरी वस्तु कौन सी थी, उसका ज्ञान कराने के लिये है। यह कार्य करनेवाली है घड़े का, ऐसा तीन काल में नहीं है। कुम्हार घड़ा (बनानेवाला नहीं)। कैसे जँचे ?

चावल पानी बिना पकते हों तो बता दो। यहाँ कहते हैं, भगवान! सुन तो सही। यह चावल स्वयं पकने की पर्याय का कार्य स्वयं, अग्नि और पानी की अपेक्षा रखे बिना, निरपेक्षरूप से चावल अपने पकने की पर्याय का कार्य करते हैं। आहाहा! यह तो मिट्टी का दृष्टान्त दिया है, परन्तु सब द्रव्य ले लेना। आहाहा! वह संयोगदृष्टि है न? संयोग... संयोग... संयोग... संयोग। कुम्हार का ऐसे-ऐसे हाथ होता है न? तो ऐसा हुआ। वह संयोग को देखनेवाला दो द्रव्य को एक बुद्धि से देखता है।

**मिट्टी स्वयं...** स्वयं शब्द लिया है। **घड़े में अन्तर्व्यापक होकर,...** अन्तर्व्यापक होकर मिट्टी को पसरनेवाली पर्याय का समय-काल है तो वास्तव में घड़े की पर्याय होने की निश्चित है, वह प्राप्य को मिट्टी पहुँचती है। मिट्टी पहुँचती है, कुम्हार नहीं पहुँचता। समझ में आया? ...जी! यह व्यापार-ब्यापार, धन्धा-बन्धा को आत्मा नहीं पहुँच सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लकड़ी यहाँ से फिरती है न? देखो! यहाँ से यहाँ फिरती है न? तो कहते हैं कि अँगुली के कारण से नहीं, ईच्छा से नहीं, ज्ञान से नहीं। वह तो अपनी पर्याय का प्राप्य है, उस समय ऐसा होनेवाला है। इस प्राप्य को परमाणु पहुँचते हैं। नियत पर्याय होने की उसे पहुँचती है। पूर्व की अवस्था बदलकर विकाय हुआ और निपजा, वह परमाणु अन्तर्व्यापक होकर ऐसा हुआ है। स्वयं ऐसा होता है।

कहो, इस रोटी में भी ऐसा होगा? रोटी... रोटी। तो फिर चकला और बेलन की क्या आवश्यकता है? किसलिए रखते हैं? नीचे चकला रखते हैं, उसके ऊपर बेलन। बराबर गोल चक्कर घूमे, इसलिए घूमे। ऐसे के ऐसे बेलन रख दिया, लो। अरे! भगवान! कौन रखे और कौन फिरावे? तुझे खबर नहीं। समझ में आया? यह बेलन की पर्याय, चकला की पर्याय को बेलन की ऐसी-ऐसी पर्याय होती है, उस प्राप्य अवस्था को वह परमाणु पहुँचता है और रोटी की पर्याय को रोटी के परमाणु पहुँचते हैं। क्या बेलन की पर्याय पहुँचती है? आहाहा!

यहाँ तो इससे भी कठोर अधिकार है। यहाँ तो कहते हैं कि राग, दया, दान, त्रिलोकनाथ की भक्ति शुभयोग-शुभोपयोग है। कहते हैं कि जैसे मिट्टी स्वयं अन्तर्व्यापक होकर घड़े में

आदि-मध्य-अन्त में (व्यापती है)। देखो तो भाषा! इन चार गाथा में प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य, आदि-मध्य और अन्त, गजब काम! समझ में आया? मिट्टी घड़े में आदि है, मिट्टी घड़े में मध्य है, मिट्टी घड़े के अन्त है। आदि-मध्य और अन्त में वही है, जो कहो वह ही है, ऐसा कहते हैं। समय तीन भेद है, ऐसा नहीं—आदि में और फिर मध्य में और फिर अन्त में। यह परमाणु पुद्गल ही उसकी आदि, मध्य और अन्त में वही पुद्गल है कि जिससे घड़े की पर्याय होती है, कुम्हार से नहीं या कुम्हार आदि में है तो घड़े की पर्याय हुई, या वह घड़े की पर्याय नियत जो मिट्टी में से आनेवाली थी, वह कुम्हार का प्राप्य हो गया। समझ में आया? और कुम्हार ने मिट्टी में फेरफार कर डाला तो कुम्हार विकार्य हो गया, ऐसा तीन काल में नहीं है।

यह तो अभी दृष्टान्त देते हैं। दृष्टान्त का सिद्धान्त तो आत्मा में उतारना है, परन्तु दृष्टान्त में ही अभी दखत खड़ी करे, दृष्टान्त के न्याय में दखल खड़ी करे कि नहीं, ऐसा नहीं है। यह तो निश्चय की बात है। प्रभु! निश्चय, वह सत्य है और जितने व्यवहार के कथन (आते हैं), वह असत्य है। निमित्त देखकर अन्यथा कथन करता है, उससे हुआ नहीं है, तथापि हुआ (ऐसा) कथन करना, वह व्यवहारनय का विषय है। उसे ऐसा मानना, जैसा कहा वैसा मानना, वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, यहाँ तो बहुत सूक्ष्म है। आस्रव की पर्याय। **मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर,...** मिट्टी घड़े में घड़े की आदि में, मध्य में और अन्त में व्याप्त होकर **घड़े को ग्रहण करती है,...** देखो, प्राप्य। घड़े की पर्याय प्राप्य, वह नियत है, ध्रुव है। नहीं तो प्राप्य किस प्रकार कहना? उस समय में निश्चित है, दूसरा आगे-पीछे समय होता नहीं। आहाहा! मिट्टी स्वयं घड़े को ग्रहण करती है। घड़े को ग्रहण करती है अर्थात् प्राप्य होती है। वह घड़े का प्राप्य जो नियत है, उसे मिट्टी पहुँचती है।

**घड़े के रूप में परिणामित होती है...** घड़े के रूप में। कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि मिट्टी का रूपान्तर भले हो, परन्तु आकार तो कुम्हार बिना होता नहीं। व्यंजनपर्याय की आकृति तो उसका हाथ ऐसे... ऐसे... ऐसे थाप मारता है (इसलिए होता है)। आकृति को तो पर से मानना पड़ेगा। भगवान! यहाँ तो सब ले लिया है। यह घड़े का गुण, मिट्टी का प्रदेशत्वगुण और सबको, यह सब गुण अपनी पर्याय में प्राप्य होकर पहुँचते हैं। आकृति की प्राप्य पर्याय जो उस समय में प्राप्य है, उसे मिट्टी पहुँचती है। (कुम्हार का) हाथ-बाथ उसे नहीं पहुँचता। समझ में आया?

(कोई ऐसा कहता है कि) ऐसा कैसे होता है ? मिट्टी का घड़ा बनाना हो तो घड़ा बने, कोडिया बनाना हो तो कोडिया बने, नलिया बनाना हो तो (नलिया बने) । नलिया... नलिया... समझते हो ? छप्पर के ऊपर (लगाते हैं) । अरे ! भगवान ! तू क्या कहता है ? ऐसे बनाना हो तो ऐसे बने, ऐसा बनाना हो तो ऐसा बने । यह तू क्या कहता है ? यह तो मिट्टी की जो पर्याय प्राप्यरूप जिस समय में जो आकृति और जिस प्रकार के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का रूपान्तर होनेवाला प्राप्य है, उसे मिट्टी पहुँचती है । दूसरा ऐसा बनावे, तीसरा ऐसा बनावे, भगवान ! यह वस्तु में नहीं । वह तो ईश्वरकर्ता जैसी चीज़ हो गयी । ईश्वर को तो उसका चैतन्य कर्ता और इसका हाथ कर्ता । मिट्टी में ऐसे करे और ऐसे थप करे, खड्डा पड़ जाये, ऐसा हो जाये, ऐसा हो, अरे ! प्रभु ! तुझे क्या हुआ है ? वह तो भ्रम है, भगवान ! वह भ्रम तुझे टालना पड़ेगा, हों ! शान्ति चाहिए हो तो टालना पड़ेगा, प्रभु ! कर्ता-कर्म चीज़ इस प्रकार से नहीं है ।

मिट्टी की पर्याय का घड़े का कार्य कुम्हार से हुआ, व्यवहार के कथन अन्यथा कथन हैं, वस्तु ऐसी है ही नहीं । भगवान अमृतचन्द्राचार्य दृष्टान्त देकर सिद्धान्त सिद्ध करते हैं । यह तो अभी दृष्टान्त है । दृष्टान्त में जहाँ गड़बड़ उठे तो सिद्धान्त को तो वह समझ सकेगा नहीं । तो कहते हैं, मिट्टी अन्तर्व्यापक होकर आदि-मध्य-अन्त में... आहाहा ! कहीं भी कुम्हार का हाथ ऐसा हुआ, (इसलिए हुआ, ऐसा नहीं है) । चावल-बावल पकते हैं न ? ऐसे पानी निकालते हैं या नहीं ? पानी निकालकर । चावल अन्दर रह जाये, लो ! यह चावल पकाते हैं या नहीं । उसमें पानी होता है न ? ओसावे । ओसावे अर्थात् ऐसे नीचे जरा चौड़ा रखे । ...रखे । ऐसे पानी निकल जाये । देखो ! कला तो देखो । आत्मा की कैसी कला है, कैसा कार्य करता है ! अरे ! भगवान ! उसे आत्मा ही नहीं कहते । सुन तो सही ! आहाहा ! वह तो पुद्गल के परमाणु उस समय ऐसी पर्याय को प्राप्यरूप होने का नियत था, उसे परमाणु पहुँचते हैं । वहाँ तेरी अँगुली पहुँचती है या तेरी इच्छा पहुँचती है, तेरी विचक्षणता पहुँचती है, यह भ्रम है-बड़ा भ्रम है । निश्चय भी सत्य और व्यवहार भी सत्य, यह भ्रम है, ऐसा है नहीं । व्यवहार व्यवहाररूप से सत्य है । है, इतनी अपेक्षा से, परन्तु वह अपने से है और अपना कार्य है, ऐसा सत्य नहीं है । अस्तित्व सिद्ध करते हैं न ? है तो सिद्ध करते हैं ।

**घड़े के रूप में परिणमित होती है... कौन ? मिट्टी । और घड़े के रूप में उत्पन्न होती है... निर्वर्त्य । घटरूप परिणमती है न ? पहले पिण्ड था । वह तो मिट्टी उसे परिणमाती है । दूसरा कोई ऐसा कर सकता है, ऐसा तीन काल में नहीं है और घड़े को घड़ेरूप से उत्पन्न**

होती, देखो। क्या कहा? निर्वर्त्य। मिट्टी घटरूप से (परिणमित हुई है)। घड़े का रूप आया न? यह आकार और ऐसा। उस आकाररूप मिट्टी उत्पन्न होती है और उसके आदि-मध्य-अन्त में मिट्टी है। आकार में फेरफार हुआ तो उसकी आदि में उसकी अँगुली है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

और कोई कहता है कि विचक्षण पुरुष को क्यों बुलाते हो? विधुर मनुष्य हो, स्त्री बिना का हो और आता न हो, रोटी बनावे, बेलन घुमावे (तो) एक कोना ऐसा निकले और एक कोना ऐसे निकले। उसकी रोटी गोल नहीं होती। आवे कहाँ से? उसे कहाँ से आती हो? आटे की लोई करे न? एक विधुर की रोटी ऐसी थी। 'वडोद... वडोद'। उमराला के पास तीन कोस है न? वडोद। कहा, यह रोटी ऐसी किसने बनायी? तो कहे, एक विधुर है उसे नहीं आती। एक कोना ऐसा और एक कोना ऐसा। क्योंकि उसे ऐसे गोल चक्कर (करना नहीं आता)। तो उस जानकारी के कारण गोल चक्कर हुआ है न? और आता न हो तो रोटी गोल नहीं हुई और आड़ी-टेढ़ी हो गयी। आड़ीअवली को क्या कहते हैं? टेढ़ी हो गयी, टेढ़ी। ऐसा है नहीं। तीन काल में नहीं है। उस आड़ी-टेढ़ी होने की पर्याय को आटा पहुँचता है। लोट को क्या कहते हैं? आटा। आटा ही आड़ी-टेढ़ी होने की आकृति में पहुँचता है। विकृत होकर लोई का ऐसा परिणमन हुआ, वह आटा से हुआ है और आटा ही उस आड़ी-टेढ़ी रोटी में उत्पन्न हुआ है। आटा ही उसमें उत्पन्न हुआ है, उसका हाथ और उसका जीव उत्पन्न नहीं हुआ। समझ में आया? गजब बात है यह। दुनिया से अलग जाति की है।

मोक्षमार्ग, बापू! वीतरागमार्ग कोई अलग ही है। कुम्हार भी साधारण बात करता है कि दया पालन करो, पर की दया पालो, ऐसी बात तो वह भी करता है। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, उनकी बात ऐसी होगी? पर की दया पालो, ऐसा करो। वह तो कुम्हार ही कहता है। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की पर्याय का विकास हुआ... यह आता है न? भाई! तुमने नहीं डाला? प्रवचनसार की ५२ वीं गाथा आती है। 'गेणहदि उप्पज्जदि' आता है न? वहाँ प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य लिया है। प्रवचनसार की ५२वीं गाथा। है ३२वीं गाथा में। पश्चात् ५२वीं गाथा की टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने लिया, केवली का अधिकार। केवलज्ञानी अपनी पर्याय को प्राप्य करता है, फेरफार करता है और भगवान अपनी पर्याय में उपजते हैं। ज्ञेय को प्राप्त नहीं करते, ज्ञेय में उपजते नहीं और ज्ञेय को बदलते नहीं। यह प्रवचनसार की ५२वीं गाथा में है। समझ में

आया ? यहाँ यह शब्द है न ? 'ण वि परिणमदि ण गिण्हदि' । ऐसे शब्द प्रवचनसार की ५२वीं गाथा में पड़वे हैं । ओहोहो !

क्या करे केवली और क्या करे आत्मा ? ज्ञेय को आत्मा पहुँचता है या ज्ञेय को आत्मा बदलता है या केवली आत्मा ज्ञेय में उपजते हैं, तीन काल-तीन लोक में नहीं । वह तो अपनी केवलज्ञान पर्याय प्राप्य, जिस-जिस समय में होनी है, उसे ही पहुँचती है । यह तो भेद से समझाना है न ? है तो अभेद । समझाने की शैली क्या करना ? कर्ता, कर्म दोनों भिन्न करके बताते हैं । है तो उसका कार्य और कर्ता, परन्तु क्या कर्ता, कर्म भिन्न है ? वह तो समझाने की शैली में अभेद को समझाने में भेद से समझाते हैं । पर का भ्रम न रहे और अपनी पर्याय का कार्य अपने से होता है, ऐसा समझने से उसे भ्रम मिट जाता है । इसलिए भेद से समझाया गया है । केवली भी ज्ञान की पर्याय को पहुँचते हैं, परिणमते हैं, उपजते हैं । यह तो ऐसा सहज बन रहा है, परन्तु बतलाना है स्वतन्त्र केवली का आत्मा । वह ज्ञेय लोकालोक है तो अपनी ज्ञानपर्याय स्व-परप्रकाश को पहुँचती है, ऐसा नहीं । समझ में आया ? लोकालोक है तो पहुँचती है ? लोकालोक तो अनादि से पड़ा है ।

अपना स्वभाव सच्चिदानन्द प्रभु केवलज्ञान सर्वज्ञ से भरपूर है, उसमें कर्ता, कर्म अपनी पर्याय का कार्य करते-करते पूर्ण जहाँ कार्य हो गया, बस, वह कार्य सादि-अनन्त ऐसा का ऐसा चालू है । केवलज्ञान की पर्याय का कार्य सदा चालू है । सदृश पर्याय ऐसी की ऐसी चलती है तो इस अपेक्षा से पर्याय को कूटस्थ भी कहा गया है । क्योंकि सदृशरूप से ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त रहती है । केवलज्ञानी अपनी पर्याय को पहुँचते हैं, अपने में उपजते हैं और अपने में परिणमते हैं । पर में पहुँचते हैं या उपजते हैं, ऐसा केवलज्ञानी नहीं है ।

इसी प्रकार श्रुतज्ञानी । जैसे केवलज्ञानी, वैसे भावश्रुतज्ञानी । यह उसकी बात चलती है न ! यहाँ तो भावश्रुतज्ञानी की बात चलती है । समझ में आया ? भावश्रुतज्ञानी भी अपने में जो रागादि दिखते हैं, वह अपने में नहीं है । पर्याय में अस्तिरूप ज्ञान करते समय उसके धर्म को जानते हैं, परन्तु ज्ञाता-दृष्टारूप से मैं उसे प्राप्त करता हूँ, ऐसा वस्तु में नहीं है । सेठी ! धर्म बहुत सहज और सरल ! सहज सत् का धर्म है । अपने आश्रय से होनेवाली चीज़, पर का जिसे आश्रय नहीं, अपेक्षा नहीं । निरपेक्ष धर्मदशा ।

कहते हैं कि वह व्यवहाररत्नत्रय है, वह तो पुद्गल का परिणाम है । वह है तो आत्मा में उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ ? - कि नहीं । वह तो अपना ज्ञान करने से ज्ञान की



पर्याय स्व-परप्रकाशक की ऐसी प्रगट होती है कि उसका ज्ञान अपना व्याप्य होता है, परन्तु वह चीज़ अपना व्याप्य होती है, ऐसा आत्मा में नहीं है। श्रुतज्ञानी में ऐसा नहीं है, सम्यग्दृष्टि में ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

**उसी प्रकार...** वह तो दृष्टान्त दिया, हों! मिट्टी के घड़े का दृष्टान्त दिया। मिट्टी घड़े में प्राप्य होकर उपजती है, उसे पहुँचती है, घड़े में परिणमती है, घड़ेरूप उपजती है। **उसी प्रकार, उसी प्रकार ज्ञानी...** सम्यग्ज्ञानी आत्मा-सम्यग्दृष्टि आत्मा स्वयं बाह्यस्थित... देखो, भाषा! **बाह्यस्थित ( बाहर रहनेवाले ) परद्रव्य के...** क्या कहते हैं ? स्वयं बाह्यस्थित। वह भी स्वयं उसके कारण बाह्यस्थित है। राग अपने स्वरूप में नहीं, ज्ञानस्वरूप में राग नहीं। राग स्वयं बाह्यस्थित है, स्वयं बाह्यस्थित है। शरीर की पर्याय स्वयं बाह्यस्थित है। वाणी की पर्याय स्वयं बाह्यस्थित है। राग से लेकर सभी द्रव्य की पर्याय स्वयं बाह्यस्थित है। समझ में आया ? **उसी प्रकार, ज्ञानी स्वयं बाह्यस्थित ( बाहर रहनेवाले ) परद्रव्य के परिणाम में अन्तर्व्यापक होकर,....** जैसे मिट्टी घड़े में अन्तर्व्यापक होकर आदि, मध्य, अन्त में प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्यरूप होती है, उसी प्रकार भगवान आत्मा स्वयं, भगवान आत्मा, स्वयं बाह्यस्थित उसके कारण से रागादि आये हैं, परिणामा, शरीरादि की अवस्था पलटी, वाणी की पलटी - ये बाह्यस्थित परद्रव्य के परिणाम में। वे परद्रव्य के परिणाम हैं। रागादि परद्रव्य है। समझ में आया ? स्वद्रव्य नहीं।

**परद्रव्य के परिणाम में अन्तर्व्यापक होकर,....** भगवान आत्मा उस राग के अन्दर प्रविष्ट होकर और शरीर की पर्याय में प्रविष्ट होकर **आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, उसे ग्रहण नहीं करता,...** उस राग की आदि में आत्मा नहीं। पहले ऐसा कहा था कि व्यवहार-राग में आदि-मध्य-अन्त में पुद्गल है। यहाँ कहते हैं कि वह राग और व्यवहार और देह की अवस्था में ज्ञानी आदि-मध्य-अन्त में व्यापकर उसे ग्रहण नहीं करता। वह व्यवहार-राग में आदि में आत्मा नहीं। ऐसी इच्छा हुई कि देह की अवस्था ऐसे हो, उसकी आदि में आत्मा नहीं। इच्छा की आदि में आत्मा नहीं तो देह की अवस्था में आदि में आत्मा है, यह वस्तु है नहीं। समझ में आया ? मूलजीभाई! किसे रखना और किसे टालना ? आहाहा !

भगवान तेरी लीला... 'स्थिरता एक समय में, ठाणे... उपजे, विणसे सब ही, उलट-पुलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कबहि, अबधु नटनागर की बाजी, क्या जाने ब्राह्मण काजी।' ब्राह्मण अर्थात् वेद और काजी अर्थात् कुरान। 'क्या जाने ब्राह्मण काजी, अबधु नटनागर की बाजी।' चौदह ब्रह्माण्ड का नट आत्मा, अपनी ज्ञान की पर्याय में परिणमनेवाला,

रागादि में अन्तर्व्यापक होकर, प्रविष्ट होकर उसे जाननेवाला नहीं, अन्दर प्रविष्ट होकर जाननेवाला नहीं तो जिसकी आदि-मध्य-अन्त में, राग के आदि-मध्य-अन्त में आत्मा है, ऐसा नाटनागर प्रभु आत्मा है ही नहीं। समझ में आया ? नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी जाती है, ध्रुव रहता है। 'उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे' ऐसी चीज़ भगवान आत्मा अपना प्राप्य ज्ञान की पर्याय को पहुँचता है, परन्तु उस सम्बन्धी ज्ञान हुआ... यहाँ प्रश्न यह है कि जैसा दया का राग आया, कोई भक्ति का राग आया, कोई विषय का अशुभराग आया, ऐसा ही यहाँ ज्ञान होता है तो उसकी आदि में—राग की आदि में ज्ञान है ?—नहीं। समझ में आया ? और अपने ज्ञान की आदि में राग है ?—नहीं। यह गाथा बाद में लेंगे। समझ में आया ?

कहते हैं, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर। राग की आदि में प्रभु है, (ऐसा नहीं है)। राग करता है न तो राग में आदि में, राग की शुरुआत हुई उसमें जरा आत्मा का प्रेरकपना हुआ, ऐसा है ?—बिल्कुल नहीं। यह तो वस्तुदृष्टि और वस्तु के कार्य की बात चलती है न ? पर्याय का अस्तित्व तो पहले सिद्ध किया ही है। विकार अपना अपनी पर्याय में है, तीन काल में पर से नहीं, यह बात पहली सिद्ध रखकर, फिर कहते हैं कि पर्याय में होनेवाला विकार, वह द्रव्यस्वभाव की दृष्टि में तो तेरे व्यापक से व्याप्य नहीं है। समझ में आया ?

तेरा प्रयोजन सिद्ध करना है या नहीं ? तुझे हित करना है या नहीं ? कि स्वचतुष्टय में ऐसा है और ऐसा है और पर में नहीं और पर मुझमें नहीं। यह तो जाना। पश्चात् क्या हुआ ? प्रयोजन-आत्मा का हित-शान्ति का सिद्ध करना है या नहीं ? हाँ, तो इस पर्यायनय को व्यवहारनय करके उड़ा दिया और मुख्य को निश्चय करके अन्दर आश्रय लिया। एकाकार प्रभु भूतार्थ स्थित है, चिदानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि हुई तो कहते हैं कि व्यवहार की आदि में आत्मा है ही नहीं। आहाहा! यह तो हमने व्यवहार किया, हमने व्यवहार किया। वापस विवाद क्या करे कि श्रावक के षट् कर्तव्य आते हैं न ? श्रावक के षट् कर्तव्य दिन प्रतिदिन। पद्मनन्दि पंचविंशति में आया, उपासक श्रावकाचार में आया कि हमेशा देवपूजा, गुरुभक्ति... समझ में आया ? स्वाध्याय, संयम, दान और तप (करना चाहिए)। भगवान ! यह कहते हैं वह किस दृष्टि से ? वहाँ व्यवहारनय से उस समय वह राग आनेवाला है, उसे करना, ऐसा व्यवहारनय से कथन है। करना-फरना क्या है ? समझ में आया ? आहाहा !

व्यवहार शास्त्र व्यवहारनय से कथन करते हैं। लाते हैं और राग की आदि में आत्मा है, ऐसा सिद्धान्त हो जाता है, ऐसा नहीं है। भारी कठिन पड़े। यहाँ तो अब बारम्बार बात

आयी न। नये लोगों को तो ऐसा सिर फट जाता है। यह जैनदर्शन की बात करते हैं? यह तो कहीं की बात करते हैं? बन्ध तो दसवें गुणस्थान तक है। आत्मा बन्ध करता है। गोम्मटसार बोलता है, इतने बड़े अक्षर से लिखा है। सौ रुपये की पुस्तक है। बड़े-बड़े अक्षर में (लिखा है), ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है और आत्मा छह कारण से ज्ञानावरणीय बाँधता है। सुनो! छह कारण आते हैं न? यहाँ कहते हैं कि यह छह कारण-फारण आत्मा की दृष्टि और पर्याय में नहीं हैं। आहाहा! गोम्मटसार कहता है कि छह कारण से ज्ञानावरणीय बाँधता है। ज्ञान की आसातना, ज्ञान का विघ्न इत्यादि। वह तो पर्याय में विरोध का विकल्प है, उसे बतलाते हैं।

यहाँ कहते हैं कि उस विकल्प का प्राप्य आत्मा है ही नहीं। आहाहा! भाई! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही'। जैसा-जैसा जहाँ कहा हो, उसका क्या हार्द है-क्या हृदय है, उसे जानकर उसका ज्ञान और प्रतीति करना। ऐसे का ऐसा लिखा हुआ है, वह मान लेना (ऐसा नहीं है)। कोई शब्द नहीं कि हमारा आशय यह है। पुद्गल नहीं कहता। वह तो पुद्गल की पर्याय है। समझ में आया?

कहते हैं कि आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, उसे ग्रहण नहीं करता, उस रूप परिणमित नहीं होता और उस रूप उत्पन्न नहीं होता;... किस रूप से? छह कारण से ज्ञानावरणीय बाँधता है, छह कारण से दर्शनावरणीय बाँधता है, वेदनीय इतने कारण से बाँधता है, मोहनीय इतने कारण से बाँधता है। भगवान! यह परिणाम ही तेरे नहीं हैं, हों! यहाँ ज्ञानी का लक्षण बतलाना है न? तो यह तो कहते हैं न कि दसवें गुणस्थान तक ऐसे कारण है न? लोभ है, थोड़ा-थोड़ा कारण होगा तो बाँधता है न? सुन तो सही, प्रभु! वह तो द्रव्यस्वभाव की दृष्टि में अपना व्याप्य है ही नहीं। उसमें प्राप्य नहीं, विकार्य और निर्वर्त्य नहीं। उसमें उत्पन्न नहीं होता। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२

श्री समयसार, गाथा-६, प्रवचन - १२८

दिनांक - ०३-१२-१९७१

छठवीं गाथा। शिष्य का प्रश्न है। यह शुरुआत की मूल गाथा है। यह शुद्धात्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? जानना चाहिए। ... स्वरूप अर्थात् उसका स्वभाव-भाव जानना चाहिए?

**मुमुक्षु :** पर्याय आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जानना चाहिए, वह पर्याय हुई। ऐ चेतनजी! यह जानना चाहिए, वह पर्याय आयी। कार्य किसमें होगा? द्रव्य-गुण में कार्य होता होगा? कार्य तो पर्याय में है। समझ में आया? मूल द्रव्य त्रिकाल शुद्ध ध्रुव है। मुझमें पर्याय नहीं या अशुद्धता नहीं, उसका निर्णय किसमें आता है? वह तो पर्याय में कार्य आता है न, द्रव्य में तो कुछ कार्य (होता नहीं), वह तो वस्तु है, वह है। इसलिए कहते हैं कि शुद्धात्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? जानना चाहिए, वह तो पर्याय हुई। ऐई!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ... अपना स्वरूप क्या है उसका? अपने गाथार्थ हो गया है।

**टीका :** जो स्वयं अपने से ही सिद्ध होने से ( किसी से उत्पन्न हुआ न होने से ) अनादि सत्तारूप है, ... शुद्ध भगवान आत्मा स्वयं अपने से है। कोई उसका उत्पन्न करनेवाला और किसी से उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं है। अनादि है, ऐसा कहते हैं। स्वयं अपने से साबित है, सिद्ध है। अर्थात् कि अपने से स्वयं है। उसे कोई उत्पन्न करनेवाला या किसी से उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। अनादि सत्तारूप है, ... ऐसा कहते हैं कि अनादि सत्तारूप है, उसका स्वरूप क्या है, वह जानने में नहीं आया, इसलिए अनादि सत्तारूप है, ऐसा कहकर स्पष्टीकरण किया है। गजब करते हैं न! आया है न, कहीं प्रश्न आया है। प्रश्न है।

यह तो है, वस्तु जो है, वह तो है। है, वह किस काल में नहीं कि उसकी आदि हो? समझ में आया? वस्तु है, वह तो है। चाहे जो काल गया, भूतकाल में है... है... है... उसे

आदि है ? आदि नहीं, इसलिए ज्ञात नहीं हुआ ? ज्ञात नहीं हुआ, इसलिए अनादि करके समाधान कर डाला, ऐसा कहते हैं। प्रश्न आते हैं। सब बाहर के बहुत आते हैं। अभी तो समयसार चला है न, इसलिए लोगों को बहुत खलबलाहट हो गयी है.... कोई समझने का, उसे उड़ाने का। उसमें कुछ नया नहीं। अब तो बहुत जिज्ञासु हुए हैं। समझने के लिये बहुत जिज्ञासु (तैयार हुए हैं)। यह क्या है, ऐसा पहले लक्ष्य में तो लो। यह जन्म-मरण टालने के उपाय की पद्धति क्या है ? बाकी सब ठीक, दया, दान, व्रत पालन करे और पुण्य हो और स्वर्ग में जाये। वहाँ से मरकर पशु होकर नरक में जायेगा। ऐसा अनन्त बार हुआ है।

यह आत्मा शुद्ध कौन है कि जिसे जानने से मुक्ति होगी ? समझ में आया ? कहते हैं कि वह भगवान आत्मा अनादि सत्तारूप स्वयं से है, वह स्वयं के द्वारा है, स्वयं से है। यह अनादि की सत्ता कही। अनादि (काल में) नहीं ज्ञात हुआ था, इसलिए अनादि, ऐसा नहीं। वह है, वहाँ फिर प्रश्न क्या ? कठिन जगत को! वस्तु है, वह है, फिर उसमें प्रश्न क्या ? ...ऐसा और ऐसा है। ....समझ में आया ? ....चाहे जो स्पष्टीकरण करे, करेंगे क्या ? तू है, कब का है ?—कि है, फिर है और कब का, यह प्रश्न लागू नहीं होता। समझ में आया ? किसी से उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए अनादि अस्तिरूप है, अनादि अस्तिरूप है। समझ में आया ?

जिसे अन्दर से प्रश्न उठा है, उसे यह उत्तर कहा जाता है, ऐसा कहा है न ? ऐसे के ऐसे सुनने आया कि चलो भाई! सब इकट्ठे सुनते हैं। सवेरा हो तो अपने सुनना और उन्हें कहना। उसके लिये नहीं। ऐ... हिम्मतभाई! उसे ऐसा हुआ कि ओहो! यह देह में रहा... यह आत्मा है, वह शुद्ध किसके आश्रय से है कि जिसे जानने की आवश्यकता है ? जिसका स्वरूप जानने की आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं। जानना चाहिए। दूसरा सब एक ओर रखकर यह क्या चीज़ है ? ऐसी जिसे अन्तर से धगश होकर प्रश्न उठा है, उसे यह उत्तर दिया जाता है। .... इस प्रश्न के उत्तररूप गाथा है।

कहते हैं, जो अनादि है, भाई! वस्तु तो अनादि है। आहाहा! समझ में आया ? **कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनन्त है...** (पहले) सत्ता की बात की, अब वह कभी नाश पाती है ? वस्तु हो, वह नाश पाती है ? पदार्थ सत् है, सत् है, उसका नाश कब होगा ? इसलिए... कभी अर्थात् भविष्य में कभी **विनाश को प्राप्त न होने से...** वह भविष्य में अनन्त है। उसका अन्त नहीं कि अमुक काल में उसका अन्त आ जायेगा। संसार का (नाश) होता है तो अन्त आ जाता होगा या नहीं ? संसार का नाश हो तब। वह तो संसार का नाश हुआ,

आत्मा का नाश हुआ ? संसार की विकारी पर्याय का अन्त आया। वस्तु हो है, वह है। अनादि-अनन्त है, अनन्त। अनादि-अविनाशी—नाश न हो ऐसी। समझ में आया ?

**नित्य-उद्योतरूप होने से क्षणिक नहीं है...** है, वह वर्तमान में भी प्रत्यक्ष नित्य उद्योतरूप है, प्रकाशरूप है, क्षणिक नहीं। ...है, ऐसा नहीं। वह वर्तमान की स्थिति कही। **स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है...** वह ज्ञान में प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसी ज्योति है, ऐसा कहते हैं। विशद् है न शब्द ? विशद्ज्योति है। भगवान आत्मा अन्दर में चैतन्यस्वरूप, वह प्रत्यक्ष विशद् ज्योति है। वह वर्तमान में ज्ञान में प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसी वह ज्योति है। वह परोक्ष रहे, ऐसी वह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? समयसार (में) तो केवली के पेट (अभिप्राय) खोला है। इसलिए वह तो बहुत गम्भीर है। समझ में आया ?

कहते हैं, नित्य उद्योतरूप है। कायम ऐसा का ऐसा प्रगट... प्रगट... प्रगटरूप है। **क्षणिक नहीं है और स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति...** ज्योति है। स्पष्ट चैतन्य के प्रकाशस्वरूप ज्योति है। इतनी उपमा दी है। प्रकाशमान ज्योति है। **ऐसा जो ज्ञायक एक...** ऐसा जो एक ज्ञायक भाव है,... ऐसा एक ज्ञायकभाव है। त्रिकाली जानने के स्वभाववाला अनादि-अनन्त एक ज्ञायकभाव है। वह वस्तु ली है। ऐसा जो भगवान आत्मा अनादि-अनन्त नित्य उद्योतरूप स्पष्ट प्रकाशमान चैतन्य जलहल ज्योति ली है।

**वह संसार की अवस्था में...** अब अवस्था-पर्याय ली। दूसरे का घर देखा परन्तु स्वयं कौन है, यह किसी दिन देखा नहीं। आहाहा! सबकी बड़ी डिग्री प्राप्त की। यह कौन है ? क्या है यह ? जरा उसके सामने तो देखा ! उसके सामने देखना छोड़कर सबको देखने लगा परन्तु देखनेवाले को इसने देखा नहीं। देखनेवाला ऐसा है कि जो संसारदशा में; वस्तु तो है वह है, ऐसी त्रिकाल कही। वस्तु कही, वह तो ध्रुव कही। वह संसारदशा में **अनादि बन्धपर्याय की निरूपणता से...** इतनी अपेक्षा ली है कर्म के बन्ध की, पर्याय का निमित्तपना (अपेक्षा से) **क्षीर-नीर की भाँति कर्मपुद्गलों के साथ एकरूप होने पर भी...** कर्म के रजकणों के साथ भगवान ऐसी ज्ञायक की सत्ता, एक क्षेत्र में, एक में अवगाहन रहा होने पर भी क्षीर-नीर की भाँति, हो ! दूध और घड़े की भाँति नहीं। क्षीर-दूध और पानी। दूध और पानी। क्षीर अर्थात् दूध। दूध की सफेदाई और दूध उसकी भाँति नहीं। दूध ....अभेद है। क्षीर अर्थात् दूध और पानी की भाँति दो रूप से रहकर, **कर्मपुद्गलों के साथ एकरूप होने पर भी...** एक क्षेत्र में दोनों इकट्ठे रहने पर भी।

**द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये...** ओहोहो ! उसका—भगवान आत्मा का

स्वभाव... समझ में आया ? द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से, अर्थात् क्या कहा ? बन्धपर्याय के निमित्त से एकमेक मानो दूध और पानी जैसे दिखता है, वैसे उसका वस्तुस्वभाव देखें, द्रव्य वस्तु भगवान आत्मा, उसके स्वभाव की अपेक्षा से देखने में आवे, **दुरन्त कषायचक्र के उदय की विचित्रता के वश से....** कषायसमूह का अपार उदय है, कहते हैं। कषाय का उदय, कर्म का उदय है न ? कषायसमूह का अपार उदय है। जिसका अन्त लाना मुश्किल है, कहते हैं। दुरन्त। है न। **विचित्रता के वश से....** यह कर्म के उदय की विविधता और विचित्रता के वश। उसके वश, हों!

**प्रवर्तमान जो पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले....** उदय के वश। यहाँ स्वभाव के वश नहीं, इसलिए उदय के वश वर्तता है। कहो, समझ में आया ? उदय के कारण नहीं, परन्तु उदय के वश के कारण। आधीन होता है। ऐसे आधीन नहीं होता, ऐसे आधीन होता है। पर्यायदृष्टि रहता है, द्रव्यदृष्टि की खबर नहीं; इसलिए कर्म के उदय के वश, कहते हैं। ....यह क्या लगायी है ? आहाहा!

यह तू कौन है ? और कैसा है ? कब का है ? कैसे है ? ऐसी बात है। कहते हैं कि है तो है वह ज्ञायकभाव, परन्तु कर्म के निमित्त के आधीन हुआ है। निमित्त इसे आधीन करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? अनादि के द्रव्यस्वभाव से देखें तो कषायचक्र अपार है। उसकी विचित्रता। उदय की अनेकता है न ! एकरूप उदय नहीं है। उसके वश से प्रवर्तमान। उसके वश प्रवर्तते **जो पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव उनके स्वभावरूप परिणामित नहीं होता....** निमित्त के वश होते अनेक प्रकार के पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभ-अशुभभाव, उसरूप ज्ञायकभाव हुआ नहीं। क्योंकि शुभ-अशुभभाव, वह तो अचेतन है। दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव अचेतन हैं, उसमें चेतन का अंश नहीं। उसके अस्तित्व में सिद्ध करना हो, तब उसकी पर्याय है, परन्तु ज्ञायकभाव स्वयं उसरूप हुआ नहीं। क्योंकि उसरूप हो तो जड़ हो जाये। वह तो ज्ञायक है। चैतन्यप्रकाश का नूर प्रभु है। आत्मा तो चैतन्यप्रकाश का पूर है। वह चैतन्यप्रकाश शुभाशुभरूप हो जाये तो जड़ हो जाये। समझ में आया ? आहाहा ! वह शरीररूप तो हुआ नहीं, वाणीरूप तो हुआ नहीं, कर्मरूप तो हुआ नहीं, परन्तु इन शुभाशुभभावरूप वस्तु हुई नहीं। आहाहा ! अरे ! इसका इसने विचार किया नहीं !... ऐ पोपटभाई ! यही धन्धा किया है ?

भगवान ! तू कौन है ? कौन है शुद्ध कि जानना चाहिए ? ऐसा कहते हैं। भाई ! तू ऐसा है। कर्म के वश से हुए पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभाव, पर्याय को सिद्ध

किया। समझ में आया? पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभाव, हों! ....उसे उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभाव। उनके स्वभाव से द्रव्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, जाननस्वभाव भगवान आत्मा उन शुभाशुभ परिणामरूप कैसे होगा? हुआ ही नहीं। उसरूप हो तो जड़ हो जाये। वह तो ज्ञायक है। चैतन्य का रसकन्द है। समझ में आया? यह तो अन्तर की अध्यात्म की बात है। इसमें जरा मस्तिष्क को फैलाना पड़ता है। यह मेट्रिक पढ़ने के लिये कितने वर्ष करते हैं? धूलधाणी भटकने के रास्ते हैं। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? ज्ञायक चैतन्यरस स्वरूप, जाननस्वभाव स्वरूप; वह अजानस्वरूप ऐसे शुभाशुभभाव, जाननस्वभावस्वरूप, उन अज्ञान ऐसे शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कहे, दया, दान, व्रत के भाव करो तो कल्याण हो जायेगा। ...इसलिए द्रव्य उसरूप हुआ नहीं और इस प्रकार होता है, ऐसा माने वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! गजब परन्तु बात, भाई! समझ में आया?

कहते हैं, वस्तु तो यह जाननस्वरूपी सत्ता, उसे संसार के बन्धपर्याय की अपेक्षा से देखें तो उसके उदय के वश से, अनेक प्रकार की विचित्रता के उदय के वश से पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले ऐसे शुभाशुभभाव हैं, परन्तु द्रव्यस्वभाव उसरूप परिणामा नहीं है। समझ में आया? ऐ पण्डितजी! पुण्यभावरूप, शुभभावरूप ज्ञायकभाव,... पुण्यभाव अचेतनरूप ज्ञायकभाव हुआ नहीं। यह पर्याय में तुझे भासित होता है कि यह शुभ है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! लो, समझ में आया?

**पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव...** शुभाशुभ एक प्रकार के नहीं न? शुभाशुभ बहुत प्रकार के हैं। शुभभाव असंख्य प्रकार के हैं, अशुभभाव असंख्य प्रकार के हैं। उनके स्वभावरूप परिणामित नहीं... वाह! वस्तु तो वस्तुरूप से ही अनादि रही है। ( ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता )... यह स्पष्टीकरण किया है। इसका अर्थ जाननस्वभाव वस्तु जो है, चैतन्यस्वरूपी जाननस्वभाव अस्ति सत्ता मौजूदगीरूप है, वह पुण्य के अस्तिरूप कभी होता नहीं। शुभभाव के अस्तिरूप कभी होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? किसी जगह ऐसा आवे, शुभभाव के समय सम्यक्पने आत्मा शुभरूप परिणामा है। ऐई! प्रवचनसार में आता है न? ...वहाँ ऐसा कहे, यहाँ ऐसा कहे। यह तो पुण्यभाव का परिणामन ज्ञान की अपेक्षा से देखने पर उसकी पर्याय में है, इतना सिद्ध किया है, द्रव्यस्वभाव में तो है नहीं। समझ में आया? तब वे ऐसा कहते हैं, शुभभाव तन्मयरूप से होता है, इसलिए उस समय द्रव्य भी उसमें तन्मय हो गया। समझ में आया?



पर्याय में शुभभाव हुआ तो पर्याय में तन्मयरूप से है। वह शुभराग भिन्न रह गया और पर्याय भिन्न है, ऐसा नहीं है। द्रव्य तो भिन्न ही है। समझ में आया ?

शुभ या अशुभभाव जीव के पर्यायरूप से पर्याय में तन्मयरूप से है। इसलिए, वे शुभ-अशुभभाव पर्याय में तन्मयरूप से-उसरूपपने हैं। इसलिए द्रव्य उसरूप परिणामा है, ऐसा नहीं। ....जीव स्वयं तन्मय हुआ अर्थात् उसकी दशा में परिणमे। ...ऐसे रह गया और पर्याय भिन्न रह गयी है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया ? यह तो वीतराग के घर में जाना हो, उसकी बातें हैं। समझ में आया ? बड़े के घर में जाना हो तो कितनी तैयारी करते हैं न ! यह तो तीन लोक का नाथ आत्मा, उसे भगवान ने जो वर्णन किया, ऐसा उसे देखने जाये तो उसकी तैयारी कितनी हो ? समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, द्रव्यस्वभाव स्व-भाव—अपना ज्ञायकभाव, जो जाननभाव, ज्ञानभाव, वह ज्ञानभाव वस्तु, वह पुण्य और पाप के, दया, दान और व्रत के परिणाम, काम, क्रोध के परिणामरूप वह वस्तु हुई नहीं। वह वस्तु इस प्रकार से द्रव्य में उसरूप द्रव्य हुआ ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? गम्भीर बात है, भाई ! इसके अपने घर में क्या है और क्या नहीं हुआ और क्या होता है, किसमें होता है, इसका इसने कभी विचार किया ही नहीं। ऐसा का ऐसा बिना भान के करो धर्म। वे कहें पूजा, भक्ति करो। यह कहे, दया, दान करो। वे कहें यह खाना, नहीं खाना। सब फँस गये। समझ में आया ?

यह आत्मा देह के रजकण से, कर्म के रजकण से तो भिन्न उसरूप तो हुआ नहीं। वह जड़ तो जड़रूप से होकर रहे हैं, परन्तु चैतन्य पुण्य-पापरूप होकर रहा ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ....इसलिए समझे बिना हाँको।

कहते हैं, यह **समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव...** भाव शब्द से विकारी दशा। समझ में आया ? उनके स्वभाव से वह विकारी के भाव (रूप) ज्ञायक भगवान त्रिकाली वस्तु हुई नहीं। समझ में आया ? अर्थात् कि ( **ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता** )... स्पष्टीकरण करते हैं। जड़ का अर्थ पुण्य-पाप के भाव अचेतन जड़। वह चैतन्य चैतन्यरूप रहा है, वह अचेतन राग-द्वेष के परिणामरूप हुआ नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहें तो यह व्यवहाररत्नत्रय के जो शुभपरिणाम कहलाते हैं न ? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र पढ़ने का राग, वह सब राग है। आहाहा ! उस शुभरागरूप वस्तु परिणामी ही नहीं। समझ में आया ? शुभराग वस्तु के स्वभाव में तन्मय है ही नहीं। व्यवहाररत्नत्रय जो कहलाता है, वह विकल्प-राग, वह

द्रव्यस्वभाव से देखें तो वह द्रव्यस्वभाव उसरूप हुआ ही नहीं और उसरूप हुआ नहीं, उससे आत्मा को लाभ होगा, (ऐसा माने तो मिथ्यात्व है)।

इसलिए प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है;... पहले यह लिया। पहले अप्रमत्त नहीं लिया, भाई! ..... अप्रमत्तपना लिया और फिर अर्थ में ज्ञायकभाव उस अप्रमत्तपने नहीं। ज्ञायकभाव, वह अप्रमत्तपने नहीं। ....ज्ञायकभाव ऐसे परिणमता है सही न? परिणमता है न अनादि का यह। प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। समझ में आया? गाथा में ऐसा कहा, 'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।' जानन जो भाव, ज्ञायक जो भाव, वह प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं है। उसका स्पष्टीकरण करते हुए ऐसा कहा कि भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु, ज्ञायकभाव चीज़, वह पुण्य-पाप के उत्पन्न करनेवाले शुभ और अशुभभाव (उसरूप हुई नहीं)। अर्थात् क्या कहा? कि शुभ-अशुभभाव पुण्य-पाप को, बन्ध को उत्पन्न करता है। पुण्य-पाप आत्मा की शान्ति को उत्पन्न करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! .... बात सुनी न हो न, इसलिए यह सब (बात) ऐसी लगे। ...भाई! ...वहाँ के प्रमुख हैं। ...आहाहा! तेरा मार्ग अलग, नाथ! समझ में आया? सम्प्रदाय में यह बात सुनने की गन्ध भी नहीं है।

भगवान आत्मा चैतन्यरस का सत्त्व ऐसा प्रभु, वह पुण्य-पाप के रजकण को, बन्ध को उत्पन्न करनेवाले भाव, ऐसा कहकर ऐसा कहा कि वे भाव रजकण को—बन्ध को उत्पन्न करनेवाले हैं। अबन्धस्वरूप के परिणाम बन्ध को उत्पन्न करनेवाले हैं। वह अबन्धस्वरूपी ज्ञायकभाव वस्तु, उसे उत्पन्न करनेवाले वे शुभाशुभभाव नहीं हैं। समझ में आया? क्योंकि वे तो अचेतन हैं, वे चैतन्य को कैसे उपजावे? तथा चैतन्य स्वयं उन पुण्य-पापपने को—शुभाशुभभाव को कैसे उपजावे? वह अचेतन है। समझ में आया? यह टीका तो ९०० वर्ष पहले की है या सोनगढ़ की है?

**मुमुक्षु :** गुजराती में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गुजराती में या चाहे जिस भाषा में लिखी हो। इसका अर्थ क्या हुआ? न्याय, लॉजिक से भी इसे बैठता है या नहीं?

वस्तु है, वह वस्तु है। वह शुभाशुभभाव हुई हो तो, शुभाशुभभाव पलटने पर स्वयं नाश हो जाये। समझ में आया? यह भगवान ज्ञानरस का नाथ, अकेला ज्ञान-समझण का पिण्ड प्रभु चैतन्य ज्ञायकभाव, ऐसा जो वस्तु का स्वरूप चैतन्य अपना निज सत्ता का, वह इन पुण्य-पाप की अचेतन सत्तारूप वह सत्ता हुई नहीं। कहो, समझ में आया? इसमें तो

बहुत बोलों से साफ हो जाता है। शुभाशुभभाव करेंगे तो अपने को परम्परा से कुछ लाभ होगा। शुभराग वह शुद्धोपयोग का कारण है।

**मुमुक्षु :** शास्त्र में आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शास्त्र में आवे, वह किस अपेक्षा से आता है, यह समझे बिना.... पहले शुभ होता है, उसका अभाव करके शुद्ध होता है। तब तो फिर अशुद्धभाव का अभाव करके शुद्ध होता है, इसलिए अशुद्ध कारण और शुद्ध कार्य, ऐसा है ?

**मुमुक्षु :** मोक्षमार्गप्रकाशक में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लिखा है न उसमें, मोक्षमार्गप्रकाशक में... यह तो याद आ जाये। वहाँ ऐसा कहा है, लो! शुभ से शुद्ध हो, तब तो अशुभ से शुभ होगा और शुभ छूटकर शुद्ध होता है। ऐसे शुद्ध होता है, वह अन्दर आत्मा का आश्रय लेकर धर्म का परिणमन (होता है), उस शुभ के कारण नहीं। वह तो द्रव्यस्वभाव का आश्रय करने से शुद्धता प्रगट होती है। आहाहा! गजब बातें, भाई! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान का आश्रय, गुरु का आश्रय और शास्त्र का आश्रय या पंच परमेष्ठी का आश्रय करने से राग उत्पन्न होता है। वह राग पुण्यबन्ध को उत्पन्न करता है। यह तो बात है न। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है न, खबर है न। ...बात है न वह ? ...समझ में आया ? ...यहाँ तो शरीर की क्रिया आत्मा करे, आत्मा कर सके। हिलना, चलना, बोलना, दया पालना। कहते हैं कि उसरूप होता नहीं तो उसे करे किस प्रकार ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य और पाप के बन्ध के उत्पन्न करनेवाले रजकणों का संग्रह होता है, बन्ध का, उसे उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभाव हैं। अकेला अशुभभाव है, ऐसा नहीं कहा। कहो, भीखाभाई! ....उसके पन्थ में चलते.... यह शुभ और अशुभ की क्रिया के पन्थ में अनन्त बार गया। उससे पुण्य और पाप की उत्पत्ति हुई। आहाहा! उससे धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। आहाहा! अरे! इसे सुनते हुए ऐसा लगे कि अर र र! हाय... हाय.. ! यह तो नाश हो जायेगा। पुण्य-पापरूप हुआ नहीं, उसे पुण्य-पाप का नाश करनेवाला कहना, उत्पन्न करनेवाला तो नहीं, परन्तु नाश करनेवाला कहना... समझ में आया ? ऐसी वस्तुस्थिति भगवान आत्मा....

पर के साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं। धूल और धमाका। शरीर, वाणी, मन, पैसा, इज्जत, कीर्ति वह तो कहीं जगत की चीज़। स्त्री, पुत्र, वह तो जगत के पदार्थ हैं। उनके साथ तुझे कोई मेल नहीं है, परन्तु यहाँ पुण्य-पाप के उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभाव के साथ तेरे द्रव्य को मेल नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐ मनसुख! पुस्तक रखी है या नहीं? ठीक। ... कहो, समझ में आया?

यह छठी गाथा चलती है। कहते हैं, प्रभु! (शिष्य ने) पूछा है, प्रभु! शुद्ध किसे कहते हैं कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? तो कहते हैं कि यह ज्ञायकभाव जो त्रिकाल है न, वह शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं, उसे वास्तव में शुद्ध कहा जाता है, परन्तु उसे जानने की पर्याय... क्योंकि अकेला शुद्ध है, शुद्ध है परन्तु जाना नहीं, जानने में आया नहीं कि यह शुद्ध है, तो उसे ज्ञान तो नहीं। समझ में आया? पर्याय में शुद्ध का भान तो नहीं हुआ तो यह शुद्ध है, ऐसा आया कहाँ से? इस अपेक्षा से उसे शुद्ध की पर्यायसहित का कहा जाता है। समझ में आया? .... यह लिया है। ग्यारहवीं गाथा में लिया, 'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' यह तो वस्तुस्थिति द्रव्यदृष्टि का वह पूरा विषय। भूतार्थ वस्तु, वह शुद्धनय। समझ में आया? वह शुद्धनय यह वस्तु है, ऐसा जो ज्ञान में, श्रद्धा में ज्ञात हुआ, इसलिए उसे अभेद गिनकर शुद्धनय कहा जाता है। समझ में आया? इतना सब जानना यह सब... दूसरा रास्ता नहीं, दूसरा रास्ता नहीं। जाननेवाले को जाने बिना दूसरा रास्ता नहीं है। दूसरी जगह जाये तो जानना पड़ता है या नहीं कि यह चीज़ मुझे चाहिए या ऐसा का ऐसा कहता होगा कि दो रुपये की सब्जी देना? कौन सी सब्जी? मुझे खबर नहीं। मेरे पिता ने मँगायी है। मूर्ख लगता है। पचास सब्जियाँ हैं। कौन से चाहिए है? दस रुपये की सब्जी। मुझे दो रुपये दिये हैं। मूर्ख लगता है। ....तुझे? करेले का कहा है?—हाँ। करेले का कहा है। ज्येष्ठ महीना है न। यह भूल गया। परन्तु भूल गया तो दूसरा क्या तुझे...? यह आत्मा कौन है? यह अपने को कुछ खबर नहीं। कहो, समझ में आया? ...४२ वर्ष हुए। सुन्दर वोरा के उपाश्रय में। ...जाते थे न? ...ऐई! रामजीभाई! देखा था तुमने? ...सुन्दरजी वोरा का उपाश्रय है न? वहाँ हम उतरे हुए। वहाँ वह था। ... पश्चात् .... मैंने कहा, तुम यह सामायिक कहते हो, वह त्रस कहलाती है या स्थावर? (संवत्) १९७६ के वर्ष (की बात है)। महाराज! मैंने सीखा नहीं। वह तो बहुत भोला बेचारा। बहुत वर्ष हो गये। ... २४ और २८ = ५२ (वर्ष हुए)। दरियापरिया के पास उतारे थे न। बहुत लोग। .... परन्तु यह तो (संवत्) १९७६ की बातें हैं। ...कहा, यह तुम सामायिक करते हो। यह सामायिक त्रस है या स्थावर?

यहाँ तो कहते हैं कि तू पुण्य और पाप नहीं है। उसे उत्पन्न करनेवाले भाव, वह तू नहीं है। कहो, समझ में आया? आहाहा! इसलिए प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है;.... है न? 'स्वभावेनापरिणमनात्प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च न भवति' ...क्या कहलाता है तुम्हारे? प्रास प्राप्त करने का हो... इसमें कहीं प्रास प्राप्त करने का नहीं। भगवान! तू पूछता है कि शुद्धात्मा किसे कहना? तो हम तुझे कहते हैं कि जो आत्मा वस्तु है, वह प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हुई नहीं, उसे वस्तु कहते हैं। समझ में आया? ...सूक्ष्म नहीं, बापू! तेरे घर की बात है। समझ में आया? अनन्त सुनकर मोक्ष गये और तू भी मोक्ष के योग्य है। ना मत कर। नहीं समझ में आता, ऐसा मत कह। कलंक लगता है इसे। समझ में आया? भगवान! तू तो तीन लोक का नाथ है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक को जानकर उससे अनन्तगुणा हो तो लाओ, उसे मैं जान सकता हूँ। ऐसा तेरा स्वभाव है, ऐसा तेरा स्वरूप शक्तिरूप सत्त्वरूप अनादि का है। वह तू है। यह शुभाशुभभाव भी तू नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अब कहते हैं, वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... यह समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ... जो भाव है, ज्ञायकभाव अनादि-अनन्त नित्य.... वह अवस्था की दृष्टि में उसे शुभाशुभभाव पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाला दिखता है। उसरूप आत्मा परिणमा नहीं है। इसलिए, वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं हो सकता। वस्तु के स्वरूप में प्रमत्त-अप्रमत्तपना नहीं हो सकता। वही समस्त अन्य द्रव्यों के... प्रमत्त-अप्रमत्तरहित जो ज्ञायकभाव है, वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... अन्य द्रव्य के भाव से, हों! विकारी आदि भाव से भिन्नपने.... विकारी परिणाम वह अन्य द्रव्य का भाव है, स्वद्रव्य का नहीं। उससे भिन्नपने, भिन्न पड़े, उसका लक्ष्य छोड़कर द्रव्य की सेवा करने से। ऐसा आया न? आहाहा! भिन्नरूप से उपासित होता हुआ। कौन?—जो ज्ञायकभाव है वह। वही, शब्द है न ऊपर? ज्ञायकभाव चैतन्यस्वभावभाव... धीरे-धीरे तो चलता है। थोड़ा विचार करे तो इसे जँचे, ऐसा है। ऐसा का ऐसा कहीं... जैसे चलता नहीं। समझे?

ऐसा जो ज्ञायकभाव, वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... जो जड़ और जड़ के सब भाव, पुण्य-पाप के, उनसे भिन्नरूप से उपासित होता हुआ। इसका अर्थ हो गया। विचार और लक्ष्य छोड़ना, उनसे भिन्न पड़ा अर्थात् इसका लक्ष्य गया द्रव्य के ऊपर। समझ में आया? द्रव्य के ऊपर लक्ष्य गया तो द्रव्य की पर्याय ने सेवा की।

फिर से, फिर से। आता है न। धीरे-धीरे आता है। भगवान आत्मा जो ज्ञायकस्वभाव, वह पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले विकल्प शुभाशुभरूप हुआ नहीं। वही ज्ञायक परद्रव्य

की क्रिया और परद्रव्य का उदयभाव विकारी अपने में होता है, ऐसा न लो तो परद्रव्य के भावों से भिन्न, अपने विकारी भाव से भी नहीं, पर से हटा तो विकारी भाव से हट गया और पर्याय से भी हट गया। अन्य द्रव्य के भाव लिये हैं न। इसलिए विकारी पर्याय एक ओर रह गयी। अन्य द्रव्य का जो भाव, जड़ का जो भाव, जड़ का, शुभाशुभभाव भले हो, परन्तु जड़ के भाव से जहाँ भिन्न पड़ा तो पुण्य-पाप के भाव से भी भिन्न पड़ गया और दृष्टि पर्याय के ऊपर न रहकर द्रव्य के ऊपर गयी। समझ में आया? दृष्टि ही गयी। दृष्टि पर्याय है।

भिन्नरूप से उपासित होता हुआ न? उपासना में आत्मा की ज्ञायकभाव की, ऐसा करते हुए, ऐसा कहा। पर की सेवा करे, ऐसा लोग कहते हैं न? यह सेवा करो, सेवा करो। सेवा गहना धर्म। ....धूल भी नहीं। कौन कर सकता है? सेवा कौन करे? ....सामने पड़े, गाँव के जरा सामने हो न? सेवक मण्डलीरूप से, मात्र मान के लिये। किसकी सेवा करे? आहाहा! राग की सेवा माननेवाला मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? उस राग की उपासना करनेवाला पुण्यभाव की उपासना करनेवाला, वह मूढ़ अज्ञानी है। यह तो द्रव्य की उपासना करनेवाला। आहाहा! उपासना... उपासित होता हुआ, उपासित होता हुआ, कौन?—द्रव्य, परन्तु उपासने में आता हुआ कौन सी पर्याय? निर्मल पर्याय से सेवन में आता हुआ। कहो, समझ में आया?

**समस्त अन्य द्रव्यों के...** यह अन्य द्रव्य के भाव अर्थात् जड़ दूसरे, हों! शुभाशुभभाव नहीं। यह तो अन्य द्रव्य से हटा तो चैतन्य ज्ञायकभाव पर आया, इसलिए पुण्य-पाप से हट गया और पर्याय की दृष्टि में से हट गया। समझ में आया? गजब बातें, भाई! एक व्यक्ति कहता था, हों! सस्ता धर्म था, उसे आपने महंगा कर दिया। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। ....क्या कहलाता है अपने? ....हम तो भगवान की सेवा करते हैं और तुमने यह लकड़ी बीच में डाली। शत्रुंजय की यात्रा करे और कल्याण हो जाये, जाओ! यह सम्मेदशिखर की करें... धूल भी नहीं होता, सुन न! यात्रा कहना किसे? वह तो शुभभाव हो, अशुभ से बचने को। वह कहीं धर्म है, ऐसा नहीं है, परन्तु आये बिना रहे, ऐसा भी नहीं है, तथापि वह हेयरूप है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्यमूर्ति ध्रुव, उसकी उपासना। वही ज्ञायकभाव, वही ज्ञायकभाव समस्त अन्य द्रव्य के भाव—जड़ के भाव, जड़ का द्रव्य और जड़ के भाव, उनसे भिन्नरूप से उपासित होता हुआ, उनसे लक्ष्य छोड़ने पर जहाँ द्रव्य के लक्ष्य में गया तो लक्ष्य हुआ वह पर्याय उपासने में आती हुई। उस पर्याय ने द्रव्य को सेवन

किया। समझ में आया? ऐ... बाबूभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! ...शब्द रट-रटकर... ऐई! पर्याय का आया, लो।

पर्याय का नाम ही नहीं लेना। ऐई! चेतनजी! ...जानने में तो आवे न? आहाहा! उपासित होता हुआ, यह क्या है?—पर्याय है। किसे उपासित होता हुआ?—द्रव्य को। क्या उपासना? उपासना अर्थात् क्या? ज्ञायकभाव पर एकाकार होना, वह उसकी उपासना, वह उसकी सेवा की कही जाती है। पुण्य-पाप के राग को अपना मानकर उसकी सेवा करता था, वह मूढ़ और अज्ञानी था। समझ में आया? यह दृष्टि बदली, वहाँ दूसरी सृष्टि उत्पन्न हुई। भगवान आत्मा... आहाहा! अरे! तेरी समृद्धि और ऋद्धि अकेले ज्ञायकभाव से भरपूर है। ...प्रधानता गिननी है न, पारिणामिकभाव... ज्ञायकभाव जाननेवाला पारिणामिकभाव त्रिकाल है। ऐसे भाव की सेवा करने से... उदय की सेवा तो अनादि का करता था, उसमें तेरा जानना है क्या? समझ में आया? पारिणामिक ज्ञायकभाव की सेवा, उपासना। ऐसे जीवतत्त्व का सेवक हुआ, जीव का उपासक हुआ। किसका उपासक है? वीतरागभाव ऐसा आत्मा का उपासक हूँ। राग का और पुण्य का, निमित्त का उपासक नहीं। समझ में आया? समझ में आया या नहीं, गुलाबचन्दभाई! यह तो किसी दिन आवे, इसलिए ऐसा सूक्ष्म लगे न। ....करनेयोग्य यह है, बाकी सब हैरान होने की अग्नि से सुलगते हैं। धर्म के नाम से राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया करे और माने कि हमारे धर्म होता है। मिथ्यात्व से लिस होता है।

कहते हैं, वही... अर्थात् जो ज्ञायकभाव शुभाशुभ परिणाम से परिणमित नहीं हुआ और जिसे.... करके प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं, ऐसा जो ज्ञायकभाव, आहाहा! पर से हटकर स्वभाव की अस्ति की सेवा अर्थात् स्वीकृति में आया। वह ज्ञायकभाव मैं हूँ, उसकी सेवा की, उसे शुद्ध कहा जाता है अर्थात् कि शुद्ध तो था। परन्तु सेवा करके परिणति में शुद्धता हुई, उसे यह शुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। कौन? पर्याय शुद्ध, ऐसा नहीं, त्रिकाल शुद्ध है। यह नहीं। जिसने पर का लक्ष्य छोड़कर, स्वद्रव्य के लक्ष्य को... बँधाया, उसकी सेवा-उपासना की, ऐसे उपासक को यह शुद्ध हुआ। समझ में आया? लो, यह एक बोल का पैराग्राफ हुआ। विशेष आयेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३

श्री समयसार, गाथा-६, प्रवचन - १२९

दिनांक - ०४-१२-१९७१

समयसार, छठवीं गाथा चलती है। यहाँ तक आया। पहला पैराग्राफ आया है न? यह आत्मा है, वह वस्तु अनादि-अनन्त नित्य उद्योत स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। ऐसा एकरूप भाव ज्ञायकभाव, वह संसार की बन्ध अवस्था की अपेक्षा से देखें तो उसमें पुण्य-पाप के... बन्धन की उत्पत्ति के कारण ऐसे शुभ और अशुभभाव, निमित्त के वश से प्रवर्तमान। समझ में आया? कर्म के निमित्त के वश से प्रवर्तमान उन भावरूप, आत्मा वस्तु जो है, उन भावरूप परिणमती नहीं। समझ में आया? इसलिए वह प्रमत्त भी नहीं और अप्रमत्त भी नहीं। यह शुभाशुभभावरूप हो, तब तो उसके भेद दिखते हैं कि यह गुणस्थान सहित है। ....इसलिए वह प्रमत्त भी नहीं और अप्रमत्त भी नहीं।

**वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से....** ऐसा जो भगवान अनादि-अनन्त उद्योतमान प्रकाश ज्योति, उसे अन्य द्रव्य के भावों अर्थात् जड़ और जड़ के भाव, उनसे लक्ष्य छोड़कर भिन्नरूप से उपासित होता हुआ.... वह ज्ञायकभाव, शुद्ध ध्रुवभाव को पर के लक्ष्य से छूटकर, ऐसे ज्ञायकभाव को उपासित किये जाने पर, भिन्नरूप से सेवन किये जाने पर, पर से भिन्नरूप से आत्मा के स्वभाव को सेवन करने पर आत्मा, उसे 'शुद्ध' कहलाता है। शुद्ध का भान हुआ, तब उसे यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? जो वस्तु है, वह दृष्टि में न आवे और ज्ञान में न आवे, तब तक चीज़ यह है, यह है - यह जाने कौन? ग्रहण कौन करे? समझ में आया? अन्तिम शब्द था।

**वही समस्त....** वही, ऐसा कहा है न? ऐसा जो भगवान ज्ञायकस्वरूप, जो निमित्त के वश प्रवर्तमान शुभाशुभभाव में होता नहीं - परिणमता नहीं - विकाररूप से आता नहीं, ऐसा जो आत्मा, उसे पर से भिन्नपने उपासित किये जाने पर। अपने स्वभाव में एकाग्र होता, ऐसे जीव को यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? वास्तव में तो निश्चय और व्यवहारनय है न नय। व्यवहार भी उसे कहा जाता है कि उसे उपासित किये जाने पर



जो (शुद्ध) परिणति प्रगट हुई, उसे निश्चय कहा जाता है और बाकी रहा राग, उसे व्यवहार कहा जाता है, उसे नय लागू पड़ते हैं। समझ में आया ? जो आत्मा अपने ध्रुव चैतन्य शुद्ध आनन्द, ज्ञानभाव स्वभाव की सेवा करने पर – उसमें आने पर, तब उसे निश्चयनय, उसका विषय दृष्टि में आया और शुद्ध परिणमन में ख्याल में आया कि यह वस्तु है। दृष्टि तो श्रद्धा है, परन्तु उसके ज्ञान में भी आया कि यह आत्मा ध्रुव और शुद्ध है। ऐसा जिसे प्रगट हुआ, ऐसे जीव को नय का परिणमन हुआ, ऐसा कहा जाता है। ऐसे जीव को....

यहाँ तो अकेली अस्ति की ही बात है। समझ में आया ? और उसमें दो नयों का निषेध हुआ। एक नय का आश्रय हुआ, दो नय का निषेध हुआ। असद्भूतव्यवहार उपचार और असद्भूतव्यवहार अनुपचार, इन दो नयों का इसमें निषेध हुआ। समझ में आया ? ...यह तो सादी बात है। वस्तु जो है, ज्ञानभाव-स्वभावभाव, वह जब शुभाशुभभावरूप हुई नहीं, ऐसी चीज़ को सेवन किये जाने पर, समझ में आया ? ....अर्थात् कि उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट होने पर उसके ध्येय में यह शुद्ध था, ऐसा उसे भान हुआ। समझ में आया ? इसलिए उसमें शुभ-अशुभभाव जानने में आवे, नहीं और जानने में आवे, उसे असद्भूतउपचार कहते हैं। नहीं उसमें होने पर, जानने में भी न आवे अबुद्धिपूर्वक ऐसे भाव-विकार को असद्भूत अनुपचार कहा गया है। ऐसा है। नये लोगों को तो अभ्यास नहीं होता... ऐई, मनसुख ! कहाँ गया तुम्हारा... गया ? है ? ...कभी अभ्यास नहीं होता। ...प्रयोजनभूत यह है, ऐसा इसे दृष्टि में नहीं आता।

कहते हैं कि जब यह आत्मा अपने स्वभाव की सेवा करता है, ज्ञायकभाव वस्तु का भाव, उसकी सेवा करता है, तब उसे शुद्धनय-निश्चयनय की ध्येय जो वस्तु, वह लक्ष्य में आयी इसलिए उसके परिणमन में निर्मलता आयी। अभी जो राग बाकी रह गया, उस राग का उसमें निषेध हुआ। समझ में आया ? ख्याल आवे ऐसा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग भी हिंसा है। राग की वृत्ति उठती है, उसका इसमें निषेध है। समझ में आया ? तब उसे अहिंसा स्वभाव शुद्ध की सेवा करने पर अहिंसक स्वभाव उत्पन्न हुआ। राग बाकी रहा, ख्याल में आवे ऐसा एक राग और एक उपयोग स्थूल है, इसलिए वह ख्याल में न आवे, ऐसा वह राग; ख्याल में आवे ऐसे राग को असद्भूतव्यवहार, असद्भूत, वह आत्मा में नहीं है, परन्तु पर्याय में है, उसका नाम जानना, उसका नाम उपचार कहा जाता है, और दूसरा राग इसमें नहीं, परन्तु पर्याय में जो कचाश के कारण है, परन्तु वह ख्याल में नहीं आता, इसलिए उसे असद्भूत अनुपचार कहा जाता

है। गजब बात, भाई! उसका निषेध हुआ। समझ में आया? वह राग इसमें मिलता नहीं, भिन्न रहता है। भिन्न उपासने में आया न? यहाँ तो गाथा ही पूरी समयसार की शुरुआत करनेवाली है। समझ में आया?

अनादि का जो शुभाशुभभाव के ऊपर लक्ष्य था, अर्थात् कि उसे निमित्त के ऊपर वश हुआ लक्ष्य था, वह मिथ्यादृष्टि था। यह अब उसका लक्ष्य छोड़कर चैतन्य महाप्रभु ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, ज्ञायक अर्थात् ज्ञानप्रधानता से बात है, अकेला ज्ञानभाव अनादि-अनन्त नित्य स्पष्ट, उसकी ओर के झुकाव में उसकी उपासना हुई, उस ध्रुव की। समझ में आया? यहाँ उपासना थी पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव की, वह मिथ्यात्व था। त्रिकाल ज्ञायकभाव की उपासना, वह पर्याय है, परन्तु ध्रुव की उपासना (करती है)। ऐसा कहा न, वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ.... ध्रुव सेवन में आने पर, ऐसा कहा। ऐई! ध्रुव सेवन में आता होगा? इसका अर्थ यह कि ज्ञायकभाव की ओर का झुकाव, वह उसकी सेवा कही जाती है अर्थात् कि उसके सन्मुख की भावना, उसने पूरे को स्वीकार किया। नहीं था दृष्टि में - यह है ही नहीं, उसके बदले उसे स्वीकार किया, यह उसकी सेवा कही जाती है। गजब बात, भाई! ऐसी कथा सुनते हुए लोगों को (ऐसा लगे) यह जैनधर्म होगा? वाड़ावालों को तो कठोर लगे। ऐ चिमनभाई! यह सब तो प्रमुख हैं वहाँ। सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण करे तो समझ में तो आये कि यह कुछ करते हैं। वह तो सब विकल्प है। समझ में आया? उस राग से भिन्न पड़कर जो त्रिकाली ज्ञायकभाव के सन्मुख हुआ, तब उसका स्वीकार हुआ, यह उसकी सेवा है। कहो, समझ में आया? ...अल्प शब्दों में बहुत गूढ़ भरा है। एक-एक गाथा में चौदह पूर्व का सार भर दिया है। समझ में आया?

कहते हैं कि जब हमने, वही... वही अर्थात्? कि जो शुभाशुभभाव से परिणाम नहीं, ऐसा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसे समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... पर के लक्ष्य से छूटकर पर से भिन्नरूप से आराधकरूप से उपासित किये जाने पर, वह द्रव्य का आराधनपना किया, वस्तु की आराधना की, वस्तु की सेवा की, वस्तु की उपासना की अर्थात् पूरी चीज़ ऐसी है, ऐसी प्रतीति और ज्ञान में स्वीकार हुआ। हिम्मतभाई! ऐसा है यह जैनधर्म। वहाँ सेठ थे तो वहाँ तो सब प्रौषध और प्रतिक्रमण चले। ...बापू! वस्तु ही यह है और यह समझे बिना तेरा निवेड़ा आवे, ऐसा नहीं है। चौरासी के अवतार... आहाहा! इसने विचार कब किया है। निमित्त के वश पड़ा और वश हुआ.... समझ में आया? ...है, प्रभु! समझ में

आया ? ....उसकी पर्याय निमित्त के वश हुई शुभाशुभभाव किया करती है। आहाहा! उसरूप हुआ नहीं, उसकी सेवा करने से, उसका स्वीकार करने से, उसके सन्मुख होकर यही वस्तु है, ऐसा परिणमन करने से ऐसे जीव को यह वस्तु शुद्ध है, वह शुद्धनय का विषय है, ऐसा नय का ज्ञान उसे यथार्थ हुआ। समझ में आया ? बाबूभाई! ऐसा सूक्ष्म है।

अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ.... इसका अर्थ। जड़ से तो भिन्न है। समझ में आया ? परन्तु जड़ से भिन्न पड़ने पर पुण्य-पाप के उत्पन्न करनेवाले भावों से भी भिन्न पड़ गया। उनसे तो भिन्न पड़ा परन्तु वर्तमान पर्याय के ऊपर दृष्टि नहीं रही, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसकी बात है। यह तो प्रथम धर्म, एकड़ा का पहला एकड़ा यह तो है। अरे रे! कहते हैं, ऐसा भिन्नरूप से उपासित किये जाने पर (अर्थात्) दूसरे भाव हैं अवश्य। अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्य का भाव है। भिन्नरूप से उपासित किये जाने पर, तब उससे भिन्न दूसरी चीज़ है। अर्थात् कर्म का उदय निमित्त है, उसे तो यहाँ स्वीकारा है। है दूसरी चीज़। समझ में आया ? एक ही आत्मा में पर के लक्ष्य से भूल होना, ऐसा नहीं हो सकता। पर हो तो उसके लक्ष्य से भूल होती है, स्वलक्ष्य छोड़कर। समझ में आया ? यह बात वेदान्त में भी नहीं हो सकती। समझ में आया ? एक ओर के लक्ष्य में था, एक दूसरी चीज़ थी। उससे भिन्नरूप से सेवन किये जाने पर। उसकी दृष्टि बदली। वही पूरा ज्ञायकभाव, उस पर दृष्टि पड़ने से उसकी ओर के झुकाव में उसका सेवन किया, ऐसे जीव को वह शुद्ध है, ऐसा (कहा गया)। ....भाई! ऐसा स्वरूप है। ऐ... रसिकभाई! तुम्हारे लक्ष्मीचन्दभाई ने तो ऐसा सुना नहीं था। .... यह बात ही कहाँ (थी)। थोड़ी जहाँ कही वहाँ भड़कते थे।

(संवत्) १९८५ में कहा, जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। हाय... हाय...! यह बात यहाँ अभी आज आयी। ....देखो, भाई! यह परलक्ष्य के कारण जो परद्रव्यानुसारी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, पूजा, भक्ति का राग वह हिंसा है। वे भड़क गये। राग, वह हिंसा है। अहिंसा धर्म, ऐसा साधारण कहते हैं, ऐसा वह नहीं है। राग से भिन्न पड़कर अपने आत्मा का सेवन करे, उस पर्याय को अहिंसाधर्म कहा जाता है। वीतरागी भाव की सेवा करने पर जो पर्याय प्रगटे, उसे अहिंसा कहा जाता है। आहाहा! वह अहिंसा परमो धर्म है। समझ में आया ?

दो नय का निषेध हुआ। एक का आदर हुआ, वहाँ दो का निषेध हुआ। भीखाभाई!

कौन से दो ? रागादि हैं नहीं न आत्मा में। उपचार और अनुपचार। क्योंकि उपयोग स्थूल है। ख्याल में आता है कि यह राग है, भिन्न है, तथापि आत्मा का है—ऐसा कहना, वह उपचार व्यवहार असद्भूत है। समझ में आया ? उसी काल में उपयोग की स्थूलता होने के कारण, एक समय के अन्दर में विकार जानने में आया, वह स्थूल आया, दूसरा जानने में नहीं आया, वह अन्दर बाकी रह गया, उसे यहाँ असद्भूत अनुपचार अर्थात् कि है। समझ में आया ? जानने में नहीं आता, तथापि है, उसे असद्भूत उपचारनय कहते हैं। दो का निषेध हुआ। अब तीसरे की बात।

चौथा पद। इसमें तीसरे नय का निषेध है। सदभूतउपचारनय का निषेध है। सदभूतउपचार का निषेध। इस चौथे पद में यह वर्णन करते हैं। धीरे-धीरे लेते हैं, यह तो समझने की बात है। अरे! जहाँ विश्राम लेना चाहिए, वह धाम क्या है, उसकी इसे खबर नहीं। जिसमें स्थिर होना चाहिए, विश्राम मिले, ऐसा धाम ज्ञायकभाव, उसकी खबर बिना जहाँ-तहाँ विश्राम लेना, पुण्यपरिणाम में और उसमें और पापपरिणाम में सुख मानकर विश्राम लेना अर्थात् उसमें सुख मानना, मिथ्या भ्रान्ति में-भ्रम में पड़ा है।

दूसरा पैरेग्राफ। गाथा का चौथा पद। 'ण वि होदि अपमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं' उसे शुद्ध है, ऐसा जानना। 'भणंति'—जानना, इसका अर्थ ही यह है। जानना अर्थात् ? 'भणंति' अर्थात् कहना नहीं, उसे शुद्ध है, ऐसा जानना। शुद्ध है, ऐसा जानना है न ? आत्मा पूर्णानन्द प्रभु ज्ञायकभाव की चीज़ अनादि-अनन्त, उसका पूरा सत्त्व ज्ञायकभावरूप सत् का सत्त्व। उसकी सेवा करने से... समझ में आया ? सेवा करनेवाले को यह आत्मा ध्रुव शुद्ध है, ऐसा उसे जानने में आया, ऐसा कहना है। पण्डितजी!

अब 'णादो जो सो दु सो चेव' चौथा पद है। चौथे पद का यह दूसरा पैरेग्राफ है। और जैसे दाह्य ( -जलनेयोग्य पदार्थ ) के... देखो! दृष्टान्त अग्नि का (देते हैं)। दाह्य जो जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होने से अग्नि को दहन कहा जाता है, उसे जलानेवाला कहा जाता है। यह लकड़ी हो, उसके आकार अग्नि होती है न ? कण्डा हो, क्या कहलाता है ? ...सूखा गोबर। अडाया अर्थात् वह गोबर पड़ा हुआ सूख गया हो, उसे (गुजराती भाषा में) अडायुं कहा जाता है और गीला गोबर हो उसे लाकर... डालकर करे, उसे कण्डा कहा जाता है। सूखा गोबर आता है न। सूखा होता है न ? पड़ा हो तो ऐसे सूख जाये। सूखा हो उस प्रकार से अग्नि उसके आकार परिणम जाती है, वह अग्नि का आकार और जली चीज़

है, उसके आकार नहीं हुई। ज्ञेयाकार ज्ञात होता है परन्तु है ज्ञानाकार। समझ में आया? सूखा गोबर, कण्डा, लकड़ी, कोयला। छोटे-बड़े कोयला होते हैं न? ...क्या कहलाता है वह? सिगड़ी। सवेरे जहाँ हो, वहाँ सिगड़ी सुलगती है। जिस प्रकार के कोयले, जैसा आकार हो, वैसी अग्नि होती है।

उस ( -जलनेयोग्य पदार्थ ) के आकार होने से... परन्तु हुई है कौन?—अग्नि। जलनेयोग्य पदार्थ के आकार अग्नि हुई है। जलनेयोग्य पदार्थ के आकार जलनेयोग्य पदार्थ हुए नहीं। समझ में आया? यह क्या कहा? दाह्य। यहाँ जीव पदार्थ है, हों! नहीं तो ...ज्ञायक को जानना है न। जानता है, वह जानता है, उस समय ज्ञायक वह नहीं, किसे जाने, इसकी बात नहीं। यहाँ तो पर्याय में जैसे अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार, जलनेयोग्य पदार्थ के आकार अग्नि हुई है। जलनेयोग्य पदार्थ के आकारस्वरूप हुई नहीं। उसके आकाररूप स्वयं अग्नि हुई है, वह आकार अग्नि का है। समझ में आया? जलनेयोग्य पदार्थ का वह आकार नहीं है। बराबर होगा? ऐसे न्याय और ऐसी ध्वनि...! ....ऐसा दिखाई दे कि अग्नि लकड़ी या कण्डे के आकार हुई। ....क्या कहलाता है? प्लास्टिक की डोरी। रस्सी ऐसी जाड़ी-मोटी। ...उसके आकार होती है, तथापि उसके आकार हुई नहीं, वह अपने आकार हुई है। समझ में आया? जलनेयोग्य लकड़ी के आकार हुआ अस्तित्व अग्नि में है। बराबर है?

दाह्य ( -जलनेयोग्य पदार्थ ) के आकार होने से अग्नि को दहन... अर्थात् उसे जलाती है, ऐसा कहा जाता है। तथापि... ऐसा होने पर भी। ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। यह बहुत सादी भाषा में आता है। संस्कृत और व्याकरण और बड़े-बड़े ऐसे ऐसा कुछ नहीं। यह स्वयं सादा है। समझ में आया? ऐसा होने पर भी उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,.... यह आकारवाले जलनेयोग्य पदार्थ थे, जैसे आकार अग्नि हुई, इससे जलनेयोग्य पदार्थ के आकार हुई, इसलिए उसे अशुद्धता आयी, ऐसा नहीं है। जलनेयोग्य के कारण अशुद्धता हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

उसी प्रकार.... यह दृष्टान्त हुआ। लोगों को समझने में सरल पड़े, इसलिए दृष्टान्त उसके लिये है। दृष्टान्त में अटकने के लिये नहीं। यह दृष्टान्त, लो। परन्तु दृष्टान्त का सिद्धान्त क्या? उसे सिद्धान्त समझाने में सरल पड़े, इसलिए दृष्टान्त देना चाहिए। अग्नि तो बराबर है। यह अग्नि है, वह जलनेयोग्य के आकार हुई, जलनेयोग्य पदार्थ के कारण वह आकार है, ऐसी अशुद्धता उसे नहीं है। भाई...!

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के.... अर्थात् ज्ञायकभाव को—जाननेवाले ऐसे आत्मभाव को। ज्ञेयाकार—राग, शरीर, वाणी, आदि जो भाव है, उस प्रकार के आकाररूप परिणमन होने पर भी उस भाव को ज्ञायकता प्रसिद्ध है,... यह राग का, शरीर का जाननेवाला है, ऐसा जो प्रसिद्ध है। उसके आकार का पर का जो स्वरूप है, उसी स्वरूप ज्ञानाकार होता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो थोड़ा अभ्यास चाहिए। मनसुखभाई! हल्दी के गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता, ऐसा कहते हैं। एक-एक गाथा यह तो... आहाहा! वीतरागभाव के झुकाव का भाव है यह सब। समझ में आया? स्वयं वीतरागभावस्वरूप है, उसके झुकाव का ही यह भाव है, समझ में आया?

कहते हैं कि अग्नि को दाह्यकृत दाह्य के आकार परिणमने पर भी, उस अग्नि को दाह्यकृत अशुद्धता लागू नहीं पड़ती, वह तो अग्नि का अपना ही परिणमन है। अग्नि के अस्तित्व में उसका परिणमन है, उसे (ईंधन के) कारण परिणमन है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के... (अर्थात्) ज्ञायकभाव को। उसे जानना ऐसा ज्ञायकता प्रसिद्ध है,... राग को जाने, शरीर को जाने, ऐसा कहते हैं न? ज्ञान राग को जाने, शरीर को जाने, ऐसा उसमें प्रसिद्ध है। समझ में आया इसमें? तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;.... राग का रागपने के सम्बन्ध का अपना ज्ञान, वह ज्ञेयाकार हुआ परन्तु वह ज्ञानाकार है, वह है तो यह जानना हुआ, ऐसी उसे अशुद्धता नहीं है। समझ में आया? जलनेयोग्य पदार्थ से तो अग्नि उस आकार हुई, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार राग और शरीर है तो उस प्रकार के ज्ञान में, उस प्रकार का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। वह ज्ञायक है, इसलिए उसकी पर्याय में स्वयं के कारण से ज्ञेयाकार का भाव ज्ञानाकाररूप परिणमा है। उसके अस्तित्व के कारण यह अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

वस्तु है, वह तो पहले त्रिकाल कही। अब उसमें ज्ञान का ज्ञायक आया न, जाननेवाला। अपने को जाननेवाला, यह बात अभी नहीं है। जाननेवाला। किसका?—ज्ञेय का। ज्ञेय का जाननेवाला, इसलिए इतनी ज्ञेय की पराधीनता आयी और पर्याय में जानने के आकार परिणमित ज्ञान, जैसा ज्ञेय है, उस प्रकार परिणमित हुआ, इसलिए उसे अशुद्धता आयी, ऐसा नहीं है। उसके पर्याय का अस्तित्व ही ज्ञेयाकार होने का—अपने ज्ञानाकार होना, वह अपने से हुआ है। समझ में आया? द्रव्य तो ऐसा सिद्ध है, परन्तु उसकी पर्याय में यह राग का ज्ञान, शरीर का ज्ञान, ऐसा जो कहना, इसलिए उसे अशुद्धता नहीं आती। वह तो इसने

निमित्त का ज्ञान किया है। वह ज्ञान, निमित्त में अस्तित्व है, इसलिए यहाँ निमित्त का ज्ञान हुआ है (ऐसा नहीं है)। अपने अस्तित्व की पर्याय का ज्ञान उस काल में अपने से हुआ है। समझ में आया? इसमें सिरपच्ची में कौन पड़े? मूलचन्दजी कहते थे। (संवत्) १९८० के वर्ष का चातुर्मास पूरा हुआ न! ४७ वर्ष हो गये। १९८० के वर्ष का चातुर्मास। ...देखो भाई! अपने को श्रद्धा गणधर जैसी मिली है। अपने को आड़ा-टेढ़ा दूसरा कुछ मानना नहीं। यथाशक्ति त्याग करो, चारित्र पालो, जाओ। बोटाद के उपाश्रय में १९८१ के कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि में कहा था। ....अरे! भगवान! क्या हो?

वस्तु... वस्तु क्या है? जिसकी सत्ता स्वयंसिद्ध है, उसे पर की अपेक्षा नहीं है। यह तो पहले कहा, है, उसे पर की अपेक्षा नहीं, द्रव्य को। अब यहाँ तो उसकी पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं, यह सिद्ध करना है। आहाहा! पहले कह गये थे न? किसी से उत्पन्न हुआ न होने से। है न? स्वयं से सिद्ध है, यह तो वस्तु कही। वस्तु ज्ञायकभाव त्रिकाली। ज्ञायकभाव जानता है, ऐसी जो ध्वनि आयी, इसे जानता है, राग को जानता है, शरीर को जानता है इसलिए उसका—दूसरे का अस्तित्व है, इसलिए यहाँ ज्ञान में अस्तित्व का परिणमन ऐसा हुआ, ऐसा नहीं है। छोटाभाई! गजब बात, भाई!

पर्याय में ज्ञान ऐसा हुआ। अग्नि जैसा सामने जलनेयोग्य का आकार हो, वैसा ही दिखता है। समझ में आया? इसी प्रकार ज्ञान में जिस प्रकार का राग, जिस प्रकार का द्वेष, जिस प्रकार का विकल्प या जिस प्रकार की शरीर की आकृति की अवस्था (होती है), वैसा यहाँ ज्ञान होता है। ज्ञान तो सत्य हो वैसा होगा या असत्य हो वैसा होगा? समझ में आया? ऐसा ज्ञान ज्ञेय के आकार परिणमने पर भी, उसी विधिरूप से परिणमने पर भी, वह ज्ञेय है तो यह हुआ, ऐसी अशुद्धता उसे लागू नहीं पड़ती। आहाहा! समझ में आया? ...भाई! व्यापारियों को यह सब समझ में आता है या नहीं? व्यापार में सब होशियार कहलाते हैं। कहाँ गये ...भाई? नहीं? वह क्या कहलाता है?

कहते हैं कि जलनेयोग्य पदार्थ के कारण से अग्नि का आकार हुआ है, ऐसा नहीं है। अग्नि के आकार का अस्तित्व स्वयंसिद्ध स्वयं से हुआ है। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय में वस्तु तो स्वयंसिद्ध है उसका कहा, अब तो यहाँ ज्ञान पर को जानता है, ऐसा जो उपचार-सद्भूत उपचार। है ज्ञान अपना, परन्तु इस राग को जाने और इस आकार परिणमा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह तो सीधा-सट्ट था। 'अहिंसा...' भगवान ने अहिंसा कही है।

दूसरे जीवों को नहीं मारना, यह सब सिद्धान्त का सार है। ऐ चिमनलालभाई! हीराजी महाराज को तुमने नहीं देखा होगा। देखा है? ....गुजर गये। ...चैत्र कृष्ण आठ। ५४ वर्ष हुए। बहुत सरल, भद्रिक। तत्त्व की कुछ खबर नहीं। '....हीरा अटला हीर, दूजा सूतरना फाणका।' ऐसा कहा जाता था, हो! तुमने तो देखा नहीं होगा, ५४ वर्ष पहले की बात है न। बहुत वैराग्य, कषाय मन्द, ब्रह्मचर्य, शान्त, हजारों लोगों में व्याख्यान करे परन्तु आँख ऊँची (हो नहीं)। भगवान ने ऐसा कहा है, भाई! तत्त्व की बात सुनी हुई नहीं। बस, इतना, पर को नहीं मारना, यह अहिंसा सिद्धान्त का सब सार है। यहाँ कहते हैं, (कि) मारना, न मारना सिद्धान्त में है ही नहीं। दूसरे को मार सके, न मार सके, यह बात आत्मा में है ही नहीं।

यहाँ तो आत्मा में पर की जो चीज़ है, उसी प्रकार से ज्ञान का होना, तथापि उसके कारण से वह है; इसलिए यहाँ हुआ है, ऐसा नहीं है। पर को करना, दया (करना) वह तो नहीं परन्तु पर की दया पली, वह जीव वहाँ बचा, ऐसा यहाँ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान ऐसा हुआ कि यह है अभी, परन्तु यह बचा है, ऐसी पर्याय है, उसका यहाँ ज्ञान हुआ, इसलिए बचा, उसकी पर्याय के कारण से यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ...जड़ से भी धर्म होता है। जड़ में चैतन्य प्रवेश करता है और चैतन्य में जड़ प्रवेश करता है। भगवान ने आत्मा को मूर्त कहा है। यह सब.... यह तो निमित्त की अपेक्षा से... निमित्त है, निमित्त न हो तो बँधे नहीं, यह तत्त्वार्थ राजवार्तिक में कहा है। इसलिए भगवान के दर्शन वीतराग भाव आवे वहाँ से। भगवान की मूर्ति देखकर वीतरागभाव आवे। अरे! देखकर राग भी आवे नहीं, सुन न! राग तो तेरे स्वयं से (होता है), वहाँ मूर्ति में से राग कहाँ आता था! समझ में आया? जिनबिम्ब जड़ है, जड़ में से वीतरागभाव आता है। ...मूर्त कहा है, परमाणु को अमूर्त कहा है, इस अपेक्षा से उपचार से कहा गया है। आहाहा! उसे यथार्थरूप से मान ले... त्रिकाल भगवान तो अरूपी और अमूर्त ही है, तीन काल में मूर्त किसी दिन हुआ नहीं। अरे! दृष्टि के अन्तर से पूरी बात-शास्त्र का अर्थ मिथ्या हो गया।

कहते हैं, ज्ञेयाकार होने से... कौन?—ज्ञायकभाव। ज्ञायक जानता है, जाननेवाला है। उसका अर्थ हुआ कि जानता है। किसे?—पर को। जलाती है। किसे? जड़ को। अग्नि जलाती है। किसे?—पर को। इसी प्रकार ज्ञान जानता है। किसे?—पर को। ऐसी ध्वनि ज्ञायक में आती है, कहते हैं। तथापि वह पर को जानना, यह बात यथार्थ नहीं है। पर को जलाना, वह जैसे अग्नि में यथार्थ नहीं है, वह अग्नि स्वयं ही अपने आकार परिणमित



हुई है। समझ में आया? ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के.... उसमें कहा था न? वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... उस भाव को अर्थात् ज्ञायकभाव को ज्ञायकता प्रसिद्ध है,... यह जानता है, यह ज्ञायक है, वह जाननेवाला है। पर का जाननेवाला है, ऐसा प्रसिद्ध तो है न?

तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;.... वह ज्ञेय के कारण आकार से यहाँ परिणामा, इसलिए उसके कारण परिणामा, ऐसी अशुद्धता नहीं है। स्वयं के ही कारण से ज्ञान उस समय में अपने से स्वयंसिद्ध परिणमित हुआ है, वह ज्ञान का ही आकार है। अरे... अरे...! समझ में आया? सामने धर्म शब्द कहे। शब्द है। ज्ञान में भी ऐसा ही ज्ञात हो कि यह धर्म है। ज्ञात होता है या नहीं? परन्तु वह धर्म शब्द है, उसके कारण यहाँ ज्ञान धर्म के ज्ञानरूप परिणामा, धर्म के भावरूप परिणामा, ऐसा नहीं है। उस समय धर्म का ज्ञान—धर्म शब्द का ज्ञान अपनी स्वतः उस पर्याय के सामर्थ्य से स्वयं परिणामा है। पर की अपेक्षा से ऐसा आकार उसमें आया, जैसा वह है वैसा यहाँ ज्ञात हुआ, इसलिए इतनी भी पर की अपेक्षा आयी, ऐसा उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य में तो झुकाया अन्दर में, परन्तु पर्याय में भी अन्दर में झुकाया। बाहर का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया?

अग्नि ज्ञात हुई। अग्नि ज्ञात होती है? ज्ञान ज्ञात होता है। अग्नि तो पर है। उसमें हो, ऐसा सही कि अग्नि को ज्ञान जानता है। ऐसा कहा भी जाता है, तथापि अग्नि है, इसलिए अग्नि का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। उस समय की वह ज्ञानकी पर्याय उस प्रकार से अपने अस्तित्व से रचित है। उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;... किसे?—जाननेवाले आत्मा को। पर्याय में, हों! द्रव्य में नहीं, द्रव्य की बात एक ओर रह गयी। जानने की पर्याय में ज्ञायक है, उसे जानता है, उसी प्रकार के आकार ज्ञान ज्ञेयाकाररूप परिणामा है, तथापि उस ज्ञेयाकार की उसे अपेक्षा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई! उस समय के ज्ञान का परिणामन ही स्वतः उस प्रकार का अपने अस्तित्व को पर की अपेक्षा रखे बिना ऐसा होता है। यहाँ कुछ पकड़ना हो, बहुत भाव भिन्न-भिन्न आते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहा है, निमित्त से कुछ नहीं होता तो समयसार लेकर किसलिए बैठते हो? क्या कहलाता है वह? पद्मपुराण। पद्मपुराण लेकर बैठो। यदि निमित्त से कुछ विशेषता न हो तो। उसकी बात ही खोटी है। उस समय ज्ञान में उस प्रकार का जैसा सामने निमित्त है,

वैसा वह परिणमन होने पर भी, उस परिणमन की अस्ति पर्याय की स्वतः स्वयं से है, इसके (निमित्त) के कारण से नहीं। समझ में आया? निमित्त से होता है, ऐसा उड़ाया। उसके घर में—निमित्त-निमित्त के घर में नहीं होगा? ...पर्याय के घर में नहीं, ऐसा कहते हैं। न्याय से बात है न! अपना अस्तित्व है, उसका स्वीकार हुआ... अब ज्ञान में जानने में आता है, ज्ञान अधूरा है, अरे! पूर्ण हो तो भी केवली पर को जानते हैं, यह तो व्यवहार कहा। समझ में आया? क्यों?—कि पर में वह ज्ञान तन्मय नहीं होता। ...इसी प्रकार यह ज्ञान, राग, पर्याय आदि जो व्यवहार हो, उसे जानता है, तथापि यह ज्ञान ज्ञानरूप अपने से परिणमा है। राग का, शरीर का अस्तित्व है, इसलिए परिणमा है, ऐसी अपेक्षा उसे नहीं है। समझ में आया? वे कहे, न्याय के ग्रन्थ सीखो। यह सब न्याय ही है इसमें। न्याय के ग्रन्थ बिना सूझ नहीं पड़ती। यह न्याय नहीं?

क्योंकि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;... उस भाव को अर्थात् आत्मभाव को, पर्याय को। उसको जानती है, ऐसा होने पर भी उससे यह जानने की पर्याय हुई है, ऐसे ही आकार हुई, तथापि उससे हुई है - ऐसी अशुद्धता ज्ञान की पर्याय को नहीं है। ऐ... हरिभाई!

सुनने में शब्द आवे। ज्ञान भी हुआ। यह ऐसा है, ऐसा ज्ञान जाने, परिणमे, तथापि उन सुनने के शब्दों के कारण ज्ञान ऐसा परिणमा है, ऐसा नहीं है। वह ज्ञान की उस समय की पर्याय वह स्व और पर जो ऐसा है, उसे जानने की पर्याय है, परिणमना उस काल का उसका स्वयं सत् पर की अपेक्षा बिना वह है। आहा! समझ में आया?

क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में... अशुद्धता... न्याय से सिद्ध करते हैं। ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ... भले राग को, शरीर को जानने के काल में ज्ञेयाकार अवस्था (हुई)। अवस्था किसकी है? - अपनी। ज्ञेयाकार अवस्था है उसकी, ज्ञेय की अवस्था नहीं। ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से-जाननेवालेरूप से ज्ञात हुआ, जाननेवालेरूप से ज्ञात हुआ, वह स्वरूपप्रकाशन की ( स्वरूप को जानने की ) अवस्था में भी,.... ज्ञायक ही है। ....उसी प्रकार ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, ऐसा स्वरूप प्रकाशन की अपेक्षा से भी ज्ञायक ही है। पहला शब्द है न।

दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व ( एकता ) होने से.... कर्ता और कर्म दो अलग नहीं होते। जाननेवाला कर्ता और उसका कर्म ज्ञेय, ऐसा नहीं। जाननेवाला कर्ता और

ज्ञान का परिणमन जो हुआ, वह उसका कर्म—वह उसका कार्य, पर का कार्य नहीं, पर के कारण नहीं। कर्ता के कारण ज्ञान की पर्याय में पर का जानना हुआ, वह अपनी ही ज्ञेयाकार अवस्था है। ज्ञेय के सम्बन्ध के आकार ज्ञानाकार की अवस्था अपनी है। समझ में आया ? ...निमित्त और व्यवहार को तो उड़ा दिया। जैसा है, वैसा है, उड़ा नहीं डालते, है ऐसा है। है, उसका ज्ञान हुआ। वह है; इसलिए यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। अपनी ज्ञान की पर्याय उस प्रकार में... स्व को और पर को परिणमने की अवस्था के आकारवाला उसे पर की अपेक्षा की अशुद्धता नहीं आती। कितना... दिया। प्रत्येक तत्त्व को निश्चय जो सत्य है, उसकी ओर का वर्णन नहीं और अकेले यह व्यवहार की बातें समुचित लग जाये तो कहे कि यह तो एकान्त है! ऐसा है। ज्ञान के परिणमन में निमित्त ज्ञात होता है, इसलिए वह भी कारण और ज्ञान भी कारण। निमित्त कारण तो है न? निमित्त का अर्थ क्या हुआ? इसमें वह नहीं है, इसमें वह है। उसका ज्ञान होने पर, वह है; इसलिए उसका यहाँ ज्ञान हुआ है—ऐसा भी नहीं है। यह सन्तों ने स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि की है। ऐसा नहीं, सर्वत्र स्वतन्त्रता ऐसा नहीं.... एकान्त है।

( स्वरूप को जानने की ) अवस्था में भी, दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व ( एकता ) होने से ज्ञायक ही है... कैसे? यह विशेष आयेगा....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )

४

श्री नियमसार, श्लोक-११९, प्रवचन - ९०

दिनांक - २४-११-१९७९

नियमसार। ध्यान की व्याख्या। अन्तिम है। चार ध्यानों में... चार ध्यान कहे न? आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। उनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान हेय है, छोड़नेयोग्य है। धर्मध्यान पहले उपादेय है। पहला ध्यान यह... शुद्धता की अल्पता। स्व-आश्रय आया था न? स्व-आत्माश्रित निश्चयधर्मध्यान। टीका में आया था। स्व आत्मा... सूक्ष्म बात बहुत, भाई! ...कहते थे। नैरोबीवाले... थे न? ...वाले नहीं... गये, वे तो गये। ऐसा सूक्ष्म वहाँ नहीं चलता, नैरोबी में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, स्व जो आत्मा, यह स्वाश्रित जघन्य धर्मध्यान हो, वह पहले उपादेय है। पश्चात् शुक्लध्यान होता है, वह तो उपादेय है ही। यहाँ धर्मध्यान में शुभभाव उपादेय है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? कहीं आ गया है न? स्व-आत्मा-आश्रित निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान। बात यह है कि यह चैतन्य परम अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति, अविकारी त्रिकाल स्वभाव का आश्रय लेने से धर्मध्यान होता है। लाख दूसरी बात हो तो भी। शुभभाव हो।

**मुमुक्षु** : व्यवहार धर्मध्यान कहलाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : व्यवहार धर्मध्यान अर्थात् पुण्य। यह निश्चयधर्मध्यान अर्थात् शुद्ध। आहाहा! शुद्ध सत् स्वरूप अस्ति है न? अस्ति है, वह तत्त्व है। तत्त्व है तो वह तत्त्व स्वभाव से खाली नहीं होता। स्वभाववान है। स्वभाव है, उसकी हद नहीं होती। अनन्त-अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता— ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियाँ अर्थात् स्वभाव, वह आत्मा। ऐसे आत्मा के आश्रय से जो जघन्य पाये, उसे यहाँ धर्मध्यान कहा जाता है। यहाँ शुभभाव की बात ही नहीं है। सूक्ष्म बात है। लड़के हैं न। सात, आठ, दस पैसा बहुत। ऐसा कहे, यह बहुत सूक्ष्म। आत्मा अकारक है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से काल कहा जाता है। उस काल से पर्याय में

अकारक कहा जाता है। इसके बाप-दादा ने सुना नहीं होगा। आहा! प्रभु का मार्ग तो यह है, भाई! प्रभु! तू प्रभु होने के योग्य है, हों! ...इसका अर्थ प्रभु होने के योग्य अर्थात् तू प्रभु है। आहाहा! भगवान है, परमेश्वर है, अनन्त-अनन्त गुण का सागर है, गुण का सागर है। अरूपी है, क्षेत्र छोटा है, इससे स्वभाव की हद नहीं हो सकती। शरीरप्रमाण क्षेत्र छोटा, इसलिए स्वभाव की मर्यादा नहीं होती। मर्यादा तो अपरिमित जिसका स्वभाव है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेना, अवलम्बन लेना, उसे ध्येय बनाकर ध्यान में रहना। यह निचला धर्मध्यान, जघन्यदशा धर्मध्यान कही जाती है।

**तीसरा प्रथम तो उपादेय है...** प्रथम यह श्रेणी इस अपेक्षा से उपादेय है, आदरणीय है। और चौथा सर्वदा उपादेय है। पूर्णानन्द के नाथ में पूर्ण आश्रय करके स्थिर रहना, यह तो उपादेय है ही। इससे ही केवल (ज्ञान) होता है। आहाहा! इसमें बाह्य क्रिया की कोई बात नहीं आयी। ऐसी बाह्य क्रिया करे, ऐसा करे तो ऐसा हो, ऐसे निमित्त करे, भक्ति करे, पूजा करे, साधर्मियों की सहायता करे, साधर्मी को मदद करे, कर्म से गिरते को स्थिर करे - ये सब विकल्प हैं। आहाहा!

स्व-आश्रय। प्रभु आत्मा सत् सत् अस्ति, सत् रूप से अस्ति और अपरिमित स्वभावरूप से अस्ति, ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय लेने पर जो दशा होती है, उसे धर्मध्यान कहा जाता है। यह पहले धर्मध्यान शुरुआत में उपादेय है। पूर्ण शुक्लध्यान न हो, तब तक उपादेय है।

**और चौथा सर्वदा उपादेय है।** पूर्ण आत्मा आनन्द में पूर्ण रीति से स्व-आश्रय में एकदम लीन हो जाना, वह तो सर्वदा उपादेय है। यह धर्मध्यान के भेद हैं। आहाहा! परिभ्रमण करते हुए अनन्त काल हुआ, कभी इसने सच्ची समझ, सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करना, इसका समझ भी नहीं की। आहाहा! दूसरी सब बातें कीं। मूल चीज कैसे प्राप्त हो, उसका इसने प्रयत्न / प्रयास नहीं किया। प्रथम में प्रथम प्रयत्न और प्रयास को धर्मध्यान कहते हैं। उत्कृष्ट प्रयत्न और प्रयास को शुक्लध्यान कहते हैं। वह शुक्लध्यान सर्वदा उपादेय / आदरणीय है।

इसी प्रकार ( अन्यत्र श्लोक द्वारा ) कहा है कि:— श्लोक, ऊपर का।

निष्क्रियं करणातीतं ध्यान-ध्येय-विवर्जितम् ।

अन्तर्मुखं तु यद्भ्यानं तच्छुक्लं योगिनो विदुः ॥

[ श्लोकार्थ : ] जो ध्यान निष्क्रिय है,... कठिन पड़े, भाई! जिस ध्यान में राग की क्रिया का अंश भी नहीं है। राग है, वह सक्रिय है। उस राग की सक्रिय अपेक्षा से ध्यान है, वह निष्क्रिय है। द्रव्य की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह सक्रिय है। द्रव्य की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह राग की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह द्रव्य की अपेक्षा से सक्रिय है। क्या कहा है? निष्क्रिय कहा वह तो राग की अपेक्षा से। बाकी ध्यान है, वह तो परिणति है। परिणति है वह सक्रिय है। त्रिकाली द्रव्य, वह निष्क्रिय है। आहाहा!

निष्क्रिय ध्यान इन्द्रियातीत है,... इन्द्रियों से अतीत अनीन्द्रिय। भगवान अनीन्द्रिय स्वरूप है। आहाहा! ऐसा कठिन लगा न? यह प्रतिक्रमण की व्याख्या सब कठिन आयी न! नैरोबीवाले भाई को ऐसा हुआ न कि सरल कहना सरल। गुजराती चलेगी, परन्तु यह कठिन पड़ेगा। पहला-पहला है। आहाहा! क्या बनता है? कैसे करे? जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। उसमें किसी की की हुई होगी... आहाहा! की होवे परन्तु उस प्रकार से पर्याय होने के काल में होती है, उसे की होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ध्यान, शुक्लध्यान, उत्कृष्ट ध्यान। निष्क्रिय है,... जिसमें राग का अंश भी नहीं। इन्द्रियातीत है,... अनीन्द्रियमय ध्यान है। इन्द्रिय से अतीत भिन्न है। आहाहा! ध्यानध्येयविवर्जित... है। यह ध्यान करनेयोग्य द्रव्य है और मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा ध्यान और ध्येय का विकल्प-राग से रहित है। वहाँ ध्यान और ध्येय का विकल्प भी नहीं है। आहाहा! पंचम काल के मुनि जगत के लिए प्रसिद्ध करते हैं। उन्हें खबर नहीं (कि) यह पंचम काल है? हल्का काल है। काल हल्का है तो यह आत्मा कहाँ हल्का है? आहाहा! आत्मा तो प्रभु है न, बापू! तेरी मान्यता में कमी है। मान्यता में यह बात किसी प्रकार जँचती नहीं। यह प्रभु है, भगवान है, परमेश्वर पूर्ण स्वरूप है। उसका जो ध्यान, वह ध्यान और ध्येय... ध्येय, वह आत्मा और ध्यान, वह पर्याय - ऐसे ध्यान-ध्येय के विकल्प से अतीत है। ऐसे ध्यान-ध्येय का भी वहाँ विकल्प नहीं है। ऐसा शुक्लध्यान। इसे सुनकर निर्णय तो करना पड़ेगा न? शुक्लध्यान किसे कहना? परमध्यान किसे कहना? आहाहा!

( अर्थात् ध्यान और ध्येय के विकल्पों रहित ) है और अन्तर्मुख है,... वह ध्यान तो अन्तर्मुख है। अन्तर्मुख अर्थात् अन्तर्मुहूर्त ऐसा नहीं। अन्तर्मुहूर्त अलग और अन्तर्मुख अलग है। अन्तर्मुहूर्त, वह काल बताता है। यहाँ अन्तर्मुख, वह त्रिकाली स्वभाव सन्मुखता बताता है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। भगवान पूर्ण स्वरूप परमेश्वर भगवत्स्वरूप, उसके

अन्तर्मुख, उसके सन्मुख। आहाहा! उस ध्यान को योगी शुक्लध्यान कहते हैं। उस ध्यान को सन्त शुक्लध्यान कहते हैं। उस शुक्लध्यान द्वारा केवल (ज्ञान) होता है। किसी क्रियाकाण्ड से और व्यवहार से केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं - ऐसा बतलाना है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपने लिए बनाया है न? उसमें से यह कहा। मैं भी जब पूर्ण ध्यान और ध्येय के विकल्परहित पूर्ण द्रव्य का आश्रय अन्तर्मुख लेकर होऊँगा, तब केवलज्ञान होगा। इसके बिना होगा नहीं। भले अभी यह है नहीं परन्तु ऐसा करूँगा, तब केवलज्ञान होगा, ऐसा अभी से स्वीकार करते हैं। आहाहा! भले पंचम काल में इस प्रकार से शुक्लध्यान का अभाव है परन्तु इस भगवान आत्मा में शुक्लध्यान होने की योग्यता है। वह शुक्लध्यान करेगा, तब केवलज्ञान प्राप्त होगा। ऐसी पुकार करते हुए देह छोड़कर स्वर्ग में चले गये हैं। ऐसे अन्दर में भावना करते-करते देह छूटकर स्वर्ग में चले गये हैं। आहाहा!

[ अब, इस ८९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं: ] ११९वाँ श्लोक।

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति,

व्यक्तं सदा-शिवमये परमात्म-तत्त्वे ।

सास्तीत्युवाच सततं व्यवहार-मार्ग-

स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम् ॥११९॥

आहाहा! हे नाथ! तेरी नय की व्याख्यान इन्द्रजाल जैसी है। एक ओर इन्द्रजाल जैसा विस्तार करे और वापस एक ओर समेट ले। एक ओर नय के विस्तार की व्याख्या करे, एक ओर समेटकर अन्दर में चला जा। आहाहा!

[ श्लोकार्थः ] प्रगटरूप से सदाशिवमय ( -निरन्तर कल्याणमय )... भगवान आत्मा सदा शिवमय है, सदा कल्याणमय है, ऐसा पहले इसे अनुभव में बैठना चाहिए। यह आत्मा प्रगटरूप से... शक्ति है, वह शक्ति भी प्रगट है। प्रगटरूप से सदाशिवमय... आहाहा! व्यक्त है, उस पर्याय की अपेक्षा से भले इसे अव्यक्त कहा; द्रव्य की अपेक्षा से तो द्रव्य व्यक्त है। सदाशिवमय... सदा कल्याणमय भगवान है। आहाहा! जिसमें अकल्याण का अंश नहीं, जिसमें संसार की गन्ध नहीं। अतीन्द्रिय पूर्णानन्द की जहाँ गन्ध है, ऐसा स्वभाव शिवमय भगवान आत्मा है। आहाहा! आत्मा को छोड़कर सब बातें... धर्म करो.. धर्म करो.. परन्तु धर्म करे कौन? और करनेवाला कौन? करनेवाला कौन और करता है, वह कितना? धर्म

करे। धर्म तो पर्याय है परन्तु धर्म करनेवाला है कितना? आहाहा! वर को छोड़कर बारात जोड़ दी है। आहाहा!

भगवान आत्मा... यह अतिशयोक्ति नहीं, हों! विशेष-विशेष महिमा करके यह बात नहीं है, वस्तुस्वरूप ऐसा है। सदाशिवमय... आहाहा! सदाशिवमय नहीं हो तो कल्याण में सदाशिवमय होगा कहाँ से? लोगस्स में नहीं आता? शिवमय... श्वेताम्बर में आता है। णमोत्थुणं... शिवमय... अपने में दिगम्बर में भी णमोत्थुणं आता है। सामायिक में आता है। सामायिक में दिगम्बर में यह णमोत्थुणं लोगस्स आता है। पाठ है, शास्त्र है। सब पढ़े हैं। यहाँ पर है। णमोत्थुणं भी है। दिगम्बर में परिचय नहीं। श्वेताम्बर में तो पहले से सामायिक सीखे, तब सीखते हैं।

शिवमय अचल। शिवमय है प्रभु। आहाहा! कल्याणस्वरूप। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप है। शिव अर्थात् वे शिव-शंकर नहीं। यह तो भगवान स्वयं शिवस्वरूप ही है। आहाहा! यह बात विश्वास में लेने के बाद इसे समकित होता है। आहाहा!

भगवान आत्मा सदाशिवमय... सदाशिवमय, त्रिकाल शिवमय। कभी अकल्याण और अन्दर अल्पकल्याणमय वह स्वरूप नहीं है। सदाकल्याणमूर्ति प्रभु है। आहा! ऐसी बात आत्मा है यहाँ तो। आत्मा के बिना सब वररहित बारात (जोड़ी है)। (उसे) बारात नहीं कहा जाता। लोगों का झुण्ड कहा जाता है। मुख्य आत्मा नहीं मिले, फिर यह व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार। उस व्यवहार का कहाँ? आहाहा!

प्रगटरूप से सदाशिवमय... है? आहाहा! है न? ११९ है न? व्यक्तं सदा-शिवमये... दूसरा पद है। व्यक्तं सदा-शिवमये.. आहाहा! व्यक्त अर्थात् प्रगट। (समयसार) ४९ गाथा में ऐसा कहें कि व्यक्त की अपेक्षा से द्रव्य अव्यक्त है। आता है न? भाई! पर्याय को व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान मिश्रित होने पर भी, व्यक्त को वह स्पर्श नहीं करता। यह क्या कहा? ४९ गाथा में है। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। दोनों का ज्ञान एक साथ होने पर भी, वह द्रव्य व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें कहाँ हैं? मूल बात रह गयी। ऊपर से छिलके कूटने लगे।

मुमुक्षु : मूल बात कौन सी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल बात यह। सदाशिवमय... त्रिकाल शिवमय, त्रिकाल कल्याणमय। कल्याण पर्याय में करना, वह अलग वस्तु है। यह तो वस्तु सदा कल्याणमय



है। शिव। आहाहा! प्रगटरूप से सदाशिवमय ( -निरन्तर कल्याणमय )... सदा अर्थात्। ऐसा जो भगवान, ऐसे परमात्मतत्त्व में... ऐसे परमात्मतत्त्व को। सदाशिवमय, ऐसा परमात्मतत्त्व। देह से भिन्न भगवान, राग से भी भिन्न भगवान, सदा कल्याणमय-ऐसा परमात्मतत्त्व। आहाहा! बाल-गोपाल आदि सब। शरीर चाहे जो हो। स्त्री का शरीर हो या पुरुष का शरीर हो, तिर्यच का शरीर हाथी, घोड़ा, चींटी, कौआ का शरीर हो; भगवान अन्दर तो सदा शिवमय है। आहाहा!

वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? अस्ति है या नहीं? अस्ति है तो वह शाश्वत् है या नहीं? शाश्वत् है तो वह पर की अपेक्षा बिना है या नहीं? पर की अपेक्षा बिना है तो सदाशिवमय है। आहाहा! ऐसा उपदेश कहीं सुना था? वीरचन्दभाई! लाठी में (संवत्) १९८५ के वर्ष में सब प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे। ....यह किया, यह किया, यह छोड़ा, यह छोड़ा। आहाहा!

प्रभु! तू पहली एक बात निश्चित कर। दूसरी सब बातें बाद में। छहढाला में आता है 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' आहाहा! 'छोड़ि द्वन्द्व-फन्द...' द्वैत भी छोड़कर। द्वन्द्व भेद द्वन्द्व पद छोड़कर निज आत्म उर ध्याओ। निज उत्तम आत्मभगवान, आहाहा! वह सदाशिवमय निज परमात्मा ही है। स्वयं निज परमात्मस्वरूप है। आहाहा! एक पैसा खो जाए तो ढूँढ़ने के लिए रात्रि में कितना लगता है। दीपक जलावे, वह कहाँ गया? कहाँ गया?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रुपया नहीं, दो रुपये कहो। गिन्नी गयी हो, लो न गिन्नी। आहाहा! धूल के लिए खोजने के लिए दीपक और लोगों को दौड़ावे। मेरी नजर पहुँचती नहीं, तुम देखो कहाँ है। गिन्नी पड़ी है। यह पड़ा रहा बड़ा सदाशिवमय कल्याणमय (पदार्थ है)। आहाहा! उसे खोजने के लिए निवृत्त हो न! वहाँ दीपक का प्रकाश, चैतन्य का प्रकाश वहाँ रख। पर्याय में चैतन्य का प्रकाश वहाँ रख। आहाहा!

ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! मुनियों की दशा तो देखो! ऐसा जो सदा कल्याणमय, परमात्ममय तत्त्व, उसका यह धर्मध्यान कर न, शुक्लध्यान कर न, यह कर। ऐसी पर्याय के भेदों की उपाधि नहीं कहते, कहते हैं। ऐसा है परन्तु पढ़ा नहीं था कभी। यह पढ़ा था? आहाहा! श्वेताम्बर के शास्त्र दुकान पर पढ़ते

थे। उसमें थे न (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन। परन्तु यह कहाँ है? बापू! यह तो अकेले हीरे के झरने हैं। अरे! ऐसा एक-एक पद, एक-एक लाईन कहाँ है? भाई! दूसरे को पक्ष लगे। पक्ष नहीं, प्रभु! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि सदाशिवमय ( -निरन्तर कल्याणमय ) ऐसे परमात्मतत्त्व में... उसमें यह ध्यान, धर्म और यह शुक्लध्यान और इन भिन्न-भिन्न ध्यान की पर्यायें, पूर्ण स्वरूप में भगवान नहीं कहते। आहाहा! ...बहुत सूक्ष्म। नैरोबी में तो आना पड़ेगा। वहाँ के योग्य वहाँ आयेगा, यहाँ के योग्य यहाँ आता है। आहाहा! अरे रे! प्रभु तो अनन्त अमृत का समुद्र है। आहाहा! क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश है। यहाँ प्रदेश का काम नहीं। उसमें भरा हुआ अमृत स्वभाव है। अमृत, अतीन्द्रिय अमृत। शिव अर्थात् उपद्रवरहित अमृत। अमृत का सागर ऐसा परमात्मतत्त्व, उसमें तीन लोक के नाथ... आहाहा! ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। अत्यन्त शुद्धनय है, वह तो त्रिकाली परमात्म तत्त्व है, ऐसा कहता है। त्रिकाली परमात्मतत्त्व है, ऐसा शुद्धनय कहता है।

**ध्यानपंक्ति; ध्यान परम्परा।** ध्यान की परम्परा, वह भी पर्याय है। त्रिकाली जो ज्ञायकस्वभाव अमृत का सागर पूर्ण प्रभु अकेला अमृत का सागर ध्रुव वज्र का बिम्ब पड़ा है, अमृत का सागर, उसमें शुद्धनय जो है, परम शुद्धनय, वह इसका धर्मध्यान और यह शुक्लध्यान और यह ध्यान की पर्याय की बातें शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! वीतराग का मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

प्रभु! तीन लोक के नाथ वहाँ कहते होंगे व्याख्यान में प्रभु। महाविदेह में करोड़ों वर्ष, करोड़ों वर्ष रहनेवाले हैं। सभा में दिव्यध्वनि कैसी होगी! आहाहा! ऐसे मुनियों की यह श्रेणी, छद्मस्थ की... आहाहा! भगवान! तू दूसरा भूल जा, कहते हैं। दूसरा तो भूल जा, परन्तु शुद्धनय त्रिकाली द्रव्य के अतिरिक्त ध्यान करना और ध्यान की धारा बढ़ना, ऐसी पर्याय की बात शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! पागल लगे ऐसा है। यह क्या कहते हैं? आहाहा!

यह सब भगवान है। आबाल-गोपाल, वह परमतत्त्व सदा कल्याणमय है। उसमें शुद्धनय अकेला परम शुद्धनय, वह तो यह ध्रुव परमात्मतत्त्व है कल्याणमय, इसे कहता है। इसका ध्यान कर और इसका ऐसा कर, यह शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! धन्धा-पानी दमदार चलता हो... देखो! पागल देखो! आहाहा! यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ..

यह लाओ.. यह लो.. यह करो.. यह यहाँ फिरा दो। कठिन बात है। आहाहा! दमदार धन्धा चलता हो। धन्धे में रचपच जाता है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु वहाँ तक कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले पंचम काल के साधु (ऐसा कहते हैं)। ओहोहो! प्रभु! परन्तु तुम्हें नहीं शुक्लध्यान, नहीं शुक्लध्यान का फल, यह सब कहते हैं, ध्यान और ध्यानावली की बात ही हमारे में नहीं है। हम तो सदाशिवमय हैं। सुन। आहाहा! छोटाभाई! भगवान... आहाहा! ऐसी वाणी कहाँ? एक बार तो शान्त कर दे। जानपना कम-ज्यादा हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। सभा को रंजन करना न भी आवे, उसके साथ क्या है? इसे रंजन करना आवे। परन्तु यह कहते हैं रंजन करना आवे, वह पर्याय भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! यह क्या कहा? भगवान आत्मा का रंजन अर्थात् निर्मल ध्यान, यह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव बढ़ता हुआ, शुद्धता बढ़ती हुई, बढ़ती हुई शुद्धता, बढ़ता-बढ़ता शुक्लध्यान, केवलज्ञान (होवे) ऐसी धारा को शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! रमणीकभाई! समझ में आता है यह? ऐसा है, बापू! आहाहा!

प्रभु! तेरी प्रभुता में ध्यान की पर्याय को भी, कहते हैं इन्द्रजाल है। आहाहा! तेरी प्रभुता, पूर्ण परमेश्वरता, पूर्ण कल्याणमय नाथ में ध्यानावली (अर्थात्) ध्यान की धारा, स्वरूप के ध्यान की धारा, वह तो पर्याय है। भले धर्मध्यान हो, धर्मध्यान बढ़ता हो, शुक्लध्यान हो, वह तो पर्याय है। वह धर्मध्यानावली होना भी (शुद्धनय नहीं कहता)। आहाहा!

प्रभु! तुझमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं; कर्म संयोगी तो नहीं; विकार तो नहीं; तेरे द्रव्य में तेरी विकारी पर्याय तो नहीं, परन्तु द्रव्य में निर्विकारी धर्मध्यान की धारा, शुद्धता जो बढ़ती जाए। शुद्धध्यानावली... आहाहा! उसका होना भी... दूसरे की तो क्या बात करना? कहते हैं। 'भी' शब्द प्रयोग किया है न? दूसरे की तो क्या बात करना कि उसमें राग है, पुण्य है, कर्म है, शरीर है-उसकी तो क्या बात करना? बापू! वह तो है ही नहीं। है, परन्तु उसमें है; तुझमें नहीं। आहाहा! जिसका अस्तित्व है, वह उसमें है और ध्यान का अस्तित्व तो पर्याय में है। आहाहा! उस ध्यान की धारा की अवस्था, शुद्धनय त्रिकाल कल्याणमय परमात्मा में वह नहीं है। वह पर्याय शुद्ध त्रिकाली स्वभाव में नहीं है। आहाहा! कठिन लगे, भाई! यह पंचम काल के साधु हैं। दिगम्बर तो मुनि हैं। वे तो श्रोता को कहते हैं। लज्जा नहीं आती? कि क्या सभा कैसी है और उसे तुम ऐसी बड़ी बात करते हो। समाज को देखकर बात करो। यह सुन... सुन... तू। हम तो आत्मा को देखकर बात करते हैं। आहाहा! गजब बात है।

प्रगटरूप से सदाशिवमय... वस्तु जो है आत्मा, वह प्रगटरूप से सदाशिवमय ( - निरन्तर कल्याणमय )... निरन्तर आनन्दमय, निरन्तर पूर्णमय... आहाहा! निरन्तर प्रभुमय, निरन्तर ईश्वरमय, निरन्तर अखण्ड वीर्यमय, अखण्ड वीर्य पूर्ण पुरुषार्थ वीर्यमय अखण्ड है। आहाहा! ऐसे परमात्मतत्त्व में... ऐसा कहा न? प्रगटरूप से सदाशिवमय ( -निरन्तर कल्याणमय ) ऐसे परमात्मतत्त्व में... ऐसा परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा (उसमें) आहाहा! थोड़ा कठिन लगे परन्तु प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। तेरी महिमा की पर्याय की बात करते हुए कहते हैं हमें लज्जा आती है। आहाहा! हम दूसरी बात तो क्या करें? परन्तु तू अखण्डानन्द सदा निरन्तर आनन्दमय कल्याणमय ध्रुव आनन्द है, उसे ध्यान करने की पर्याय कहते हुए भी लज्जा आती है। आहाहा! है?

वह ध्यानावली होना भी... 'भी' क्यों कहा? कि दूसरा तो क्या कहना? उसमें फिर दया, दान और व्रत के परिणाम हैं, अमुक है, भक्ति के (परिणाम हैं), उनकी तो बात क्या करना? प्रभु! परन्तु ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु सदा कल्याण की मूर्ति, त्रिकाल कल्याणस्वरूप में कल्याण का ध्यान करना, ऐसी जो पर्याय, वह भी शुद्धनय नहीं कहता। शुद्धनय तो सदा परमात्मा कल्याणमय है, ऐसा कहता है। आहाहा! भाग्य है न, बापू! ऐसी बात भाग्यशाली बिना कान में नहीं पड़ती। आहाहा!

भगवान की वाणी है, यह सन्तों की वाणी है। दिगम्बर सन्त एकाध भव में मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव, उसमें एक शैली मस्तिष्क में आयी, भविष्य में तीर्थकर होनेवाले लगते हैं। पढ़ते हुए ऐसा मस्तिष्क में आया था। आहाहा! मुनि हैं। ऐसी शैली उसमें थी। आहाहा! जिन्हें समाज की पड़ी नहीं है। जिन्हें समाज का समुदाय मानेगा या नहीं मानेगा? भाग पड़ेंगे या नहीं पड़ जाँँगे, उन्हें कुछ पड़ी नहीं है। उन्हें एक ही कल्याणमय परमात्मा का झुकाव (वर्तता है) परन्तु वह झुकाव भी कहते हैं कि शुद्धनय तो नहीं कहता, बापू! आहाहा! शुद्धनय पर्याय को स्वीकार नहीं करता। देवीलालजी! ऐसा कहाँ सुनने को मिले? स्थानकवासी में है? मन्दिरमार्गी में है? कहीं नहीं है, बापू! दिगम्बर में है परन्तु उन्हें कहाँ खबर पड़ती है? उनमें बहुत सब पड़ा है परन्तु अभी कुछ करते हैं। आहाहा! पुण्य से त्याग होता है, ऐसे लेख आते हैं। आज करुणादीप में आया है। त्याग है। त्याग विशेष करता है, वह पुण्य के कारण त्याग करता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धनय परमसत्ता कल्याण की मूर्ति प्रभु ध्रुव के ध्यान की बात

शुद्धनय नहीं कहता। देवीलालजी! भगवान! आहाहा! तेरे पूर्ण प्रभु की बात तो देख! आहाहा! इसमें झगड़ा क्या? वाद-विवाद क्या? भाई! भले न जँचे और इसे जँचानेवाले थोड़े हों। वस्तु सब है। वस्तु (अपेक्षा से) सब भगवान हैं, सदा कल्याणमय परमात्मा हैं, परन्तु जँचने की बात, बापू! बहुत थोड़ों को होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ध्यानावली होना भी... दूसरी बात तो क्या करना? शुद्धनय नहीं कहता। 'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है) ... आहाहा! यह शुक्लध्यान और धर्मध्यान, निश्चय निर्मल पर्याय की शुद्धि की वृद्धि। पर्याय में, हों! शुद्धि, शुद्धि की वृद्धि... शुद्धि की वृद्धि... शुद्धि की वृद्धि... आहाहा! यह ध्यानावली ऐसा ( मात्र ) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है। गजब बात है, बापू! आहाहा! यह तो शुद्धता के पर्यायभेद व्यवहारमार्ग में कहे हैं। यशपालजी! आहाहा! प्रभु! इसमें किसका विवाद लेना? बापू! आहाहा!

सत्ता का स्वीकार करनेवाली पर्याय को भी शुद्धनय स्वीकार नहीं करता। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, निरन्तर शिवमय, सदा कल्याणमय परमात्मा, उसे निरन्तर रहनेवाला तत्त्व; उसे निरन्तर नहीं रहनेवाली पर्याय-धर्मध्यान की, शुक्लध्यान की, हों! निरन्तर नहीं रहनेवाली धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय (को भी शुद्धनय स्वीकार नहीं करता) क्योंकि पर्याय, वह व्यवहार है और द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! पंचाध्यायी में है, पंचाध्यायी में। पर्याय, व्यवहार है; द्रव्य, निश्चय है। यह पर्याय है न यह? ध्यानावली, ध्यान और शुद्धता की पर्याय बढ़े और बढ़े और एक के बाद एक बढ़े, यह तो भेद पड़ा और त्रिकाल की अपेक्षा से वह भेद है। शुद्धनय ध्यानावली को भी नहीं कहता। आहाहा! उसे व्यवहारनय कहता है। अरे! आहाहा! देखो तो सही! दया, दान, व्रत, भक्ति को व्यवहार कहा। वह तो असद्भूतव्यवहार है। यह ध्यानावली सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! यह भी व्यवहारनय कहता है। आहाहा! 'ऐसा मात्र'... वापस भाषा देखी?

'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)' ऐसा ( मात्र ) व्यवहारमार्ग में... आहाहा! कहा है। त्रिकाली द्रव्य कल्याणमय प्रभु में उसके ध्यान की, आनन्द की धारा बढ़ती जाए और पूर्ण आनन्द का, ज्ञान शुक्लध्यान में हो, यह बात; अरे! पूर्ण आनन्द हो जाए - मोक्षपर्याय, वह भी शुद्धनय नहीं कहता। शुद्ध तो कहता है सदा कल्याणमय त्रिकालमय प्रभु आत्मा है। आहाहा! कठिन पड़े ऐसा है। .... आहाहा! परन्तु इसमें है या नहीं? या घर का कहा जाता है?

**मुमुक्षु :** एक ओर हाँ तथा दूसरी ओर न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा!

हे जिनेन्द्र!... मुनिराज कहते हैं—हे जिनेन्द्र!... एक ओर शुद्धनय में ध्यान की पर्याय नहीं कहते और एक ओर ध्यान की पर्याय को व्यवहार कहते हैं, प्रभु! यह तो तुम्हारा इन्द्रजाल नय है। इसमें से पहुँचना जगत को कठिन हो। आहाहा! ऐसे सन्त जगत में सिद्ध समान। नग्न दिगम्बर मुनि जब होंगे तब... आहाहा! धन्य घड़ी! धन्य काल! आहाहा!

**मुमुक्षु :** भावी तीर्थकर की बात २१२ कलश में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावी तीर्थकर का मस्तिष्क में आया था। तीर्थकर होनेवाले हैं। वाँचन में कहीं आया था। कहीं सब याद रहता है? आहाहा!

शुद्धनय नहीं कहता। व्यवहारमार्ग में कहते हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय, वह व्यवहारमार्ग में कहते हैं। वे दया, दान और व्रत व्यवहाररत्नत्रय की तो बात भी नहीं है। यह तो अभी आगे आएगा। अभी आगे कहेंगे। दूसरे पृष्ठ पर आएगा (कलश १२१)। जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र ( -कहनेमात्र ) कारण है उसे भी ( अर्थात् व्यवहार -रत्नत्रय को भी ) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में ( -अनेक भवों में ) सुना है और आचरा ( -आचरण में लिया ) है;... इसके बाद के (कलश में) है, एक पृष्ठ के अन्तर से। बाद के एक पृष्ठ के अन्तर से है। जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र, व्यवहार नाममात्र है। आहाहा! यह तो मोक्ष का कारण है—ध्यानावली तो कारण है। व्यवहार तो कथनमात्र है। आहाहा! कहनेमात्र है। आहाहा!

हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व ( -तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप ), अहो! महा इन्द्रजाल है। अहो! प्रभु! इन्द्रजाल है। एक ओर पर्याय की बातें करना। पर्याय-पर्याय मात्र निर्मल हो, उसकी बात करना; एक ओर द्रव्य एकरूप है, वह बात करना। प्रभु! यह तो इन्द्रजाल जैसा है। पर्याय की बात करने पर विस्तार पाती है और द्रव्य की बात करने पर संक्षिप्तता पाती है। इन्द्रजाल की तरह संक्षिप्तता पा जाती है। आहाहा! इन्द्र की जाल जैसे ऐसे विस्तार पावे और सिमट जाए; वैसे शुद्धनय से संक्षिप्तता पावे, व्यवहारनय से पर्याय की बात करे। आहाहा! हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व ( -तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप ), अहो! महा इन्द्रजाल है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )

५

श्री समयसार, गाथा-७७, प्रवचन - १०७

दिनांक - १५-१०-१९६१

समयसार का कर्ताकर्म अधिकार, इसकी ७७वीं गाथा। आत्मा परिणाम को जानता है। सब परिणाम है न पाठ में? यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, तो अपनी ज्ञानदशा, विकार से भिन्न, पुण्य-पाप के जो विकल्प हैं, उनसे भिन्न होकर, अपनी ज्ञानपर्याय, शान्तपर्याय, श्रद्धापर्याय; पर्याय अर्थात् अवस्था-हालत, उसे जानने पर भी वह ज्ञात होता है, उस चीज का कार्य उसका और उसे करनेवाला आत्मा, ऐसा कोई सम्बन्ध है या नहीं? ऐसा प्रश्न किया है, उसका उत्तर दिया है। उसका आ गया, देखो! यहाँ तक आया है।

इन पुण्य-पाप के भाव को जाननेवाला तो आत्मा है-ज्ञान है। राग और दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प उठते हैं, वह राग है, विकार है; वह धर्म नहीं। उससे भिन्न आत्मा, उससे भिन्न करके अपने ज्ञान में उनका जानना होता है और वह ज्ञान अर्थात् अपनी शुद्ध परिणति को आदि-मध्य और अन्त में करनेवाला आत्मा है। तब यह लिया है न? भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रकाशपुंज है। वह अपने परिणाम अर्थात् पर्याय-निर्मल अवस्था का कार्य करनेवाला और निर्मल अवस्था धर्म की, वह उसका कर्तव्य है। उस निर्मल अवस्था को आत्मा प्राप्त होता है, पलटता है और निर्मल अवस्था में उपजता है। और तीन बोल में निर्मल अवस्था में आदि-मध्य-अन्त में आत्मा ही करनेवाला है।

स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। इसका अर्थ क्या हुआ? मैं आत्मा सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ—ऐसी जो श्रद्धा, ज्ञान और रमणता—चारित्र की पर्याय हुई, उसका स्वतन्त्ररूप से आत्मा कर्ता होकर आदि में कर्ता आत्मा, मध्य में कर्ता आत्मा और अन्त में भी कर्ता आत्मा। राग दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प उठता है तो उस निर्मल पर्याय की आदि में राग है तो निर्मल पर्याय हुई और राग कर्ता हुआ और निर्मल पर्याय कार्य हुआ, ऐसा वस्तुस्थिति में नहीं है। शान्तिभाई! समझ में आया?

ज्ञानमूर्ति प्रकाशपुंज चैतन्य वस्तु है। ऐसी अन्तर की दृष्टि और श्रद्धा-ज्ञान जम गये,

तो राग का ज्ञान करता है तो ज्ञान अपना कार्य हुआ, श्रद्धा अपना कार्य हुआ, शान्ति अपना कार्य हुआ और श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की पर्याय में आदि—शुरुआत में भी आत्मा है, मध्य में भी आत्मा है और अन्त में भी वही है। किसी दूसरे की सहायता मिली, राग की मन्दता की, निमित्त की, पुण्य की (सहायता मिली) उससे व्याप्य—आत्मा का काम हुआ, ऐसा नहीं है। धर्मचन्दजी! आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर भगवान आत्मा, निज परम प्रकाशपुंज चैतन्य प्रभु, चैतन्यप्रकाश की दृष्टि करके वह चैतन्यप्रकाश स्वभाव, अपनी निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और रमणतारूप पर्याय में आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर उसे ग्रहण करता हुआ, निर्मल पर्याय को पकड़ता हुआ, उसे प्राप्त करता हुआ; राग को प्राप्त करता हुआ—ऐसा वस्तु के सम्यग्ज्ञान में, सम्यग्दृष्टि और वस्तु स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? उसरूप परिणमता हुआ। मैं तो ज्ञान हूँ, जानने-देखनेवाला हूँ, मैं शुद्ध चैतन्य, सच्चिदानन्द प्रभु हूँ। तो अपनी पर्याय में जो परिणमन का कर्ता हुआ और उसरूप उत्पन्न होता हुआ। अपनी समय-समय की निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की पर्याय में आत्मा उत्पन्न होता हुआ। समझ में आया? लो, आत्मा उत्पन्न होता हुआ, यह क्या?

निर्मल अवस्था जो है, उसमें आत्मा उपजता है। उसमें कोई राग से उपजता है या बाहर की अनुकूलता-निमित्त मिला, उससे वह पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अरे! इसने चीज-वस्तु क्या है, जिसमें—स्वभाव में त्रिकाल ज्ञान भरा है। सर्वज्ञस्वभाव त्रिकाल ज्ञान आत्मा में भरा है। अन्तर शक्ति में। ऐसी शक्ति की व्यक्तता प्रगट करने की प्रतीति हुई, प्रतीति हुई और उसे प्रगट करने का ज्ञान हुआ कि आत्मा ही सर्वज्ञ शक्ति में से व्यक्तता करता है और उसमें स्थिरता-एकाकार लीन हुआ, उसमें आत्मा ही उत्पन्न हुआ। आत्मा अपनी पर्याय में उत्पन्न हुआ। निर्मलदशा में आत्मा उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न (होने में) आदि-मध्य-अन्त में आत्मा ही है। आदि-मध्य-अन्त में रागादि सम्यक् स्वभाव और वस्तु स्वभाव में नहीं है। अज्ञानी मान ले तो उसके मिथ्याभ्रम का कर्ता-कर्म होकर उत्पन्न करे। राग मेरा कार्य है, मैं राग का करनेवाला, ऐसा अज्ञान में मानता है, वस्तु स्वभाव में ऐसा नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह आत्मपरिणाम को करता है। उस आत्मपरिणाम को। आत्मा का परिणाम ही उसे यहाँ कहा। चैतन्य ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय-वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, उसे यहाँ आत्मपरिणाम कहते हैं। राग को आत्मपरिणाम कहते ही नहीं। वह तो



पुद्गल के परिणाम हैं। समझ में आया ? परमात्मपुराण है न, परमात्मपुराण, दीपचन्दजी ने बनाया है। परमात्मपुराण में लिखा है कि अभव्य को ज्ञानपरिणति ही नहीं है। ज्ञानपरिणति है ही नहीं। मिथ्यादृष्टि को ज्ञानपरिणति है ही नहीं। वह तो रागपरिणति है। ज्ञानपरिणति तो सम्यग्ज्ञानी को होती है। समझ में आया ? परमात्मपुराण में दीपचन्दजी ने लिखा है।

ज्ञानपरिणति किसे कहते हैं ? सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञानप्रकाश का पुंज आत्मा है। निरंजन निराकार अखण्ड स्वरूप अपना है, उसका आश्रय करके, दृष्टि करके जो निर्मल पर्याय निर्विकारी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र हुए, वही आत्मा की परिणति है। मिथ्या राग-द्वेष परिणति, वह आत्मा की परिणति नहीं; वह वास्तव में तो जड़ की परिणति है। समझ में आया ? इस आत्मा की खबर नहीं होती और बाहर में झपट्टे मारता है मानो बाहर से कहीं से मिलेगा। धर्म यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा। क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, स्मरण के रागभाव को दुनिया ने धर्म मान रखा है, वह धर्म-बर्म है ही नहीं। धर्मचन्दजी! बड़ा विवाद करते हैं। अरे! भगवान!

तेरे स्वभाव में क्या विकृत की खान पड़ी है ? तेरे निधान में क्या विकार की खान-निधान है कि उसमें से विकार उत्पन्न हो ? स्वभाव में तो निर्विकारी स्वभाव का निधान-खान आत्मा है। ऐसे निज आत्मा का सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ तो आत्मा ही निर्विकारी परिणति में उत्पन्न होनेवाला, आत्मा उत्पन्न होनेवाला है - ऐसा भेद से समझाया है। समझ में आया ? अपनी पर्याय अभेद द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। उसमें रागादि का अधिकार, पुण्य आदि का अधिकार, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग का अधिकार, निर्मल पर्याय उत्पन्न हो, उसमें राग का अधिकार है ही नहीं। राग स्वामी और निर्मल पर्याय उसका स्व-ऐसा है ही नहीं। भगवान आत्मा राग और विकल्प से पर होकर, अपने शुद्ध ज्ञानानन्द की पर्याय (प्रगट करे), वह अपना स्व और आत्मा उसका स्वामी है। समझ में आया ? उस आत्मपरिणाम को करता है।

उसी प्रकार, उसी प्रकार यह प्रकार कहा वह। प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य। आदि-मध्य और अन्त। इस प्रकार आत्मा के द्वारा किये जानेवाले.... लो। आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध प्रकाश के पुंज द्वारा। लो, लोग कहते हैं कि निमित्त द्वारा होता है, व्यवहार द्वारा होता है, पर द्वारा होता है, विकल्प द्वारा होता है। पहले बहुत कहते थे, निमित्त द्वारा होता है, निमित्त द्वारा होता है, निमित्त द्वारा होता है। परिणमता है उपादान, परन्तु निमित्त द्वारा होता है। यहाँ

तो कहते हैं, शुद्ध उपादान द्वारा आत्मा अपनी निर्मल पर्याय से परिणमता है। निमित्त अर्थात् बाह्य निमित्त तो नहीं, परन्तु विकल्प है, वह भी अभ्यन्तर निमित्त है। व्यवहार राग दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय का है, वह अभ्यन्तर निमित्त है, अन्य बाह्य निमित्त है। निमित्त द्वारा नहीं। समझ में आया ?

**आत्मा के द्वारा किये जानेवाले....** कर्ता-कर्म है न ? भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, अपने आत्मा के द्वारा किये जानेवाले आत्मपरिणाम को, अपने परिणाम जो शुद्ध हुए, पर्याय शुद्ध हुई, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की निर्मल दशा आत्मा के अवलम्बन से हुई और आत्मा जो पर्याय में उत्पन्न होकर आया, ऐसे आत्मपरिणाम को। इतनी बात है। अभी यह लोग कहते हैं, नहीं, नहीं, नहीं। सम्यग्दर्शन को पर्याय कैसे कहते हो ? सम्यग्दर्शन को गुण कहो। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—तीनों आत्मा के परिणाम हैं। परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, हालत कहो, दशा कहो। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों तो गुण है। अरे ! भगवान ! उन्हें गुण कहा वह तो विकार दोष है, तो दोष का अभाव होकर निर्मल दशा हुई तो दोष को बदले, उसे गुण कहा, है तो पर्याय। समझ में आया ? उसमें विवाद करे। अरे ! परन्तु क्षण-क्षण में विवाद ?

तेरी चीज़ अन्तर में पड़ी है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द प्रकाश का पुंज पड़ा है। उसकी दृष्टि होने से पर्याय प्रगट होती है। क्या गुण प्रगट होते हैं ? यहाँ तो तीनों को आत्मपरिणाम कहा। मोक्षमार्ग आत्मा की पर्याय है, परिणाम है, अवस्था है, दशा है, हालत है। ऐसे **आत्मपरिणाम को ज्ञानी जानता हुआ भी...** यहाँ आया। ऐसी अपनी निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय-अवस्था, जो स्वभाव में अन्तर एकाग्र होकर, स्वभाव में लीन होकर स्वभाव की शक्ति में से व्यक्तरूप आत्मा उत्पन्न हुआ, ऐसे आत्मपरिणाम को धर्मी जानता होने पर भी... ऐसे आत्मपरिणाम को ज्ञानी जानता होने पर भी। यहाँ यह प्रश्न है न ? अपने परिणाम को जानता है तो पर के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध है या नहीं ?—कि नहीं।

**जैसे मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर,....** देखो ! यह दृष्टान्त। **मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर,....** घड़े की आदि में मिट्टी, घड़े के मध्य में मिट्टी, घड़े के अन्त में मिट्टी है। घड़े की शुरुआत में कुम्हार की अँगुली शुरुआत है और फिर आकृति होने लगी, ऐसा नहीं है। अरे.. ! तेरी पर्याय को स्वतन्त्र बताने के लिये तो मिट्टी के घड़े का दृष्टान्त देते हैं। मिट्टी स्वयं घड़े में स्वयं अन्तर्व्यापक (होती है)। लाख वर्ष मिट्टी पड़ी रहो, परन्तु क्या

कुम्हार बिना घड़ा होता है ? ऐसा (लोग) कहते हैं। अरे ! भगवान ! सुन तो सही। यह मिट्टी के स्वकाल में जब घट की पर्याय होनेवाली है तो वह मिट्टी में पड़ी हुई पर्याय उसी समय उत्पन्न होनेवाली है, तो वही घटरूप आकृति परिणमती है। मिट्टी स्वयं घट की पर्याय धारण करती है। घड़े की अवस्था को मिट्टी अवस्थायी, अवस्थायी अवस्थारूप परिणमता है। कुम्हार उस अवस्थारूप परिणमे तो अवस्थायी कुम्हार हो और घट की पर्याय उसकी अवस्था हो जाये। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

शरीर, वाणी, मन ऐसे चलें, चले वह जड़ की अवस्था है। तुझसे होती हो तो शरीर में पक्षघात होता है, पक्षघात (उस समय) इच्छा हो कि ऐसे चलाऊँ। कहाँ से चले ? उसकी पर्याय होने की नहीं है और तेरी इच्छा से होती है, ऐसा है नहीं। वे परमाणु अपनी पर्याय में अन्तर्व्यापक होकर आदि-मध्य-अन्त में परमाणु पसरते हैं, व्याप्य अवस्था होती है। तेरे आत्मा से तीन काल-तीन लोक में नहीं होती। समझ में आया ?

**मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर,....** तब यह कहते हैं न ? देखो, भाई ! इतने पर्वत तोड़ डाले, नदी ऐसे मोड़ दी। भगवान ! वे परमाणु हैं या नहीं ? और वे परमाणु हैं तो शक्तिरूप गुण का पिण्ड है। उसमें प्रगट होने की पर्याय—ऐसे वणांक होना, स्कन्ध का ऐसा होना उस पर्याय को परमाणु प्राप्त होता है। क्या तेरा हथियार ऐसा डाला तो पानी ऐसा मुड़ गया ? हथियार से धूल में खड्डा पड़ गया ? हथियार के रजकण की पर्याय को हथियार प्राप्त होता है। नीचे की परमाणु की पर्याय है, उसे परमाणु प्राप्त होता है। हथियार भी दूसरे परमाणु की पर्याय में व्याप्त नहीं हो सकता तो आत्मा व्याप्त होकर, उस परमाणु की पर्याय को करे (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। समझ में आया ?

देखो, यह अँगुली है। इस अँगुली ने लकड़ी को ऐसा किया, ऐसा तीन काल में नहीं और अँगुली ऐसे पड़ी तो उससे ऐसा हुआ, ऐसा तीन काल में नहीं है। वे परमाणु-रजकण अस्ति-जगत की वस्तु है, सत् है तो सत् अपने उत्पादरूप उपजनेवाले परमाणु हैं। इस अँगुली के परमाणु से ऐसा होता है, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं है। बराबर है ? भारी कठिन, भाई !

पहले 'वस्तुविज्ञानसार' में आया था न, 'वस्तुविज्ञानसार', (संवत्) २००३ के वर्ष। १५ वर्ष हुए। उसमें आया था। लकड़ी का दृष्टान्त (दिया था)। सब जगह लकड़ी हाथ में होती है न, पसीनेवाली अँगुली न छुए इसलिए (होती है)। वह अपने से उत्पन्न होती है,

अपने से ऊँची नहीं होती, अँगुली से ऊँची नहीं होती। उसकी दशा में अवस्था होनेवाली (हुई है)। जो परमाणु से हुई है, परमाणु उसमें पसरे हैं। आदि-मध्य-अन्त में परमाणु है। उसके, हों! इस अँगुली के परमाणु भी नहीं। धर्मचन्दजी! और पेट्रोल बिना मोटर चलती है। यह वस्तुविज्ञानसार में आया। पन्द्रह वर्ष पहले। भड़क गये। पेट्रोल बिना चलती है? पेट्रोल के परमाणु भिन्न हैं और मोटर के एक-एक परमाणु भिन्न हैं, और एक-एक रजकण के प्राप्य, विकाय, निर्वर्त्य समय-समय में पर से भिन्न होते हैं। दूसरे परमाणु स्कन्ध में हैं तो उनसे भी यह भिन्न है, स्पर्श ही नहीं करता। एक परमाणु दूसरे परमाणु (को) कभी स्पर्श नहीं करता और दूसरे परमाणु से उस परमाणु में पर्याय हो और स्कन्ध से वहाँ मोटर की पर्याय अटक जाये और पेट्रोल के स्कन्ध आये, इसलिए मोटर चलती, यह अज्ञानी का भ्रम है। संयोग देखता है। उसकी पर्याय का स्वयंसिद्ध काल स्वतन्त्र है, उसे नहीं देखता। समझ में आया? भड़क गये। वस्तुविज्ञानसार आया न? दस हजार पुस्तक प्रकाशित की थी। पाँच हजार गुजराती, पाँच हजार हिन्दी। हिन्दुस्तान में निःशुल्क गयी हैं। पढ़कर कितने ही भड़के। अरे! यह क्या आया? यह आया—स्वतन्त्रता का ढिंढोरा। यह क्या हुआ?

एक ब्रह्मचारी और विवाद करता था। वस्तुविज्ञान... इन्दौर में। कानजीस्वामी कहते हैं, इस मोटर में हम नहीं जाते। मोटर अपने को नहीं ले जाती। हम अपने से जाते हैं और मोटर मोटर से जाती है, ऐसा करके मजाक करते थे, मोटर में बैठे-बैठे। आहाहा! भगवान! प्रभु! तू सुन तो सही। एक-एक रजकण का अस्तित्व है तो दिखता है या नहीं हो तो दिखता है? खरगोश के सींग हैं? है नहीं तो दिखे कहाँ से? आकाश के फूल हैं? नहीं तो कहाँ से दिखे? यह कोई चीज़ है या नहीं? यह दिखती है या नहीं? है, वह दिखती है या न हो वह दिखती है? है तो उसमें तीन प्रकार का सत् है या नहीं? एक ध्रुवरूप सत्, एक उत्पाद-नयी पर्याय होती है और पूर्व की पर्याय व्यय होती है। ऐसा प्रगट एक-एक परमाणु में एक स्कन्ध में दिखता है। संयोग से हुआ, (ऐसी) दृष्टि, दो द्रव्य की एकताबुद्धिवाला मानता है।

वास्तव में तो मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, घड़े को ग्रहण करती है,... क्या कहा? अपना आत्मा राग से भी भिन्न जाना तो अपनी ज्ञानपर्याय की आदि-मध्य-अन्त में आत्मा परिणमता है। राग से भी (परिणमता) नहीं तो संयोगी चीज़ से मेरी चीज़ भिन्न परिणमती है। ऐसा भान हुआ। सब द्रव्य में एक-एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य के कारण नहीं होती, ऐसा (ले लेना)। समझ में आया?

अपना आत्मा भी राग के कारण निर्मल पर्याय को प्राप्त नहीं होता। एक क्षेत्रावगाह, एक समय का काल, भाव का भिन्नपना। समझ में आया ? भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी वस्तु। उसमें उस क्षेत्र में 'मैं शुद्ध ज्ञानानन्द हूँ' ऐसी स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली निर्मल पर्याय और राग। चारित्र के एक गुण की एक पर्याय, उस एक पर्याय के दो भाग। एक शुद्ध, एक अशुद्ध। समझ में आया ? पर्याय का जो अशुद्ध भाग है, उससे शुद्ध नहीं। पर्याय एक, काल एक, क्षेत्र एक, भाव दो। समझ में आया ? तो दूसरी पर्याय दूसरी पर्याय का कर दे, यह तू कहाँ से लाया ? तेरी एक समय की एक पर्याय के दो भाग। समझ में आया ? रागभाग पर्याय तो चारित्रमोह की विपरीत अवस्था है। तो वह राग और अराग, जितनी स्वभाव के आश्रय से (पर्याय) हुई, राग गया पर में और (निर्मल) पर्याय रही अपने में। शुद्धता रही अपने में और अशुद्धता गयी पुद्गल में। एक पर्याय के दो भाग के ऐसे विभाजन का विवेक है। समझ में आया ? भारी कठिन, भाई !

एक समय की पर्याय आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, शुद्ध चिदानन्द अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसी दृष्टि हुई तो एक आनन्दगुण की एक पर्याय; पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था अर्थात् हालत। एक पर्याय में दो भाग। थोड़ा दुःखरूप, थोड़ा सुखरूप। एक आकुलतारूप, एक अनाकुलतारूप। एक समय के दो भाग में दो भाव। एक भाव को यह पर्याय स्पर्श नहीं करती और निर्मल पर्याय विकार को स्पर्श नहीं करती। कठिन बात, भाई ! समझ में आया ? भगवान ! तेरा स्वभाव ही ऐसा है। ज्ञानानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर समुद्र। आत्मा आनन्दकन्द उसमें है। वह बाहर से नहीं मिलता। बाहर के क्रियाकाण्ड, ऐसा वैसा, नाम जपना, भक्ति करना, पूजा करना, सेवा करना और ऐसा करना तथा वैसा करना, मर जाये तो भी उससे धर्म नहीं होता, लो ! समझ में आया ? वह तो सब राग की क्रिया है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति (करना वह) अशुभ से बचने के लिये, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो उसके काल में वह राग आता है, अशुभ से (बचने के लिये ऐसा तो) व्यवहार से (कहा जाता है)। अशुभवंचनार्थ शुभ। वह तो कथन की पद्धति है। उसी समय ज्ञानी को भी राग की परिणति जो शुभ की होनेवाली है, वह नियत ही होगी, परन्तु उस पर्याय का अपने में कार्य है और अपनी पर्याय कर्ता है। एक समय की पर्याय के दो भाग। निर्मल पर्याय कर्ता, मलिन पर्याय कार्य, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त

होकर, घड़े को ग्रहण करती है,... मिट्टी घड़े को ग्रहण करती है, मिट्टी से घड़ा स्वयं उसकी ताकत से प्राप्त होता है। कुम्हार की ताकत से घड़ा होता है, यह अज्ञानी की भ्रमणा है। भारी कठिन बात! जीव और अजीव जगत की दो चीजें हैं। यह तो स्थूल दृष्टान्त दिया। अन्दर मिलान करने के लिये अपनी ज्ञानपर्याय में आत्मा व्याप्त होकर परिणमता है, उत्पन्न होता है। ऐसे विकारी पर्याय को प्राप्त, पलटना और उपजना होता है, जैसे मिट्टी घड़े में अन्तर्व्यापक होकर उपजती है, उसी प्रकार आत्मा विकार में अन्तर्व्यापक होकर उपजता है – ऐसा नहीं है। आहाहा! वाह प्रभु! इस चैतन्य की वस्तु ही ऐसी है। साधारण जनता को और वेदान्त आदि एक ही द्रव्य माननेवाले तो भड़क जायें। आहाहा! यह क्या कहते हैं?

एक वस्तु अनन्त वस्तुओं से भिन्न। उसमें एक-एक गुण, एक-एक गुण से भिन्न। उसकी एक-एक पर्याय, एक-एक पर्याय से भिन्न। उसमें एक पर्याय के दो भाग में, एक-एक पर्याय के दो भाग भिन्न। ओहोहो! ...जाये नहीं। समझ में आया? शान्तिभाई! एक ही द्रव्य। और अनन्त द्रव्य और अनन्त क्षेत्र भिन्न-भिन्न प्रदेश और काल भिन्न-भिन्न और गुण भिन्न-भिन्न, परिणमन अनित्य। यह तो सब माया है। माया-यामा। या वह नहीं। अरे! वह नहीं, ऐसा नहीं, वह है। सब माया है, ऐसा नहीं है। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या, वह तो अपनी अपेक्षा से मिथ्या है।

यहाँ तो कहते हैं, जगत की सब चीज़ अनन्त है, स्वयंसिद्ध है, उसमें आत्मा भी स्वयंसिद्ध है। अपने आत्मा का बोध हुआ, भान हुआ, मनन करके, मन्थन करके राग से, विकल्प से मेरी चीज़ पर है, ऐसा भान हुआ, वह धर्मदशा है। इसके अतिरिक्त कभी धर्म-फर्म नहीं होता। कुगुरु ने शास्त्र के नाम से ऐसी विपरीतता कर दी है कि यह धर्म है। मर जायेगा। आत्मा क्या चीज़ है, उसका पता लगे नहीं। हमको पैसा दो, लड्डू खिलाओ, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। भोजन दो, भोजन दो। कौन खिलावे? सुन तो सही। शास्त्र में ऐसा आता है, हों! यह पद्मनन्दि पंचविंशति में आता है या नहीं? भाई! पद्मनन्दि पंचविंशति में आता है। मुनि आत्मज्ञानी धर्मात्मा वीतरागी सन्त हैं। वीतरागी सन्त जो मोक्षमार्ग अपने श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को साधते हैं, तो उस साधना का साधन तो शरीर है और शरीर का साधन आहार है और आहार का साधन श्रावक है। लो, लगा दिया निमित्त-निमित्त सम्बन्ध। तो श्रावक ने, जो आत्मा आत्मस्वरूप का साधन करता है, उसे मोक्षमार्ग श्रावक ने दिया। ऐसा पाठ है। अरे! सुन तो सही, उनकी शैली क्या है? वह तो परम्परा में निमित्त क्या है,

यह बताते हैं। पर के लड्डू देने से मोक्ष हो जाता है ? ऐसी क्रिया अनन्त काल में नहीं की ? अनादि काल का आत्मा है, है और है। तो अनादि काल से ऐसी क्रिया (करता है)। अरे ! मर गये यह कर-करके।

यहाँ तो कहते हैं, वह निज स्वरूप का मोक्षमार्ग साधता है। शरीर निमित्त पड़ता है। शरीर में आहार निमित्त पड़ता है। आहार देनेवाला श्रावक का विकल्प निमित्त पड़ता है। ऐसा निमित्त-निमित्त मार्ग कहकर, मोक्षमार्ग दिया, वह व्यवहारनय का कथन है। मोक्षमार्ग की अपनी पर्याय राग दे नहीं सकता। एक पर्याय के दो भाग में राग निर्मलता को नहीं दे सकता, निर्मल पर्याय का एक अंश, एक पर्याय में, एक पर्याय में दूसरा राग अंश। वह राग अंश निर्मल पर्याय नहीं दे सकता और श्रावक दे सकता है (यह कहाँ से हो) ? समझ में आया ? दे सकता हो, तब तो राग कर्ता हुआ और निर्मल पर्याय कार्य हुई। सेठी ! कठिन बात। बात तो दो और दो = चार जैसी बात है। उसमें कहीं तीन काल-तीन लोक बदलती नहीं, ऐसी चीज़ है। उसके मानने में अन्दर... उठता है।

चीज़ क्या है ? मैं ज्ञायकमूर्ति हूँ। तो कहते हैं, मिट्टी स्वयं घड़े में... दृष्टान्त देते हैं, हों ! फिर अन्दर घटित करेंगे। अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, घड़े को ग्रहण करती है, घड़े के रूप में परिणमित होती है और घड़े के रूप में उत्पन्न होती है उसी प्रकार, ज्ञानी.... मैं चिदानन्दस्वरूप ज्ञानपुंज हूँ। निर्विकार निरंजन निराकार सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा मैं ही हूँ। दूसरी कोई चीज़ मुझे सहायता करनेवाली नहीं है। ऐसा ज्ञानी स्वयं बाह्यस्थित.... देखो ! ओहोहो ! स्वयं बाह्यस्थित.... क्या कहते हैं ? आत्मा की निर्मल पर्याय में आदि-मध्य-अन्त में आत्मा व्यापक हुआ और उसी पर्याय में रागभाग है, वह स्वयं बाह्यस्थित है। निर्मल पर्याय-अवस्था हुई (कि) मैं ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की जो निर्मल पर्याय हुई, वह अन्तरस्थित है। वह आत्मपरिणाम अन्तरस्थित है और उसी पर्याय में जरा विकल्प उठता है, शुभराग, शुभ, हों ! पुण्य, वह स्वयं बाह्यस्थित है। ओहो ! समझ में आया ? अभी तो पर से विभाजन करने की ताकत नहीं, उसे राग से पृथक् करने की ताकत कहाँ से आयेगी ? और राग तथा निर्मल पर्याय के बीच विभाजन करना है। समझ में आया ?

कहते हैं भगवान ! तू ज्ञानानन्दस्वरूप है। तेरी चीज़ ज्ञानप्रकाश पुंज तेरा आत्मा है। ऐसी अन्तर्दृष्टि करो, उसका ज्ञान करो, उसमें लीन होओ तो ज्ञानी की जो पर्याय ज्ञानरूप

हुई, वह तो अपना कार्य और अपना कर्तृत्व उसमें है; परन्तु उसी पर्याय में थोड़ा रागभाग रहता है। पूर्ण सर्वज्ञ परमात्मा होने से पहले; यह साधक की बात चलती है न? **ज्ञानी स्वयं बाह्यस्थित....** ओहो! क्या कहते हैं? यह निर्मलदशा तो अपना आत्मा प्राप्य करके, परिणमन करके हुई। आत्मा निर्मल पर्याय में उत्पन्न हुआ। उसी पर्याय में जो रागभाग है, उसमें आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ। उसमें तो पुद्गल उत्पन्न हुआ, वह पुद्गल का प्राप्य कार्य है। स्वभाव, वह स्वभाव।

ऐसा न हो तो या तो भान होकर केवलज्ञान हो जाये, एक समय में पूर्ण दशा हो जाये। तो पूर्ण दशा न हो, तब जब शुद्धता के भान की शुरुआत हुई और पूर्णता नहीं हुई तो दो के बीच दो भाग तो है ही। एक राग है, एक एक निर्मल पर्याय है। तो कहते हैं, उस समय की दशा में जो निर्मल पर्याय श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द की है, उसमें आत्मा तो उपजता है, प्राप्य करके, ग्रहण करके उपजता है, परिणमता है और उसी पर्याय में जरा दुःख की अवस्था है, राग की अवस्था है, अस्थिरता की अवस्था हुई.... समझ में आया? और योगगुण की कम्पन की अवस्था है, वह सब बाह्यस्थित है। उसका कारण कि जो निर्मल पर्याय-अवस्था हुई, वह अन्तर्मुख के आश्रय से हुई है और उसी पर्याय में एक भाग दुःख और राग रह गया, वह बाह्य लक्ष्य से उत्पन्न हुई है।

बहिर्मुख और अन्तर्मुख—एक पर्याय में दो भाग है। वास्तव में तो यहाँ उस पर्याय का भाग ही अपना नहीं गिना। राग और दुःख की पर्याय पुद्गल की पर्याय है, ऐसा यहाँ तो कह दिया है। पुद्गल के ही परिणाम हैं। पुद्गल उसे प्राप्य करके ग्रहण करता है। क्यों? अन्तर्मुख चैतन्यद्रव्य ऐसा पड़ा है। तो जहाँ अन्तर्मुख दृष्टि हुई, अन्तर्मुख जितनी स्थिरता हुई, वह तो आत्मा। परन्तु जितनी वह पर्याय बहिर्मुख रही, वह पुद्गल का कार्य है, ऐसा कह दिया। कारण कि दोनों की दिशा में अन्तर है न? दोनों की दिशा में अन्तर है। दिशा में अन्तर है तो दशा में अन्तर है, दशा में अन्तर है तो कार्य का अन्तर है। एक वस्तु 'भूदत्थम' ज्ञानानन्दस्वरूप के आश्रय से जितनी निर्मल पर्याय हुई, उसे आत्मा के परिणाम कहा। उसमें आदि-मध्य-अन्त में आत्मा व्यापता है। उसी पर्याय में बहिर्मुख बुद्धि में... अभी पूर्ण अन्तर्मुख नहीं हुआ तो बहिर्मुख बुद्धि में जितना राग और दुःख की अवस्था होती है, वह पुद्गल का ही कार्य और पुद्गल व्यापकर उसमें उत्पन्न होता है। भगवान अन्तर्मुख ज्ञायकभाव के मध्यबिन्दु में से उछलता है, वह राग में व्यापता नहीं। समझ में आया? ईश्वरचन्दजी!



देखो! यह भगवान आत्मा, अन्दर ज्ञानप्रकाश का पुंज स्वयंसिद्ध प्रभु है। खबर नहीं, खबर नहीं। पामर हो गया। कहते हैं कि तेरी प्रभुता की एक समय की पर्याय प्रगट हुई और उस समय पामरता की एक पर्याय रह गयी, भाग रह गया। पर्याय तो दो है नहीं। समझ में आया? परन्तु एक अंश वस्तु... वस्तु... वस्तु है, उसमें अन्तर्मुख हुआ तो वही प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य आत्मा की पर्याय हुई और उसमें जितने भाग बहिर्मुख रह गया, वही पुद्गल का प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य है, इस प्रकार दो के बीच विवेक किया है। समझ में आया?

कहो, अब यह स्त्री, पुत्र, शरीर-फरीर तो कहीं धूल में रह गये। यह मेरा शरीर और यह मेरी वाणी और यह मेरी स्त्री और यह मेरे पुत्र। ऐसा कहते हैं? क्या कहते हैं? हमारा लड़का, हमारी लड़की, हमारी बहू। अरे! भगवान! तुझे कितने पति करना हैं? पैसे का पति, पत्नी का पति, राज का पति, मनुष्य का पति, धूल का पति, लखपति, करोड़पति, अरबपति और राग का पति। विकल्प उठता है, वह राग का पति। मिथ्यादृष्टि राग का पति होता है। समझ में आया? शुभाशुभ परिणाम... है न? यहाँ लिखा है न? शुभाशुभपरिणाम का स्वामीपना, वह मिथ्यादर्शन है। इस चौके में लिखा है। सामने लिखा है। शुभाशुभ परिणाम का स्वामित्व, वह मिथ्यादर्शन है। विकार कृत्रिम एक समय की पर्याय का अंश, उसका स्वामी (होता है), वह तो मिथ्यादृष्टि, पर्यायबुद्धि, मूढ़बुद्धि हुई।

पश्चात् ही लिखा है न? 'पञ्जयमूढा हि परसमया'। ज्ञेय अधिकार, प्रवचनसार (गाथा ९३) 'पञ्जयमूढा हि परसमया' एक समय के रागादि में मूढ़ हो गया अथवा विकार के एक समय में इतना आत्मा, ऐसा मूढ़ हो गया तो एक समय की पर्याय में दृष्टि है, उसका विस्तार राग और निमित्त पर जाता है, अन्तर में नहीं जाता। समझ में आया? एक समय की अवस्था क्षयोपशम ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि पर दृष्टि हुई, उसका विस्तार राग में, निमित्त में और पर में जायेगा परन्तु एक समय का इतना अंश मैं नहीं; मैं तो ज्ञायक पूर्ण शुद्ध हूँ।

ऐसी दृष्टि हुई तो कहते हैं कि ज्ञानी स्वयं बाह्यस्थित ऐसे परद्रव्य के परिणाम में.... ओहोहो! राग का कण उत्पन्न हुआ, दुःख की दशा थोड़ी रही, समझ में आया? उसका कर्ता-कर्म परिणमन भी पूर्ण निर्मल नहीं हुआ; कर्ता, कर्म, करण शक्ति भी पूर्ण निर्मल नहीं हुई। जितनी मलिनता बाह्य दृष्टि से, बाह्य लक्ष्य से रही, उस सबको बाह्य स्थित कहा गया है। समझ में आया? आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध, उसमें अन्तर्मुख का जितना एकाकार ध्यान

लगा, वही आत्मा के परिणाम हैं, जितना बाह्य में ध्यान लगा, उतना पुद्गल के परिणाम। उन पुद्गल परिणाम में.... पुद्गल परिणाम कैसे हैं ? बाह्य स्थित। स्वयं बाह्य स्थित। आत्मा ने राग उत्पन्न किया, इसलिए बाह्य स्थित है, ऐसा नहीं। गजब बात, भाई ! समझ में आया ? तो शरीर की ऐसी पर्याय उत्पन्न करे, ऐसे हलन-चलन करे, लड्डू बनावे, रोटी बनावे, दाल बनावे, सब्जी बनावे, पुस्तक बनावे, एक अक्षर बनावे... भगवान ! पर की पर्याय करने की तेरी ताकत तीन काल में नहीं है। उस परद्रव्य की ताकत तुझसे पर्याय हुई, ऐसी उसमें ताकत नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो राग की उत्पत्ति आत्मा की ताकत से है, इससे इनकार करते हैं। आहाहा !

यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय... मूल व्यवहार क्यों बारम्बार कैसे लेते हैं ? मूल यह भूल रह गयी है। बाकी तो शरीर, वाणी, मन की स्थिति, उसके लिये भी अभी तो गप्प मारते हैं कि हमारे से होती है, हमारे से होती है। व्यवहार हो तो होती है न ? क्या धूल में व्यवहार से होता है ? व्यवहार से कहा जाता है, ऐसी (वास्तविकता) नहीं है।

यहाँ तो राग का कर्ता भी व्यवहार से परिणमन है, ऐसा धर्म लिया, परन्तु मैं परिणमूँ, ऐसी बुद्धि हट गयी है तो उस राग की पर्याय को पुद्गल का व्याप्य कहकर बाह्य स्थित है, ऐसा कहा गया है। वहाँ प्रवचनसार में ४७ नय में कर्तृत्व नय लिया है। उसकी पर्याय को ज्ञेय कहकर ज्ञान कराया है। यहाँ कहते हैं कि **मेरे द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं, मेरी पर्याय में राग का अस्तित्व है ही नहीं**। ओहो ! दृष्टिप्रधान कथन और ज्ञान से जानने की-ज्ञेय बनाने की योग्यता, इन दोनों की वस्तुस्थिति अलग है। समझ में आया ?

ऐसा गम्भीर अनेकान्त है। अनेकान्तपना महान गम्भीर। अनेकान्त कहो या अमोघ शास्त्र कहो। अमोघ अर्थात् निष्फल न जाये, ऐसा सफल शास्त्र; और इस अनेकान्त के फल में अमृत का अनुभव आता है, उसे अनेकान्त कहते हैं। ऐसे और ऐसे बात करने में अनेकान्त नहीं, वाच्य में अनेकान्त है। **मेरे द्रव्य में, मेरी शक्ति में और मेरी अवस्था में राग है ही नहीं।**

राग बाह्य स्थित दशा, उसे आत्मा, जैसे मिट्टी घड़े में अन्तर्व्यापक होकर प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य होकर उपजती है; उसी प्रकार आत्मा, बाह्यस्थित ऐसे परद्रव्य के परिणाम में अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, उसे ग्रहण नहीं करता,.... आहाहा ! देखो तो सही ! यह भगवान आत्मा जहाँ अन्तर्मुख की दशा हुई, जिसमें महान शक्ति पड़ी

है, ऐसी दृष्टि अन्तर्मुख हुई तो बहिर्मुख ऐसा राग, उसकी आदि में आत्मा नहीं। उस पर्याय का एक अंश राग रहा, उसकी आदि में निर्मल पर्याय नहीं, तो पर्याय को करनेवाला आत्मा, उसकी आदि में है ही नहीं। मिट्टी घड़े की आदि में है, जैसे आत्मा राग की आदि में है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ? आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, उसे ग्रहण नहीं करता,.... भगवान आत्मा बहिर्मुख ढलनेवाली दिशा और अन्तर्मुख ढलनेवाली दशा, अन्तर्मुख ढलनेवाली दशा और बहिर्मुख ढलनेवाली दशा दो दशा में आत्मा बहिर्मुख ढलनेवाली दशा में आत्मा अन्तर्व्यापक होकर उसे प्राप्त नहीं करता। मिट्टी घड़े को प्राप्त करती है, जैसे आत्मा राग को प्राप्त नहीं करता। आहाहा! कठिन लगे इसे।

एक पर्याय को... आहाहा! एक वस्तु, अनन्त गुण, एक समय में अनन्त पर्याय, उसमें भी कितनी ही विकारी है और कितनी ही निर्विकारी है। निर्विकारी पर्याय को प्राप्त करनेवाला आत्मा है, विकारी पर्याय को प्राप्त करना आत्मा का कार्य नहीं। यह बात तो अन्तर में जरा दर्शनमोह का जरा रस घटाये और पुरुषार्थ की उग्रता बढ़ाये, तब उसे अन्दर रुचि होती है। अन्तर निर्णय होना चाहिए। महान पुरुषार्थ, अनन्त पुरुषार्थ, अनन्त पुरुषार्थ। अनन्त काल में नहीं किया हुआ अपूर्व पुरुषार्थ। अपूर्व का अर्थ पूर्व में एक समय भी कभी नहीं किया। उस पुरुषार्थ की अन्तर गति की कीमत नहीं और बहिर्मुख पुरुषार्थ की गति में सब दिखता है, (वह) आत्मा का नाश करता है। समझ में आया ? '... '! बहुत कठिन बात है, हों! दिल्ली में कठिन पड़े। आहाहा! अरे! प्रभु! तेरी लीला... ! तेरे परिणमन में भी दो भाग करके तेरी अन्तर्मुख पर्याय में व्याप्य, बहिर्मुख में नहीं (व्याप्य) वह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया ? पर्याय जितनी बहिर्मुख गर्दन (लक्ष्य) करे,.... डोकिया समझे ? लक्ष्य करे,...

कहते हैं कि स्वयं बाह्यस्थित.... वह भी स्वयं बाह्यस्थित, तेरा नहीं किया हुआ। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि कर्म से हुआ है। यहाँ तो विकार और कर्म, दोनों व्यवहार की एक जाति गिनकर उसमें बाह्यस्थित उसका कार्य कहा। अरे! ऐसा कहा वहाँ दूसरी गड़बड़ करे। देखो भाई! बाह्य स्थित में अन्तर्व्यापक तो कर्म है, कर्म से विकार (होता है), जब तक (कर्म का) उदय होगा, वहाँ तक विकार होगा। बाह्यस्थित कर्म है और बाह्यस्थित विकार है और बाह्यस्थित नोकर्म है तो उससे विकार हुआ। अरे! ऐसा नहीं है। सुन तो सही। होता तो है इसके पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण, अपनी पर्याय में स्वकाल में,

व्याप्य, प्राप्य आदि से; परन्तु अन्तर्मुख की दृष्टि से विरुद्ध भाव है तो अन्तर्मुख के पदार्थ से जैसे कर्म बहिर है, वैसे विकार को बहिर गिनकर बाह्य स्थित है, उसमें आत्मा प्राप्त होता ही नहीं। उसे आत्मा प्राप्त करता नहीं। समझ में आया ?

**बाह्यस्थित ऐसे परद्रव्य के परिणाम में....** आहाहा! यह तो कहीं अध्यात्मरस की अकेली रेलमछेल है। यह अन्तर में पसरा। समझे ? सिंहणी की दूध लोहे के पात्र में नहीं रह सकता। तोड़ डालता है एकदम। सिंहणी का दूध सोने के पात्र में रहता है। इसी प्रकार आत्मा में ज्ञानानन्द शुद्ध परिपूर्ण स्वभाव है, उसमें राग का अवकाश कहाँ है ? और राग कार्य तथा मैं कर्ता, उसका अवसर कहाँ है ? उसमें क्षेत्र कहाँ है ? उसमें मेरा भाव कहाँ मेरी पर्याय में आया ? कल आया था न, अवकाश कहाँ है ? नहीं ? पहले आ गया है। अवकाश कहाँ है ? यह कलश में आया था, कलश में। हिन्दी चलता है न ? कहाँ अवकाश है ? कहाँ अवसर है ? यह क्या कहते हैं ? काल तो एक समय है न ? राग मेरा कार्य और मैं कर्ता, ऐसी कर्ता-कर्म की स्थिति को आत्मा में कहाँ अवकाश है ? एक बार सच्चिदानन्द प्रभु की महत्ता दृष्टि में ले तो तुझे ख्याल में आयेगा कि भगवान ज्ञानमूर्ति की प्रकाश की पर्याय अन्तर्मुख से हुई। बहिर्मुख से दो के भाग कर दिये, एकदम। एक जड़ की पर्याय और एक चैतन्य की। ले, एक समय में दो पर्याय रहे ? दो भाग की ही दो पर्याय कर डाली। आहाहा ! विवाद करते थे न, एक समय में दो भाग ? एक पर्याय के दो भाग ? ऐसा प्रश्न आया था। मिला था, कहा था। तुमने पूछा न एक समय के दो भाग ? अरे ! प्रभु ! यह तो चैतन्य स्वभाव। शक्ति में तो अनन्त केवलज्ञान और अनन्त वीतरागदशा, अविकारीदशा, शान्तदशा प्रगट होने की निधि है। ऐसी निधि के अवलम्बन में जो निर्मल दशा हुई और उसी समय एकदम पूर्ण हो जाये, ऐसा कभी नहीं है। साधक को असंख्य समय तो लगते ही हैं। केवलज्ञान लेने में असंख्य समय तो लगते ही हैं। छठवें-सातवें में से भी केवल (ज्ञान) लेने में असंख्य समय तो लगते ही हैं। जब असंख्य समय रहा... समय अर्थात् सूक्ष्म काल का एक अंश, ऐसे असंख्य, उसमें दो भाग रह गये।

**मुमुक्षु : ...**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो। दो भाग किये। सबमें भाग किये न। दो भाग ही है। समझ में आया ?

**आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर, उसे ग्रहण नहीं करता,....** भगवान आत्मा मैं

ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रकाशपुंज हूँ। निरंजन प्रकाश का पुंज मेरा अखण्ड पदार्थ है। ऐसी दृष्टि हुई तो कहते हैं कि रागभाव तो है, अस्ति है, व्यवहार है, निमित्त है। निमित्त है, इसका अर्थ कि स्वभाव के साथ इतना रागभाव है, परन्तु उस निमित्त में आत्मा व्यापता नहीं और वह निमित्त यहाँ निर्मल पर्याय में आकर व्यापता नहीं और निर्मल पर्याय राग से रची नहीं जाती और निर्मल पर्याय राग को रचती नहीं। समझ में आया ?

जैसे मिट्टी घड़े में आदि-मध्य-अन्त में उत्पन्न होती थी और प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य होकर ग्रहण करती थी, परिणमन करती थी, उपजती थी। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानप्रकाशपुंज मेरी स्वयंसिद्ध चैतन्यवस्तु है, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता का अंश प्रगट हुआ तो कहते हैं, वह पर्याय, वह गुण-शक्ति और शक्तिवान तीनों राग को ग्रहण नहीं करते, राग को स्पर्श नहीं करते। तब तो एक हो जायें। व्यवहार-निश्चय एक हो जायें। पुद्गल के परिणाम (और) चैतन्य के परिणाम दोनों एक हो जायें। समझ में आया ?

**उसरूप परिणमित नहीं होता...** क्या ? ज्ञानमूर्ति प्रकाशपुंज आत्मा का भान हुआ तो वह अन्तर्मुख की जो पर्याय-अवस्था हुई—निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-धर्मरूपी दशा। धर्मदशा वह रागरूप अधर्मदशा को उत्पन्न नहीं करती, परिणमाती नहीं, उसमें आत्मा आता ही नहीं। भगवान मैल में कैसे आवे ? मैल... मैल... समझे ? मल... मल। गन्दगी... मैल। आहाहा ! महल नहीं, हों ! महल बनाते हैं, वह नहीं। मलिनता, मलिनता। अशुचि मलरूप है। आस्रव मलरूप है, शैवालरूप है। उस अशुचि में आत्मा कैसे आवे ? आत्मा उसे कहते हैं कि जो निर्विकल्प वस्तु की श्रद्धा-ज्ञान हुए, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा मलिन परिणाम में उत्पन्न नहीं होता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता। ऐसे रागरूप व्यवहाररूप उत्पन्न नहीं होता।

**इसलिए यद्यपि ज्ञानी अपने परिणाम को जानता है....** यद्यपि ज्ञानी अपने परिणाम को—निर्मल शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान, निर्दोष, निर्विकारी आत्मा की शक्ति की व्यक्तारूप परिणाम को जानता है। समझ में आया ? अपने परिणाम को जानता है, ऐसा लिया है, द्रव्य-गुण को नहीं जानता ? वह तो जानता है परन्तु नयी पर्याय उत्पन्न हुई, उसे भी जानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? त्रिकाल द्रव्य-गुण को तो परिणति जानती है, परन्तु ज्ञान वह आत्मा की परिणति उत्पन्न होती है, उसे भी ज्ञान जानता है। उत्पन्न होती है, उसे जानता है। समझ में आया ? है, उसे तो जानता ही है। वस्तु और वस्तु की शक्ति, परन्तु परिणति जो हुई, उसे भी ज्ञान जानता है। अपने परिणाम को जानता है। पर्याय को जानना सिद्ध करना है न ?

क्योंकि पर्याय को-अवस्था को जानता है तो पर के कार्य, पर की अवस्था के कार्य करता है, ऐसा लो न। ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया ?

ऐसा होने पर भी, ज्ञानी अपने परिणाम को जानता है तथापि, प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्यलक्षणवाला परद्रव्यपरिणामस्वरूप कर्म.... प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य की तो... बात की। आदि-मध्य-अन्त (कहकर) पूरा कर डाला। झटककर व्यवहार और निश्चय दो भिन्न (कर दिये)। झटककर कहते हैं न? सुपड़ा में नहीं होता? सुपड़ा होता है न? कण होवे न, कण। उसमें छिलका होता है न, छिलका। ऐसा-ऐसा करते हैं न? छिलका निकल जाता है और वस्तु-कण रह जाता है। और बहुत न निकले तो ऐसे छिलके को धक्का मारते हैं। ऐसा मारकर एकदम उसमें जो छिलका हो, वह एकदम बाहर निकल जाता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी ज्ञानानन्द में जहाँ वीर्य की स्फुरणा हुई, वहाँ राग का कण छिलके की भाँति.... फोतरा को क्या कहते हैं? छिलका। छिलके की भाँति निकल जाता है, मेरे स्वभाव में है ही नहीं। समझ में आया ?

वीर्य, सम्यक् वीर्य का जहाँ पण्डितवीर्य खिला, वह तो सम्यग्दृष्टि का भी पण्डितवीर्य ही है। वह तो छठवें गुणस्थान में वीर्य है, वह पण्डितवीर्य है। समझ में आया ? स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य का काम है। तो अपना वीर्य जहाँ अपनी निर्मल पर्याय की रचना का कार्य करता है तो उसी समय राग, विकार, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का राग—ऐसा प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य ऐसा जो परद्रव्य का कार्य, परद्रव्यरूप परिणाम, ऐसा जो व्याप्य लक्षणवाला जो कार्य, उसे नहीं करनेवाला, ऐसा उस ज्ञानी को पुद्गल के साथ कर्ता-कर्म भाव नहीं है। कहो, समझ में आया ? यह तो मक्खन है। समझ में आया ? मक्खन है, मक्खन।

एक बार वे दरबार आये थे न, दरबार, भावनगर दरबार व्याख्यान सुनने आये थे। मानस्तम्भ के समय। वह व्याख्यान ऐसा आया तो बोले, बेचार, हों! उन्हें तो कहाँ जँचे? परन्तु जरा इतना बोले... करोड़ रुपये का तालुका। भावनगर दरबार है। महाराजा! आज... क्या कहा? मलाई। आज मलाई परोसी है। ऊँची बात लगे न! यह कुछ करते हैं, कुछ न्याय से बात करते हैं। मलाई है। बापू! मलाई तो यह है। वह तो अभी स्थूल बात की। समझ में आया ?

दो भाग करने का कारण कहा न! अन्तर्मुख और बहिर्मुख। ऐसे दो भाग हुए बिना

साधकपना नहीं होता और बाधकपना भी सामने जरा न हो तो परमात्मा हो जाये, केवलज्ञान हो जाये। बहिर्मुख को पुद्गल में डाल दिया, अन्तर्मुख को आत्मा में रखा। बहिर्मुख में प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य आत्मा का नहीं और अपने प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य में पुद्गल नहीं। व्यवहार अपने प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य में नहीं और अपनी निर्मल पर्याय पुद्गल के-व्यवहार के प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य में नहीं। आदि में नहीं, मध्य में नहीं, अन्त में नहीं। शुरुआत में थोड़ा सा तो है न? थोड़ा सा... थोड़ा सा। थोड़ी चिंगारी डाले न? चिंगारी शुरुआत करे तो वापस भवका होता है। इसी प्रकार थोड़ा सा तो है न? आत्मा की निर्मल पर्याय में राग में थोड़ी चिंगारी आदि में (है या नहीं)?—नहीं, और राग की मन्दता की थोड़ी चिंगारी निर्मल पर्याय की आदि में है या नहीं?—नहीं। अरे! बहिर्मुख वृत्ति और अन्तर्मुख परिणति, दोनों का मेल कहाँ से हो? बहिर्मुख वृत्ति और अन्तर्मुख परिणति। समझ में आया? दोनों का मेल कहाँ से हो?

अनन्त काल का अपना ज्ञेयस्वभाव आत्मा है, उसे कभी इसने ज्ञेय बनाया ही नहीं। राग और निमित्त को (ज्ञेय) बनाया, वह तो अनादि से मिथ्यादृष्टिरूप से बन ही रहे हैं। ज्ञेय को बनाया ज्ञान में, अपने ज्ञेय को ज्ञान में बनाया तो अन्तर्मुख की परिणति बाह्य बहिर्मुख की वृत्ति में उसे प्राप्त नहीं होता। उसे नहीं करनेवाला। उसे आत्मा करता नहीं। उसे न करनेवाले ज्ञानी को पुद्गल के साथ कर्ताकर्मभाव नहीं है।

भावार्थ :- जैसा ७६वीं गाथा में कहा है, तदनुसार यहाँ भी जान लेना। वहाँ 'पुद्गलकर्म को जानता हुआ ज्ञानी' ऐसा कहा था, उसके स्थान पर यहाँ 'अपने परिणाम को जानता हुआ ज्ञानी' ऐसा कहा है - इतना अन्तर है। अब तीसरा प्रश्न उठता है। दो प्रश्न तो हो गये। अब उठा तीसरा प्रश्न—कर्म के फल का। समझ में आया? उसमें कर्म का फल जो सुख-दुःख की कल्पना होती है न? सुख-दुःख की कल्पना। उसे आत्मा जानता है, तो सुख-दुःख के साथ कर्ता-कर्म का कार्य सम्बन्ध है या नहीं?—नहीं। यह बात विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

श्री समयसार, स्याद्वाद के बोल - ९ से १२, प्रवचन - ३४७

दिनांक - २६-०८-१९६२

इस सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में परिशिष्ट चलता है। समयसार। उसमें स्व आत्मा स्वद्रव्य से, स्वक्षेत्र से, स्वकाल से और स्वभाव से अपने से है और परवस्तु के द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से नहीं है। उसका अधिकार चलता है। समझ में आया ? उसमें आठ बोल चले। नौवाँ चला था परन्तु फिर से जरा। नौवाँ (लेते हैं)।

यह आत्मतत्त्व अनेकान्त जैसा इसका स्वरूप है अर्थात् कि स्वकालरूप से अपनी गुण की पर्यायरूप से स्वयं से स्वयं में है। ऐसा यदि जाने तो उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर रहने से एकपना, गुणरूप से एक है काल, त्रिकाल और पर्यायरूप का काल एक-एक समय का भिन्न-भिन्न है। वह काल की पर्याय भिन्न-भिन्न ज्ञेयाकार परिणमन होने पर भी वह स्वकाल के अस्तित्व से परिणमन हो रहा है। परद्रव्य की वर्तमान अवस्था का निमित्त तो एक अवलम्बनमात्र है। परन्तु कहीं उसके कारण वहाँ स्वकाल का अनन्त गुण की एक समय की पर्याय पर के कारण होती है, ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु :** न आवे तो न हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु यह प्रश्न ही कहाँ है (कि) न आवे तो न हो। समझ में आया ? यह तत्-अतत् में तो आ गया। घट हो तो घट का ज्ञान होता है, पट हो तो पट का ज्ञान होता है, गुड़ हो तो गुड़ का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। वह ज्ञान जिसमें ज्ञानस्वभाव भरा है, उसे ज्ञान होता है। उसकी पर्याय में ज्ञान ज्ञेयाकाररूप से होने का ज्ञान परिणमन का अपना स्वभाव है। इसलिए ज्ञान परज्ञेय को जानने से कहीं परज्ञेय के कारण ज्ञान की पर्याय नहीं है। उसमें जो ज्ञेय और ज्ञान भिन्न है, ऐसा सिद्ध किया था, तत्-अतत् में। समझ में आया ? नहीं तो भाई ! घट को, पट को यह पदार्थ है और उस काल में वैसा ज्ञान होता है। इसलिए घट के-पट के-ज्ञेय के कारण से यह ज्ञान है, ऐसा यदि माने तो मिथ्यादृष्टि अपनी वर्तमान पर्याय की स्वतन्त्रता को खो बैठता है। तो उसके अन्तर द्रव्य पर उसकी दृष्टि किसी प्रकार अनेकान्तरूप से नहीं जाती। समझ में आया ?



यदि परवस्तु के कारण ज्ञान हो। घट के पास बैठाओ पट को-वस्त्र को। यह लकड़ी रखो, लो। उससे ज्ञान हो तो इस लकड़ी को ज्ञान होना चाहिए। नहीं समझ में आया? इस पुस्तक के कारण ज्ञान होता हो, इस ज्ञेय के कारण ज्ञान होता हो और ज्ञेय प्रमाण यह ज्ञान होता हो तो इसे इस लकड़ी को होना चाहिए। देखो! यह इसके समीप में है, देखो!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसके प्रमाण? इस लकड़ी को होना चाहिए यदि इससे होता हो तो। ज्ञान अपनी पर्याय में अपना स्वभाव है कि जो ज्ञेय पदार्थ है, उसी प्रकार ज्ञान परिणमन का अपना स्वभाव गुण में से आकर स्वयं स्वतन्त्र परिणमता है। इसलिए, परपदार्थ हो तो यहाँ ज्ञान है, न हो तो ज्ञान नहीं, उसने वस्तु को माना नहीं और पहिचाना नहीं। समझ में आया? यह तत्-अतत् में आया था। पर के कारण यदि ज्ञान होता हो तो ज्ञान बिना की चीज़ को वहाँ रखो तो उसे भी ज्ञान होना चाहिए।

यहाँ तो अब काल की अपेक्षा से बात चलती है। जब यह ज्ञानमात्र भाव... आत्मा। वस्तु चैतन्यमूर्ति चैतन्य प्रकाश वह पूर्वालम्बित पदार्थों के विनाश काल में.... ज्ञान की वर्तमान अवस्था में जो कुछ पूर्व में अवस्था थी, जड़ की या दूसरे चैतन्य की, वह वहाँ उसका निमित्त था। समझ में आया? पूर्व में जिसका अवलम्बन किया था, अर्थात् निमित्त। ऐसे पदार्थ के विनाश काल में-जहाँ उस पदार्थ की अवस्था पलटी अर्थात् मेरी ज्ञानपर्याय उसके कारण नाश हुई, ऐसा अज्ञानी मानता है। परलक्ष्यी वृत्तिवाला, परआश्रय की दृष्टिवाला उसके ज्ञान की पर्याय में परलक्ष्यी निमित्त जो अवलम्बन वर्तता है, उसके काल में मेरा ज्ञान हुआ, उसे अवस्था है, वहाँ मुझे ज्ञान हुआ, ऐसा माननेवाला अपनी ज्ञान अवस्था में वर्तमान स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध अस्तित्व खो बैठता है। समझ में आया? यह तो भाई! चौदह बोल हैं, वे जरा (सूक्ष्म हैं)। इसमें कहीं कोई वस्तु उसमें दृष्टान्त और अमुक-अमुक इसमें नहीं आता।

पूर्व में, देखा! पूर्वालम्बित... जिस ज्ञान की दशा में जो दूसरा निमित्त था या सामने चीज़ें (थीं), उनकी पर्याय जहाँ पलटी, उसका काल पलटा, वहाँ मेरा काल भी उसके कारण पलटा, इसलिए मेरे ज्ञान की दशा भी नाश हो गयी, ऐसा मानकर ज्ञान का असत्पना मानकर, मेरे ज्ञान की वर्तमान दशा मुझसे नहीं परन्तु उससे थी, ऐसा मानकर वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञान का असत्पना मानकर, अंगीकार करके नाश को पाता है। वह अपने स्वभाव के अस्तित्व को दृष्टि में से खो बैठता है। समझ में आया? यह काल अर्थात् समय-

समय के सामने यह अक्षर जो भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न... अक्षर की पर्याय वहाँ-वहाँ भी जिस प्रकार से है, वैसे ज्ञान में आवे, वह तो अपनी ज्ञानपर्याय के स्वकाल के स्व-परप्रकाश के सामर्थ्य में सामर्थ्य के कारण आता है। इसलिए ऐसा मानो ज्ञेय की अवस्था अक्षर जहाँ पलटे, एक अक्षर लक्ष में से पलटकर दूसरा अक्षर जहाँ ऐसा गया, वहाँ मेरा ज्ञान भी उस प्रकार का नाश हो गया, ऐसा मानता है। समझ में आया ?

ऐसे ज्ञेय पदार्थों के विनाश के समय.... ज्ञान का असत्पना मानकर, अपनी ज्ञानदशा मुझसे मेरे द्वारा मुझमें हुई, ऐसा न मानता हुआ, पर के कारण हुई थी, वह पर जहाँ पलटा, वहाँ मेरा भी पलट गया और नाश हो गया, ऐसा मानकर अपने आत्मा की वर्तमान दशा के सत् को पर से मानता हुआ असत्रूप मान रहा है। समझ में आया ? कल सवेरे से दूसरा आयेगा, हों ! यह तो जरा है न, चलता अधिकार है न ! कल शक्तियों का पूर्वरूप। ४७ शक्तियों का पूर्व अनेकान्त का दूसरा भाग। यह अनेकान्त का पहला भाग है। चौदह बोल। समझ में आया ? यह जरा सरल पड़ेगा, ऐसा कहना परन्तु फिर सामने को.... इसकी अपेक्षा तो जरा सरल पड़ेगा। है तो वह इससे भी सूक्ष्म, परन्तु जरा उसमें शक्ति और वस्तु का वर्णन आने से जरा ठीक पड़ेगा। कहो, भीखाभाई ! यह ज्ञान सुनने के कारण है न ज्ञान ? परन्तु जितने शब्दों का अवलम्बन ले, उस जाति का ज्ञान यहाँ वर्तता है, लो !

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बोले क्या ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ख्याल में आती नहीं थी। बस, यह बात कहते हैं, लो !

इसलिए ज्ञान नाम का आत्मा का स्वभाव वर्तमान अपनी पर्याय से काम-कार्य कर रहा है, ऐसा नहीं रहा। यहाँ सामाने की समझाने की शब्द की पर्याय के अवलम्बन से काम करता हुआ, वह पर्याय गयी तो यहाँ भी नाश हो गया, ऐसा मानकर अपने वर्तमान स्वकाल गुण की परिणति का श्रद्धा में नाश करता है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** शब्द....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** देखे किसमें ? अपने अस्तित्व में देखे या उसके अस्तित्व में देखे ? सामनेवाले के अस्तित्व की पर्याय के स्वकाल में उसका परिणमन है। इसके स्वकाल की, स्वकाल अर्थात् वर्तमान पर्याय के स्वकाल में अपना परिणमन है। उसके

अपने परिणमन में पर का असत् भाव है, सद्भाव नहीं। ऐसी चैतन्य महात्म्य चमत्कार वस्तु की इसने कभी पहिचान नहीं की। एकदम नया ज्ञान जहाँ अन्दर से उघड़े तो निमित्त तो मानो बहुत अवलम्बन में, लक्ष्य में आये, इसलिए मेरी ज्ञान पर्याय उसके कारण हुई, ऐसा मानकर अपनी ज्ञान की वर्तमान अवस्था का-सत्ता का श्रद्धा में अस्तित्वरूप से स्वीकार नहीं करता। वह नास्तिक होता है।

**मुमुक्षु :** ....ज्ञान उघड़ता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी.... वह तो अपनी पर्याय का काल है। पर के कारण उघड़ता होगा? समझ में आया? समझ में आता है इसमें कुछ? देखो! यह देश का पर्यटन नहीं करते? भिन्न-भिन्न स्त्री, भिन्न-भिन्न पुरुष, भिन्न-भिन्न रेल, भिन्न-भिन्न पाटा सब चीजें ऐसी देखने में भिन्न-भिन्न स्थल (देखकर) कितनी बुद्धि खिले! कश्मीर जाये, वहाँ ऐसे कैसे पंचरंगी फूल फूलझाड़... आहाहा! वह जहाँ ज्ञान की पर्याय पर के कारण लक्ष्य में थी, ऐसा माननेवाले वे एकदम मानो वृक्ष बदले और गाँव बदला, वहाँ मेरी पर्याय भी उसके कारण बदली, ऐसा मानकर...

**मुमुक्षु :** वह हो तो ज्ञान होता है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। वह तो अपने ज्ञान के स्वकाल की पर्याय के परिणमन के कारण अपने को ज्ञान होता है, पर के कारण तीन काल में नहीं होता। देखो, इसमें अस्ति और नास्ति ऐसा न समझे तो वह नास्ति जीव है, ऐसा कहते हैं। नास्तिक है। ऐसे आत्मा-आत्मा करे परन्तु इस प्रकार से न माने तो वह नास्तिक जीव है। समझ में आया?

**तब ( उस ज्ञानमात्रभाव का ) स्वकाल से ( -ज्ञान के काल से ) सत्पना प्रकाशित करता हुआ.... अरे! मेरी वह ज्ञान की पर्याय वह मुझसे मेरी जानने में आवे, वह मेरी पर्याय मेरा सत् है। मेरे स्वकाल की वर्तमान अवस्था मुझसे सत् है, पर के कारण तीन काल में नहीं है। भगवान के कारण नहीं, प्रतिमा के कारण यह पर्याय नहीं। ऐसा देखे, कहते हैं कि ओहोहो! अवस्था! भगवान की ऐसी। ओहोहो! यह क्या है? किसे देखता है? उसे देखता है या इसे? तेरी पर्याय को देखता है, पर नहीं।**

**मुमुक्षु :** कर्म के क्षयोपशम के काल में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह धूल भी नहीं कर्म का.... यह इसका अपना काल है। वे कहते

अवश्य हैं। कर्म के क्षयोपशम काल में, ऐसे काल में वहाँ योग्यता इसकी लेना। कर्म के क्षयोपशम की योग्यता उसकी लेना, तब यहाँ ज्ञान होता है। अपने ज्ञान की पर्याय के स्वकाल की योग्यता शास्त्र में कहीं नहीं। और ऐसा कहनेवाले मिलते हैं, लो! क्यों आत्मारामभाई! समझ में आया ?

अरे! भगवान! यह इसके घर की बात है। पहले ज्ञानावरणी के क्षयोपशम की योग्यता कही थी। उसकी क्षयोपशम की योग्यता हो, तब यहाँ ज्ञान होगा। यहाँ योग्यता नहीं कही। अब सुन न! यहाँ समय-समय की ज्ञान की पर्याय भिन्न-भिन्न परिणामन स्वकाल में हो, वह स्वयं से होता है, पर के कारण तीन काल में नहीं। ऐसा नहीं माननेवाला अपने वर्तमान अंश के अस्तित्व का स्वीकार नहीं करता। और ऐसा स्वीकार नहीं करता, इसलिए त्रिकाल की पर्याय का स्वीकार नहीं, इसलिए द्रव्य-गुण का भी स्वीकार नहीं करता। समझ में आया ?

तब धर्मी जीव अपना ज्ञानसत्ता स्वभाव स्वकाल से सत्पना प्रकाशित करता हुआ। इसमें वह ज्ञान की पर्याय के साथ सभी गुणों की पर्याय सब है। आनन्द की, वीर्य की, श्रद्धा की, चारित्र की। समझ में आया ? कर्ता-कर्म सब गुणों का स्वकालरूप से मेरे ज्ञान में वह सब आने पर सत्पना प्रकाशित करता हुआ.... ज्ञान की वर्तमान दशा को मुझसे हुई है, ऐसा प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे जिलाता है.... अर्थात् कि वस्तुरूप से एकरूप रहने पर भी, पर्यायरूप से भिन्न-भिन्न स्वकाल में मेरी पर्याय होती है, वह भी मेरी अस्ति है। समयमात्र अस्ति है। त्रिकाल है, वह त्रिकालमात्र अस्ति है। दोनों को अनेकान्तरूप से इस प्रकार जानता हुआ, अपनी पर्याय में शान्ति को बढ़ाता है और पर की नास्तिरूप परिणमता है।

**मुमुक्षु :** अपने....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बैठे न। त्रिकाल वस्तु है। त्रिकाल ज्ञायकभाव त्रिकाल है, परन्तु वह द्रव्य अपेक्षा से। वह भी त्रिकाल सहित वर्तमान भिन्न-भिन्न स्वकाल की पर्याय का स्वीकार है, इसका नाम अनेकान्त है। दो धर्म हो गये न? एक द्रव्य धर्म, एक पर्याय धर्म। समझ में आया ?

एक द्रव्य का स्वभाव, एक वर्तमान पर्याय का स्वभाव। दोनों का स्वीकार अपने से मानने से उसका पूर्णरूप उसकी दृष्टि में आने से पर से नास्तिरूप उसका परिणामन होता है।

समझ में आया ? ज्ञान स्वकाल से, ज्ञान के काल से, ज्ञान के काल में, ज्ञान के समय, ज्ञान के अवसर में। यह गुण का, यह ज्ञान की पर्याय यह ज्ञान का अवसर है। टाणुं समझते हो ? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। ज्ञान का टाणुं अर्थात् ज्ञान का काल, ज्ञान का वक्त, ज्ञान का समय। वह सत्पना प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त उसे जिलाता है। अनेकान्त अर्थात् मेरे रूप से सत है और पररूप से असत् है, ऐसा अनेकान्त मानता हुआ अपनी शान्ति को, श्रद्धा को, ज्ञान की पर्याय को बनाये रखता है। यह नवाँ बोल हुआ।

और जब वह ज्ञानमात्र भाव पदार्थों के अवलम्बन काल में... नास्ति से पहले बात करते हैं अब। समझ में आया ? परन्तु जब वह ज्ञानमात्र भाव पदार्थों के अवलम्बन काल में ही ( - मात्र ज्ञेय पदार्थों को जानते समय ही ) ज्ञान का सत्पना मानकर... उसे जानने के काल में मेरे ज्ञान का सत्पना है। उसे जानने के काल में। अपनी पर्याय को अंगीकार करके अपना नाश करता है,... पर के कारण मेरी ज्ञानपर्याय है, ऐसा माननेवाला स्व के ज्ञान की पर्याय का नाश करता है।

तब ( उस ज्ञानमात्र भाव का ) परकाल से ( -ज्ञेय के काल से ) असत्पना... है। समझ में आया ? उसमें स्वकाल से सत्पने का बोल था। इसमें परकाल से असत्पने का बोल है। परन्तु एक-एक में डबल बोल करते जाते हैं। एक अज्ञानी का और एक ज्ञानी का। अज्ञानी पर से असत् न मानकर पर से सत् मानता है। ज्ञानी ज्ञानमात्र भाव,... कहो, समझ में आया ? परकाल से ( -ज्ञेय के काल से ) असत्पना प्रकाशित करता हुआ... मेरे ज्ञान की पर्याय मुझसे होती है, पर से असत् है। ऐसा प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त सत् मेरी पर्याय है और पर से नहीं। ऐसा अनेकान्त ही उसे अपना नाश नहीं करने देता। यह दस बोल हुए।

जब यह ज्ञानमात्र भाव,... अब भाव आया। वह स्वद्रव्य से अस्ति वस्तु से और परद्रव्य से नास्ति। पश्चात् स्वक्षेत्र से आत्मा असंख्य प्रदेश में रहा हुआ पूर्ण रूप से अस्ति, परक्षेत्र से नास्ति। ऐसे स्वपर्याय का वर्तमान काल जो है, उससे मैं हूँ और पर काल से नहीं। यह छह बोल हुए। अब दो बोल भाव के रहे। भाव-भाव। वस्तु का भाव जो शाश्वत्, उस भाव को न मानता हुआ। सामने के भाव में से धारा होकर मेरी दशा होती है, ऐसा माननेवाला, अपने भाव के अस्ति पद को वर्तमान दशा की शक्ति के परिणमन वहन को स्वयं नहीं मानता।

और जब यह ज्ञानमात्र भाव, जानने में आते हुए परभावों के.... परभाव अर्थात्

शक्तियाँ। परद्रव्य की शक्तियाँ, परपदार्थ का स्वभाव, परपदार्थ के गुण, परपदार्थ की शक्ति सदृशरूप से, उसे यहाँ भाव कहा जाता है। यह ज्ञानमात्र भाव, जानने में आते हुए परभावों के परिणमन के कारण... वह परभाव ऐसे अन्दर शक्ति में से आता है न? परिणमता है न? उसे—ज्ञायकभाव को परभावरूप से मानकर। मेरी पर्याय में मेरी पर्याय भाव में से टपकती है, ऐसा न मानकर परभाव में से मेरी पर्याय परिणमती है। समझ में आया? मेरी पर्याय मेरी खान है, उसमें से आती है, ऐसा न मानकर मेरी पर्याय पर की खान में से परिणमती है और बहती है। समझ में आया? समझ में आता है? भाषा तो समझ लेना। गुजराती थोड़ी-थोड़ी समझ लेना। नहीं तो यह समझ में आये, ऐसा नहीं है।

ज्ञानमात्र भाव,.... भाव अर्थात् गुण। जानने में आते हुए परभावों.... अर्थात् पर शक्तियाँ परद्रव्य की। यह भगवान केवलज्ञानी है शक्तिरूप से, हों! यह आनन्दरूप है, वह परमाणु वर्ण-गन्धरूप है, अमुक। ऐसे भाव में से मानो मेरा भाव का वर्तमान परिणमन ऐसे परभाव में से मानो आता हो और पर की सामर्थ्य में से बहता हो, ऐसा मानकर अपना स्वभाव त्रिकाल है, उसमें से यह अवस्था बहती है, ऐसा न माननेवाले, परभाव से अपने को अस्ति मानते हैं। समझ में आया?

ज्ञायकस्वभाव को परभावरूप से मानकर अंगीकार करके नाश को प्राप्त होता है, तब ( उस ज्ञानमात्रभाव का ) स्व-भाव से सत्पना प्रकाशित करता हुआ.... अहो! यह मेरा निधान, चैतन्य निधान खान अनन्त गुण का भण्डार है, उसमें से वर्तमान अंश उस भाव में से आता है। उस भाव की खान में से आता है। गुण में से परिणमन का वहन आता है, दूसरे के गुण के कारण यहाँ वहन होता है, ऐसा नहीं है। दूसरे के गुण देखे। ऐसा कहते हैं न? भगवान के गुण देखो। भगवान के गुणों को स्मरण करो। इसमें कहाँ आया? सुन तो सही। भगवान के गुण के स्मरण में से वह तो विकल्प उठता है। उसमें से कहीं आत्मा के भाव में से परिणमन नहीं आता।

मुमुक्षु : ....होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'वन्दे तद्गुणलब्धये' आता है न? क्या कहा यह श्लोक? 'मोक्षमार्गस्य नेतारं भेतारं कर्मभूभृताम। ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥' 'वन्दे तद्गुणलब्धये' इसका स्पष्टीकरण किया है। कितने ही कहते हैं, देखो! भगवान के गुण, यह भक्ति करनेवाला उनके गुणों को याद करता है, इसलिए उनके गुण जैसा होने के लिये

भक्ति में से उनके गुण का परिणमन स्वयं का होता है। देवीलालजी! नहीं? ऐसा नहीं है। यह तो कहते हैं कि मेरा भाव, तुम्हारे भाव जैसा मेरा भाव है। इसलिए मेरे भाव में से मेरी पर्याय मुझे तुम्हारे जैसे गुण प्रगट हुए हैं, गुण में से पर्याय, ऐसे ही मेरे गुण में से मेरी पर्याय प्रगट होनी है। मेरी एकाग्रता, मेरा ध्येय-लक्ष्य वहाँ है। कोई तुम्हारे कारण मुझे 'तद्गुणलब्धये' तुम्हारे ऊपर लक्ष्य रखकर मेरे गुण की तुम्हारे जैसी प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? श्लोक आता है न समन्तभद्राचार्य का? क्या कहा पहला?

'मोक्षमार्गस्य नेतारं' हे नाथ! आप मोक्षमार्ग में ले जानेवाले हो। मोक्षमार्ग के ले जानेवाले हो। नेता-नेता। ले जानेवाले। 'ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां' और 'कर्मभूभृताम' कर्म के पत्थर को आपने तोड़ डाला है। कर्म के पर्वत को आपने तोड़ डाला है। यह सब व्यवहार के वचन हैं। 'भेतारं कर्मभूभृताम' कर्मरूपी भू-पृथ्वी के टुकड़े कर डाले हैं। 'ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां' सर्व तत्त्वों को जाननेवाले हो, इसलिए आपके गुण की प्राप्ति के लिये वन्दन (करता हूँ)। यह व्यवहार के विकल्प की कथन पद्धति ऐसी होती है, उसके अन्तरभाव में ऐसा नहीं है। मेरे गुणों की प्राप्ति, प्रभु आपमें जो भाव हैं, ऐसे ही मुझमें भाव पड़े हैं। मेरा भाव ही पूरा चिद्घन आनन्दपिण्ड चैतन्यसमुद्र पड़ा है। उसमें से, मेरे भाव में से यह अवस्था आती है, नहीं कि विकल्प और राग और आपके लक्ष्य से आती है। ऐसा है नहीं। समझ में आया? यह ऐसा है, भाई! नाश को प्राप्त होता है,...

ज्ञायकस्वभाव को परभावरूप से मानकर.... परभावरूप से स्वयं मानता है। सत् परभाव के कारण मेरे ज्ञायकभाव का वहन होता है, ऐसे मानकर अपने भाव का नाश करता है अर्थात् अपने शक्ति के सामर्थ्य को श्रद्धा में नहीं लेता। अपनी शक्ति का जो स्वभाव सामर्थ्य है, उसे प्रतीति में नहीं लेता। तब ( उस ज्ञानमात्रभाव का ) स्व-भाव से सत्पना प्रकाशित करता हुआ.... उस ज्ञानमात्रभाव का स्वभाव से सत्पना प्रकाशित करता हुआ। अरे! मेरे भाव में से ही सब शक्ति बहती है। पर्याय की शक्ति वर्तमान गुण की दशा का वहन अन्तर के प्रवाह-खान में से आता है। ऐसे अपने भाव को अपने से अस्ति मानता हुआ वह ज्ञानी अपने भाव को जीवन्त, टिकता रखता है। उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पर्याय में वर्तते हैं। कहो, समझ में आया? स्व-भाव से सत्पना प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे जिलाता है-नष्ट नहीं होने देता। यह ११वाँ बोल हुआ।

(अब) १२वाँ। और जब वह ज्ञानमात्र भाव 'सर्व भाव मैं ही हूँ'.... यहाँ बताना है

तो अब पर से असत्पना, परन्तु पहला वह मानता है कि पर से मैं सब हूँ। उसका पहला बोल लेते हैं। जब वह ज्ञानमात्र भाव 'सर्व भाव मैं ही हूँ'.... सबके दूसरे के जो गुण वह मैं हूँ। दूसरे की शक्तियाँ जो है, वही मैं हूँ। समझ में आया ? वह ज्ञानमात्र भाव। भगवान आत्मा भाव स्वभावरूप वह 'सर्व भाव मैं ही हूँ'.... ऐसा माननेवाला। उन सबका भाव वह मैं हूँ। उसके सब जो-जो भाव में से कार्य होते हैं और वे सब उसके भाव में से होते हैं, वे मेरे भाव में से होते हैं। इस प्रकार परभाव को... अपने भाव में मानता-खतौनी करता हुआ वह परभाव को ज्ञायकभावरूप से मानकर-अंगीकार करके अपना नाश करता है,.... अपनी सत्ता का सामर्थ्य, उसे तो वह मानता नहीं। मेरी सत्ता में परमेश्वरपद पड़ा है। मेरी सत्ता के भाव में परमेश्वरपद पड़ा है। उसे मैं परमेश्वरपद उकेलकर पर्याय में परमेश्वरपद लानेवाला हूँ। समझ में आया ? किसी के परमेश्वरपद में से मेरा परमेश्वरपद लाऊँगा, ऐसा वस्तु में नहीं है, परन्तु अज्ञानी को इस प्रकार का भरोसा और विश्वास नहीं आता। क्योंकि शक्तिरूप है भाव और प्रगटरूप पर्याय है, वह यह पर्याय कहाँ से बनती है और कैसे भाव का सामर्थ्य है, उसे यह भरोसा नहीं बैठता। प्रगट व्यक्ति पर्याय की है और भाव है, वह अव्यक्त-अप्रगट है और पूरा स्वरूप ही वह पूर्ण है। ऐसे पूर्ण स्वभाव की दृष्टि नहीं, इसलिए यह सब भाव परभाव के कारण मैं हूँ। दूसरे सब भाव, वही मैं हूँ, ऐसा मानकर अपने भाव को ज्ञायकभाव को पररूप अंगीकार करता है और अपना नाश करता है।

तब ( उस ज्ञानमात्र भाव का ) परभाव से असत्पना प्रकाशित करता हुआ... देखो ! ( उस ज्ञानमात्र भाव का ).... ज्ञान भाव-भाव, ऐसा दर्शनभाव, आनन्दभाव, शान्तिभाव सब गुण। उसके भाव का परभाव से असत्पना.... पर की शक्ति से ही मेरी नास्ति। पर के अनन्त गुण और परमाणु के अनन्त गुणों का जो भाव है, उसकी शक्ति की मुझमें नास्ति है। मुझमें पर की शक्ति की अस्ति नहीं। इस प्रकार परभाव से असत्पना प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे अपना नाश नहीं करते देता। समझ में आया ? अनेकान्त क्या आया ? कि मैं मेरी पर्याय, मेरे गुण द्वारा हूँ, यह मेरा भाव और पर के गुण द्वारा मैं नहीं, ऐसा अनेकान्त स्वीकार करता हुआ, अपनी दृष्टि अपने में रखता हुआ अपने अस्तित्व को परिणमाता है, शुद्धरूप परिणमाता है। बारह हुए, १२ बोल। अभी तो चौदह बड़े कलश आयेंगे अभी तो। इसके बाद।

तेरहवाँ। देखो ! इन चार बोल को दूसरे प्रकार से भी विशेष वर्णन किये हैं। समझ में आया ? यह वस्तु है न आत्मा ? आत्मा ज्ञायकभाव वस्तु... वस्तु... वस्तु... एकरूप वस्तु,



वह अपना स्वद्रव्य और उस ज्ञायक में विकल्पसहित भेद पाड़ना कि यह ज्ञान और दर्शन, ऐसे भेद पाड़ना, उसे परद्रव्य कहा जाता है। क्योंकि ऐसे भेद के आश्रय से धर्म नहीं होता, इसलिए उसे परद्रव्य गिनने में आया है। गजब बात! समझ में आया? इसमें उतारा है और इसके अतिरिक्त विशेष कलश में उतारा हुआ है।

भगवान आत्मा वस्तुरूप से, पदार्थरूप से एकरूप ज्ञायक अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप है। उसका नाम स्वद्रव्य, उसका नाम स्वभाव। स्वभाव अर्थात् अपना तत्त्व-द्रव्य। और उस एकरूप में विकल्प से भेद करना, ऐसे विकल्प से भेद किया कि यह ज्ञान और यह दर्शन और यह, उसे परद्रव्य कहा जाता है। ऐसे परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति वर्तती है। क्या है समझ में नहीं आया? यह जवाहरात के व्यापारी। समझ में आया? फिर से। वन्स मोर करते थे न तब? एक बार किया था न? देखो! चारों ही बोल सूक्ष्म आयेंगे।

द्रव्य है न वस्तु? वस्तु है न वस्तु-पदार्थ? भिन्न अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप वस्तु। उसके एकरूप द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा स्वद्रव्य से अस्ति है और उसी द्रव्य को राग द्वारा भेद के विचार करना कि मैं ज्ञान हूँ और दर्शन हूँ और यह हूँ, यह भेद करना, उसे परद्रव्य कहा जाता है। एकपने की अपेक्षा से, अभेद की अपेक्षा से उसी द्रव्य में भेदपने का विचार करना, उसे परद्रव्य कहा जाता है। समझ में आया?

भेद व्यवहार हो गया। निश्चय अभेद है। वह व्यवहार हो गया। व्यवहार हुआ, वह परद्रव्य हुआ। क्यों?—कि भेद के आश्रय से अपनी निर्मलदशा प्रगट नहीं होती, इसलिए उसे परद्रव्य (कहा जाता है)। जैसे परद्रव्य वस्तु है, उसमें से अपनी निर्मल पर्याय नहीं आती, वैसे अखण्ड वस्तु में से भेद के ही लक्ष्य में गया तो उससे भी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। इसलिए उसे परद्रव्य गिनकर, पर की नहीं, यह उसी और उसी में भेद डालकर, एक में। आहाहा! समझ में आया? पर का कहाँ गया इसमें? भीखाभाई! यह तो अब उसी और उसी में दो प्रकार।

वस्तु एकरूप चीज़, अनन्त गुण-पर्याय का एकरूप द्रव्य। वह द्रव्य अर्थात् वस्तु। वह पूरी अखण्ड वस्तु एक की अपेक्षा से स्वद्रव्य कहा गया है, और उसे भेद विचारना कि यह ऐसा है और यह ज्ञान है और ऐसा दर्शन है, ऐसा भेदविकल्प उठाना, उसे ही यहाँ परद्रव्यरूप से वास्तव में गिनने में आया है। इस परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति और स्वद्रव्य की परद्रव्य में नास्ति। समझ में आया?

अब क्षेत्र से। भगवान आत्म असंख्य प्रदेशी क्षेत्र की सत्ता, उसकी सत्ता की चौड़ाई है। पहोळाई समझ में आता है। क्या कहते हैं तुम्हारे? चौड़ाई। भगवान असंख्य प्रदेशी चौड़ाई वस्तु। उस असंख्य प्रदेशी का एकरूप, उसे स्वक्षेत्र कहते हैं। असंख्य प्रदेशी का एकरूप, उसे स्वतन्त्र कहते हैं। वह स्वक्षेत्र से है। परन्तु असंख्य प्रदेश में भेद डालना कि यह प्रदेश... यह प्रदेश... यह प्रदेश... यह प्रदेश... यह प्रदेश... वह के वह प्रदेश का भेद डालकर खड़े रहना, उसे परक्षेत्र कहा जाता है। समझ में आया? परन्तु बहुत सूक्ष्म, बापू! रात्रि में कहा था, नहीं? आया था, नहीं? थे या नहीं रात्रि में? उसमें है यह कलश में। उसमें है। उसमें है तब निकाला है या नहीं? समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह परद्रव्य ही है। निश्चय में स्वक्षेत्र का एकरूप है असंख्यप्रदेशी और उसके भेद क्षेत्र के करना, हों! वह द्रव्य का भेद था। यह क्षेत्र का भेद पाड़कर यह... यह... यह... यह... यह प्रदेश... यह प्रदेश... यह प्रदेश... (वह) परक्षेत्र। उसे परक्षेत्र गिनने में आया है। और उस परक्षेत्र से, असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र, परक्षेत्र से नास्ति और परक्षेत्र में स्वक्षेत्र की नास्ति। ऐसे स्वक्षेत्र की अभेदता की दृष्टि किये बिना उसे निर्मल दशा—सम्यग्दर्शनादि होते नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार अब काल के दो भेद। वस्तु आत्मा त्रिकाल एकरूप है। वस्तु त्रिकाल एकरूप। वस्तु एकरूप। काल अर्थात् उसकी मूल अवस्था अर्थात् अव-निश्चय उसका स्वरूप। त्रिकाल उसका स्वरूप, वह स्वकाल और उसकी एक समय की पर्याय का भेद विचार करना, वह परकाल। समझ में आया? अवस्था से अवस्थान्तर का विचार एकरूप त्रिकाल में से त्रिकाल वस्तु, वह स्वकाल। पहले कहा था, स्वकाल की पर्याय वह स्वकाल। पर का काल, वह उसका स्वकाल, उसका इसमें परकाल का अभाव। समझ में आया? बापू! चैतन्य निधान की समृद्धि... आहाहा! तू कौन है, तेरी महिमा वाणी से आयी नहीं। पूरी वाणी, सर्वज्ञ की वाणी में नहीं आयी। इतना वस्तु का सामर्थ्य। एक अपेक्षा से आया और एक अपेक्षा से नहीं आया, ऐसी दो बातें हैं। समझ में आया?

परमात्मस्वरूप चैतन्य जलहल ज्योति, अनन्त-अनन्त गुण के सामर्थ्य में एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त सामर्थ्य, ऐसा भगवान, उसे कहते हैं, स्वकाल का रूप देखो तो वह त्रिकाली एकरूप रहनेवाला, वह उसका स्वकाल और एक अवस्था से दूसरी अवस्था का अवस्थान्तर का लक्ष्य करना, उसे परकाल कहा जाता है। गजब बात, भाई!

अभी तो उस पर के कारण जो मानते हैं, वे तो कहीं स्थूल में रहे। यह मुझे ज्ञान की पर्याय पर के कारण होती है। उसके कारण होती है... उसके कारण होती है.... हमारा क्षेत्र उसके कारण टिकता है, हमारा काल उसके कारण होता है, हमारा भाव उसके कारण आता है, यह तो कहीं रहा। समझ में आया? परन्तु वस्तुरूप से प्रभु स्वकाल एकरूप दशा, एकरूप दशा, उसे आत्मा की एकरूप दशा को स्वकाल कहें तो उसकी भिन्न-भिन्न अवस्था को परकाल कहते हैं। समझ में आया?

भूत, वर्तमान और भविष्य सब भेद किये, वह परकाल है। वह एकरूप स्वकाल भगवान् चैतन्य जलहल ज्योति में परकाल का अभाव है। अभी उसके ख्याल में बात ले नहीं, विचार में कैसे रखे? और उसकी दृष्टि पन्थ में, दृष्टि के पन्थ में क्या यह है, ऐसा आवे कहाँ से? ऐसे का ऐसा बिना भान के अनादिकाल से उलझा। ओघे-ओघे समझ में आता है? समझे बिना कुटारा किया, ऐसा हुआ धर्म और ऐसा हुआ। चीज का क्या लक्षण है? इस स्वकाल का वास्तविक लक्षण यह है। समझ में आया? और उसकी अवस्थान्तर के भेद, वे सब परकाल हैं। ऐसे परकाल की स्वरूप में नास्ति है।

दूसरे प्रकार से भाव। अब आत्मा में अनन्त गुण भावरूप हैं, वह स्वभाव है। अनन्त गुण भावरूप एकरूप है, वह स्वभाव है और उस गुण में भेद विचारना कि यह ज्ञानगुण और दर्शनगुण और चारित्रगुण भाव की अपेक्षा से, उसे परभाव कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** पहले में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहला तो द्रव्य कहा था, द्रव्य। उसे यह गुणभेद हुआ, वह परद्रव्य हो गया। गुणभेद हुआ, वह परद्रव्य हुआ और यहाँ भावभेद हुआ, वह परभाव हुआ। उसमें इस वस्तु में तो गुणभेद हुआ न उसमें? उसे परद्रव्य कहा। यहाँ भावभेद को परभाव कहा जाता है। समझ में आया?

त्रिकाल स्वभाव ज्ञान, दर्शन और पूर्ण चैतन्यस्वभाव, एकरूप भाव का पिण्ड, वह स्व-भाव—अपना भाव और उस भाव में से भेद करके विकल्प में—विचार में लेना, उसे परभाव कहा जाता है। यह परभाव अर्थात् वह चीज पर नहीं। यह परभाव अर्थात् वह राग परभाव नहीं। भेद का विकल्प उठा न, उसे एकरूप भाव के भाव में भेद किया, उसे परभाव कहा जाता है। उस परभाव में स्वभाव की नास्ति है। एकरूप में परभाव नहीं और परभाव में एकरूप नहीं। ओहोहो! अनेकान्त वस्तु... समझ में आया? क्या अनेकान्त है? अनेकान्त-अनेकान्त तो सब पुकारते हैं। अनेकान्त है। वस्तु आचार्यों ने अनेकान्त कही है। तुम

(कहते हो) उसमें एकान्त होता है, निश्चय से धर्म होता है और व्यवहार से नहीं होता, परन्तु यही अनेकान्त है। स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म होता है और भेद तथा पर के आश्रय से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। इसके कारण होता और इसके कारण होता है, ऐसा अनेकान्त कहाँ से लाया? फुदड़ीवाद? समझ में आया? यह भाव के बोल।

इस प्रकार द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के चार प्रकार हुए। इसलिए इसमें आ गया या नहीं? द्रव्य से वस्तु द्रव्य है। वह द्रव्य, पर्याय की अपेक्षा से नहीं। पर की अपेक्षा से तो नहीं, अलग बात, परन्तु एक समय की अनन्त गुणों की एक समय की पर्याय, उसरूप द्रव्य नहीं। द्रव्य में उन अनन्त गुण के पर्याय की नास्ति है। एक अंश की पर्याय की त्रिकाल वस्तु में नास्ति है। अरे! तेरा एकरूप है, उस पर दृष्टि रखनी है। अनेकरूप का ज्ञान करना है, अन्दर है वह, परन्तु अनेकपने का आश्रय हो और निर्मल पर्याय हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? बारह (बोल) हुआ।

यह द्रव्य-क्षेत्र, काल, भाव आये। क्या कहा, समझ में आया इसमें? बारह बोल हुए बारह। सेठी! गजब परन्तु समय सब बिताया है न पर में। यह शास्त्र ....छह काय के बोल सीखे। और वह क्या कहलाता है? जीवविचार। जीवविचार, अजीवविचार, अमुक अरे! वास्तविक जीवविचार तूने कभी नहीं किया। कहाँ से करे? रटकर बैठा है। बासठ सीखा, ९८ बोल का क्या कुछ आता है.... आता है न? ज्ञानसागर में आता है। जामनगर का प्रकाशित आता है न उसमें? बहुत बोल आते हैं। यह सीखा... यह सीखा... अब सीखा, परन्तु यह तो समझ। मूल जाने बिना उसका फल क्या? आम चाहिए हो तो आम जहाँ-जहाँ लटके, वहाँ पानी पिलाने से आम बढ़ेंगे? या वह आम जहाँ से रस चढ़कर बढ़ता है, उसके मूल में पानी डाले तो बढ़े? डोल वहाँ ऊपर डाल आवे। जहाँ आम पका हो न? केरी समझते हो? आम-आम। आम पकता है न? पचास-सौ मण हो एक आम (वृक्ष) में, हों! बड़ा आम्रवृक्ष हो न तो उसमें सौ मण आम, तो प्रत्येक जगह डोल रखकर आम को डुबोवे, आम को डुबोवे। मूल में पानी पिलाये तो वहाँ रस उसे चढ़ता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय में अभेद चैतन्यद्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से वापस चारों का एकरूप है। यह और चार भेद से समझाने के लिये कहा है। समझ में आया?

उसके एकरूप में अन्दर तेरा पानी अर्थात् वीर्य। समझ में आया? पानी अर्थात् वीर्य। पानीयाला नहीं कहते हैं। लोग नहीं कहते कि यह पानीयाला है। वीर्यवाला है, ऐसा कहते हैं या नहीं? इसी प्रकार एकरूप चीज़ में अनेकपना सब समझकर। समझना सब

और दृष्टि देना एक में। उस निधान में दृष्टि देने से तेरी पर्याय निर्मल होगी, बाकी होगी नहीं। बारह बोल हुए। अब तेरहवाँ।

जब यह ज्ञानमात्र भाव अनित्य ज्ञानविशेषों के द्वारा अपना नित्य ज्ञान सामान्य खण्डित हुआ मानकर नाश को प्राप्त होता है,.... क्या कहते हैं ? १३वाँ बोल। यह ज्ञानमात्र भाव नित्य है, उसमें से वर्तमान अनित्य ज्ञान विशेष दशा होती है न विशेष ? त्रिकाल ज्ञान नित्य और वर्तमान अवस्था विशेष अनित्य। उन अनित्य ज्ञानविशेषों द्वारा वह अपना नित्य ज्ञान सामान्य। अरे रे ! यह पर्याय तो अनित्य क्षणिक, क्षणिक, यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। मेरा ज्ञान सामान्य खण्डित हुआ, मेरा ज्ञान एकरूप नाश (को प्राप्त हुआ)। ऐसा मानकर अपनी वर्तमान दशा को अनित्यरूप से भी मेरा भाव है, ऐसा न मानता हुआ वह अपनी पर्याय का नाश करता है। समझ में आया ? वहाँ भाव अनित्य ज्ञानविशेषों.... वह अनित्य ज्ञान विशेष हैं, हों ! क्या कहा ?

वे पर के अनित्य विशेष नहीं। आत्मपदार्थ में सामान्यरूप त्रिकाल की विशेष दशायें वर्तमान अनित्य विशेष उसकी अवस्था है। परन्तु उसे ज्ञानमात्र अनित्य ज्ञानविशेष अपना निज... अरे ! परन्तु यह विशेष यह क्या ? मेरा एकरूप... अरे ! मैं तो नाश हो गया। विस्तरण, बिखर गया। सब मेरे रूप अनित्यरूप परिणमते हुए बिखर जाता हूँ। विखाय जाऊँ छुँ, समझते हो ? टुकड़े हो गये। हमारी काठियावाड़ी भाषा। देखो ! यह लड़का भी समझे हमारी काठियावाड़ी भाषा और तुम नहीं समझते। भाषा को जानना चाहिए। समझ में आया ?

कहते हैं, ज्ञानमात्र भाव.... एकरूप भाव अनित्य ज्ञानविशेषों के द्वारा.... वह अवस्था में अलग-अलग अवस्था... ओहोहो ! बहुत हों परन्तु। ....आया लगता है। ...क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा एकरूप ज्ञानस्वभाव में अनेकपना परिणमन देखकर मेरा एकरूप ज्ञान खण्ड-खण्ड बिखर गया, टुकड़े हो गये, ऐसा मानकर अज्ञानी नाश पाता है। तब ( उस ज्ञानमात्र भाव का ) ज्ञान-सामान्यरूप से नित्यत्व प्रकाशित करता हुआ.... भले पर्याय में विशेषता हो, परन्तु ज्ञान नित्यपने तो कायम है। स्वभावरूप से तो कायम है। पर्याय में अनेकता, अनित्यता, विविधता, विशेषता होने पर भी ज्ञानगुण तो सामान्य है अर्थात् आत्मा तो सामान्य है। ऐसा अपने ज्ञान अर्थात् आत्म सामान्यरूप से नित्यत्व प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे जिलाता है-नष्ट नहीं होने देता।

और जब वह ज्ञानमात्र भाव नित्य ज्ञानसामान्य का ग्रहण करने के लिये.... अज्ञानी

की बात चलती है पहली। ज्ञानमात्र भाव त्रिकाल। नित्य ज्ञान.... ज्ञान.... ज्ञान.... ज्ञान.... ज्ञान.... सामान्य, उसे ग्रहण करने के लिये अनित्य ज्ञानविशेषों के त्याग के द्वारा.... उस पर्याय का अनित्यपना छोड़... छोड़.... छोड़.... यह क्या? यह कहा नहीं? एक बार अनित्य की बात चलती थी। बाबा कहे, अरे! अनित्य आत्मा? वह मानो महाराज बड़े अध्यात्मी हैं, इसलिए नित्य की बात करेंगे। नित्य की बात करते होंगे। इसलिए वह बाबा बेचारा सुनने आया था। (संवत्) १९९९ के वर्ष में रात्रि में। जहाँ (कहा कि) आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है। अनित्य! अरे! अनित्य, उसकी पर्याय अनित्य है। उसे अनित्यपना देखकर मेरा ज्ञान नित्य है। नित्य रखने के लिये उस अनित्य के विशेषों को छोड़ दे। यह दृष्टि में से छोड़ दे, उसके अस्तित्व का स्वीकार न करे अथवा ज्ञानविशेष का त्याग करके अपने को नष्ट करता है। सेठी! यह चौदह बोल के समय कभी यहाँ तुम नहीं हो। फिर पढ़ा होगा या नहीं यह पूरा समयसार? पढ़ा है?

**तब ( उस ज्ञानमात्रभाव का ) ज्ञानविशेषरूप से....** यह ज्ञान विशेषरूप से अनित्य, इसका स्वभाव है। ज्ञान का सामान्यरूप त्रिकाल रहने पर भी ज्ञान का विशेषरूप होना, पर्यायरूप होना, विशेषदशा रूप होना, अवस्थारूप होना, यह उसका स्वभाव है। ऐसा अपने को प्रकाशित करता हुआ अनित्यत्व प्रकाशित करता हुआ.... देखो! नित्यपना भी त्रिकाल है और वर्तमान पर्याय अपने गुणों की पर्याय का अनित्यपना प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे अपना नाश नहीं करने देता। लो, समझ में आया? देखो! चौदह बोल सरस हुए। अभी चौदह बोल के कलश हैं, उसमें और। फिर लेंगे बाद में। लेना तो है, हों! छोड़ना कुछ नहीं है।

**यहाँ तत्-अतत् के २ भंग,...** यहाँ तत्-अतत् के दो भंग। आया था न ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञान ज्ञानरूप से है और ज्ञेयरूप से नहीं। अज्ञानी ज्ञान को ज्ञेयरूप मानता है और ज्ञानरूप नहीं मानता। **एक-अनेक के २ भंग,....** वस्तु एकरूप है और गुण-पर्याय से अनेक है। दोनों हैं। अज्ञानी एक को मानता है और अनेक को नहीं मानता, अनेक को मानता है और एक को नहीं मानता, यह भी वस्तु के स्वभाव की श्रद्धा से भ्रष्ट हुए हैं। **सत्-असत् के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से ८ भंग,....** वे चार और आठ यह। प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य से है, क्षेत्र से है, काल से है, भाव से है। परद्रव्य के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं है, ऐसे आठ भंग हुए। अपने सूक्ष्म भी थोड़े उतारे हैं।

**नित्य-अनित्य के २ भंग....** ज्ञान भगवान नित्य भी है और पर्याय की विशेष अपेक्षा

से अनित्य भी है। इस प्रकार सब मिलाकर १४ भंग हुए। इन चौदह भंगों में यह बताया है कि - एकान्त से ज्ञानमात्र आत्मा का अभाव होता है.... एक ही नित्य मानना, अनित्य ही मानना, स्व से है—ऐसा मानना, पर से नहीं—ऐसा नहीं मानना। पर से नहीं और स्व से है—ऐसा न मानना। ऐसे एकान्त से एक ही धर्म को मानने से। ज्ञानमात्र आत्मा का अभाव होता है.... ज्ञानमात्र का नाश हो जाता है। और अनेकान्त से आत्मा जीवित रहता है;.... लो! अब यह जीवनशक्ति आयेगी। अनेकान्त से आत्मा जीवित रहता है;.... जीवित अर्थात् जैसा है, वैसा उसका जीवन उज्ज्वलित होता है, उसका जीवन उजलित होता है, प्रकाश होता है।

अनेकान्त से आत्मा जीवित रहता है;.... वस्तु की दृष्टि, पर्याय दृष्टि सत् रूप से है, पररूप से नहीं। इससे आत्मा उसकी पर्याय में जीवित जागती ज्योति होता है। समझ में आया? एकान्त से आत्मा जिस स्वरूप है, उस स्वरूप नहीं समझा जाता,... इन चौदह बोल में एक बोल माने और दूसरा बोल न माने, दूसरा माने और पहला न माने तो उस स्वरूप नहीं समझा जाता,... कैसा स्वरूप है, वैसा इसे समझण में नहीं आता। इसके ज्ञान में नहीं बैठता। अर्थात् कि स्वरूप में परिणमित नहीं होता,... इसका परिणमन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप नहीं होता।

और अनेकान्त से.... देखो! यह चौदह बोल जिस प्रकार से है, वैसा समझने से वह वास्तविक स्वरूप से समझा जाता है,... कौन?—यह आत्मा। वह वास्तविक स्वरूप से समझ में आता है और स्वरूप में परिणमित होता है। इसलिए यह चौदह बोल कहे गये हैं। इनके चौदह भंग कहेंगे। समझ में आया? इसके चार बोल वापस वे उतारे हैं न उसमें कुछ? कलश में दूसरे प्रकार से है कि ज्ञान, ज्ञान के आधार से है या ज्ञान ज्ञेय के आधार से है? एक बोल अधिक। बाकी यह तो दूसरे आ गये।

आत्मा, आत्मा के आश्रय से है या आत्मा ज्ञेय के आश्रय से है? आत्मा अस्ति है या नास्ति? आत्मा एक है या अनेक? अनित्य-नित्य। छह बोल तो आ गये। परन्तु यह आत्मा आत्मा के आश्रय से है या ज्ञेय के आश्रय से है? यह जरा सूक्ष्म बात की है। आत्मा ज्ञायकभावरूप ज्ञायकभाव के आश्रय से है और ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय का ज्ञान होता है, होता है अपना, परन्तु उसे ज्ञेय गिनकर वह ज्ञायकभाव ज्ञेयरूप नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? तथापि ज्ञेय के आश्रय से है, ऐसा पर्याय में कहा जाता है। ज्ञान की पर्याय पर के ज्ञेय को जानने के सामर्थ्यरूप परिणमती है। उसे ज्ञेय का ज्ञान कहकर... ज्ञान तो अपना

परिणामा है, परन्तु ज्ञेय का ज्ञान है और ज्ञान का ज्ञान उसका नहीं, ऐसा गिनकर यह आत्मा परज्ञेय के आश्रय से पर्याय अपेक्षा से है, ऐसा कहा जाता है। भारी सूक्ष्म बात। देवीलालजी!

भगवान आत्मा ज्ञान, ज्ञान का सहारा है। सहारा अर्थात् आश्रय। सहारा उसका है या ज्ञान को ज्ञेय का सहारा है? सुन तो सही। यह दोनों बात है एक अपेक्षा से। एक अपेक्षा से ज्ञान ज्ञान के सहारे का है, वस्तु वस्तु के सहारे की है और उसकी पर्याय में ज्ञेय का ज्ञान हुआ, वह है अपना, परन्तु पर का ज्ञान है, ऐसा गिनकर वह ज्ञान-द्रव्य पर के सहारे का है, ऐसा पर्याय की अपेक्षा से कहा जाता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें परन्तु भाई! सेठी! देखा!

इस प्रकार, भगवान अमृतचन्द्राचार्य महाराज यह अधिकार ४१५ (गाथाओं की) टीका का पूर्ण करके अनेकान्त और... अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद और उपाय-उपेय भाव की व्याख्या करने के लिये स्वयं टीका शुरु की है। उसमें यह एक अनेकान्त के दो प्रकार हैं। स्याद्वाद से कहना ऐसे... उसमें यह चौदह बोल का एक प्रकार कहा। उसके अभी चौदह कलश आयेंगे। अब इसका दूसरा भाग जो अनेकान्त का है... समझ में आया? वह कल से सवेरे समयसार शुरु करने में आयेगा। उपाय-उपेय तो बाद में। लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



७

श्री समयसार कलश-टीका, कलश - ७-८, प्रवचन - ९

दिनांक - १५-०३-१९६५

कलश-टीका का जीव अधिकार चलता है। छह कलश हो गये। सातवाँ कलश।

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।

नवतत्त्वगत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति ॥७॥

यह १३वीं गाथा का उपोद्घात है। १३वीं गाथा आती है न, उसके पहले का यह कलश है। देखो! क्या कहते हैं? 'अतः तत् प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति' यहाँ से आगे.... 'तत्' वही... 'प्रत्यग्ज्योति' शुद्धचेतनामात्र वस्तु.... पहले में 'प्रत्यग्ज्योति' का अर्थ सर्वज्ञ किया था न? यहाँ तो वस्तु लेनी है न अब तो? 'प्रत्यग्ज्योति' अर्थात् शुद्ध चेतनामात्र वस्तु। अकेला आत्मा शुद्ध चेतनस्वरूप, उस वस्तु को 'चकास्ति' शब्दों द्वारा युक्ति से कही जाती है। वह वस्तु शुद्ध चैतन्य पदार्थ जो सम्यग्दर्शन का विषय, ध्रुव ज्ञायकभाव, वह सम्यग्दर्शन का विषय, ऐसी जो वस्तु शब्दों द्वारा युक्ति से कही जाती है। कैसी है वस्तु? 'शुद्धनयायत्तम्' 'शुद्धनय' अर्थात् वस्तुमात्र के.... देखो! शुद्धनय अर्थात् वस्तुमात्र।

वह वस्तु स्वयं ही शुद्धनय। ऐसा। नय अर्थात् ज्ञान और ज्ञान का विषय, ऐसा दो भेद ही यहाँ नहीं है। अध्यात्म में शुद्धनय... नय तो है ज्ञान का भाग, परन्तु यहाँ नय का विषय वह पूरा चैतन्य ध्रुव निर्विकल्प पदार्थ, उसे ही यहाँ शुद्धनय कहा गया है। समझ में आया? 'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' ऐसा कहा है वहाँ। ग्यारहवीं (गाथा) में यही शैली है।

'शुद्धनयायत्तं' वस्तुमात्र के आधीन है। कैसी है वस्तु? वस्तुमात्र के आधीन है... ऐसी भाषा है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? कैसी वस्तु है आत्मा चेतनामात्र वस्तु? कि जो वस्तुमात्र के आधीन है। स्वयं के ही आधीन, वह वस्तु है, पर के आधीन नहीं। राग के, निमित्त के, संयोग के आधीन वह वस्तु है ही नहीं। उसे यहाँ शुद्धनय अथवा वस्तु कहा जाता है। समझ में आया? उसमें वहाँ कहा था। कल तो शुद्धनय में आया था न?

**मुमुक्षु :** वस्तुमात्र....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह वस्तुमात्र ।

कहते हैं, वस्तु भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिसे आत्मा कहते हैं, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बन्ध वह तो विकार है, वह आत्मा नहीं, वह शुद्धनय नहीं। शुद्धनय अर्थात् वस्तुमात्र के... 'आयत्तम्' है न? आधीन है। उसे यहाँ वस्तु कहते हैं। भावार्थ इस प्रकार है -जिसका अनुभव करने पर सम्यक्त्व होता है, उस शुद्धस्वरूप को कहते हैं.... क्या कहते हैं? एक समय में पूर्ण शुद्ध चैतन्य वस्तु, स्वयं ही अपनी निर्मल पर्याय से प्रगट हो, वह स्वयं के ही आधीन वस्तु है। पुण्य और पाप, व्यवहार-विकल्प या निमित्त या श्रवण करके प्रगट हो, ऐसी वह वस्तु नहीं है—ऐसा यहाँ कहना है। एक समय का शुद्ध चैतन्य भण्डार भगवान, वह वस्तु, वस्तुमात्र के आधीन है। अपने स्वभाव के ही आधीन वस्तु है। आहाहा! समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** आधीन अर्थात् ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसके स्वाधीन। स्व-आधीन—वह अपने आधीन है। अपने आधीन है। कोई राग और पुण्य के आधीन नहीं। कर्म के आधीन नहीं, राग के आधीन नहीं, कर्म अर्थात् जड़ के आधीन नहीं और विकार के आधीन नहीं।

अकेली चैतन्यवस्तु ज्ञायक आनन्द, ऐसी जो वस्तु वह अपनी ही वस्तु के आधीन है। उसमें नहीं आया था शुद्धनय में? 'शुद्धनयतः' निर्विकल्प वस्तुमात्र की दृष्टि से देखते हुए.... ऐसा आया था न? आठवें पृष्ठ पर ऊपर। 'शुद्धनयतः' निर्विकल्प वस्तुमात्र की दृष्टि से देखते हुए.... शुद्धनय की व्याख्या ही यह की है। आहाहा! कथनपद्धति ही बहुत सरस है। स्वयं ही स्वयं के आधीन है। पोते अर्थात् निज। निज अर्थात् ज्ञायकस्वरूप, पूर्णानन्द आत्मा। वह स्वयं अपने ही आधीन है। राग और विकल्प के आधीन वह वस्तु कभी नहीं है। समझ में आया? ऐई! देवानुप्रिया! यह नया-नया है, यह सब वहाँ। वहाँ मानो पहले सुन लिया, इसलिए सब आ गया, ऐसा उसमें नहीं है। यह तो दो-चार दिन (रहेंगे) फिर भागेंगे। टिकिट लेकर आये हैं। कहो, समझ में आया ?

वस्तु वस्तुमात्र के आधीन है। यह व्यवहार विकल्प, वह वस्तु नहीं। वस्तु वस्तुमात्र के आधीन है, उसमें क्या कहा? व्यवहार के विकल्प के-भेद के आधीन वह वस्तु नहीं। समझ में आया? आत्मा वर्णन करना है न? १३वीं गाथा की शुरुआत का यह तो उसका उपोद्घात है। १३वें से नौ तत्त्व का वर्णन जो विस्तार से करना है, उसका पहले (उपोद्घात

करते हैं)। आत्मवस्तु, वस्तु वस्तु के आधीन है। भगवान आत्मा एक समय का शुद्ध चैतन्यदल, पूर्ण निर्विकल्प वस्तु, वह निर्विकल्प वस्तु स्वयं ही निर्विकल्प के आधीन है।

**मुमुक्षु :** इतना कहने के लिये बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना की ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसके लिये बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना है। कहो, समझ में आया ? कहाँ गये देवशीभाई ? यहाँ नहीं दिखाई दिये। सामने आगे आओ न यहाँ सामने। तुम तो मुख्य व्यक्ति कहलाते हो। समझ में आया ?

कहते हैं कि हम शब्दों द्वारा और युक्ति द्वारा आत्मवस्तु को कहेंगे। परन्तु वह आत्मा अब कैसा है ? कि 'शुद्धनयायत्तं' वस्तुमात्र के आधीन है। चिदानन्द ज्योति उसकी निर्मल निर्विकल्प पर्याय भी उस वस्तु में अभेद है। वह वस्तु है उसकी। राग और विकल्प और व्यवहार और निमित्त, वह वस्तु नहीं, वह अवस्तु है। वास्तव में भेद भी अवस्तु है। बहुत संक्षिप्त ऐसी शैली की है न। समझ में आया ? भगवान आत्मा एक समय का निर्विकल्प चैतन्य पदार्थ, अभेद वस्तु, वह वस्तु वस्तु के ही आधीन है, तीन काल में पर के आधीन है नहीं। ऐसी दृष्टि होने पर वस्तु का अनुभव होता है, उसे यहाँ निर्विकल्प अनुभव कहा जाता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म! समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** चलते प्रवाह से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चलता प्रवाह मिथ्या हो तो उससे विरुद्ध ही हो। उसमें क्या ? अनादि से अज्ञानी बाहर से मान बैठा है कि यह आत्मा कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति करें तो प्राप्त होगा। कुछ व्यवहार शुद्ध हो तो प्राप्त होगा, यह बात बिल्कुल मिथ्या है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

**मुमुक्षु :** आगम में ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आगम में और अध्यात्म में दोनों में एक ही है। दोनों में विरुद्ध है कुछ ? कहो, समझ में आया ?

**वस्तुमात्र को....** देखो न! शुद्धनय। वस्तु परमात्म निज स्वरूप ज्ञायकस्वभाव का पूरा रसकन्द। समझ में आया ? ऐसा भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वह अपने ही आधीन है; वह दूसरे के आधीन है नहीं। समझ में आया ? **भावार्थ इस प्रकार है जिसका अनुभव करने पर सम्यक्त्व होता है, उस शुद्धस्वरूप को कहते हैं-** जिसका अनुभव करने से सम्यग्दर्शन हो, ऐसे शुद्धस्वरूप को कहा जाता है। जिसका अनुभव करने से अर्थात् शुद्ध चैतन्य एक समय

में पूर्ण आनन्द, उसका अनुभव करने से सम्यक् होता है। किसी भेद का, व्यवहार का और विकल्प का अनुभव करने से सम्यक्त्व हो, यह वस्तु है नहीं। गजब बात, भाई! वे सब तो चिल्लाहट मचायेंगे। बाहर आयेगा (तो कहेंगे) परन्तु यह क्या कहते हैं? एकान्त है, अरे! एकान्त है। सुन न अब, यह एकान्त ही है। एकान्त अर्थात् अत्यन्त शुद्धस्वरूप परमार्थ निश्चय। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** अनुभव करना, इसका अर्थ क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनुभव अर्थात् आत्मा के आनन्द का अनुभव करना। अन्तर्मुख होकर उसका-आनन्द का वेदन करना, वह अनुभव। अनुसरना-चैतन्य अखण्डानन्द पूर्ण का ध्येय करके अनुसरना, उसका वेदन होना, वह अनुभव। निर्विकल्प वेदन द्वारा वह सम्यग्दर्शन होता है। इस वस्तु के अनुभव द्वारा, त्रिकाल शुद्ध आत्मपदार्थ के अनुभव द्वारा अर्थात् उसे वेदन द्वारा यह वस्तु है, ऐसा उसका सम्यग्दर्शन होता है। बात सूक्ष्म है, भाई! लोगों को बाहर का इतना मिला और सुना है और प्रवाह... वह प्रवाह खोटा है। यह प्रवाह दूसरे प्रकार का है। इसे बैठाना पड़ेगा यदि सत्य की शरण लेना हो तो। **उस शुद्धस्वरूप को कहते हैं :-**

‘यदेकत्वं न मुञ्चति’ ‘यत्’ जो शुद्ध वस्तु... है... ‘एकत्वं’ की व्याख्या। शुद्धपने को नहीं छोड़ती है। वस्तु वस्तु है, वह कभी एकपने को नहीं छोड़ती। नौ तत्त्व के भेदरूप होने पर भी वह वस्तु वस्तुरूप ही रही है। पर्याय में नौपने के भेदरूप परिणमती होने पर भी वस्तु वस्तुरूप से है। वस्तु नौ रूप से एकाकार हो नहीं गयी। आहाहा! नौ तत्त्व का अनुभव, वह मिथ्यात्व है। चिल्लाहट मचा जाये। कहाँ गये दिल्लीवाले भाई? कल शाम को कहते थे न? चिल्लाहट मचाये। परन्तु सुन तो सही, भाई!

भेदरूप पर्याय के भेदरूप का अकेला अनुभव, उसमें पूरी चीज़ एक समय में ध्रुव... ध्रुव... धातु पूरा सत्-सत्। सत् का दल। वह तो एक समय का भेदरूप भाव। पूरा सत् का परमार्थ पूरा दल, जो अनादि-अनन्त जिसका सत्त्व है, ऐसे दल के अनुभव बिना अकेले पर्याय के भेद का अनुभव अकेला नव तत्त्व का, वह नव तत्त्व तो अकेले रागादि के। समझ में आया? उन नौ में संवर-निर्जरा-मोक्ष की निर्मल पर्याय नहीं आती। उसमें आयेगा यहाँ बात करेंगे उसमें। अन्तर है उसमें। समझ में आया? १३वीं गाथा में आता है कि नौ तत्व का अनुभव, वह वस्तु है। अर्थात् कि भेदरूप वस्तु है, परन्तु उसके भेद का अकेला अनुभव, उसमें तो संवर-निर्जरा-मोक्ष नहीं आते। अनादि के नौ का अनुभव है वह। उसमें तो

आयेगा। पर्याय में संवर-निर्जरा-मोक्षरूप परिणामी है वह वस्तु; तथापि एकरूप चैतन्य द्रव्यपना, उसका छूटा नहीं। क्या समझ में आया इसमें? पोपटभाई! नौ तत्त्व का एक प्रकार।

‘यत्’ जो शुद्ध वस्तु शुद्धपने को नहीं छोड़ती है। यहाँ पर कोई आशंका करेगा... देखो! यहाँ आशंका ही प्रयोग की है। कोई जानने की अभिलाषा करता है कि भाई! जीववस्तु जब संसार से छूटती है, तब शुद्ध होती है। आप तो शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... हो, ऐसा कहते हो, परन्तु संसार की विकारी पर्याय, उदयभाव का मलिन भाव छूटे तो उसे शुद्ध कहा जाता है और वह छूटे बिना तुम वस्तु को शुद्ध कैसे कहते हो? प्रश्न समझ में आता है इसमें? जीववस्तु जब संसार से छूटती है,... मलिनदशा उदयभाव के भाव विकारी परिणाम असिद्धभाव, उससे छूटे, तब शुद्ध होती है, ऐसी शिष्य की शंका है।

उत्तर इस प्रकार है-जीववस्तु... वस्तु जो पदार्थ अनन्त गुण का रसकन्द अकेला वह द्रव्यदृष्टि से विचार करने पर.... उस वस्तु की कायमी चीज की दृष्टि से विचार करने पर त्रिकाल ही शुद्ध है। वह त्रिकाली शुद्ध है, पर्याय से अशुद्ध है, वह वस्तु यहाँ नहीं। यहाँ तो वस्तु त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? एक समय में वस्तु जो सत् पूरी अखण्ड आनन्द ज्ञायकरस सत्त्व पूरा, पूर्ण सत्त्व, त्रिकाल का अकेला सत्त्व, वह शुद्ध ही है। कहो, समझ में आया? जीववस्तु भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त गुण ध्रुवरूप से रहे होने पर भी, इस वस्तुदृष्टि से देखे अथवा विचार करें तो त्रिकाल शुद्ध है।

वही कहते हैं- देखो! ‘नवतत्त्वगतत्वेऽपि’ जीव.... मैं जीव हूँ—ऐसा विकल्प/भेद। अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप उसरूप परिणत है.... पर्यायरूप परिणती है। पर्याय में नौ का परिणमन है। पर्याय में नौ का परिणमन पर्यायरूप से-अवस्थारूप से है, अस्तिरूप से है। नहीं-ऐसा नहीं। समझ में आया? भाई! वीतरागमार्ग ऐसा है, वस्तु स्वभाव ऐसा है। वह वस्तु स्वयं पर्याय अर्थात् अवस्था में नौरूप परिणत है। कोई कहे, बिल्कुल व्यवहार से भी नहीं (तो) ऐसा नहीं है। समझ में आया? जयन्तीभाई! यह आत्मा-आत्मा करे परन्तु ऐसा आत्मा कहीं नहीं है। अब बहुत चलता है वहाँ। ऐसा कि यहाँ का सब वहाँ चले मुम्बई में, इसलिए वे कहें यहाँ चले गीता का आवे, वह कहे अमुक का आवे।

बापू! यह वस्तु क्या है? पदार्थ क्या है? किसी का क्या हुआ कहाँ है और किसी का किया हुआ है, इसलिए है, ऐसा भी कहाँ है? वस्तु है ही ऐसी। एक-एक पदार्थ स्वभावरूप

चैतन्यवस्तु, उसका वस्तुरूप स्वभाव से देखें, एकरूप चीज़ देखें तो वह त्रिकाल शुद्ध है और वह सम्यग्दर्शन का विषय है और वही शुद्ध, वह सम्यग्दर्शन का कारण है। समझ में आया ? विकल्प-बिकल्प भेद कोई सम्यग्दर्शन का कारण है ही नहीं। परन्तु संसार अवस्था में नौरूप परिणत है, परिणत है। है... है... था न उसमें तो ? अपने है डाला है। यह है ऐसा रखना, है यह रखना। अस्तिरूप से सिद्ध करते हैं। ऐसी पूरी चिद्घन वस्तुरूप से वस्तु होने पर भी पर्याय में अवस्था का परिणमन उसकी दशा में नौ रूप से है। समझ में आया ?

**तथापि शुद्धस्वरूप है।** तथापि वस्तु, वस्तुरूप से तो शुद्धस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया इसमें ? एक ही सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसका परिणमन भले नौ प्रकार से, अमुक प्रकार से भेद-भेदरूप से हो, वस्तुरूप से देखो तो वस्तु तो शुद्ध एकरूप ध्रुवधारा, ध्रुवधारा सत् की सत्ता की धारा एकरूप त्रिकाल है। समझ में आया ? शब्द कम पड़ते हैं। लिखा है न भाई ने सब। नहीं ? नियमसार में। मुनि को शब्द कम पड़ते हैं, कहते... कहते क्या कहना ? ऐसी वस्तु, वस्तु, ओहोहो ! चैतन्य महान परमात्म महान पदार्थ एक समय का अनन्त गुण की राशि भगवान एकरूप महान पदार्थ... आहाहा ! उसे तीन काल स्पर्शते नहीं, कालभेद जिसे स्पर्श नहीं करता। समझ में आया ? ऐसी चैतन्य वस्तु शुद्ध है। पर्यायरूप से नौरूप परिणमन होने पर भी वस्तु तो शुद्ध ही है। आहाहा ! यह सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त ऐसी वस्तु की मर्यादा है, ऐसी कोई देख नहीं सकता। समझ में आया ? वस्तु की मर्यादा ऐसी है। उसका गढ़ ही उस जाति का है। पर्याय में नौ रूप परिणमन, वस्तुरूप से एक। यह चीज़ जिसने पूरा देखा है तीन काल, उसे ही ज्ञान में यह आती है। समझ में आया ?

**भावार्थ इस प्रकार है-** देखो ! तात्पर्य ऐसा है कि जैसे अग्नि दाहक लक्षणवाली है,.... दाहक लक्षणवाली है-जलाने के लक्षणवाली है। वह काष्ठ,.... अर्थात् लकड़ी, तृण... अर्थात् घास, छाणां... यह कण्डा होता है न कण्डा ? आदि समस्त दाह्य को दहती है,.... सबको। वह अग्नि सबको दहने-जलनेयोग्य को जलाती है। जलनेयोग्य को जलाती है। ऐसा है न ? कहीं आकाश को जलाती नहीं। समझ में आया ? जैसे अग्नि दाहक लक्षणवाली है, वह काष्ठ, तृण, कण्डा आदि समस्त दाह्य को दहती है,.... समस्त दाह्य को—जलनेयोग्य को जलाती है। दहती हुई... जलाती हुई, अग्नि दाह्याकार होती है;... भाषा देखो ! वह अग्नि जलाने के योग्य है तथापि, वह स्वयं जलनेयोग्य जो लकड़ी आदि, उनके आकार अग्नि पर्याय में होती है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात है।

अग्नि वस्तु है, वह दाह्याकार होती है। जलनेयोग्य लकड़ी-तृण आदि उस रूप परिणामते वह उसके आकार अवस्था में होती है। पर उसका विचार है कि जो उसे काष्ठ, तृण और कण्डे की आकृति में देखा जाये... उसकी आकृति की अवस्था में देखा जाये लकड़ी, पत्ते आदि से, तो काष्ठ की अग्नि तृण की अग्नि और कण्डे की अग्नि ऐसा कहना सांचा ही है.... यह पर्यायरूप से आकृति है, वह बराबर है। समझ में आया ? अग्नि। यह तो दृष्टान्त है। फिर चैतन्य (में उतारेंगे)। अग्नि जो है.... अग्नि कहते हैं न ? कि अग्नि लकड़ी, तृण को जलाती है, दहती हुई जलने के योग्य की आकृतिरूप परिणमती है, उस पर्यायरूप वह होती है। समझ में आया ?

काष्ठ की अग्नि तृण की अग्नि और कण्डे की अग्नि ऐसा कहना सांचा ही है... वह वस्तु पर्यायरूप से वह है, यह मिथ्या नहीं है। अत्यन्त भ्रम है—ऐसा नहीं है। और जो अग्नि की उष्णतामात्र.... देखो! भाषा यह ली। पहले लिया कि दाहक लक्षण लिया। तथापि उसका उष्ण स्वभाव एक ही लो। उष्णतामात्र विचार जाय तो उष्णतामात्र है। उष्ण स्वभावमात्र अग्नि है। वह पर्याय की आकृति अवस्था में है, उसे गौण कर दो तो अकेली अग्नि उष्णतामात्र है। काष्ठ की अग्नि, तृण की अग्नि और कण्डे की अग्नि ऐसे समस्त विकल्प झूठे हैं। समस्त भेद झूठे हैं। झूठा का भारी लेते हैं।

उसी प्रकार.... अब दृष्टान्त का सिद्धान्त। नौ तत्त्वरूप जीव के परिणाम हैं। आत्मा ज्ञायकमूर्ति एक स्वरूप त्रिकाल शुद्ध होने पर भी उसके नौ तत्त्व का परिणामन, यहाँ अब शुद्ध और अशुद्ध दोनों लेना है। समझ में आया ? नौ तत्त्वरूप जीव के परिणाम हैं। नौ तत्त्वरूप जीव के परिणाम हैं। एक मैं जीव हूँ, ऐसा विकल्प, वह जीव के परिणाम। अजीव है, उसका ज्ञान भी उस समय अजीव के परिणाम। ऐसे आस्रव दया-दान का विकल्प है, पुण्य-पाप का विकल्प है, वह भी एक पर्याय में वह है। उसरूप है। वह जीव के परिणाम हैं। पुण्य-पापरूप आस्रव, वह भी जीव के परिणाम हैं। राग में अटकना, वह भावबन्ध, वह जीव के परिणाम हैं। आत्मा की शुद्धता संवर-निर्जरा और मोक्ष वह, परिणाम है; वस्तु नहीं। आत्मा एक समय में अखण्डानन्द ध्रुव, उसका अनुभव, उसका ज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य, वह पर्याय है, वह परिणाम है। वह पर्याय परिणाम है। है, नहीं - ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

नौ तत्त्वरूप जीव के परिणाम हैं। वे परिणाम कितने ही शुद्धरूप हैं, कितने ही अशुद्धरूप हैं। लो ! भगवान आत्मा एक समय में ऐसे ध्रुव धातु सत् पूरा सत्, पूर्ण वस्तु है।

ऐसी द्रव्यदृष्टि से उसे सम्यग्दर्शन का वह विषय, इस प्रकार त्रिकाली शुद्ध द्रव्य होने पर भी उसकी पर्याय में नौ प्रकार के परिणामन की पर्याय है। उसमें कितनी ही शुद्ध और कितनी ही अशुद्ध है। वे सब पर्यायें हैं। मोक्ष भी एक पर्याय है। कहो, सेठी! क्या है? केवलज्ञान भी एक पर्याय है। आहाहा! वस्तु पर्यायरूप नहीं; वस्तु एकरूप त्रिकाल ध्रुव है। केवलज्ञान भी पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग, वह भी एक पर्याय अर्थात् अवस्था है। सिद्धदशा भी जीवद्रव्य की एक पर्याय है। सिद्धपना, वह जीवद्रव्य की अवस्था है, वस्तु नहीं, त्रिकाली वस्तु नहीं। समझ में आया?

**नौ तत्त्वरूप जीव के परिणाम हैं। वे परिणाम कितने ही शुद्धरूप हैं,....** वह पवित्र है, संवर-निर्जरा-मोक्ष परिणाम पवित्र है, परन्तु है परिणाम; वस्तु नहीं। वस्तु त्रिकाल ध्रुव है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** त्रिकाल शक्ति और त्रिकाल परिणाम दोनों को बताते हैं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** त्रिकाल परिणाम नहीं। पर्याय.... पर्याय.... पर्याय.... पर्याय.... पर्याय.... वह। अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... अवस्था.... और वस्तु... वस्तु... वस्तु... ऐसा। समझ में आया? सूक्ष्म वस्तु है, भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने एक वस्तु आत्मा (देखी)। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण सत्ता सत्त्व पूरा अखण्डानन्द प्रभु—ध्रुव, वह तो एकरूप शुद्ध है परन्तु उसकी पर्याय में नौ रूप परिणाम परिणामित है। पुण्य और पाप का विकल्प है विकार, उसरूप हुई पर्याय है। राग के बन्धन विकारी पुण्य, उसमें अटका हुआ भी वह परिणामन उसकी पर्याय में है। कर्म में है और कर्म के कारण है, उसकी यहाँ बात ही नहीं है। समझ में आया?

यह तो निमित्त की बात करे, तब निमित्त कौन था यह (कहा जाता है)। यहाँ निमित्त का ज्ञान कराना नहीं है। यहाँ तो अन्तर का द्रव्य और पर्याय दोनों का ही है। समझ में आया? यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध ध्रुव, अखण्ड अभेद वस्तु की दृष्टि करना, यह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शन नहीं। तथापि वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। समझ में आया? क्या कहते हैं, कुछ समझते नहीं। क्या है? भाई! भाषा कुछ समझ में आती है या नहीं? नहीं समझते? हिन्दी में नहीं चलता। यह तुमको हिन्दी में भी सूक्ष्म पड़ेगा। यहाँ ऐसा कहते हैं कि एक समय में आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु है। वहाँ तो यह चीज़ चलती नहीं न। क्या कहते हैं? हिन्दी कहा न। हिन्दी चलता है न। अब यह हिन्दी चलता है न। क्या कहते हैं? यह हिन्दी-हिन्दी कहते हैं।



यहाँ ऐसा कहते हैं कि आत्मा एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव है। वस्तुस्वरूप से त्रिकाल एक है। उसकी अन्तर्दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी है। परन्तु ऐसा होने पर भी त्रिकाल एक होने पर भी, एक समय में त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकभाव (विद्यमान है)। यह तो अध्यात्म बात है, इसलिए भाषा भी जरा सूक्ष्म पड़ती है। कभी सुनी नहीं। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में यह आत्मपदार्थ ध्रुव अखण्ड रसकन्द अकेला चिदानन्द पूर्ण स्वरूप अभेद, वह तो शुद्ध ही है। उसमें नौ भेद नहीं। वस्तु में नौ भेद नहीं और उसकी पर्याय का विचार करने पर, अवस्था-चलती अवस्था का विचार, पर्याय का विचार करने पर... परन्तु अभी पर्याय अर्थात् क्या यह भी नहीं सुना हो। पर्याय अर्थात् वर्तमान हालत-दशा, उसका विचार करने पर वह नौ तत्त्वरूप पर्यायरूप आत्मा हुआ है। नौ तत्त्व की पर्यायरूप-परिणमनरूप आत्मा हुआ है। वस्तुरूप से देखो तो एकरूप त्रिकाल आनन्दकन्द शुद्ध है। समझ में आया? यह तो बहुत सूक्ष्म बात है। कभी सम्यग्दर्शन कैसे हो और सम्यग्दर्शन धर्म कैसे हो, इसकी भी खबर नहीं होती कि सम्यग्दर्शन क्या है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं न, कहा न? जिसका अनुभव करने से सम्यक्त्व होता है। पहले बात आ गयी न? एक समय में भगवान आत्मा चैतन्यज्योति प्रकाश का सूर्य एकरूप त्रिकाल, उसका अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है। कोई क्रियाकाण्ड से, दया, दान, विकल्प आदि से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! कहो, यहाँ तो व्यवहार करते-करते सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा भी नहीं। ऐई! देवानुप्रिया! बराबर है यहाँ तक। यहाँ तक अर्थात् क्या? फिर राह कहाँ तक देखनी? किया नहीं और राह देखनी? एक समय में भगवान आत्मा इस शरीर, वाणी, मन से तो दूर-भिन्न है। शरीर, कर्म, वाणी वह तो मिट्टी-धूल, उससे तो भिन्न है परन्तु उसमें पुण्य और पाप का शुभाशुभभाव (होता है), उससे भी वह चीज़ भिन्न है। वह तो भिन्न है परन्तु अपने स्वभाव के आश्रय से अन्तर अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मोक्षमार्ग पर्याय (प्रगट होती) है, उस पर्याय से भी वस्तु भिन्न है। वस्तु इतनी है नहीं। आहाहा! और आत्मा में मोक्ष उत्पन्न होता है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, वह भी एक समय की पर्याय है। उस पर्याय जितना द्रव्य नहीं। द्रव्य त्रिकाल ध्रुव शुद्ध है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? कभी पुस्तक हाथ में ली न हो। जयन्तीभाई! ली होगी? आकडिया में लेते होंगे? ...पैसा तो ले। उसमें यह अधिकार। अकेला सत्! अकेला नितरता सत्!!

वस्तु जो एक समय की है, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ध्रुव चैतन्य अनादि-अनन्त, वह तो काल की अपेक्षा लेकर कहते हैं, वस्तु ध्रुव अनन्त गुण रसकन्द एक वस्तु आत्मा। उसमें तो पर्यायभेद भी नहीं। मोक्ष की पर्याय है, वह भी उसमें भेद में नहीं। उस पर्याय का भी उसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। चारित्र तो कहीं रह गया। यह तो बाहर की क्रिया कुछ करे तो हो गया चारित्र। धूल में भी चारित्र नहीं है। चारित्र तो अपना स्वरूप एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में ध्रुव चिदानन्द धातु, पूर्णानन्द से भरपूर पूर्ण ज्ञान-आनन्द का दल—पिण्ड है, एकरूप वस्तु है, उसे यहाँ द्रव्य (कहते हैं)। और उसकी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। पश्चात् स्वरूप में लीन होना, वह चारित्र है। समझ में आया?

यहाँ तो दो बात सिद्ध करनी है कि ऐसी चीज़ वस्तुरूप से एकरूप चिदानन्द भगवान अपना है, तथापि पर्याय में-पर्याय अर्थात् परिणाम में; परिणाम अर्थात् वर्तमान परिणति के स्वभाव धर्म में यह नौ रूप का परिणमन उसमें हुआ है। वार्ता हो तो ठीक पड़े। वह तो अनादि से सुनी है, उसमें क्या है? 'नवतत्त्वगतत्वेऽपि' जीव नौ प्रकार के परिणाम में पर्याय में आया, तथापि वह वस्तुरूप से तो शुद्ध त्रिकाल एकरूप है। आहाहा! वह परिणाम कितने ही शुद्धरूप हैं। भगवान आत्मा अपने एक समय में पूर्ण आनन्द शुद्ध वस्तु, उसका अन्तर में अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल निर्विकारी अवस्था होती है, वह परिणाम है। वह शुद्ध परिणाम है। और जितना राग-द्वेष-पुण्य-पाप का विकल्प बाकी रहता है, वह अशुद्ध परिणाम है। शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार। उसमें अशुद्ध के चार प्रकार। पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध। शुद्ध के तीन प्रकार (संवर, निर्जरा और मोक्ष)।

अग्नि का दृष्टान्त दिया था न? कि अग्नि सुलगनेयोग्य, जलनेयोग्यरूप आकृति पर्याय में होती है। परन्तु वह पर्याय आकृति देखने पर है। अग्नि की उष्णता देखने पर अकेली उष्णता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा नौ की आकृति पर्यायरूप परिणति अवस्था में है। समझ में आया? नौ परिणाम में देखने जाये तो नौ तत्त्व सच्चे हैं। पर्यायरूप से नौ प्रकार अस्तिरूप है। आहाहा!

**और जो चेतनामात्र अनुभव किया जाये....** उसमें उष्ण था न? अग्नि का उष्णतामात्र गुण से लिया था न? चेतनामात्र, चेतनामात्र अनुभव किया जाये तो नौ ही विकल्प झूठे हैं। मोतीरामजी! बहुत सूक्ष्म बात है। कभी अभ्यास किया नहीं। ओहो! अनन्त काल संसार में भटकने में गया परन्तु कभी सच्चा सम्यग्दर्शन किया नहीं और सम्यग्दर्शन किसके आश्रय

से प्रगट होता है, यह बात यथार्थरूप से सुनी भी नहीं। समझ में आया? और उस सम्यग्दर्शन बिना सब शून्य है। चलता मुर्दा है, मुर्दा। चलता मृतक कलेवर।

यह यहाँ आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि सन्त २००० वर्ष पहले हुए हैं। उनकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य महाराज ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि (हुए) हैं, उन्होंने यह कलश बनाये हैं। उनकी टीका राजमलजी ने लगभग ३५० वर्ष पहले बनायी है। अलौकिक बात है। अब प्रचलित भाषा में यह बात आयी है, प्रवाह।

**जो चेतनामात्र अनुभव किया जाये तो...** एक आत्मा ज्ञायक.... ज्ञायक.... ज्ञायक.... ज्ञायक.... चेतना लिया परन्तु ज्ञायक.... ज्ञायक.... ज्ञायक.... ज्ञायक.... वह ज्ञायक.... ज्ञायक चेतनामात्र आत्मवस्तु है। स्वभाव चेतनामात्र वस्तु है ऐसा अनुभव किया जाये तो नौ ही विकल्प झूठे हैं। नौ की पर्याय अन्तर वस्तु में एक होती नहीं। इस अपेक्षा से झूठे हैं। झूठे हैं, यह जरा फूलचन्द्रजी को अटकता था। घड़ीक में सच्चा और घड़ीक में खोटा? पहले कहा कि नौ तत्त्व सच्चे हैं। वे सच्चे अर्थात् पर्यायरूप से सच्चे हैं। वस्तुरूप से वस्तु में भेद नहीं है, इसलिए झूठे हैं, ऐसा कहा। झूठे हैं। समझ में आया? सम्यग्ज्ञान में यह आत्मा अखण्ड प्रभु, चेतनामात्र आत्मा को देखने से भगवान आत्मा में यह नौ प्रकार का परिणमन वस्तु में नहीं है। वस्तु में हो तो अभेद में भेद आवे तो एक वस्तु हो जाये। समझ में आया?

**जो नौ परिणाम में ही देखा जाये तो नौ ही तत्त्व साँचे हैं....** यह तो बात की पहले। व्यवहारनय से वर्तमाननय से नौ प्रकार की शुद्ध-अशुद्ध पर्याय से देखो तो आत्मा नौ रूप से है। परन्तु अकेले चैतन्यमात्र दृष्टि से देखो तो नौ परिणाम के भेद उसमें है ही नहीं। है नहीं, इस अपेक्षा से झूठे। समझ में आया? क्या दर्शन और क्या दर्शन का विषय? समझ में आया?

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह आठवें में आता है। सुनना हो तो यहाँ आते हैं। यहाँ तो पहले नौ तत्त्व झूठे सिद्ध करे। फिर और यह आगे सिद्ध करेंगे। समझ में आया?

एक समय की आत्मा की पर्याय के भेद से उसे देखो तो नौ रूप परिणमन उसमें है। शुद्ध-अशुद्ध पर्याय उसमें परिणमनरूप में है। वस्तु चेतना ध्रुव ज्ञायक एकाकार भगवान अन्तर दरबार में देखो तो यह नौ का भेद उसमें है ही नहीं। समझ में आया? अकेले नौ की पर्याय अनादि से भेदरूप है, उसका अनुभव तो मिथ्यात्व है, यह बात पहले की। यहाँ तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई तो पर्याय से देखो तो नौ है, स्वभाव से देखो तो नौ

नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? अनादि के नौ अलग, यह नौ अलग। नौ प्रकार अलग हैं। दो प्रकार की पद्धति अलग है। अनादि के नौ हैं, वह तो मिथ्यादृष्टि में नौ हैं, उसमें संवर-निर्जरा-मोक्ष शुद्ध नहीं है। यह तो मानता है कि हमारा आस्रव थोड़ा घटा तो हमको संवर हो गया। थोड़ी निर्जरा हुई तो अशुद्ध की तो निर्जरा हो गयी। अज्ञानी नौ तत्त्व ऐसा मानता है, वह नौ तत्त्व नहीं।

यहाँ तो आत्मा चैतन्यज्योति भगवान, चैतन्यसूर्य आत्मा वस्तु है। उसकी अन्तर अभेददृष्टि से देखो तो नौ पर्याय का-अवस्था का-परिणाम का भेद उसमें है ही नहीं। वह है नहीं, इस अपेक्षा से झूठा है, अस्तिरूप से उसमें है। समझ में आया ? कहो, भगवानजीभाई ! ऐसा कहीं सुना था ? कितने वर्ष गये भावनगर में सुनते-सुनते ? यह और सच्चा और यह खोटा। कौन जाने यह क्या होगा ? करो न सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण, यात्रा और भक्ति, हो जायेगा धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। सम्यग्दर्शन बिना सामायिक कहाँ से आयी ? आत्मा के अनुभव बिना किसमें आसन लगाना ? सामायिक तो अन्तर में आसन लगाना, वह है। तो वह चीज़ क्या है और उस चीज़ का अनुभव क्या है, इसकी खबर बिना सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण कहाँ से आये ? समझ में आया ?

आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्यदेव ९०० वर्ष पहले जंगल में बसते थे। उन्होंने ताड़पत्र पर कलश लिखे, टीका लिखी और टीका का सार लिखा। कलश में बहुत भरा है, तो उसका यहाँ रहस्य उद्घाटन किया है। समझ में आया ? भगवान ! तेरी चीज़ अन्दर में एक स्वरूप अखण्डानन्द प्रभु है। चेतनामात्र से देखो तो शुद्ध ध्रुव है। यह द्रव्यदृष्टि करना, इसका नाम द्रव्यदृष्टि है। समझ में आया ? परन्तु पर्याय से देखो तो पर्याय है सही। पर्याय का ज्ञान और द्रव्यदृष्टि का ज्ञान दोनों मिलकर प्रमाणज्ञान है। दो में से एक को निकाल डाले तो वस्तु रहती नहीं। अकेले द्रव्य को समझे और पर्याय को न माने तो मिथ्यादृष्टि है। अकेली पर्याय को माने और द्रव्य को न माने तो भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? अज्ञान है, अज्ञान। जैन में रहते होने पर भी अज्ञान है, वस्तु की खबर नहीं।

**चेतनामात्र अनुभव किया जाये तो....** यह तो शब्द हिन्दी आवे परन्तु समझे कहाँ ? कभी सुना न हो न ! कथा और वार्ता सुनी हो। भक्ति करना और यात्रा करना, जाओ हो गया धर्म। हिन्दी नहीं समझते ? उसमें यह भाव तो वापस सूक्ष्म है न। यह नौ ही विकल्प झूठे हैं, भेद झूठे हैं, ऐसा कहना है। पर्याय पर्यायरूप से उसमें नौ प्रकार है, परन्तु वस्तु अभेद से देखने पर उसमें भेद नहीं है। है नहीं, इस अपेक्षा से झूठे कहे गये हैं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा को अन्तर से पहिचानना। पूर्ण शुद्ध अखण्ड आनन्द, उसका अन्तर ज्ञान करना, अनुभव करना, यह पहले में पहला धर्म है। तथापि यह धर्मरूपी पर्याय है। धर्म कोई द्रव्य और गुण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह धर्मरूप आत्मा परिणमता है। आत्मा परिणमता है और आत्मा ऐसा का ऐसा रहता है। ...में काम करे नहीं। क्या चीज़ है, अभ्यास नहीं, अभ्यास। कहो, समझ में आया? यह सात श्लोक। १३वीं गाथा जो शुरु की है - 'भूदत्थेणआभिगदा' उसका उपोद्घात है। वह गाथा पूरी की है, उसके बाद के कलश अब हैं। १२वीं गाथा पूरी हुई तो वह कहा - 'उभयनयविरोध्वंसिनि' फिर यह शुरु किया 'व्यवहारनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या' नौ तत्त्व का विकल्प है सही, ऐसा है, ऐसा कहकर १३वीं (गाथा) का उपोद्घात किया। पश्चात् 'एकत्वे नियतस्य' निश्चय सम्यग्दर्शन की बात की। व्यवहार नौ तत्त्व के भेद का सम्यग्दर्शन व्यभिचार है। अकेला आत्मा अखण्डानन्द पूर्ण का अनुभव और दृष्टि वह सम्यक् निश्चय है। यह उसका उपोद्घात है।

अब १३वीं गाथा पूरी। नौ तत्त्व की बात थोड़ी की। उसमें से यह कलश किया।

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं  
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।  
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं  
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

सार अकेला मक्खन निकाला है। कलश करके। टीका तो की, वापस कलश मक्खन है, हों! उसकी वापस यह टीका है। 'आत्मज्योतिः दृश्यताम्' देखो! आत्मज्योति भगवान एक समय में चैतन्यसूर्य, ज्योति है, ज्योति आत्मा। जीवद्रव्य का शुद्ध ज्ञानमात्र,.... ज्योति की व्याख्या की। आत्मज्योति अर्थात् जीवद्रव्य का शुद्ध ज्ञानमात्र,.... वह जीव भगवान आत्मा, उसका त्रिकाल ज्ञायक शुद्धमात्र। 'दृश्यताम्' 'दृश्यताम्' की व्याख्या। सर्वथा अनुभवरूप हो। आहाहा! देखना ऐसा नहीं।

भगवान आत्मा एक समय में चैतन्यज्योति, आत्मज्योति, ज्ञायकज्योति वस्तु। शुद्धज्ञानमात्र वस्तु का नाम आत्मज्योति। 'दृश्यताम्' सर्वथा अनुभवरूप हो। 'दृश्यताम्' उसका अनुभव हो। उसका देखना। देखने का अर्थ उसका अनुभव करना, तब उसका नाम देखना कहा जाता है और सर्वथा अनुभवरूप हो। का अर्थ कि अखण्ड पूर्ण वस्तु की एकाकार होकर अकेला अनुभव (होना)। सर्वथा में कोई राग बाकी रह जाये और भेद,

ऐसा नहीं। अकेला त्रिकाली ज्ञायकभाव का अनुभव हो। आचार्य तो ऐसा कहते हैं कि हमारे तो एक हो, दूसरा कुछ चाहिए नहीं। पोपटभाई!

**मुमुक्षु :** ....करे तो जाग जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जाग जाये।

**सर्वथा अनुभवरूप हो।** हमारे तो एक ही वस्तु है, दूसरा कुछ चाहिए ही नहीं। आचार्य कहते हैं, हों! है तो सही। परन्तु जरा थोड़ा विकल्प उठता है न? अकेला आत्मा रह जाओ अनुभव में। अनुभव में अकेला आत्मा, जिसमें भेद बिल्कुल है नहीं। **सर्वथा अनुभवरूप हो।** सर्वथा और शास्त्र में? कोई कहे कथंचित्, ऐई! देवानुप्रिया! बहुत सरस आयेगा, हों! इसमें बहुत सरस है। वे सब लगावे न कथंचित्। धूल कथंचित्? एक समय में भगवान आत्मा अनन्त गुणराशि एकरूप, उसका सर्वथा अनुभव एक ही प्रकार हो। कथंचित् अनुभव हो और कथंचित् राग रहो, भेद हो—ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? **सर्वथा अनुभवरूप हो।** आहाहा!

पूर्ण द्रव्यस्वभाव, शुद्ध वस्तु का स्वभाव, उस ओर का हमारा झुकाव पूर्ण हो। मूल तो ऐसा कहते हैं। सर्वथा का अर्थ पूर्ण झुकाव हो। थोड़ा है, वह पूर्ण झुकाव (होओ)। वह सर्वथा एकरूप अनुभव हो। समझ में आया? देखो! आचार्य स्वयं कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्यदेव (कहते हैं)। पर्याय में नौ प्रकार होने पर भी हमें तो यह आत्म चैतन्यज्योतिरूप का सर्वथा एकरूप ही अनुभव हो। उसमें भेदरूप परिणति पर जो थोड़ा लक्ष्य है, वह रहो नहीं। समझ में आया? परन्तु यह सर्वथा अनुभव में किंचित् आश्रय किसी का लेना या नहीं? आश्रय चिदानन्द 'भूदत्थमस्सिदो खलु' इसकी तो व्याख्या चलती है यहाँ। पूरा सर्वथा भगवान। जिसे नजर में लेने से जिसके निधान पर्याय में प्रगट हों, ऐसा भगवान आश्रय में है। जिसे नजर में लेने से उस नजर में निधान प्रगट होते हैं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** अगम प्याला पियो मतवाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, तो वही प्याला मतवाला। चीनों अध्यात्मवासा। अजर प्याला अर्थात्? उसका अर्थ ऐसा नहीं कि यह झेल नहीं सकता। ऐसा नहीं। झेला नहीं जा सकता ऐसा समझे न! वस्तु ही यह है। यही करने की यह एक ही बात है। दूसरी बात है नहीं। उस अजर प्याला को तो वह जर तो जड़ खाता है विष्टा को अनादि से। कहो, समझ में आया या नहीं? जहर तो अनादि से पीता है। विकार के परिणाम करके जहर तो अनादि से पीता है। क्या उसमें नया करना है? ऐसा कि अजर प्याला... थोड़ा... थोड़ा दूसरा हो न।

‘दृश्यताम्’ भगवान् आत्मा को देखो अर्थात् पर्याय के भेद को न देखो। आहाहा! दिगम्बर के वचन तीव्र और रहस्य समझा जा सकता है (ऐसे हैं)। आता है न श्रीमद् में? देखो न एक ऐसी भाषा भी नहीं मिलती उसमें। वाच्य का ठिकाना नहीं मिले तो वाचक (शब्द) कहाँ से आवे ऐसे? ओहो! कहते हैं, ‘आत्मज्योतिः दृश्यताम्’ भगवान् आत्मा अर्थात् जीवद्रव्य, उसकी ज्योति अर्थात् शुद्ध ज्ञानमात्र भाव त्रिकाल अकेला। मति, श्रुत के भेद भी नहीं। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तथा अवधि, मनःपर्य, केवल, यह नहीं। एक ज्ञानमात्र त्रिकाल जो यह वस्तु, उसका ही अनुभव हो। वही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया? यह व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग मेरे हैं न? व्यवहार-फ्यवहार, वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। साथ में विकल्प के भेद किस प्रकार के होते हैं, उसका ज्ञान कराया है। मोक्षमार्ग दो नहीं होते। एक ही मोक्षमार्ग। भगवान् आत्मा पूर्ण आनन्द की दृष्टि से, ज्ञान से, लीनता से अनुभव करे, वह एक ही मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

कैसी है आत्मज्योति? इस अवसर पर नाट्यरस के समान... देखा! एक जीववस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समय में दिखलायी देती है। क्या कहते हैं? इस अवसर पर नाट्यरस के समान... नाटक में रस होता है न? एक जीववस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समय में दिखलायी देती है। इसी कारण से इस शास्त्र का नाम नाटक समयसार है। लो! नाटक समयसार दिया। पर्याय में अशुद्धता दिखती है, वस्तु से त्रिकाल शुद्ध दिखती है, कोई पर्याय में अशुद्धता दिखती है। आश्चर्यकारी वस्तु है। पर्याय में नवरूप परिणमन, वस्तु में एकरूप वस्तु। आश्चर्यकारी वस्तु है यह। कहो, समझ में आया? नाटक में भी आता है न, घड़ीक में एक पिंगला रानी होकर आवे, घड़ीक में फिर दासी होकर आवे, और वह का वह राजा होकर आवे। इसी प्रकार आत्मा वस्तुरूप से एकरूप शुद्ध, पर्याय में अनेक विचित्रता। दोनों की विचित्रतावाली वस्तु आश्चर्यकारी है। स्वयं के ही कारण से, हों! पर की बात, अपेक्षा ली ही नहीं यहाँ।

एक ही समय में दिखलायी देती है। ऐसे नौ रूप परिणमन, ऐसे एकरूप वस्तु। इस शास्त्र का नाम नाटक समयसार है। इस शास्त्र का नाम नाटक समयसार है। यह राजमलजी समयसार नाटक के मर्मी, ऐसा बनारसीदास ने कहा है। समयसार नाटक के मर्मी हैं ये। शास्त्र के मर्मी हैं कि शास्त्र को क्या कहना है। उसका मर्म देखकर टीका की है। वही कहते हैं। वह अब दिखाया जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



श्री समयसार कलश-टीका, कलश - ११५, प्रवचन - १००  
दिनांक - २०-१२-१९६७

भावास्त्रवाभावमयं प्रपन्नो  
द्रव्यास्त्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ।  
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो  
निरास्त्रवों ज्ञायक एक एव ॥३-११५ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ :- 'अयं ज्ञानी निरास्त्रवः एव' यह 'अयं' शब्द वहाँ रखा है । नहीं पश्चात् नहीं आता, इसलिए कहा, वहाँ उसे ज्ञानी के ऊपर डाला है न । अन्वयार्थ बराबर ठीक किया । 'अयं ज्ञानी निरास्त्रवः एव' अर्थात् की धर्मी जीव चैतन्यद्रव्यस्वरूप अखण्ड पूर्ण शुद्ध पवित्र है, ऐसी दृष्टि हुई है, इसलिए ज्ञानी वह द्रव्यरूप है । द्रव्यरूप विद्यमान है, वह.... दृष्टि हुई है । समझ में आया ? 'अयं ज्ञानी निरास्त्रवः एव' द्रव्यरूप विद्यमान है, वह ज्ञानी.... ऐसा । वस्तु जो है पदार्थ चैतन्य द्रव्यरूप वस्तु । शुद्ध ध्रुव एकरूप त्रिकाल, वह जिसकी दृष्टि हुई है तो ज्ञानी द्रव्यरूप ही है । धर्मी को पर्यायदृष्टि नहीं है । कहो, समझ में आया ?

'अयं ज्ञानी निरास्त्रवः एव' ऐसा शुरु किया है न पहले से ? यह द्रव्यरूप विद्यमान है पदार्थ, वह ज्ञानी द्रव्यरूप ही विद्यमान है । वस्तु की अस्ति पूर्ण है, वही ज्ञानी । उस ज्ञानी की दृष्टि में द्रव्यस्वभाव है, वही ज्ञानी, ऐसा कहते हैं । पूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्य पदार्थ, वह द्रव्य है, वही विद्यमान है । ऐसी जो दृष्टि है, ऐसा जो ज्ञानी । ज्ञानी ही द्रव्यरूप है, ऐसा यहाँ कहते हैं । सम्यग्दृष्टि जीव आस्त्रव से रहित है । द्रव्यरूप विद्यमान है, ऐसा जो भान और वह ज्ञानी द्रव्यरूप ही है, इसलिए उसे आस्त्रव नहीं होता, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? पर्यायदृष्टि में, अवस्थादृष्टि में, अवस्था के अंश में प्रतीतिवाला जो मिथ्यादृष्टि है, उसे ही मिथ्यात्व का आस्त्रव है और उसे ही यहाँ आस्त्रव गिनने में आया है । समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वरूप है, ऐसी जहाँ दृष्टि नहीं और



पर्यायदृष्टि है, अंश पर राग और पुण्य आदि या उघाड़ विकास अंश के ऊपर दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है, पर्यायदृष्टि है। इसलिए वह मिथ्यादृष्टि, वह आस्रववाला है। उसे ही आस्रव है और उसे ही आस्रव के कारण बन्धन होता है। समझ में आया ? **द्रव्यरूप विद्यमान है वह ज्ञानी अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव....** तो वस्तु है जो ध्रुव चैतन्य, वह जहाँ दृष्टि में आया है, इसलिए ज्ञानी स्वयं द्रव्यरूप ही विद्यमान है। समझ में आया ? इसलिए आस्रव से रहित है। इसलिए उसे, मिथ्यात्व का आस्रव है, उससे रहित है। उसे ही यहाँ आस्रव गिनने में आया है। समझ में आया ?

**भावार्थ इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि जीवों को नोंध कर....** नोंध आया था न पहले ? केवलज्ञान में नोंध है। वहाँ तीसरे पृष्ठ पर आया था और आज भी आया। केवलज्ञान में नोंध है कि यह जीव कितने काल में मोक्ष जायेगा, ऐसा पहले आया था। नोंध है अर्थात् ज्ञान है ऐसा। देखो ! यहाँ नोंध है न ? ( **समझपूर्वक** ) **विचारने पर...** सम्यग्दृष्टि जीव को समझपूर्वक, यथार्थ ज्ञानपूर्वक देखने पर, **विचारने पर आस्रव घटता नहीं**। कहो, समझ में आया ? वस्तु है, वह शुद्ध चैतन्यघन है। द्रव्यरूप वस्तु, और उसी वस्तुपने की दृष्टि हुई, इसलिए अभेद वस्तु स्वयं है, वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा कहते हैं। वस्तु है, वही सम्यग्दृष्टि है। जिसे पर्यायदृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसके कारण उसे आस्रव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा द्रव्य—वस्तु त्रिकाल शुद्ध सत्त्व महाचैतन्य प्रभु ऐसा जो द्रव्य, वही विद्यमान है समकित्ती को तो। अथवा समकित्ती द्रव्यरूप ही है। समझ में आया ? गजब बात ! इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव से रहित है। **सम्यग्दृष्टि जीवों को नोंध कर ( समझपूर्वक ) विचारने पर आस्रव घटता नहीं**। क्योंकि वस्तु दृष्टि है और वस्तु स्वयं है। दृष्टि हुई है वस्तु की, इसलिए वस्तु स्वयं ही यह सम्यग्दृष्टि है। वस्तु स्वरूप स्वयं हुआ तो वस्तु स्वयं द्रव्य विद्यमान समकित दृष्टि में है। इसलिए वस्तु की दृष्टि में और वस्तु में आस्रव घटित नहीं होता। कहो, समझ में आया ? देखो ! द्रव्य की महिमा जहाँ दृष्टि में आयी और अनुभव हुआ ( तो ) कहते हैं कि वह तो द्रव्यदृष्टिवन्त ही है समकित्ती। चाहे चौथे ( गुणस्थान ) में हो, पाँचवें में हो या छठवें में हो। समझ में आया ? ( **समझपूर्वक** ) **विचारने पर आस्रव घटता नहीं**।

**कैसा है ज्ञानी ? 'एकः'** रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित है,.... यह तो नास्ति से बात की। एक का अर्थ तो शुद्धस्वरूप परिणामा है, वह है। क्या कहा ? कि धर्मी जीव की दृष्टि द्रव्य के ऊपर, वस्तु के ऊपर, इसलिए वह स्वयं वस्तु ही है। इससे वह एक है। एक

है अर्थात् ? शुद्धस्वरूप परिणमित हुआ है। रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित.... अर्थात् अनेकरूप परिणाम नहीं। यह तो नास्ति से बात की। समझ में आया ? वस्तु ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्यबिम्ब अकेला सत्त्व तत्त्व, ऐसी दृष्टि होने से वह द्रव्यरूप है, वह एकरूप है। वह एकरूप है। पर्यायदृष्टि में, अंश दृष्टि में पुण्य-पाप आदि अनेकरूप अनेकदृष्टि है, वह अनेक है। समझ में आया ?

‘एकः’ रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित है,.... रागादि अर्थात् ? विकल्प जो है, उससे सम्यग्दृष्टि रहित है। कहो, यह व्यवहार-विकल्प है न, उससे सम्यग्दृष्टि रहित है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार जितने कहलाते हैं न ? शास्त्र में व्यवहार कहे हों, वे सब विकल्प हैं, उनसे सम्यग्दृष्टि (भिन्न) एकरूप है। विकल्प तो अनेकरूप है। आहाहा! समझ में आया ? ‘अयं ज्ञानी निरास्रवः एव’ ‘एकः’ ऐसा उसके साथ मिलाया। ‘अयं ज्ञानी निरास्रवः एव’ ‘एकः’ श्लोक ऐसे और टीका भी करनेवाले ऐसे निकले हैं न! ऐसा डाला है। ‘एकः’ अर्थात् शुद्धस्वरूप। वे अशुद्ध हैं, उसमें तो अनेक भिन्न भिन्नता-भिन्नता है। यह तो शुद्ध भगवान् द्रव्यस्वभाव, ऐसी दृष्टि के कारण द्रव्यरूप होने से उसका परिणामन शुद्धरूप एक ही है, शुद्धरूप एक ही है। शुद्धता के अंश बढ़ें, यह अपेक्षा यहाँ नहीं लेनी है। यहाँ शुद्धरूप एक है। अशुद्ध के अनेक प्रकार, वे मिथ्यादृष्टि को होते हैं, सम्यग्दृष्टि को नहीं होते—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

शुद्धस्वरूप परिणाम है। वह द्रव्य लिया था। द्रव्यरूप विद्यमान है ज्ञानी। तब यहाँ ‘एकः’ की व्याख्या की। वह शुद्धरूप परिणाम है। शुद्ध द्रव्यरूप है, वस्तुरूप है, इसलिए शुद्धरूप वस्तु शुद्ध है, इसलिए शुद्धरूप पर्याय हुई है। पर्याय में-अवस्था में सम्यग्दृष्टि को शुद्धरूप दशा हुई है। सम्यग्दृष्टि को अशुद्ध पर्याय है ही नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? शुद्धस्वरूप परिणाम है। धर्मी की दृष्टि द्रव्य-वस्तु होने से दृष्टि में द्रव्य है और द्रव्यरूप हो गया है, इसलिए एकरूप उसका परिणामन है। शुद्ध स्वभाव का ही वीतरागी परिणामन, वह एक ही परिणामन है। उस शुद्धस्वरूप का अर्थ ही वीतरागी परिणामन है। समझ में आया ?

और कैसा है ? ‘ज्ञायकः’ देखो! है न ? अन्त में है चौथी लाईन में। ‘ज्ञायकः’ एक ‘एकः’ ‘ज्ञायकः’ ऐसा लिया। ‘एकः’ ‘ज्ञायकः’ ‘एकः’ ‘ज्ञायकः’ ज्ञायक अर्थात् स्वद्रव्यस्वरूप परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तु को जानने के लिये समर्थ है। यह देखो, यह दो डाला। धर्मी। देखो! यहाँ न्याय डाला। क्या कहा ? कि एक शुद्ध स्वरूप परिणामन है,

ऐसा जो ज्ञायक एकरूप ज्ञायक है, इसलिए जो स्वस्वरूप है, उसे जानता है और पुण्य-पाप का विकल्प आदि परद्रव्यस्वरूप है, उसे जानने का, जानना उसका स्वभाव है। समझ में आया? लो! चौथा पद आया था न छठी गाथा में? 'गादो जो सो दु सो चैव' ज्ञायक लिया था न? शुद्ध वह ज्ञायक। जो ज्ञायक शुद्ध है, वह परिणमता है तो ज्ञायकरूप ही परिणमता है। एकरूप परिणमता है। जाननेवाला, वह जाननेवाला ही है। रागादि को जाननेवाला परन्तु जाननेवाला, वह जाननेवालेरूप रहता है, रागरूप नहीं।

इसी प्रकार यहाँ कहा, ज्ञायक वस्तुस्वरूप चैतन्यद्रव्य ऐसी जो दृष्टि अर्थात् द्रव्य स्वरूप, ऐसा जो आत्मा आस्रवरहित है, वह एक ज्ञायक है। एकरूप शुद्ध स्वरूप का परिणमन स्व-पर को जानना एकरूप है। मात्र स्वयं अपने को जानता है और राग, विकल्प जो व्यवहार आदि जो कहे जाते हैं, वह सब परद्रव्य है। स्वद्रव्य में नहीं, स्वगुण में नहीं और उसकी पर्याय में वह नहीं। व्यवहार जितना कहलाये दया, दान, विकल्प, परन्तु वह द्रव्य की पर्याय में नहीं। सम्यग्दृष्टि का द्रव्य शुद्धरूप परिणमा है। इसलिए उसकी पर्याय में नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? भारी कठिन बातें! जगत को कहाँ खड़े रहकर.... कहो, भगवानजीभाई! ऐसा भगवान है, कहते हैं। सब जाने। उसे जानना एक ज्ञायक है। एक ज्ञायक है। एक अर्थात् शुद्धरूप परिणमन है, वह ज्ञायकरूप है, ऐसा कहते हैं। वह स्व को जाने और रागादि है, उन्हें भी जानता है। राग उसका नहीं, राग उसमें नहीं, राग है पर, उसे यहाँ ज्ञायक होकर स्व को जानते हुए पर है, ऐसा जानता है। स्वद्रव्य-परद्रव्य को जानने का एक ही उसका कार्य है। ऐसा कहते हैं। अरे! कहो, समझ में आया?

पहला एक शब्द था, उस अन्तिम लाईन का, नहीं? अन्तिम लाईन का। अब आयेगा तीसरी लाईन का, अब आयेगा तीसरी का एक। एक (शब्द) है न, दो (बार)? एक पद में दो शब्द है। इसलिए पहला जो आया, वह अन्तिम आया। 'निरास्रवो ज्ञायक एक' गजब! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु, वह ज्ञायक है। ज्ञायक है अर्थात् जाननेवाला है। स्व और पर को जानना, वही उसका कार्य है। भीखाभाई! समझ में आया? एक।

**और कैसा है? स्वद्रव्यस्वरूप-परद्रव्यस्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तु को जानने के लिये समर्थ है।** यहाँ तो दो ही बातें ली हैं। स्वद्रव्यस्वरूप उसका जो द्रव्यरूप है, उसका परिणमन शुद्धरूप है, वह स्वद्रव्यस्वरूप है और इसके अतिरिक्त रागादि सब परद्रव्यस्वरूप

है। एकरूप परिणमनता हुआ स्व को-पर को जानता है। कहो, राग का विकल्प उसका कर्तव्य नहीं परन्तु उसमें नहीं। व्यवहार का कर्तव्य तो समकिति को नहीं परन्तु समकिति को व्यवहार नहीं। वह समकिति का व्यवहार नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, नेमिदासभाई! गजब बातें! यह तो कहीं....

वस्तु है न? यहाँ तो वस्तु सिद्ध करनी है न! भगवान आत्मा महाचैतन्य प्रभु। महा चैतन्यप्रभु। ऐसा नहीं गीता में वे लोग कहते? चैतन्य महाप्रभु। ऐसा आता है। ऐसा आता है। कुछ हो गया। चैतन्य महाप्रभु। यह चैतन्य महाप्रभु। दूसरा चैतन्य महाप्रभु कौन? समझ में आया? महाप्रभु अनन्त-अनन्त प्रभु गुण है उसका? प्रभु अर्थात् सामर्थ्य। महा सामर्थ्य जिसका। एक-एक गुण का अनन्त सामर्थ्य, पूरे द्रव्य का महासामर्थ्य है। ऐसा महाप्रभु, ऐसा जो दृष्टि में आया, वह स्वयं द्रव्यरूप ही हो गया। धर्मी द्रव्यरूप है। धर्मी पर्यायरूप, रागरूप है, ऐसा नहीं है। फिर पर्याय अर्थात् रागादि नहीं परन्तु द्रव्यरूप होने पर, द्रव्य का परिणमन जो हुआ, एकरूप परिणमन है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि द्रव्यस्वभाव शुद्ध है, उसके आश्रय से परिणमन होता है तो एकरूप ही होता है। निमित्त के आश्रय से हो, तब तो विविध प्रकार के हों। निमित्त के आधीन समकिति है नहीं। कहो, समझ में आया? है न पुस्तक सामने? सूक्ष्म बातें हैं, भाई! यह तो आत्मा की। इसने कभी की नहीं। क्या है और कैसे है, यह जानने का प्रयत्न किया नहीं। भगवान आत्मा चैतन्य महाप्रभु ज्ञायक एक। बस, वह तो एक स्व को-पर को समस्त ज्ञेयों को जानने को समर्थ है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—ज्ञायकमात्र है, रागादि अशुद्धरूप नहीं है। देखो! एक तो वह शुद्ध स्वरूप कहा था न? रागादि अशुद्ध परिणाम से रहित है, शुद्धस्वरूप परिणाम है। 'एकः' में, ऐसा कहा था। वह यहाँ वापस लिया। वह तो ज्ञायकमात्र है। जाननहार-जाननहार, स्व-पर को जानना, स्व-पर का जानना। स्व-पर का जानना, वह अपने में अपना अपने में रहकर है। समझ में आया? रागादि अशुद्धरूप नहीं है। धर्मी को अशुद्धता नहीं। क्योंकि द्रव्यरूप है, इसलिए अशुद्धता वहाँ है ही नहीं। व्यवहार है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। चिल्लाहट मचाये कि अर...र...र...! निरपेक्षा नया मिथ्या। अरे! सुन न। निश्चय की अपेक्षा से तो पर की अपेक्षा है नहीं। फिर एक व्यवहार है, भिन्न है-भिन्न है। ऐसा भिन्न रागादि है, वह स्वद्रव्य में नहीं, उसके परिणमन में नहीं। द्रव्य में नहीं, परिणमन में नहीं। भिन्न है। वह तो जानता है। भिन्न है, यह जानता है। कहो, समझ में आया?

रागादि अशुद्धरूप नहीं है। आहाहा! भगवान चैतन्य महाज्ञानरूपी विशाल पर्वत।

लो! ऐसा आया है न? समयसार। समयसार महापर्वत उठाया और भव्यों को अर्पित किया। भव्यों को अर्पण किया। अन्त में कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसाररूपी महापर्वत उठाया। यह तो पर्याय। वह तो द्रव्य बड़ा। भव्य जीवों को अर्पित किया। देखो! भाई! यह तू है। आहाहा! भगवान आत्मा महा अनन्त गुणराशि एकरूप प्रभु, ऐसी जो वस्तु, उसका जो शुद्ध परिणमन, उसमें अशुद्ध परिणमन नहीं है। सम्यग्दृष्टि शुद्ध द्रव्यदृष्टि है, इसलिए उसका शुद्ध परिणमन है। उसकी पर्यायदृष्टि नहीं, इसलिए उसे अशुद्ध परिणमन नहीं है। आहाहा! वे तो कहे, व्यवहार पहले चौथे, पाँचवें, छठवें में। फिर निश्चय। अरे! भगवान! यह तू क्या कहता है? कहाँ बातें करता है? तुझे वस्तु की खबर ही नहीं है। वस्तु कैसी है? वस्तु में क्या है? वस्तुदृष्टि होने पर क्या होता है और क्या नहीं उसमें? समझ में आया? यह तो कहे व्यवहार पहला। निश्चय आठवें में। यह व्यवहार यह शुभ उपयोग।

यहाँ तो कहते हैं, शुभ उपयोग ज्ञानी को है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। सुन न! कहो, समझ में आया इसमें? जिसका फल सादि-अनन्त केवलज्ञान और आनन्द। समझ में आया? ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसका जो ध्येय द्रव्य, उस द्रव्य में दृष्टि होने पर धर्मी को अशुद्धता है ही नहीं। वास्तव में धर्मी को संसार नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! ऐई...! आहाहा! गजब बात, भाई! दिखता है न यह सब बाहर? बाहर तो दुनिया पूरी पड़ी है, उससे क्या है? समझ में आया? ऐई! हीराभाई! कहाँ ऐसी, उसमें पर्याय कहाँ आयी? दृष्टि में पर्याय यहाँ इनकार करते हैं, देखो न! पहले द्रव्य लिया, पश्चात् द्रव्य ही है दृष्टि में। वस्तु स्वयं सम्यग्दृष्टि द्रव्यस्वरूप ही है। कहो, समझ में आया इसमें? अब उसमें वापस विवाद। लोगों को शास्त्र पढ़ने में विवाद। अटकने के साधन वे कितने, देखो न! छूटने का साधन एक। ध्रुव द्रव्य स्वरूप का अनुभव होना, वह। कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो वीतराग शान्तरस का कथन है, भाई! भगवान आत्मा शान्तरस से भरपूर है। उस शान्तरस का कन्द, वह द्रव्य है। अकेला वीतरागरस अकषायस्वभाव, उस स्वभाव स्वरूप, वह द्रव्य है और वह द्रव्य, वैसा द्रव्य समकित्ता को विद्यमान है, कहते हैं। उसे दूसरा विद्यमान है नहीं। इसलिए उसका शुद्ध शान्तरस का ही परिणमन है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि अकषाय का ही परिणमन है, ऐसा कहते हैं। उसे कषाय का परिणमन, व्यवहार-विकल्प का परिणमन है ही नहीं। हाँ, उसे और इसे जानने का परिणमन उसके ज्ञायकभाव में है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? सूक्ष्म पड़े ऐसा है न? कानातलाव! है? पुस्तक रखी है? पुस्तक रखी है न? सूक्ष्म वस्तु ऐसी है आत्मा की। इसके बिना कहीं सुख

हो, ऐसा नहीं है। सब हैरान होकर दुःखी पड़े हैं बेचारे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहाँ गये? मूलपचन्दभाई! यह सब दुःखी हुए हैं।

**मुमुक्षु** : सत्य है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : सत्य है। देखा! ऐसा है। कृषिकार है, लो कानातलाव का। वहाँ इन्हें किसान कहते हैं। तुम तो बनिया कितने वर्ष के इसमें हो। वहाँ तब गये थे। बहुत लोग, हजारों लोग, हों! बहुत लोग। बहुत लोगों को प्रेम है। कुण्डला के पास है। कहो, समझ में आया इसमें?

परम सत्य ही यह है और यह सत्य इसे निर्णय करके अनुभव में लेना पड़ेगा। सुखी होना हो तो। नहीं तो दुःखी हो रहा है। कहो, भीखाभाई! आहाहा! अब इसमें हीराभाई नहीं आवे, कहते हैं। उनके प्रति का विकल्प है वह, कहते हैं, द्रव्य में नहीं आता। द्रव्य में तो द्रव्य का परिणमन होना, वह आयेगा। राग का परिणमन वह द्रव्य का परिणमन कब है? ऐसा कहते हैं। भगवान पूरा पर्वत प्रस्फुटित हुआ। समझ में आया? चैतन्य भगवान ज्ञानरस का कन्द। क्या तुम्हारे कहलाता है वह? लावा-लावा। पर्वत में से लावा (ज्वालामुखी) निकलता है न? लावा नहीं निकलता? यह शान्तरस का लावा का पर्वत आत्मा है। वह लावा अग्नि जैसा निकलता है उस पत्थर में से निकलता है न कहीं विदेश में? ज्वालामुखी। यह (आत्मा) तो शान्तरस का मुखी। अकेला अकषायस्वभाव। स्वभाव वह... स्वभाव वह... स्वभाव वह, उसका माप और हद और परिमितता क्या? अपरिमित स्वभाव। ऐसा द्रव्य। सम्यग्दृष्टि को वह द्रव्यरूप है। उसका परिणमन शुद्ध है, उसे अशुद्ध नहीं। समझ में आया?

**और कैसा है?** 'सदा ज्ञानमयैकभावः' समझ में आया? **सर्व काल धाराप्रवाहरूप...** देखो! यहाँ तो सर्व काल (कहा)। किसी समय भी उसे राग परिणाम है और उसमें व्यवहार है, ऐसा नहीं है। सदा काल, ऐसा कहते हैं। आहाहा! द्रव्य जैसे सदा काल वस्तु है, वैसे सदा काल उसका परिणमन जो निर्मल है, वह सदाकाल। समझ में आया? **सर्व काल धाराप्रवाहरूप चेतनरूप ऐसा है, एक परिणाम जिसका,**... सर्व काल धाराप्रवाहरूप चेतनरूप ऐसा है एक परिणाम जिसका। ऐसा है वह। आहाहा! कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को तो सदा एकरूप धाराप्रवाह ज्ञान ही परिणाम है, ऐसा कहते हैं। धाराप्रवाह। वस्तु द्रव्य जो कायम ध्रुव है, उसका परिणमन ज्ञायकमय, उस ज्ञानमय के परिणाम धारावाही एक ही है परिणाम। उसमें राग के परिणाम और किसी समय ज्ञान के परिणाम और किसी समय राग परिणाम, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

सत्य का स्वरूप है, वह लोगों को बेचारों को ख्याल में नहीं आता। उसे महावस्तु प्रभु महा। ओहोहो! महासत्त्व कहा था न कल, भाई! नहीं? महासत्त्व कहा था, हों! अष्टपाहुड़ में है। महासत्त्व है। चेतन का महासत्त्व। समझ में आया? यह सत्... सत्... सत्त्ववाला नहीं लोग कहते? कसवाला है। ऐसा आत्मा चेतन का महात्त्ववाला है। चेतन के महासत्त्ववाला है। ऐसे अनन्त गुण का ध्रुव ऐसा महासत्त्ववाला वह आत्मा है। यह पैसेवाले को पहले कुछ नहीं कहते थे? क्या कुछ भाषा करते। कसवाला। कस कहते थे। नहीं कहते? गाँव में दस-पन्द्रह हजार की पूँजी हो तो कसवाला कहते थे। पहले तो बहुत कहते न? भाई कसवाले हैं। कस अर्थात् समझ में आया? धारावाही आयी न। माल तो ठीक परन्तु कस उसे कहते हैं वास्तव में तो। वह पानी निकलता है। उसे लोग कस कहते हैं। ऐसे पानी नीचे चलता हो न और ऊपर से खबर पड़े कि यहाँ कस है इसमें पानी की शीर है। यह लोग खोज करते हैं। कस देखते हैं। वह कस। यह देखे कि इस जगह शीर चलती लगती है। जमीन के ऊपर से निर्णय कर लेते हैं। यहाँ कस है इसमें। ...प्रवाह। यहाँ धारावाह आया न इसलिए जरा। समझ में आया? यह बहुत होशियार लोग होते हैं न, किसान और यूरोपियन आदि भी बहुत गहरे-गहरे पानी का प्रवाह कहाँ जाता है, ऐसा कान रखकर उस प्रवाह को पकड़ते हैं। एक मील दूर पानी का प्रवाह धोधमार जाता है ऐसा। ऐसा कहे। समझ में आया?

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा सर्व काल धाराप्रवाहरूप चेतनरूप ऐसा है एक परिणाम जिसका,... समझ में आया? आहाहा! उसे कस कहते हैं, कस। हमने सब सुना है। सब सुना है। रास्ते में ऐसे जायें न... तो वे लोग, कोई पुराने लोग (ऐसा कहे), यह कस है। अर्थात् क्या परन्तु तुम कहते हो कस है? यहाँ धूल है। नीचे पानी का प्रवाह चला जा रहा लगता है। पानी का प्रवाह जा रहा लगता है नीचे। हाथ, दो हाथ, चार हाथ दूर प्रवाह जाता है। उसी प्रकार आत्मा का प्रवाह। इस विकल्प के पीछे चैतन्य भगवान का प्रवाह चैतन्यप्रवाह बहता है, कहते हैं। अकेले चैतन्य के प्रवाह के परिणाम वे आत्मा के हैं। समझ में आया? लो, गजब परन्तु... आचार्यों ने भी जंगल में रहकर किस प्रकार करुणा का प्रपात बहाया है न! अरे! भगवान! तू ऐसा है न, प्रभु! तू भी ऐसा है न। तेरे पास कहाँ कमी है कि कहीं पर में से लेना है तुझे, राग में से। यहाँ भगवान है न बड़ा। उसे जहाँ दृष्टि में लिया तो उसका परिणमन धारावाही चेतन ही परिणमेगा, कहते हैं। जानना... जानना... जानना... जानना... वह प्रवाह बहता है, बस। दूसरा प्रवाह है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

‘सदा ज्ञानमयैकभावः’ सदा ज्ञानमय । ज्ञानमय इतनी भाषा ली है न ? वह राग नहीं, ऐसा कहना है । राग जो है न ? विकल्प नहीं । ज्ञानमय । चेतनरूप ऐसा है एक भाव, एक परिणाम जिसका । ऐसा है । भावार्थ इस प्रकार है—जितने विकल्प हैं, वे सब मिथ्या । मिथ्या का अर्थ कि उसमें नहीं है । कहो, समझ में आया इसमें ? ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं लोगों को कि यह क्या है ? ऐसे के ऐसे हाँके ही रखते हैं बाहर से गाड़ी । कुछ भक्ति की, पूजा की, यह क्रिया की, व्रत किये फिर आवे । धूल भी नहीं आवे वहाँ, सुन न ! यात्रा करें तो आ जायेगा । विकल्प है । वहाँ कहाँ था भगवान उसमें ? भगवानजीभाई ! बहुत रूखा लगे, रूखा यह । राग के भाव बिना का रूखा । वीतरागभाव का चिकना, वीतरागभाव का रसवाला है । अकेला वीतरागभाव... वीतरागभाव ।

कहते हैं कि जिसे एक परिणाम । चेतनपरिणाम जानना... जानना... जानना... जानना... बहता है । उसमें जितने विकल्प हैं, वे सब मिथ्या है । मिथ्या अर्थात् कि उसकी पर्याय में नहीं । यह अस्ति है और यह नहीं, ऐसा कहते हैं मूल तो । क्या कहा ? वस्तु भगवान आत्मा चैतन्य प्रभु, पूरा वस्तुस्वभाव, ऐसी जहाँ द्रव्यरूप दृष्टि हुई होने पर, वह ज्ञायकमय होने पर, अशुद्ध परिणाम रहित होने से, शुद्ध परिणामसहित होने से एकरूप ज्ञानप्रवाह बहता है । उसमें विकल्प मिथ्या है । उसमें विकल्प है नहीं । उनके घर में भले वहाँ रहे, यहाँ नहीं है । कहो, समझ में आया ?

ज्ञानमात्र वस्तु का स्वरूप था, सो अविनश्वर रहा । वह नाशवान था, वह छूट गया । अविनश्वर भगवान आत्मा चैतन्यप्रभु की दृष्टि होने पर अविनश्वरपना रह गया । वह पर्याय भी अविनाशी की अविनाशरूप से ज्ञानरूप रह गयी । रागरूप रही नहीं । कहो, समझ में आया इसमें ? ऐसी धर्मकथा कैसी ? धर्मकथा उसमें कुछ ऐसा करना, अपवास करना, यह करना... यह करना... कितने वर्ष से न्यालभाई रस नहीं खाते, लो । यह रस तो उड़ गया उसमें से । रस भी उड़ गया । भगवान आत्मा के रस के आगे, कहते हैं रस खाता नहीं था और छोड़ा, यह उसमें नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं । भगवानजीभाई ! ऐई ! भगवानजीभाई ! देखो, यह । आहाहा !

भाई ! तू एक बार नजर तो कर । जो निधान है, उसमें नजर करे तो वह निधान ऐसा है कि जैसा निधान में पड़ा है, वैसा परिणामन होगा । समझ में आया ? उसमें फिर विकल्पों की नास्ति है, उसमें है नहीं । वास्तव में वस्तु और वस्तु के परिणामन में विकल्प द्रव्य में भी



नहीं थे, तो द्रव्य में नहीं थे तो पर्याय में भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, द्रव्यरूप हुआ तो द्रव्य में नहीं, इसलिए पर्याय में भी नहीं। कैसी शैली है परन्तु गजब है न! चिल्लाहट मचाते हैं कि सम्यग्दृष्टि निरास्रव, लो! युद्ध करने बैठा है न? सुन न अब। यहाँ चैतन्य के स्व-पर के जानने के परिणामरूप वह है। युद्ध के समय ऐसा है और भोग के समय भी ऐसा है और ध्यान के समय भी ऐसा है। ऐसा यहाँ कहते हैं। सदा कहा न? समझ में आया? आहाहा!

जिसकी खान में से ज्ञान प्रवाहित होता है, बहता है ऐसा भगवान आत्मा जहाँ दृष्टि में आया। धर्मी तो ज्ञान के परिणाम से परिणमे, वही उसका स्वरूप है। समझ में आया? वह राग और विकल्प वे तो पर में गये। उसे स्व-पर के ज्ञायक के एकरूप परिणमन में उसका जानना रह गया। एकरूप परिणमन में स्व-पर का एकरूप वापस। यह स्व और यह पर का, ऐसे दो भाग वहाँ नहीं। एकरूप स्व-पर का ज्ञान, उसका प्रवाह रह गया अकेला, बस। कहो, समझ में आया?

ज्ञानमात्र वस्तु का स्वरूप था, सो अविनश्वर रहा। निरास्रवपना सम्यग्दृष्टि जीव को जिस प्रकार घटता है, उस प्रकार कहते हैं—अब निरास्रवपना कहा न पहले से कि आस्रव नहीं है, आस्रव से रहित है, ऐसा पहले कहा था। 'अयं ज्ञानी' सम्यग्दृष्टि 'निरास्रवः' आस्रवरहित है, ऐसा कहा था। पहले से दो लाईन में। अब क्यों नहीं, इसका स्पष्टीकरण करते हैं। भीखाभाई कहते हैं कि घर में समझ में आये ऐसा नहीं है। यहाँ हो तो समझ में आये ऐसा है - ऐसा कहते हैं। उसका समय आवे तो यह कहे या नहीं? हीराभाई! समय आवे तब बराबर रखते हैं ये। आहाहा! भगवान तो स्वयं से ज्ञात होता है ऐसा है - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अपने से जाने। जाननेवाला भी उस राग को भी जाननेवाला स्वयं से जाननेवाला है। समझे न? ज्ञान का स्वरूप स्वयं परिणमते राग को और उसको जानना ऐसा परिणमन का स्वभाव ही इसका स्वतन्त्र है। यह वस्तु है धर्मी की। बाकी कोई चीज़ उसकी है नहीं। उसका राग नहीं, और स्त्री, पुत्र, तथा राजपाट कहाँ से घुस गये अन्दर? आठ कर्म हैं। आठ कर्म हैं और चार टले हैं और चार बाकी हैं। कुछ नहीं, ले न। अरे... अरे...! गजब बात, भाई! यह और केवली को चार टले हैं और चार बाकी। यह तो पर्याय में समझाने के लिये (कहते हैं)। वस्तु धर्मी को कर्म ही नहीं न। अशुद्ध परिणमन ही नहीं, वहाँ और कर्म कहाँ से आये? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो! और कहे, मुनि को आहारकशरीर होता है, देव को वैक्रियिकशरीर होता है, इसको औदारिक और तैजस, कार्मण होता है। लो! सीखे, उसमें यह सीखे। सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है या नहीं? ऐसी व्यंजनपर्याय होती है, ऐसी अर्थपर्याय होती है। आता है? वजुभाई! जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। यहाँ कहते हैं कि धर्मी को शरीर नहीं होता, धर्मी को विकल्प नहीं होता। समझ में आया? धर्मी को राग नहीं होता। नहीं होता उसे व्यवहारवाले कहते हैं कि यह है, यह व्यवहारनय का विषय हो गया। नहीं है, उसे कहना।

अकेला भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब शुद्ध चिदानन्द मूर्ति, वह स्वयं निरास्रव है। उसे आस्रव है ही नहीं। जिस प्रकार घटता है, उस प्रकार कहते हैं—‘भावास्रवाभावं प्रपन्नः’ लो! पहला शब्द है न यह? ‘भावास्रवाभावं प्रपन्नः’ वह ‘अयं’ गया उसमें। ‘अयं’ उसमें गया। ज्ञानी निरास्रव में। ‘भावास्रवाभावं प्रपन्नः’ लो! ‘भावास्रवाभावं प्रपन्नः’ क्योंकि मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम,... मिथ्या अर्थात् भ्रान्ति कि मैं एक अंश में हूँ, पुण्य में हूँ, पुण्य से ठीक है, पाप में मजा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और उसके साथ का रहा हुआ राग-द्वेषभाव, वह अशुद्ध चेतनापरिणाम है। वह तो चेतना की अशुद्ध पर्याय है, अशुद्ध। उसका विनाश.... है। धर्मी को उस अशुद्ध परिणाम का अभाव है और शुद्ध परिणाम की विद्यमानता है। क्योंकि शुद्ध वस्तु विद्यमान है, इसलिए उसे शुद्ध परिणाम ही विद्यमान है। अशुद्ध परिणाम विद्यमान है नहीं। समझ में आया?

‘भावास्रव’ अर्थात् मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम, उसका विनाश,... है। कहो, सम्यग्दृष्टि को भावास्रव का नाश है, ऐसा कहते हैं। भावास्रव की अस्ति ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई! समकित्ती को आस्रव नहीं। दसवें गुणस्थान तक आस्रव है। अब सुन न, भाई! किस अपेक्षा से कहा है? वह तो जानने की अपेक्षा से थोड़ा बाकी है तो कहते हैं। यहाँ तो वस्तु और वस्तु की दृष्टि में और उसकी परिणति में है नहीं, ऐसी वस्तु पहले यह निश्चित किये बिना फिर ज्ञान सच्चा कहाँ से होगा तेरा? दसवें तक है और सब है। कहो, समझ में आया इसमें? केवली को भी अभी अशुद्ध परिणामन है। कर्ता-कर्म के परिणाम कितने ही गुणों का, अभी उदयभाव है, असिद्धभाव है। केवली को भी अभी असिद्धभाव है। यहाँ कहते हैं कि समकित्ती को अशुद्ध भाव है नहीं। गजब बातें, भाई! यह तो पर्याय पर्याय की व्याख्या जब करनी हो, तब बतलाते हैं कि ऐसा है, ऐसा ज्ञान

कराते हैं। यहाँ तो अकेली वस्तु है, उसमें तो अशुद्ध परिणमन ही नहीं है न, उदयभाव तथा असिद्धभाव ही नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु है न? वस्तु में कहाँ है यह? वस्तु है, ऐसी वस्तु का परिणमन है। परिणमन में यह कहाँ है? कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा महा चैतन्यप्रभु अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण की खानरूप वस्तु। ऐसी एकरूप वस्तु विद्यमान द्रव्य। अस्तिवाला पदार्थ है। आहाहा! आयेगा न इसमें वह जीवन्त? इसमें ही आयेगा न? जीवन्त नहीं कहा एक बार? जीवन्त। श्लोक में है न कहीं? आस्रव में। विद्यमान है तो यह जीवन। देखो १६-१७ में है। 'सर्वस्यामेव जीवन्त्यां' यह विद्यमान है। वह भगवान का जीवन याद आया था न? 'जीवन्त्यां' इतनी है वह विद्यमान है। बहुत कालपर्यन्त जीव के प्रदेशों में रहना वह जितनी होती, जैसी होती, उतनी ही है, विद्यमान है, वैसी ही है निश्चय से; फिर भी सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा सर्व काल आस्रव से रहित है। 'जीवन्त्यां' है न? ११७ (कलश)। विद्यमान। ११७ श्लोक। यह 'जीवन्त्यां' का अर्थ किया है १०७ पृष्ठ। तीसरी लाईन।

'जीवन्त्यां' पुद्गलपिण्डरूप अनेक प्रकार का मोहनीयकर्म, उसकी संततिस्थितिबन्धरूप बहुत कालपर्यन्त जीव के प्रदेशों में रहती है, वह जितनी होती, जैसी होती, उतनी ही है, विद्यमान है, ऐसी ही है निश्चय से; फिर भी.... आत्मा निरास्रव है, ऐसा कहना है वहाँ। वहाँ विद्यमान हो तो निरास्रव है। यह विद्यमान आया, इसलिए वह विद्यमान हो तो भी निरास्रव है। यह भगवान का याद नहीं आया था? ऐई! वजुभाई! क्या? यह जीवन्त भगवान। जीवन्तस्वामी। बयाना में लिखा है न 'भगवान जीवन्तस्वामी'। महाविदेहक्षेत्र में धर्मकर्ता जीवन्तस्वामी सीमन्धर भगवावन। समझ में आया? उसी प्रकार यह जीवन्तस्वामी है। वह आस्रव जीवन्त कहा था। यह जीवन्त स्वरूप है। विद्यमान आया न पहले? विद्यमान वस्तु त्रिकाल है। विद्यमान भगवान, ऐसा कहते हैं न? विद्यमान तीर्थकर, ऐसा कहते हैं न? जीवन्त तीर्थकर, विद्यमान तीर्थकर। उसी प्रकार यह विद्यमान भगवान आत्मा वस्तु, उसका भान होने पर जो दृष्टि हुई, वहाँ अशुद्ध परिणमन है ही नहीं। उदयभाव का अभाव है। आहाहा! पारिणामिकभाव एक त्रिकाल और कुछ क्षयोपशम, क्षायिक आदि पर्याय, बस, वह निर्मल परिणमती है। वह है ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, 'भावास्त्रवाभावं प्रपन्नः' 'भावास्त्रवाभावं प्रपन्नः' लो! ओहोहो! अस्तिरूप से ऐसा परिणमन है, ऐसा पहले कहा। अब नास्तिरूप से ऐसा है, ऐसा कहते हैं। वाह! दिगम्बर मुनियों की स्थिति का वर्णन अलौकिक है! केवली के धर्म को स्तम्भ रोप रखे हैं। ओहोहो! उस पद्धति के वाच्य को बताते हैं, वह कोई अलौकिक है। भगवान आत्मा अपने विद्यमान प्रभु को पहुँचा, विद्यमान वस्तु उसमें शुद्ध परिणमन है, अस्तिरूप है, धाराप्रवाहीरूप ज्ञायक स्व-पर जाननेवाला ऐसा रह गया है। ऐसा कहते हैं। अब यह नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा है, यह नहीं। समझ में आया? अर्थ में कहते आये थे भले परन्तु उस पाठ में से यहाँ आता है।

कहते हैं कि 'भावास्त्रवाभावं प्रपन्नः' मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप अशुद्ध चेतनापरिणाम, उसका विनाश, उसको प्राप्त हुआ है। उसका अभाव प्राप्त हुआ है। ज्ञान की परिणति का एकरूप भाव प्राप्त हुआ है और इसका अभाव प्राप्त हुआ है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य पर्वत, उसका जहाँ प्रवाह आया तो चैतन्य परिणाम ज्ञायक वह स्व-पर द्रव्य को जानने का प्रवाह रहा, बस। और यह भावास्त्रव है, उसके अभाव को प्राप्त हुए हैं। नास्तिरूप परिणमन। समझ में आया? यह ध्यान रखे तो धीरे-धीरे समझ में आये, हों! न समझ में आये, ऐसा नहीं है। जाधवजीभाई जैसे भी कहते हैं कि अब धीरे-धीरे समझ में आता है थोड़ा। हाँ, हाँ, समझ में आता है, न समझ आये ऐसा नहीं है। यह तो इसके घर की बातें हैं। समझे हुए की बातें समझाते हैं कि तू समझ सकता है, ऐसा तो है। ऐसा तू है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—अनन्त काल से लेकर जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ.... देखा! मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप परिणमता था, उसका नाम आस्त्रव है। जब तक भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को न जानकर, मात्र पुण्य-पाप और विकल्प और अंशबुद्धि में पड़ा था, मिथ्यात्व और राग-द्वेष (रूप से) परिणमता था, तब तक उसे आस्त्रव था, तब तक उसे अशुद्धपना ही था, ऐसा कहते हैं। तब तक उसे अशुद्धपना ही था। भान होने पर उसे शुद्धपना ही है, अशुद्धपना है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है— अर्थ किया और वापस भावार्थ (कहते हैं)। अनन्त काल से लेकर जीव मिथ्यादृष्टि होता हुआ.... मिथ्यादृष्टि होता हुआ। स्वयं होकर। वापस कर्म ने मिथ्यादृष्टि कराया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वयं ही अपने स्वरूप की दृष्टि से विपरीत पुण्य और पाप, विकल्प और अंश में माहात्म्य मानता हुआ, अंश के विकास के अंश में,

उघाड़ के अंश में और राग-द्वेष के अंश में माहात्म्य करके मिथ्यादृष्टिरूप से राग-द्वेष करता था, तब तक उसे मात्र अशुद्धपना ही था। उसे ही आस्रव था। समझ में आया? उसका नाम आस्रव है। उसका नाम आस्रव है। अर्थात् कि जहाँ तक मिथ्यादृष्टि होता हुआ, मिथ्यात्व और राग-द्वेष (रूप) परिणमता था, उसका नाम आस्रव है। वाह!

काललब्धि प्राप्त होने पर वही जीव सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणामा, शुद्धतारूप परिणामा, अशुद्ध परिणाम मिटा.... समझ में आया? 'दादु कहे दुनिया दुंद फाटी सवळी चाली सेर, भटकवुं तो मटी गयुं अने वस्तु जडी घेर।' अन्यमति में यह दादु हुआ न? दादुभगत-दादुभगत कहते हैं। दादु का शिष्य हुआ है कोई वह। 'दादु कहे दुंद फाटी'। दुंद समझ में आता है। पेट मोटा दुंद। ऐई! तुम्हारा अर्थ पूछना है। ....और यह याद आया। दुंद में से दुणा। कल का, परसों वह दुणा का अर्थात् कहा क्या होगा यह? दूध दुळाणुं, खींचड़ी दूळाणी... अर्थात् क्या तुम्हारे शब्द हैं संस्कृत में? क्यों अपने कहते हैं या नहीं अभी दूध दुळाई गई, खींचड़ी दुळाई गई ऐसा कहते हैं। दूधपाक दुणाई गया। नहीं कहते? दुणाई गया अर्थात् क्या कहा भाई इसमें? दुणाई गया का अर्थ समझे बिना दुणाई गयुं-दुणाई गयो दिये रखे तो क्या है यह? न्यालभाई कहे, वह दोणी होती है न दोणी उसमें दुणाई गयुं। परन्तु यह हमारे संस्कृतवाले को पूछना चाहिए। ऐसा हम तो अध्वर से दिये रखें दुणाई गयुं-दुणाई गयुं। अर्थात् दोगुना हो गया होगा? वह पक्का करते हुए अधिक हो गया? अर्थात् दुणाई गया होगा? भाई ने प्रश्न किया था कि दु अर्थात् क्या? दुणाई गयुं।

इसी प्रकार यह आत्मा दुणाई गया मिथ्यात्वभाव में। दुणाई उसमें ऐसा आता है न? ...ऐसा कुछ है। निकालना और निर्णय करना शब्द का अर्थ। या यह रूढिगत शब्द है? रूढिगत भी हो, ऐसा कुछ नहीं। धर्मास्तिकाय की तरह नाम है। धर्मास्तिकाय का कोई अर्थ है? यह रूढिगत शब्द है। धर्मास्तिकाय द्रव्य है और भगवान ने कहा, उसका कोई शब्दार्थ करने जाये तो निकले, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार कुछ हो, उसका कुछ नहीं। आता है शास्त्र में, हों! अष्टपाहुड़ में। गन्ध। उसे गन्ध बैठ गयी है। भाई, ऐसा आता है अष्टपाहुड़ में। भावपाहुड़ में। गन्ध। ऐसा मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का है। मिथ्यात्व की गन्ध प्रविष्ट है, वासना प्रविष्ट है। भगवान आत्मा की गन्ध प्रविष्ट होने पर सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-भान होने पर गन्ध प्रविष्ट हो गयी परमात्मा की। वह परमात्मा की गन्ध प्रविष्ट हुई। वासना परमात्मा की हो गयी। वह परमात्मा हो जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया? और यह पुण्य और पाप तथा विकल्प की गन्ध बैठी है न मिथ्यात्व में? अकेला आस्रव है, कहते हैं। और

दूसरा है नहीं। आत्मा नहीं, संवर नहीं, निर्जरा भी नहीं और मोक्ष भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

वही जीव सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणामा,.... देखो! समकित पर्यायरूप परिणामा, ऐसा है। वह कहे समकित गुण है। तुम विचारकर डालो पर्याय-पर्याय। यह और एक श्लोक था। अनेक प्रकार के लोग। विविधता है न?! उसमें एकता न ही हो। समकितरूप पर्याय से परिणामा है, ऐसा कहा है यहाँ तो। तो वह समकित गुण है। सिद्ध में भी आठ गुण हैं। तुम पर्याय-पर्याय क्या करते हो? दिये रखो आत्मधर्म। ठीक, भाई! यहाँ तो कहते हैं कि सिद्ध स्वयं पर्याय है। सुन न! वह पर्यायनय का विषय सिद्ध है। संसारी और सिद्ध तो दोनों पर्याय है। द्रव्य तो द्रव्यरूप ध्रुव एकरूप है। उसमें पर्याय कहाँ से आयी? सिद्ध पर्याय उसमें कहाँ है? और द्रव्य में वह पर्याय कहाँ है? पर्याय तो ऊपर-ऊपर तैरती है, दूर ध्रुव से भिन्न। समझ में आया? वाह! स्वाध्याय तो देखो! यह स्वाध्याय। यह बाहर निकले, वहाँ ऐसा कुछ चले?

कहते हैं कि सम्यक्त्व पर्यायरूप परिणामा,.... भगवान आत्मा अपने वस्तुस्वभाव की प्राप्ति पर्याय में हुई, परिणामा। शुद्धतारूप परिणामा,.... ऐसा कहते हैं। परिणामा अर्थात् शुद्धतारूप परिणामा। वह मिथ्यात्वरूप परिणामा था, वह अशुद्धता आस्रव थी। समकितरूप परिणामा तो शुद्धता से परिणामा। अशुद्ध परिणाम मिटा, इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ। इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार से कहा न? अशुद्धतारूप परिणामा नहीं, शुद्धरूप परिणामा; इसलिए अशुद्ध परिणामन रहा नहीं। समझ में आया ?

यह मीठी अमृत जैसी बात है। ऐसी कान में पड़ने पर वह विकल्प होता है, वह अलग प्रकार का है सुनने का। बात तो यह है, बापू! आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अमृत का कुण्ड बड़ा। देखो न! यह रोग मिटाने जाते हैं न पानी में नहाने। धरा में। राजगृही में नहीं? राजगृही है न? देखा था। दूर खड़े-खड़े देखते थे। लोग पानी से नहाते थे अन्दर राजगृही के कुण्ड में। बहुत खस हो न। ऐसा कहते हैं, मिथ्यात्व का फोड़ा लगा हो उसे चैतन्य प्रवाह में अन्दर नहाना। तेरा कुण्ड बड़ा है। उसमें से कभी पार ही नहीं आवे। अब हो गया ऐसा है ही नहीं। हो क्या रहे? द्रव्य है, उसमें क्या हो रहे? ऐसा जिसमें आनन्द का, शान्ति का प्रवाह है, वह जिसे शुद्धता परिणामन हुआ, अशुद्ध परिणाम नहीं। इसलिए भावास्रव से तो इस प्रकार रहित हुआ। कौन? समकित जीव।

‘द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः’ वह तो यहाँ शुद्ध परिणमा, इसलिए अशुद्धता टल गयी, ऐसा कहा। और यह द्रव्यास्रव तो सहज भिन्न ही है, उसे और टालना-फालना है नहीं, उससे तो रहती ही है, ऐसा कहते हैं। वह जो बात थी, जहाँ तक मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन था, वह अशुद्ध था, वह आस्रव था, बस। स्वभाव की दृष्टि होने पर शुद्ध परिणमन हुआ, वह आस्रव नहीं। इसलिए इस प्रकार उसे आस्रव, भावास्रव नहीं, इस प्रकार से। और द्रव्यास्रव तो द्रव्यास्रव तो रहित ही है, वह तो भिन्न है। वह तो रजकण ही भिन्न पड़े हैं। यहाँ तो शुद्धरूप परिणमा, इसलिए अशुद्धपना नहीं है, भावास्रव नहीं है। और द्रव्यास्रव तो वहाँ है ही नहीं। क्योंकि रजकण कर्म के पड़े हैं, वे तो भिन्नरूप से हैं। आत्मा में है नहीं। एक समय की अवस्थारूप आस्रव था, वह द्रव्यदृष्टि होने पर, शुद्ध परिणमन होने पर वह अशुद्ध परिणमन रहा नहीं। पर्याय में था, वह रहा नहीं। यह तो पर्याय में भी नहीं। कौन? - द्रव्यास्रव।

ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायरूप जीव के प्रदेशों में बैठे हैं। लो! भगवान जहाँ असंख्य प्रदेशी प्रभु है, वहाँ वे कर्म बैठे हैं। आठ कर्म के रजकण अन्दर बैठे हैं। यह है न? ऐसे रजकण। पुद्गलपिण्ड, उनसे तो स्वभाव से सर्व काल निराला ही है। उससे-स्वभाव से, स्वभाव से। उसका परिणमन बदला, इसलिए ऐसा नहीं। वह परिणमन बदला तो अशुद्ध रहा नहीं। वह तो स्वभाव से भिन्न ही है। सर्व काल निराला ही है। इस प्रकार, ज्ञानी भावास्रव और द्रव्यास्रव से रहित है। भावार्थ कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

९

श्री नियमसार, कलश - १७३ से १७५, प्रवचन - १२९  
दिनांक - २०-०५-१९८०

नियमसार, आलोचना अधिकार १७३ श्लोक है।

शुद्धं तत्त्वं बुद्ध-लोक-त्रयं यद्,  
बुद्ध्वा बुद्ध्वा निर्विकल्पं मुमुक्षुः।  
तत्सिद्ध्यर्थं शुद्ध-शीलं चरित्वा  
सिद्धिं यायात् सिद्धिसीमन्तिनीशः॥१७३॥

[ श्लोकार्थः ] मुमुक्षु जीव... जिसे मोक्ष की अभिलाषा, अन्तरतत्त्व की जिसे अभिलाषा है, उसे यहाँ मुमुक्षु कहते हैं। मुमुक्षु जीव तीन लोक को जाननेवाले निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व को भलीभाँति जानकर... वहाँ राजकोट में प्रश्न हुआ था। ऐसा कि भगवान को तीन लोक के नाथ कहा है। ....वह तो नहीं। तीन लोक के नाथ कहा है, वह जानने की अपेक्षा से। यहाँ कहा न, तीन लोक को जाननेवाले... उन्हें तीन लोक का नाथ कहा जाता है। वे कहाँ किसी के...

तीन लोक को जाननेवाले... कौन ? कि निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व, निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व भेदरहित अभेद तत्त्व अन्दर, उसे यहाँ निर्विकल्प तत्त्व कहते हैं। जिसमें भेद नहीं। यह गुण और यह गुणी, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं। ऐसा जो अभेद तत्त्व, उसे जानकर। तीन लोक को जाननेवाले निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व को भलीभाँति जानकर... ऐसा कहा। आहाहा! उसकी सिद्धि के हेतु... उसकी पूर्ण प्राप्ति के लिये शुद्ध शील का ( चारित्र का ) आचरण करके,... जानकर पहले कहा, पश्चात् आचरण कर कहा। जाने बिना किसका आचरण ? शुद्ध आत्मा आनन्दस्वरूप, अनन्त गुण से भरपूर चैतन्य रत्नाकर देव है। उसे जानकर। उसे जानकर कब होगा ? परसन्मुख के झुकाव को छोड़कर, राग को-संयोग को-भेद को छोड़कर अन्तर अभेद चीज है, उसे जानकर, उसका ज्ञान करके। पश्चात् चारित्र। शुद्ध शील वापस। चारित्र वह शुद्ध। पंच महाव्रतादि, वह नहीं। इससे यह शब्द लिया है। पंच महाव्रतादि नहीं। शुद्ध शील। आहाहा!



ज्ञानस्वरूपी भगवान, अत्यन्त अभेद शुद्ध का ज्ञान करके उसमें रमना, चरना, इसका नाम शुद्धचारित्र है। शुद्ध शील। शील अर्थात् चारित्र। ऐसे शुद्ध शील का ( चारित्र का ) आचरण करके, सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है... आहाहा! मुक्तिरूपी पूर्ण दशा का वह स्वामी होता है, ऐसा कहते हैं। मुक्तिरूपी पूर्ण दशा उस शुद्ध तत्त्व को जानकर उसमें शील अर्थात् आचरण करके मुक्तिरूपी परिणति को प्राप्त होते हैं। इसलिए उसे स्त्री का स्वामी कहा है। सिद्धि को प्राप्त करता है। कहा न? सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है... अर्थात् क्या? सिद्धि को प्राप्त करता है। आहा! तत्त्व की भी बात की, उपाय की भी कही और उपेय की भी कही। एक श्लोक में तीनों आ गये। अन्दर शुद्ध अभेद चैतन्य, वह तत्त्व; उसे जानकर, यह सम्यग्ज्ञान। जानकर माना, वह सम्यग्दर्शन और उसमें शुद्ध शील, स्वरूप में आचरण अन्दर चारित्र। आहाहा! चारित्र अर्थात् मोक्ष का मार्ग। ज्ञान-दर्शन-चारित्र, ये तीन मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है—सिद्धि को प्राप्त करता है। एक श्लोक में तो बहुत अधिक आ गया। बाह्य क्रियाकाण्ड से तथा बाह्य शास्त्र के अकेले ज्ञान से वह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। वस्तु है, पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरपूर तत्त्व है। उसे प्राप्त करने के लिये तो उसकी सन्मुखता और संयोग राग और पर्याय की विमुखता (होनी चाहिए)। द्रव्यस्वभाव की सन्मुखता। संयोग—देव-गुरु-शास्त्र संयोग में भले हो। आहाहा! उनसे भी रहित। उनके प्रति राग है, उससे भी रहित और राग में, पर्याय में जो ज्ञान होता है, उस पर्याय से भी रहित। आहाहा! त्रिकाली जो शुद्ध तत्त्व है, उसे जानकर-मानकर आचरण, यह सिद्धि का कारण है। यह मुक्ति का कारण है। आहाहा! १७३ श्लोक (पूरा) हुआ।

सानन्दं तत्त्वमज्जिनमुनिहृदयाम्भोजकिञ्जल्कमध्ये,  
निर्व्याबाधं विशुद्धं स्मरशरगहनानीकदावाग्निरूपम्।  
शुद्धज्ञान-प्रदीप-प्रहत-यमिमनोगेह-घोरान्धकारं,  
तद्वन्दे साधुवन्द्यं जननजलनिधौ लङ्घने यानपात्रम्॥१७४॥

[ श्लोकार्थः ] तत्त्व में मग्न ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,... आहाहा! अकेला मक्खन है। अन्दर में—तत्त्व में जो मग्न है। चैतन्यतत्त्व, ध्रुव अनन्त गुण से एकरूप, ऐसे तत्त्व में जो मग्न है। ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,... केसर जैसे फूल में होती है, उसी प्रकार यह प्रगट आनन्द की दशा सहित विराजते हैं। आहाहा! तत्त्व में मग्न ऐसे

जिनमुनि... यह कहीं मुनि क्रिया करे, महाव्रत पाले, वह नहीं। यह तो तत्त्व में मग्न... आहाहा! ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,... आहाहा! जैसे कमल में केसर बाहर आवे; उसी प्रकार इस हृदय में भगवान आत्मा आनन्दसहित बाहर आता है। उसकी दृष्टि करने पर, उसका आदर करने पर अतीन्द्रिय आनन्द के केसरसहित बाहर आता है। शक्तिरूप रहता है, ऐसा नहीं। आहाहा! तत्त्व में अन्तर एकाग्र होने पर अन्तर के आनन्द का, जैसे कमल में केसर होती है, वैसे आत्मा में आनन्दसहित वह आत्मा बाहर आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सबकी बात एक है। चाबी एक है, चाबी। लड़का बोला था। सिद्धप्रकाश है न! सबकी चाबी एक है, ऐसा बोला था। आत्मा की एक ही चाबी है कि अन्दर त्रिकाल स्वभाव की ओर जाना।

अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! केसर बाहर आती हैं न? कमल में शक्तिरूप नहीं रहता, केसर बाहर आती है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति से भरपूर, उसे जानकर हृदयकमल की केसर में... हृदयकमल में उस आनन्द का स्फुरण होता है। जो आनन्द सहित विराजमान है,... आहाहा! परन्तु किसे? कहते हैं। तत्त्व में मग्न ऐसे को। तत्त्व जो आत्मा भगवानस्वरूप... आहाहा! कैसे जँचे? अभी भगवान! भगवान तो कब होगा? आहाहा! भगवान ही है। यदि भगवान न हो तो भगवानपना आयेगा कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है?

भगवानस्वरूप आत्मा ऐसे तत्त्व में जो मग्न है - ऐसा कहा। ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,... वह जीव लिया है। आलोचना में। आलोचना अर्थात् जीव को देखनेवाला और जीव में मग्न, वह आलोचना है। आलोचना अधिकार है न? आहाहा! वह तत्त्व जो है, उसे देखता है, उसे जानता है, उसमें मग्न है, उसे आनन्दसहित आत्मा विराजता है। प्रगट आनन्दसहित विराजता है। आहाहा! जो बाधारहित है,... जिसे कोई विघ्न नहीं है। ऐसा उस आत्मा का स्वरूप है, जो तत्त्व में मग्न है, कि जिसे कोई बाधा नहीं है। कोई विघ्न है ही नहीं कि कर्म का कठोर उदय आयेगा तो ऐसा होगा और वैसा होगा। तत्त्व में मग्न पुरुषार्थी को किसी प्रकार का विघ्न अन्तर में नहीं आता। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! अभी तो सब क्रियाकाण्ड में उतार डाला। दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो। उसमें भक्ति... आहाहा!

तत्त्व जो अन्दर है और कहते हैं कि जो तत्त्व में मग्न है। ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की... आहाहा! कमल में जैसे केसर (होती है), वैसे आनन्दसहित विराजमान

है। आहाहा! परन्तु जो तत्त्व में मग्न है, उसे आनन्दसहित विराजमान है। वैसे तो आत्मा आनन्दसहित त्रिकाल है, परन्तु अन्दर में मग्न (हुए) बिना पर्याय में आनन्द नहीं आता। आहाहा! ऐसा उपदेश। साधन क्या होगा? यह साधन। तत्त्व को जानना, मानना और स्थिर होना, यह उसका साधन है। मुक्ति का यह साधन है। आहाहा!

**जो बाधारहित है, जो विशुद्ध है,...** जो विशुद्ध है। विशुद्ध अर्थ में तो शुभभाव में भी आता है और शुद्ध में भी ऐसा अर्थ आता है। यहाँ शुद्ध के अर्थ में विशुद्ध है। विशुद्ध है - अकेला निर्मल शुद्ध है। **जो कामदेव के बाणों की गहन ( -दुर्भेद्य ) सेना को जला देने के लिए...** आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? कि जो बाह्य की सुन्दरता देखकर, पाँचों ही इन्द्रियों के विषयों में ऐसी सुन्दरता, शरीर की सुन्दरता को देखकर जो काम उत्पन्न होता है, ऐसे कामबाण को तो नाश कर डाले, ऐसा है। आहाहा! **कामदेव...** ले, अब उसे देव कहा। **कामदेव के बाणों...** आहाहा! कुछ रूपवान शरीर देखे, रूपवान कोई चीज़ देखे, अन्दर में चोट लग जाए। यह ठीक है, वहाँ रुक जाए, यह कामदेव का बाण है। आहाहा! पाँचों इन्द्रिय की ओर की अनुकूल चीज़ को देखकर, उसमें राग की उत्पत्ति करके अन्दर रुक जाना, वह कामदेव का बाण है। उसे यह नष्ट कर डालता है।

**कामदेव के बाणों की गहन ( -दुर्भेद्य ) सेना...** अर्थात् कि... आहाहा! आँख से देखना, कान से सुनना इत्यादि पाँच इन्द्रियों की अन्दर बहुत ही प्रीति और प्रेम उत्पन्न हो, वह उसे दुर्भेद्य है। आहाहा! उसका नाश करना। दुर्भेद्य ऐसी सेना। आहाहा! जवान शरीर हो, इन्द्रियाँ पुष्ट हों, आहार और पैसा-साधन हो (तो) अन्दर से फट निकले, (अभिमान में आ जाए) मानो बस, हम यह हैं, हम सुखी हैं। आहाहा! ऐसे पाँच इन्द्रिय के बाण जो हैं, उन्हें वह बाण कैसे हैं? दुर्भेद्य। नाश करना कठिन है। आहाहा! उन्हें भेद करना (कठिन है)। आहाहा! अपनी कीर्ति सुने, इज्जत सुने, वहाँ अन्दर में इसे गलगलिया होता है। आहाहा! उसकी जहाँ महिमा सुने, यह सब काम के बाण हैं। दुर्भेद्य है। उनका भेद-नाश करना मुश्किल है, दुष्कर है।

तथापि उसकी सेना को जला देने के लिए... आहाहा! तत्त्व ऐसा है। भगवान चैतन्यतत्त्व अतीन्द्रिय आनन्द का तत्त्व (ऐसा है) कि काम की सेना जो दुर्भेद्य है, उसे भी जला डालने को समर्थ है। **जला देने के लिए दावानल समान है...** साधारण अग्नि नहीं। आहाहा! जैसे जंगल में दावानल हो और बड़े-बड़े वृक्षों को जला डाले। सूखे और हरे... आहाहा! दावानल हरे और सूखे को जलाकर राख कर डालता है; उसी प्रकार आत्मा का-

तत्त्व का मग्नपना अन्दर... आहाहा! दावानल समान है... आहाहा! काम की सेना दुर्भेद्य होने पर भी उसे जला डालने में समर्थ है। आहाहा! यह आलोचना... यह आलोचना। मुख से गुरु को कहना कि मुझे ऐसा हुआ, वैसा हुआ, वह सब विकल्प की आलोचना है। यह तो निर्विकल्प आलोचना है। आहाहा!

और जिसने शुद्धज्ञानरूप दीपक द्वारा... आहाहा! शुद्ध सम्यग्ज्ञान द्वारा, चैतन्य प्रकाश द्वारा अन्दर के तत्त्व को पकड़ने से उसका-चैतन्य का प्रकाश प्रगट हुआ। उस चैतन्य के प्रकाश द्वारा, दीपक द्वारा मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार का नाश किया है,... आहाहा! जो भगवान चैतन्य अन्दर है, उसका जिसने आदर किया, उसे चैतन्य के प्रकाश द्वारा, मुनियों के हृदय में जो अन्धकार है, उसका उसने नाश किया। घोर अन्धकार का नाश किया। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मुनियों के मनोगृह में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहले दुर्भेद्य कहा था। कहते हैं कि परन्तु है घोर। आहाहा! घोर अन्धकार। मोहरूपी घोर अन्धकार। वह चैतन्य के तत्त्व के अवलम्बन से दावानल समान चैतन्य भगवान काम की सेना को जलाने में समर्थ है। आहाहा! इन्द्र की इन्द्राणी आकर भी यदि डिगाने आवे तो कहते हैं कि आत्मा समर्थ है। उस कामबाण की सेना के लिये दावानल समान है। आहाहा! वह कैसा? घोर दावानल। आहाहा!

घोर अन्धकार का नाश किया है,... आहाहा! उसे—साधुओं द्वारा वन्द्य... आहाहा! ऐसा तत्त्व है, वह सन्तों द्वारा वन्दनीय है, साधुओं द्वारा आदरणीय है। आहाहा! साधुओं द्वारा वन्द्य तथा जन्मार्णव को लाँघ जाने में... आहाहा! जन्मरूपी अर्णव अर्थात् समुद्र, उसे लाँघ जाने में... शुद्ध तत्त्व का आश्रय उस जन्मार्णव को लाँघ जाने में नौकारूप... जैसे समुद्र में नाव से तैरकर जाते हैं। नाव-नाव, नौका। आहाहा! साधुओं द्वारा वन्द्य... भावलिङ्गी साधु। जिन्हें भाव आनन्द का लिंग / चिह्न प्रगट हुआ है। आहाहा! वह जिनकी केसर है। जैसे कमल में केसर (होती है वैसे)। वह दुर्भेद्य कामबाण होने पर भी, सन्तों को वन्दनीय है और जन्मार्णव को लाँघ जाने पर... आहाहा! जन्मरूपी समुद्र, जन्म-मरण... जन्म-मरण... जन्म-मरण... एक जन्म हो वहाँ मरे, वहाँ दूसरा जन्म, दूसरा मरे वहाँ तीसरा जन्म। ऐसे अनन्त-अनन्त मरण। यह पाँच-पच्चीस-पचास वर्ष स्थिति की अवधि कितनी? सौ वर्ष की लो न! अवधि कितनी अनन्त काल के सामने? ऐसे सौ-सौ वर्ष की जिन्दगी। जन्मरूपी अर्णव संसार... आहाहा! लाँघ जाने में नौकारूप... है। पानी का बड़ा समुद्र भरा

हो, उसमें नाव होवे तो नाव से उसे तिर सकते हैं। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अपने स्वरूप में लीन होकर और मोहन्धकार का नाश कर सकता है। आहाहा! इसमें बाहर का क्या करना कुछ आता नहीं। यह क्रिया करना या... आहाहा!

जड़ की क्रिया तो आत्मा कर नहीं सकता। अन्दर अशुद्ध परिणाम के रागादि आते हैं, वह तो दुःख और आकुलता है। उन्हें तो छेदने के लिये यह आलोचना अर्थात् जीव को देखना, अन्दर देखना कि यह है कौन परन्तु? आहाहा! मुनि के हृदयकमल में... आहाहा! मनोगृह के घोर अन्धकार का नाश किया है, उसे—साधुओं द्वारा वन्द्य तथा जन्मार्णव को लाँघ जाने में... आहाहा! संसार के भव करने के परिणाम से लाँघ गया है। जिस भाव से भव मिले, उस भाव से उल्लंघ गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुनिराज पंचम काल के मुनि हैं। पंचम काल के श्रोता को कहते हैं या चौथे काल के हैं? आहाहा! प्रभु! तुझमें तैयारी इतनी है... आहाहा! उसके सन्मुख देख और उसमें स्थिर हो। आहाहा! मनोगृह का, मोह के अन्धकार का नाश हो जाए ऐसा है। मोह रहे नहीं। एक अंश भी मोह का नहीं रहे। जैसे समुद्र में नौका से तिरा जा सकता है, वैसे प्रभु के आश्रय से मोह के अन्धकार को तिरा जा सकता है। आहाहा!

उस शुद्ध तत्त्व को... मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। ऐसे तत्त्व को—मैं वन्दन करता हूँ। पाँच परमेष्ठी को वन्दन करता हूँ, यह बात नहीं ली। आहाहा! क्योंकि वह तो विकल्प है। आहाहा! ऐसे तत्त्व को... आहाहा! उस शुद्ध तत्त्व को... जिस तत्त्व में मोह का नाश करने की सामर्थ्य है। दुर्भेद्य होने पर भी जिसे भेद डाले, ऐसी सामर्थ्य है। रागादि भेद करना, नाश करना दुर्भेद्य है। उसे जला डालने को समर्थ है, ऐसा जो तत्त्व। ऐसे तत्त्व को मैं वन्दन करता हूँ। उसे मैं वन्दन करता हूँ, ऐसी भाषा है। यह आलोचना। आहाहा! यह अगम्य-गम्य की बातें हैं। अलक-मलक की नहीं। आहाहा! अगम्य - जो अनादि से गम्य हुआ नहीं, उसे गम्य करने का यह अधिकार है। आहाहा! एक-एक श्लोक बहुत तत्त्व से भरपूर है। आहाहा! ऐसे उस शुद्ध तत्त्व को... अर्थात् जो साधु द्वारा वन्द्य है, जन्मार्णव को लाँघ जाने में नौकारूप है, जो मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार को नाश करने में समर्थ है, ऐसा जो शुद्ध तत्त्व है, उसे मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

**मुमुक्षु :** आत्मा तो अकर्ता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्ता है और अकर्ता है, दोनों है। राग का अकर्ता है और स्वरूप

की पर्याय का कर्ता है तथा एक न्याय से तो शुद्धपर्याय का भी कर्ता नहीं। पर्याय, पर्याय से होती है। यहाँ एक साथ अभेद करके समझाना है न? ऐसा कर डाले कि आत्मा पर्याय को छेद डालता है। छेद डालता है, वह तो राग के लिये है। निर्मल पर्याय को छेदता है? निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, उसका आश्रय तत्त्व है। धर्म की निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, उसका आश्रय स्वतन्त्र पर्याय कर्ता हुई और ध्रुव का आश्रय लेती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! इसलिए पर्याय भी स्वतन्त्र है। जो निर्मल पर्याय है, वह स्वतन्त्र है। वह पर्याय पर्याय को वांदे है। पर्याय ध्रुव को वांदे छे। वांदे छे तो दोनों को। समझ में आया? आहाहा! दोनों का आदर है। ध्रुव का आदर है और ध्रुव के आदर से प्रगट हुई दशा का भी आदर है। आहाहा! ऐसी बात आती है, वहाँ लोगों को (ऐसा लगता है कि) अकेली निश्चय की बात है, वहाँ तो निश्चय की बातें करते हैं। परन्तु बापू! निश्चय अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् सच्चा। व्यवहार अर्थात् आरोपित। आहाहा! ऐसे सत् को प्रभु! तूने सुना नहीं।

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है। उसे शरीरप्रमाण देखने पर इसे ऐसा लगता है कि इतना बड़ा यहाँ होगा? भले अवगाहन शरीरप्रमाण हो, तथापि उसका स्वभाव है, वह तो अपार है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान। अनन्त अर्थात् जिसमें अन्त नहीं। इतना ज्ञान, दर्शन और शान्ति भरी है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... का आश्रय लेनेवाले को शान्ति प्राप्त हो, ऐसा है; बाकी शान्ति कहीं से मिले, ऐसी नहीं है। आहाहा! वहाँ प्रश्न बहुत हुए हैं। ऐसा कि यह शुभभाव करते हैं, उसमें जरा शान्ति लगती है न? चन्दुभाई प्रश्न करते थे, बहुत करते थे। शुभभाव में जरा शान्ति लगती है अर्थात् क्या? शान्ति नहीं और लगती है, यह कहाँ से आया? शुभभाव तो अशान्ति है, शुभभाव तो आकुलता है। आहाहा!

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुर्भेद्य तो कहा। हो सकनेयोग्य है। कठिन परन्तु अशक्य नहीं। हो सकता नहीं, ऐसा कठिन नहीं। अभी आगे कहेंगे। यह सरल है, ऐसा कहेंगे। इसमें है न? १७६, १७६। **निरन्तर सुलभ है...** १७६ कलश। आहाहा! है? १७६ कलश की दूसरी लाईन। उसकी शुरुआत में **जो निरन्तर सुलभ है...** भगवान। आहाहा! श्रीमद् में भी आता है। सत्, सत् है; सरल है, सर्वत्र है। यह बतलानेवाले चाहिए, इतना (विशेष कहा)। आहाहा! यहाँ तो कहा कि सत् निरन्तर सुलभ है। ऐसा नहीं कहा कि वह प्राप्त नहीं होता।

आहाहा! स्वयं ही इसने महँगा है, ऐसा मानकर अन्दर में पुरुषार्थ नहीं कर सकता। नहीं तो जो निरन्तर सुलभ है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बोधिदुर्लभ भावना क्यों कही ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बोधिदुर्लभ भावना अपेक्षा से है। यह तो पहले कहा, दुर्भेद्य है। किसलिए? भेदना दुर्लभ है, परन्तु हो सकता है। हो सके, ऐसा वह तत्त्व है। तत्त्व के सन्मुख देखने पर वह कोई रह सके, उससे विरुद्ध भाव कोई रह सके, यह ताकत नहीं है, ऐसा वह तत्त्व है। जिसके तत्त्व के प्रकाश के आदर और स्वभाव के सत्कार के समक्ष, उससे विरुद्ध का भाव खड़ा नहीं रह सकता, ऐसा वह तत्त्व है। विश्वास आना चाहिए न! आहाहा!

यहाँ तो सन्त बात करते हैं, वह अपनी है, वह बात दूसरे को करते हैं। भाई! यह हो सकता है। यह तू लाख करके (पर को) अपना मानना चाहे तो अनन्त काल हुआ तो नहीं होगा और राग का कण भी मेरा मानना चाहेगा तो अनन्त काल हुआ तो भी नहीं होगा। समझ में आया? दया, दान का विकल्प उठता है, उसे अपना करना चाहेगा तो तीन काल में नहीं होगा। आहाहा! परन्तु यह हो सकेगा, इसलिए सुलभ कहा है। आहाहा! कहो, चेतनजी! सुलभ कहा है, वह किस प्रकार? अनन्त काल हुआ, प्रभु! राग के कण को मेरा मानने में प्रयत्न कर रहा है परन्तु कभी राग का कण इसका होगा नहीं। राग और आत्मा के बीच तो सन्धि है। आहाहा! वह सन्धि कभी तोड़कर राग एकत्व नहीं होता परन्तु राग को तोड़कर भगवान आत्मा पूर्णानन्द को प्राप्त कर सके, ऐसा वह निरन्तर सुलभ है। आहाहा! अरे रे! बात सुनी कहाँ है? इसके घर के अन्दर में घर में क्या भरा है? ताला लगाया है। दया, दान इत्यादि राग और राग के फल देखकर हर्षित हो गया है और आत्मा के अन्तरस्वभाव को ताला लगाया है। आहाहा! यह फिर १७६ में आयेगा। निरन्तर सुलभ है... आहाहा!

अब, १७५।

अभिनवमिदं पापं यायाः समग्रधियोऽपि ये,  
विदधति परं ब्रूमः किं ते तपस्विन एव हि।  
हृदि विलसितं शुद्धं ज्ञानं च पिण्ड-मनुत्तमं,  
पदमिदमहो ज्ञात्वा भूयोऽपि यान्ति सरागताम् ॥१७५॥

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, आचार्य नहीं।

[ श्लोकार्थः ] अरे! हम पूछते हैं कि—जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी... बहुत

जानपना धारा है, ऐसा होने पर भी, ऐसा कहते हैं। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा, बातें करना तो बहुत आयी। आहाहा! जो समग्र बुद्धिमान होनेवाले... बुद्धि में तो मानों ऐसी बातें करने बैठे जैसे... आहाहा! मानो चतुर का पुत्र उतरा। भगवान! जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी दूसरे को 'यह नवीन पाप कर' ऐसा उपदेश ( कैसे ) देते हैं,... आहाहा! इस राग को कर, ऐसा कैसे उपदेश देते हैं वे? यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम पूछते हैं कि—जो... बहुत बुद्धिवाले कहलाते हैं। ऐसा ( होने ) पर भी राग कर, पुण्य कर, उससे तुझे लाभ ( होगा, ऐसा कहते हैं )। यह तुझे क्या है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी दूसरे को 'यह नवीन पाप कर'... आहाहा!

**मुमुक्षु :** नया पाप कर अर्थात् ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर अर्थात् इस राग को अपना मान, ऐसा कर। राग से लाभ होगा, ऐसा कर। यह तुझे क्या हुआ? ऐसा कहते हैं। चेतनजी! आहाहा! ऐसी बात है। प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न! उसमें शुभराग भी पाप है। आकुलता है, वह कर, तुझे यह कहाँ से सूझा? तूने बहुत सुना और बहुत धारणा की है न? शास्त्र का समग्र बुद्धिवाला हुआ है न! आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा करके मशकरी की है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मशकरी, उसे उड़ा दिया। तू धर्म में है ही नहीं, जा। नालायक है। जानपने की सब बड़ी-बड़ी बातें करना आता है और तत्त्व की दृष्टि का आदर नहीं। उसकी बात करते हैं, तब तुझे अन्दर लगती है यह तो सूक्ष्म है, यह तो दूसरी बात है परन्तु यह स्थूल बात तुझे सरल लगती है। हुआ क्या है? मिथ्यात्व की मदिरा पी है। ऐसी बात है। यह तो दिगम्बर सन्तों की बातें, बापू! आहाहा! कहीं है नहीं। दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है परन्तु यह कठिन नहीं लगता।

मैं एक चैतन्यमूर्ति, तूने बहुत जानपना किया। यह जानपना किया तो भी... चैतन्य का नहीं। जानपना किया सब धारणा का। तथा और नया पाप कर, जो आत्मा नहीं, ऐसे पुण्य, नया पाप कर... आहाहा! मुनि उछल गये हैं। आहाहा! भगवान वीतरागमूर्ति है न, प्रभु! तूने जानपना बहुत किया, तथापि तू वीतरागमूर्ति को न आदर करते हुए, जो आत्मा में नहीं है, ऐसे राग को नया कर, यह तुझे क्या हुआ? आहाहा!

ऐसा उपदेश देते हैं, वे क्या वास्तव में तपस्वी हैं? या मुनि हैं? राग जो स्वरूप में



नहीं है, उसे नया कर। उसमें नहीं है, उसे नया कर, तो उससे तुझे लाभ होगा। पहले यह आवे और आवे तो इससे लाभ होगा, ऐसी बातें तू क्यों करने लगा है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! यह तो दूसरी बातें हैं, बापू! आहाहा! वे क्या वास्तव में मुनि हैं? जो व्यवहार के राग को आदरणीय मनाते हैं, ऐसे नये पाप कराते हैं, वे क्या मुनि हैं? आहाहा! ऐसी बात है। उसमें है या नहीं? आहाहा! प्रभु! तू अनादि सनातन शान्ति का सागर है, प्रभु! उसका तूने जानपना किया नहीं और बातें करने की बातों का जानपना किया। और उस जानपने में और तूने ऐसा ठहराया कि भाई! शुभ हुए बिना चलेगा नहीं। शुभ बिना तो अन्दर जाया नहीं जाएगा। सीधे जाते होंगे?

**मुमुक्षु :** वह आँगन है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आँगन है। अरे! यह तुझे क्या हुआ? आहाहा! उसे उल्लंघन कर प्राप्त होता है, उससे नहीं होता। शुभभाव से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। लाख भक्ति करे और करोड़ों रुपये खर्च करके मन्दिर बनावे और व्रत छह-छह महीने के अपवास करे, उससे प्राप्ति नहीं होती। यह तुझे क्या हुआ? मुनि होकर यह नया पाप करने का तुझे कहाँ से सूझा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न! ऐसा उपदेश देता है, ऐसा कहा न? आहाहा! व्यवहार राग का भाव (का) उपदेश देता है। राग से कल्याण होगा, तूने नयी बात निकाली, ऐसा उपदेश? शुभ करते-करते कल्याण होगा।

**मुमुक्षु :** इस काल में तो शुभ ही हो सकता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो और बेचारा... अरे रे! आहाहा! मुनि को इस काल में तो शुभयोग ही होता है, ऐसा कहते हैं श्रुतसागर हैं। शान्तिसागर के पथगामी। वे ऐसा कहते हैं। प्रभु... प्रभु... प्रभु! ऐसा तुझे कहाँ से सूझा, भाई! यह तूने जानपना सब किया। उन्हें जानपना बहुत है। क्षयोपशम धर्मसागर की अपेक्षा उन्हें विशेष है। शान्तिसागर के पट्टाधीश आये हैं न? उनकी अपेक्षा इन्हें... पद नहीं आया, वे अलग पड़ गये। वांचन, (बहुत) परन्तु यह वांचन करके ऐसी बात स्थापित करना? अरे रे! कि अभी तो शुभयोग ही होगा। शुभपरिणाम। ऐसा उपदेश किया! अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! तू आत्मा है, प्रभु! इस शुभपरिणाम से तुझे लाभ होगा, ऐसा मानेगा तो मिथ्यात्व का दुःख होगा और भगवान! तुझे दुःख हो, यह कोई इच्छेगा?

सभी आत्माएँ भगवान हैं। सुखी होओ। आत्मा के अन्दर में जाकर सुखी होओ।

दुःखी होओ, यह बात अन्दर नहीं होती। आहाहा! किसी के प्रति हल्का, बैर और विरुद्ध नहीं होता। किसी प्राणी के प्रति हल्का माने, ऐसा नहीं होता। जिसने स्वयं को पूर्ण माना है, वह दूसरे को हल्का कैसे कहे? आहाहा! प्रभु! तू बड़ा है, भाई! दूसरी बातें करके पाप से धर्म होगा, यह पुण्य भी वास्तव में पाप है। आहाहा! 'पाप पाप तो सब कहे परन्तु अनुभवी पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव के दोहे में आता है। आहाहा! वे यह कहना चाहते हैं, हों! यह तुझे नया कहाँ से सूझा? यह तो अनादि से प्राप्ति है। आहाहा!

**जो समग्र बुद्धिमान...** मानो सब जानपना करके, शास्त्र पढ़े... आहाहा! दूसरे को 'यह नवीन पाप कर' ऐसा उपदेश देते हैं,... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो मन्दिर बनाने की बात में बात की। बोधपाहुड़ में छहकाय की दया की बातें की। क्योंकि उसमें जरा हिंसा है। मन्दिर बने, उसमें पानी, पृथ्वी यह ख्याल में लेकर बोध में डाला है। छहकाय की रक्षा कैसे हो, वह मैं बात करूँगा। आहाहा! उसमें जरा छहकाय का आता है न? आहाहा! मन्दिर बनाने में पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि, वनस्पति का वहाँ घात होता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि बिल्कुल बाहर में जाना ही नहीं, ऐसी स्थिति बतानी है। यह बात छोड़ दे। अमुक करूँ, अमुक करूँ, यह छोड़ दे। आहाहा! यह तो छहकाय की रक्षा की बात ही की है। उसमें से कोई भी प्राणी-पृथ्वी, पानी को जरा भी पीड़ा हो, यह बात अब नहीं करूँ। बोधपाहुड़ में कहा। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि तू मुनि होकर... आहाहा! वे क्या वास्तव में मुनि हैं? जो कोई शुभराग और हिंसा आदि से धर्म मनाते हैं।

**मुमुक्षु :** धर्म न मनावे परन्तु आँगन मनावे तो बाधा है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आँगन में कहाँ है? वह आँगन भी नहीं है। आँगन लाँघ जाए, तब उसे आँगन कहा जाता है। तलहटी को लाँघ जाए और ऊपर जाए, तब नीचे को तलहटी कहा जाता है। यह पर्वत के ऊपर चढ़ते हैं न? वहीं के वहीं खड़ा हो उसे तलहटी कहा जाएगा? आहाहा! ऊपर चढ़े, तब नीचे तलहटी कहा जाता है। इसी प्रकार शुभ को छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, तब शुभभाव था, उसका ज्ञान करे, परन्तु उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा उपदेश तूने कहाँ से निकाला? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव (कहते हैं कि) वे क्या वास्तव में मुनि हैं? आहाहा!

**अहो! खेद है...** आहाहा! कि वे हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्डरूप... चैतन्यपिण्ड। इस पद को जानकर पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं। देखा? आहाहा! भगवान (आत्मा) अन्दर विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्डरूप...

चैतन्यपिण्ड, चैतन्यपदार्थ। चैतन्य दल पदार्थ अकेला दल ही जिसका चैतन्य का है। उसमें चैतन्य की शुद्धि प्रगट हो, ऐसा ही बल है। अशुद्धि को प्रगट करे, ऐसा उसमें बल है ही नहीं। वह तो पर्याय में अद्धर से करता है। उसके अनन्त गुण में कोई गुण ऐसा नहीं है कि विकार-शुभरूप हो। अनन्त गुण में से एक गुण ऐसा नहीं है कि शुभरूप हो। शुभ अद्धर पर्याय में से अध्वर से होता है। आहाहा! ऐसा है। साधारण लोगों ने कभी सुना न हो, उन्हें ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं ऐसा यह? यह सब चलता है न अभी, सब मिथ्या? मिथ्या-सच्चे का निर्णय तू कर। बापू! तेरा नाथ अन्दर पड़ा है। आहाहा!

यह कहते हैं, देखो न? कैसा है? कि हृदय में विलसित... अन्दर में पड़ा है। शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्ड... सर्वोत्तम चैतन्यपिण्ड। इस पद को जानकर... आहाहा! पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं। और राग से लाभ होगा, यह कहाँ से लगा तू? तू मुनि है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनिराज मुनि को कहते हैं। भगवान! आहाहा! तूने बाहर का सब जानपना किया, परन्तु सर्वोत्कृष्ट प्रभु चिदपिण्ड आत्मा, और जो हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप... उसमें जाने के लिये बात नहीं करता और शुभराग कर, ऐसी तू प्ररूपणा करता है, प्रभु! वह कहीं मुनिपना है? आहाहा!

**मुमुक्षु** : श्रावक के लिये तो शुभराग है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : श्रावक भी नहीं। श्रावक है, वह तो शुभराग आता है, ऐसा जानता है कि यह हेय है, दुःख है। मेरी कमजोरी के कारण यह होता है, इतनी अपेक्षा से श्रावक को धर्म कहा है न! धर्म का अर्थ यह कि मुझसे अभी वीतरागता नहीं होती, इसलिए अशुभ से बचने के लिये मैं शुभ में आता हूँ, इसलिए उसे श्रावक का धर्म कहा है। श्रावक की शैली में, उसकी रीति में, पद्धति में इतना होता है परन्तु मुनि को नहीं होता, तथापि उस श्रावक को भी राग से धर्म होता है, ऐसी मान्यता नहीं होती। आहाहा! वहाँ तो ऐसा है। आहार-पानी को सदोष करना... इत्यादि यह तो श्रावक का धर्म है, ऐसा कहा। इसका अर्थ उसकी भूमिका में आता है, इतनी बात है, दूसरा कुछ नहीं। आहाहा! यहाँ तो मुनि को कहते हैं कि प्रभु! तू कहाँ गया? तूने जानपना करके यह निकाला? आहाहा! शास्त्र पढ़कर तूने यह निकाला कि राग में धर्म होगा? राग से धर्म होगा? आहाहा!

**मुमुक्षु** : राग से धर्म होगा, ऐसा नहीं कहा, शुभराग से धर्म होगा - ऐसा कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : उस शुभराग से धर्म होगा, यह पाप है, मिथ्यात्व है। उसमें था, मिथ्यात्व, वह संसार है। कहा था न? मिथ्यात्व, वह संसार है। मिथ्यात्व जाने से सिद्धसदृश

है। यह श्लोक में है। सवेरे कहा था। सिद्धसदृश है। कथन की शैली एक अपेक्षा से। एक ओर चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध कहे तथा एक ओर समकित हुआ, उसे सिद्धसदृश कहे, यह विवक्षा की अपेक्षा है। विवक्षा की विचित्रता है। इससे विरुद्धता नहीं है। यह कथन की विचित्रता है। उसमें तत्त्व की विरुद्धता नहीं है। आहाहा!

यह आस्रव में कहा है। ये शब्द आस्रव में आते हैं कि भाई! एक ओर आस्रव समकित्ती को आता नहीं, ऐसा कहते हो, और जघन्य ज्ञान में आस्रव आता है और बन्ध होता है, ऐसा कहते हो। यह विवक्षा की विचित्रता है। कथन की शैली क्या है, यह समझाया है। उसमें लिखा है। विवक्षा की विचित्रता है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा!

अरे! हृदय में विराजमान शुद्धज्ञानरूप भगवान और सर्वोत्तम चैतन्यपिण्ड, सर्वोत्तम पदार्थ। आहाहा! सर्वोत्तम पूर्ण बलवाला... आहाहा! उसे छोड़कर जानकर पुनः भी... उसे जानकर पुनः भी राग से लाभ होगा, यह लाया कहाँ से? यह तूने क्या किया? तू साधु है? आहाहा! बात कठिन पड़े, बापू! दुनिया के धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती।

**मुमुक्षु :** ....पूजा करो...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो समझाते हैं। अशुभ से बचने के काल में शुभ क्रमबद्ध में आता है, इतना। परन्तु उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं है। अशुभ के स्थान से टालने, अशुभ से टालने शुभ आता है, ऐसा तो पंचास्तिकाय में है, परन्तु उससे तुझे धर्म होगा और जन्म-मरण मिटेंगे, ऐसा उपदेश तू कहाँ से लाया? तू मुनि है? आहाहा! मुनि होवे तो ऐसा करे?

**सर्वोत्तम पिण्डरूप इस पद को जानकर...** आहाहा! भगवानस्वरूप चैतन्यपिण्ड प्रभु आनन्द का सागर है। उसे जानकर भी... आहाहा! पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं। उसमें राग है नहीं, ऐसा तो तूने जाना है तथापि और वापस राग से धर्म मनावे। उसमें जो हो, उससे उसमें लाभ होगा। तो राग कहीं आत्मा में नहीं है; इसलिए आत्मा में नहीं है, उससे लाभ होगा, यह बात होती ही नहीं। आत्मा में जो द्रव्य में हो, दर्शन-ज्ञान-आनन्द उसमें है तो उनसे उसे लाभ होता है। आहाहा!

**सर्वोत्तम पिण्डरूप इस पद को जानकर...** देखा? इस पद को जानकर... आहाहा! ऐसी बुद्धि तुझे कहाँ से आयी? सरागता को प्राप्त होते हैं। पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं। आहाहा! राग से रहित ऐसा भगवान आत्मा तूने जाना, ऊँची चीज़ है, (ऐसा जाना) तथापि और पुनः राग से आत्मा को लाभ होगा, यह तुझे क्या हुआ? विशेष कहेंगे...

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )

१०

श्री समयसार, गाथा - ११, प्रवचन - ४२

दिनांक - २४-०७-१९७८

समयसार। ११ गाथा का भावार्थ। प्राणियों को... है? प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कहती है। यहाँ तक आ गया है। आया न भाई? क्या कहा? कि त्रिकाली आत्मा जो निश्चय है और निश्चय तो द्रव्य से है, गुण से है, पर्याय से है, स्व की अपेक्षा से निश्चय है, पर की अपेक्षा से व्यवहार है। अब यहाँ त्रिकाली को निश्चय कहा। उसके गुणभेद को, पर्याय को व्यवहार में डाला। क्यों? कि त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव वह मुख्य है, इसलिए वह निश्चय है और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। इसलिए मुख्य को निश्चय कहकर पर्यायादि के व्यवहार को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया है। गौण करके कहने में। मुख्य-गौण। मुख्य, वह त्रिकाली वस्तु और पर्याय तथा रागादि, वह व्यवहार, उसे गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा था। यह मुख्य करके निश्चय है, सत्यार्थ है, ऐसा कहा गया था। अरे!

क्यों कहने में आया था उसमें? आहाहा! कि प्राणियों को... जीवों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष... भेदरूप। पर्याय का, गुणगुणी के भेद का, राग का... आहाहा! ऐसे भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है.... अनादि काल से है। वस्तु अखण्ड अभेद है, उसका तो पक्ष और आश्रय कभी लिया नहीं, इसलिए अनादि से अज्ञानी को गुण-गुणी के भेद का अथवा पर्याय के भेद का या राग का पक्ष अनादि से है। समझ में आया? प्राणियों को.... अर्थात् बहुत जीवों को, ऐसा। एक को नहीं। प्राणियों को... आहाहा! भेदरूप व्यवहार.... एक समय की पर्याय और राग और गुणगुणीभेद, यह सब व्यवहार का पक्ष, वह भेदरूप व्यवहार। सूक्ष्म बात है। गाथा ही बहुत सूक्ष्म है और इसका भावार्थ भी पण्डितजी ने बहुत सरस किया है। आहाहा! भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि से प्राणियों को अर्थात् बहुत जीवों को वह है। एक बात।

और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। उसका उपदेश भी व्रत करो, उपवास करो, व्यवहार समकित के आचरण, व्यवहार ज्ञान के आचरण, तप के

आचरण व्यवहार के। उसका उपदेश तो अज्ञानी परस्पर में यहाँ करते हैं। आहाहा! हू-ब-हू चित्रण दिया है। परस्पर यह तो प्ररूपणा करते हैं, मानती है दुनिया। कहनेवाले करते हैं और सुननेवाले भी वाह...! यह बराबर है, वे तो निश्चय-निश्चय की बातें करें। व्रत, तप, भक्ति, पूजा, देव-गुरु-शास्त्र का विनय, समकित के आठ व्यवहार आचार, ज्ञानाचार व्यवहार के वे करनेयोग्य हैं, वे साधन हैं - ऐसा अज्ञानियों का उपदेश है। **इसका उपदेश भी....** भी अर्थात् वह भेद व्यवहार का पक्ष तो है। उसमें दूसरी बात। उपदेश करनेवालों को और सुननेवालों को भी यह बात अनादि से रुचि है। आहाहा! **उपदेश भी...** ऐसा है न? इसलिए वह पहला बोल रखकर। **बहुधा...** बड़ा वर्ग जीव का। **सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** व्यवहार समकित के आचरण, व्यवहारज्ञान के आचरण, व्यवहार चारित्र के आचरण, व्रत, तप, व्यवहार विनय आदि... आहाहा! और तप के व्यवहार आचरण अनशन, ऊनोदर इत्यादि। उपवास करो, त्याग करो, ऊनोदर करो, रस छोड़ो। ऐसा बहुधा प्राणी परस्पर-परस्पर एक-दूसरे को बात जँचती है, इसलिए बहुत यह करते हैं। समझ में आया? आहाहा! इन्होंने संक्षिप्त में कितना भरा है, देखो! कि अनादि का उसे भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो है और बहुधा प्राणी उसका उपदेश ही देते हैं।

**मुमुक्षु :** उपदेशक ऐसे हों!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसे उपदेशक भी ऐसे मिले। आहाहा! बहुत कठिन बात है। यह परस्पर कहा। एक दूसरे वे हाँ करे और वे उपदेश करे कि हाँ, ऐसा का ऐसा निश्चय सीधे पाया जाता होगा? निश्चय-निश्चय की बातें करे परन्तु व्यवहार साधन बिना निश्चय प्राप्त होगा? साधन है, ऐसा कथन से कहा जाता है, परन्तु वह वास्तव में साधन है नहीं। आहाहा! परस्पर वे उपदेश करते हैं। आहाहा!

उपदेशक भी व्यवहार से लाभ होगा और भेद के पक्ष की बातें व्यवहार समकित के आचरण, व्यवहारज्ञान के आचरण, ज्ञान, विनय, उद्धान इत्यादि व्यवहार व्रत, तप, व्यवहार अनशन, ऊनोदरवाले तप। उसकी बातें व्यवहार सुने तो लाभ हो, व्यवहार कुछ करे तो लाभ हो, ऐसा परस्पर उपदेश अज्ञानी बहुत प्राणी करते हैं। बात समझ में आती है कुछ?

**मुमुक्षु :** ...बड़ा भाग खोटा ही उपदेश करता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ा भाग यही (उपदेश) करता है। आहाहा! अब तो चीज़ यह चीज़ बोल में जरा सूक्ष्म बात आयेगी। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण चीज़, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता

है, सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यक्चारित्र होता है। यह बात छोड़कर बहुधा प्राणी परस्पर व्यवहार का ही उपदेश करते हैं। एक तो उसे भेदरूप व्यवहार रुचा है अनादि का (और) उसके उपदेशक भी ऐसे उसे मिले। समझ में आया? उपदेशक भी वैसे। आता है न? 'क्या करे जीव नवीन?' क्या आता है इसके पहले?

**मुमुक्षु :** द्रव्यरुचिकर जीवड़ा, भावरुचिकर हीन....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, हाँ, 'द्रव्यरुचिकर जीवड़ा, द्रव्यरुचिकर जीवड़ा भावरुचिकर हीन,... उपदेशक भी तेहवा, क्या करे जीव नवीन?' द्रव्यरुचिकर जीवड़ा। व्यवहार की रुचि, तप की, व्रत और अपवास। देव-गुरु का विनय करो, भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो, अपवास करो, व्यवहार समकित के आठ आचार बराबर पालन करो, व्यवहार ज्ञान के आचार बराबर पालन करो। क्योंकि भगवान ने भी व्यवहार कहा है न? कहा है या नहीं? परन्तु कहा है, वह किसलिए? वह तो निश्चय के साथ निमित्तरूप से सहचर / साथ देखकर उपचार से व्यवहार कहा है, परन्तु उसका फल बन्धन है। आहाहा! समझ में आया? शान्ति से यह तो वस्तु में.... व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, निश्चय सत्यार्थ है और निश्चय भूतार्थ का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी जो मूल गाथा और मूल वस्तु। तब कहे, ऐसा क्यों कहा कि व्यवहार झूठा है? कि भाई! वह तो गौण करके झूठा कहा है। व्यवहार व्यवहाररूप से नहीं, पर्यायरूप से नहीं, ऐसा नहीं है। तथा रागरूप से व्यवहार आता है, नहीं है - ऐसा नहीं है। परन्तु उसे गौण करके, त्रिकाली मुख्य की दृष्टि कराने के लिये त्रिकाली, वह सत्य है। और पर्यायादि के व्यवहार, वे असत्य हैं, यह गौण करके असत्य कहा है, अभाव करके असत् नहीं कहा। इसलिए उसे मुख्य-गौण करके कहा गया है। आहाहा!

तब कहे, ऐसा क्यों कहा?—कि व्यवहार के भेदरूप व्यवहार का भी पक्ष तो अनादि काल का स्वयं के कारण स्वच्छन्दता से है और उपदेशक भी ऐसे मिले हैं। व्यवहार का उपदेश करके दूसरे को लाभ हो, ऐसा सुननेवालों को भी उसमें ठीक पड़ता है। बाबूलालजी! आहाहा! है?—**इसका उपदेश भी....** किसका उपदेश? व्यवहार का। दया, दान, व्रत, तप करो, विनय करो, भक्ति करना, समकित के आचार पालना बराबर-व्यवहार के। **इसका उपदेश भी....** एक तो व्यवहार का पक्ष इसे अनादि का है, उसमें उपदेशक भी ऐसे कहनेवाले मिले हैं। आहाहा! बहुधा अर्थात् बहुत। सर्व प्राणी-बहुत सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। कहनेवाले करते हैं और सुननेवाले हाँ करके प्रसन्नता देते हैं। बराबर है, साधन

यही चाहिए। ऐसे का ऐसा होता होगा सीधे? निश्चय की बातें करे। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे अज्ञानी, बहुत प्राणी तो व्यवहार का परस्पर उपदेश देकर प्रसन्नता मानते हैं। यह कहे बहुत अच्छा। और यह करते-करते होगा न! सीधे होता होगा? अशुभ टाले, शुभ करे, फिर शुभ से शुद्ध होगा।

**मुमुक्षु :** क्रम तो है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह क्रम ही नहीं है। यह क्रम तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् स्वरूप की दृष्टि द्रव्य का आश्रय करने के पश्चात् पहले अशुभ चारित्र के अशुभपरिणाम पाले और फिर शुभ टाले। यह तो इस अपेक्षा से। होने के बाद की बात है। आहाहा! समझ में आया? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में आता है।

पहला तो त्रिकाली आत्मा आनन्दस्वरूप अभेद, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है, उसका अनुभव हो, उस जीव को पहले चारित्र का अशुभ दोष है, उसे हटाना, पश्चात् उसे शुभ टालकर शुद्ध उपयोग में जाना, परन्तु पहली दृष्टि तो शुद्ध उपयोग में आत्मा की दृष्टि हुई है, उसके लिये बात है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** अज्ञानी को क्या करना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस अज्ञानी को क्या करना यह। व्यवहार छोड़कर निश्चय करना। यह अज्ञानी को (करना)। अभी आयेगा, अभी अब। अभी तीसरे बोल में कठोर है। दो बोल तो... समझ में आया?

**इसका उपदेश भी....** अर्थात् वह भेद का पक्ष तो उसे है। तदुपरान्त उसे, उपदेश देनेवाले भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। आहाहा! दो बातें।

अब तीसरी बात, **जिनवाणी में...** अब वीतराग की वाणी में भी व्यवहार का उपदेश बहुत आया है। समझ में आया? **जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन....** अर्थात् शुद्धनय के स्वभाव की दृष्टि में उस काल में **हस्तावलम्बन (सहायक)....** सहचर देखकर। साथ में ऐसा शुभभाव व्रत, तप... सम्यक् निश्चय है, उसे सहचररूप से निमित्त में व्यवहार समकित के आठ आचार होते हैं। समझ में आया? उसका उपदेश जिनवाणी में भी आया है। समझ में आया? आहाहा!

प्रवचनसार में चरणानुयोग में कहा नहीं? हे दर्शनाचार! समकित के व्यवहार दर्शन



आचार निःशंक आदि, मैं जानता हूँ कि तू मेरा स्वरूप नहीं है। प्रवचनसार। तू मेरा स्वरूप नहीं है। मैं जानता हूँ। परन्तु तेरे प्रसाद से... यह सब व्यवहार के कथन। जब तक मैं पूर्ण शुद्धता को प्राप्त न करूँ, वहाँ तक तेरा प्रसाद अर्थात् तुझे निमित्तरूप से अंगीकार करता हूँ, ऐसा वहाँ कहते हैं। आहाहा! जिनवाणी में भी ऐसा आया है, कहते हैं। एक तो भेद का पक्ष उसे है, परस्पर उपदेश भी भेद का सभी प्राणी करते हैं और तीसरा, जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश बहुत बहुत आया है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** शुभ और अशुभ जातिभेद क्यों करते हैं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करता है भेद ? ..की बात है। भेद कहाँ है ? वह तो सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् अनुभव सम्यक् का हो, पश्चात् पहले एकदम शुभ नहीं टल सकता। पहले अशुभ टालकर शुभ में आवे, पश्चात् शुभ टालकर शुद्ध में आवे, परन्तु यह तो सम्यग्दर्शन होने के बाद की बात है। सम्यग्दर्शन पहले यह बात बिल्कुल झूठी है। अशुभ टाले और शुभ आवे, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन होता है, यह अत्यन्त मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? यह तो यहाँ कहते हैं।

उसे शुभभाव का धर्म होता है, भेद से धर्म होता है, भेद के व्यवहार से लाभ होता है, ऐसी दृष्टि तो मिथ्यादृष्टि की अनादि की है। सूक्ष्म बात है। और दूसरी, उपदेशक भी उसे ऐसा ही कहते हैं। व्यवहार करो, यह व्यवहार तप करो, अपवास करो, त्याग करो। आहाहा! समकित के आठ आचार व्यवहार के पहले पालन करो, फिर निश्चय समकित होगा, ऐसा अज्ञानी, उपदेशक बहुधा परस्पर ऐसा उपदेश करते हैं। अब इससे बात आगे ले जाने पर...

**मुमुक्षु :** शास्त्र करते हैं न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त सहचर। सहायक अर्थात् सहचर, साथ में जानकर। शुद्धनय का उपदेश अन्तर अनुभवदृष्टि हो, तथापि साथ में उसे अभी पूर्ण वीतरागता न हो, तब उसे साथ में अन्दर व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार ज्ञानादि आते हैं। समझ में आया ? इसलिए उसे निमित्त-सहचर देखकर बहुत किया है;... जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश बहुत किया है। आहाहा! शास्त्र में तो व्यवहार का उपदेश बहुत है। किन्तु उसका फल संसार ही है। भटकना है। आहाहा! है ? उसका फल संसार ही है। जिनवाणी में जो व्यवहार कहा, उसका फल भी बन्धन और संसार है। आहाहा! न्याय समझ में आया ?

कहा न, अभी चरणानुयोग में, प्रवचनसार (गाथा २०१ में) समकित के आठ आचार। यह समकित होने के बाद की बात है। आत्मज्ञान अनुभव हुआ है पहला, द्रव्य का आश्रय लेकर अभेद की दृष्टि प्रगट हुई है, आत्मा के आनन्द की दशा, आनन्द का स्वाद आया है। ऐसे समकित को प्रथम ऐसा कहते हैं कि हे दर्शनाचार! व्यवहार। हे ज्ञानाचार! मैं जानता हूँ कि तू तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! व्यवहार व्रत, तप आदि के भाव को कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि व्यवहार महाव्रत आदि के परिणाम, वह मेरा स्वरूप नहीं है, परन्तु मेरी पूर्ण चीज वीतरागता न हो, वहाँ तक मेरे अनुभव के साथ तेरा (अस्तित्व) होता है; इसलिए तुझे मैं व्यवहार से अंगीकार करता हूँ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** तेरे सहचर से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो कहा नहीं? व्यवहार से ऐसा कहा। तेरे प्रसाद से अर्थात् तेरा निमित्त है न? सहचर है न? जहाँ तक मैं वीतराग पूर्ण न होऊँ, तब तक मेरे निश्चय के अनुभव के साथ तेरा सहचर देखकर, तेरे प्रसाद से अर्थात् निमित्त के कारण से, यह व्यवहार का कथन है, मेरी प्राप्ति होगी। आहाहा! है तो यहाँ व्यवहार का फल बन्धन। जिनवाणी ने कहा, उसका फल बन्धन है। बन्धन के कारण अबन्धदशा होगी? अभी बड़ी गड़बड़ यह है। पूरा मिथ्याश्रद्धा का ही पोषण है? आहाहा! परीषह सहन करो, उपसर्ग सहन करो। परीषह भी होय किसे? जिसे सम्यग्दर्शन अनुभव हुआ है आनन्द का, उसे प्रतिकूलता के समय सहन करने की दशा को परीषह कहते हैं। अज्ञानी को परीषह कैसा? वह तो... है, उसका तो। आहाहा!

इस तीसरे बोल में जरा बहुत कठिन बात है। **जिनवाणी में....** ऐसा। **जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश....** आहाहा! क्योंकि निश्चय समकित जो आत्मा के अवलम्बन से होता है, उसके साथ व्यवहार समकित के आठ आचार निमित्तरूप से साथ में-सहचररूप से होने से उपचार से उसे व्यवहार का उपदेश किया। आहाहा! ऐसे निश्चय सम्यग्ज्ञान अनुभव हुआ, आत्मा के आनन्द का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान के साथ आठ आचार जो श्रावक-श्रुतज्ञान के हैं—विनय करना, उपधान करना आदि, वे साथ में होते हैं, सहचररूप से - निमित्तरूप से (होते हैं) इसलिए उसका उपदेश भगवान ने दिया, तथापि उस निमित्त का फल, सहचर जो है उसका फल संसार भटकने का है। आहाहा! जेठाभाई! आहाहा! कहा नहीं? समयसार नाटक में कि भाई! आत्मा का अन्दर सम्यग्दर्शन हुआ अनुभव, मुनिपना हुआ अन्दर, अतीन्द्रिय आनन्द की लहर जाग उठी, उसे भी पंच महाव्रत का विकल्प

व्यवहार आता है। समझ में आया? परन्तु वह जगपन्थ है। वह संसारपन्थ है। शुभराग, वह स्वयं संसारपन्थ है। तब कहे, यह भगवान ने क्यों कहा? उसे कहे, वस्तु के स्वरूप के भानवाले को साथ में ऐसा एक व्यवहार राग की मन्दता का भाव निमित्तरूप से होता है, इस कारण उसे कहा कि यह व्यवहार है, परन्तु उसका फल संसार है। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं इसमें, देखो न! पाठ तो पढ़े तो खबर पड़े। आहाहा!

बहुत सरस बात है। यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा! अभी शास्त्र पढ़ना भी आता नहीं, उसे समझना कहाँ से आयेगा? कहते हैं कि हमने यहाँ त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द के नाथ को सत्यार्थ कहा और हमने पर्याय को, उसके गुणभेद को 'नहीं' ऐसा कहा, असत्यार्थ है, ऐसा कहा। क्यों? कि वह तो मुख्य-गौण करके कहा है। त्रिकाली को मुख्य करके और निश्चय कहकर उसका आश्रय कराया है; और पर्याय के भेद को गौण करके, 'नहीं' कहकर, व्यवहार कहकर 'नहीं' ऐसा कहा है। परन्तु उस पर्याय में वह व्यवहार आता है। समकित्ती को भी...आहाहा! तथापि उस व्यवहार का फल संसार है, ऐसा यहाँ तो कहना है। आहाहा! समझ में आया? बहुत धीरे से समझनेयोग्य है, बापू! अभी तो सम्प्रदाय में बड़ा घोटाला उठा है यह। फिर सोनगढ़ का निश्चयाभास है, एकान्त है, ऐसा कह दे। खबर नहीं क्या करता है।

यहाँ तो ग्रन्थकार नहीं परन्तु सिद्धान्तकार स्वयं कहते हैं कि व्यवहार और पर्याय, वह झूठी है, ऐसा कहकर उसे गौण करके झूठी है, ऐसा कहा, उसका अस्तित्व तो है। इसी प्रकार दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का अस्तित्व है, परन्तु उसे गौण करके और वह नहीं और त्रिकाली सत् है, उसे सत्यार्थ कहकर, मुख्य करके, निश्चय कहकर, उसका आश्रय कराया है। अरे रे! आहाहा! समझ में आया?

जिनवाणी में... परन्तु फिर कहेंगे। जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन ( सहायक ).... व्यवहार होने से सहायक अर्थात् सहचर, साथ होने से निमित्त गिनकर जानकर बहुत किया है;.... बीच में निमित्त आता है, व्यवहार आता है, उसे जिनवाणी ने उपदेश किया है। आहाहा! दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, लो! आहाहा! यह सब आता है, परन्तु इस व्यवहार का फल संसार है। समकित्ती को भी व्यवहार आता है, उसका फल संसार है। अज्ञानी को तो व्यवहार होता नहीं, व्यवहाराभास है। आहाहा! कहो, रतिभाई! ऐसा सूक्ष्म है। ...टीकाकार ने कितना स्पष्ट किया है! गाथा में भाव है, ऐसा कि व्यवहार को झूठा कहा, निश्चय को सच्चा कहा। व्यवहार का उपदेश तो

केवली ने भी दिया है। तो कहते हैं, भाई! वह तो झूठा कहा, वह तो गौण करके झूठा कहा है और निश्चय को मुख्य करके निश्चय कहा है। त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहा है। परन्तु ऐसा क्यों कहा? निश्चय को सत्य कहा और व्यवहार को असत्य गौण करके कहा। ऐसा क्यों कहा? क्योंकि भेद का और व्यवहार का पक्ष तो जीव को अनादि का है और परस्पर वह उपदेश करते हैं, इसलिए यह उपदेश किया है।

और तीसरा, जिनवाणी में भी जहाँ-तहाँ व्यवहार का उपदेश बहुत है। ज्ञान के आचार और समकित के व्याहार आचार पालना। व्यवहार समकित के आठ आचार वे तो विकल्प-राग है। ज्ञान के आठ आचार—विनय से पढ़ना और यह करना, वह भी शुभभाव है। चारित्र का व्यवहार, वह व्रत, तप आदि जो अनशन, ऊनोदरी आदि तप, वह सब शुभराग है। आहाहा! परन्तु ऐसा (राग) बीच में आता है, इसलिए ज्ञानी को भी ऐसा निमित्त साथ में देखकर भगवान ने उसका उपदेश—है, उसका कथन करके समझाया है, परन्तु उसका फल तो संसार है। आहाहा! गजब बात है।

एक चैतन्य भगवान परिपूर्ण प्रभु, उसके आश्रय से होनेवाला मार्ग ही सत्य है और उसका फल मोक्ष है। बाकी जो निश्चय के स्वभाव के आश्रय से भान हुए को भी जिनवाणी ने कहा हुआ व्यवहार आता है, तथापि उसका फल तो संसार है। आहाहा! है न उसमें? संसार ही है। घर की बहियाँ कितनी मिलाते हो रात्रि में दीवाली आवे तब, तो यहाँ शास्त्र की पुस्तकें मिलानी पड़ेंगी या नहीं? दीवाली आवे तो बहियाँ मिलाते हैं कि भाई यह दो लाख, पौने पाँच लाख का खर्च हुआ, उसमें लाख पैदा हुए, पचास हजार पैदा हुए, दस लाख थे, उसमें दो लाख बढ़े, बारह लाख हुए। वह तो धूल के खर्च सब करते हैं। तो यह पुस्तकें भगवान की क्या कहती हैं... आहाहा! सुरेन्द्रजी! है न सामने? तीन प्रकार कहे। तीनों का फल संसार है। आहाहा! पहला तो अभी समझे तो सही। पहली चीज़ व्यवहार। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...समझे तो सही। यह व्यवहार का उपदेश है। यह कहाँ निश्चय का उपदेश है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह व्यवहार है। यहाँ तो ११वीं गाथा जैनदर्शन सर्वज्ञ जैनशासन का प्राण है। क्योंकि जैनशासन खड़ा कैसे होता है? अर्थात् कि जैनधर्म उत्पन्न कैसे होता है? इस त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से ही उत्पन्न होता है। और चारों अनुयोग का तात्पर्य कथन में वीतरागता है। चारों अनुयोग में कथन भले चाहे जिस प्रकार हो, परन्तु उसका

तात्पर्य वीतरागता है। १७२ गाथा पंचास्तिकाय। चारों अनुयोग का-शास्त्र का फल वीतरागता है और वीतरागता कैसे प्रगट होगी?—कि त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से वीतरागता प्रगट होती है। पर के आश्रय से राग होता है; पर के आश्रय से वीतरागता नहीं होती। समझ में आया? चाहे तो भगवान का विनय करे, भक्ति करे, परन्तु वह पराश्रय है, वह राग है। आहाहा!

ज्ञान में ऐसा आता है। उपधान करना, अपवास करना, विनय करना, शब्द—अक्षर बराबर शुद्ध जानना, अक्षर स्पष्ट, उसका अर्थ बराबर जानना, उभय को-दो को बराबर जानना। आहाहा! ऐसी बात तो व्यवहार की जिनवाणी में भी आती है। तथापि... आहाहा! ऐसी बात है, बापू! क्योंकि त्रिकाली प्रभु जो अभेद चीज़ है, उसके आश्रय बिना धर्म की शुरुआत, सम्यग्दर्शन नहीं होता। उसका आश्रय लेने के लिये उसे सत् कहा और व्यवहार को—पर्याय को होने पर भी उसका लक्ष्य छुड़ाने के लिये, उसका आश्रय छुड़ाने के लिये 'वह नहीं है' ऐसा कहा। अब तब कहते हैं, ऐसा तो जिनवाणी कहती है। यहाँ नहीं कहा गौणरूप से। कि गौणरूप से नहीं कहा न? परन्तु भावरूप से तो है या नहीं? तब तो भावरूप से यहाँ जिनवाणी निश्चय सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को भी व्यवहार बीच में निमित्त सहचर रूप से समकित के व्यवहार आठ आचार, ज्ञान के व्यवहार आठ आचार, चारित्र के व्यवहार व्रत, तप, नियम, गुप्ति, समिति के भाव, तप के भाव—अनशन, ऊनोदरी का, वीर्याचार शुभभाव में, शुभभाव का वीर्याचार, उसका कथन जिनवाणी में आता है न? क्यों? कि निश्चय है, उसके साथ ऐसा सहचर होता है। ऐसा देखकर जिनवाणी ने कहा है, परन्तु वह जिनवाणी वापस ऐसा कहती है... आहाहा! उसका फल भी संसार है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ।

**मुमुक्षु :** आत्मभावना किये बिना अनुभव किस प्रकार हो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आत्मभावना। भावना अर्थात् स्वरूप में एकाग्रता।

**मुमुक्षु :** आत्मभावना भावतां....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जीव लहे केवल ज्ञान।—श्रीमद् में है। आत्म भावना न? या राग भावना? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अर्थकार ने गाथाओं की स्पष्टता की है। गाथा में व्यवहार को गौण करके झूठा कहा है, इसलिए झूठा है, ऐसा नहीं। वह ज्ञानी को भी सहचर निमित्तरूप से अन्दर आता है, अस्तिरूप से आता है। आहाहा! परन्तु उसे गौण करके और निश्चय के आश्रय में समकित ज्ञानादि हों, उसे मुख्य करके उसे सत्य कहा है, परन्तु वह

भी सत्य तो है, परन्तु सहचर में सत्य होने पर भी उसे गौण करके झूठा कहकर स्व का आश्रय लिबाया है। अब कहते हैं कि गौण करके झूठा कहा, उसका कारण क्या ? कि इस व्यवहार का पक्ष तो अनादि का जगत को है और परस्पर उपदेश भी यह कर रहे हैं। सामायिक करो, समकित बिना, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, अपवास करो—ऐसा अज्ञानी का उपदेश पारस्परिक है और जिनवाणी में भी निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म होने पर भी, उसके सहचररूप से ऐसी राग की मन्दता का भाव, ज्ञान का विनय, समकित का आचार, ज्ञान का आचार व्यवहार, चारित्र का व्रतादि, वे साथ में होते हैं। जिनवाणी में उसकी अस्ति है, ऐसा उपदेश किया है। जिनवाणी में वह होता है, ऐसा उपदेश किया है, परन्तु उसका फल संसार है। आहाहा! है ?

**जिनवाणी में...** आहाहा! गजब काम किया है न! पण्डित तो वह कहलाये कि जैसे वस्तु की स्थिति में है, वैसा स्पष्टीकरण करे। न हो, उसके घर का डालकर करे... आहाहा! ...लालजी! तो शाम को आनेवाले हैं। शाम को? आहाहा! आज सुनने जैसी बात थी। बहुत बात है। आहाहा! गजब अर्थ किया है। मूल गाथा को सच्ची सिद्ध करने को क्या अपेक्षा है, यह बात स्पष्ट की है। आहाहा! समझ में आया ?

**और जिनवाणी में...** वीतराग की वाणी में व्यवहार का उपदेश.... आया है, वह भी बहुत आया है। आहाहा! है ? व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त देखकर, शुद्धनय के साथ सहचर देखकर शुद्ध स्वभाव के आश्रय के साथ व्यवहार सहचर उपचार देखकर उसका व्यवहार से उपदेश किया है। **किन्तु उसका फल संसार ही है।** जिनवाणी ने कहा व्यवहार बहुत शास्त्र में। व्रत, तप, भक्ति और यह विनय की बहुत व्याख्या की व्यवहार की। आहाहा! वह तो मात्र निमित्त-सहचर देखकर, आता है बीच में इसलिए सहचर देखकर उपदेश किया, परन्तु उसका फल तो चार गति में भटकने का है। जिनवाणी ने कहे हुए व्यवहार का फल भटकने का है।

**मुमुक्षु :** ....महाव्रत तो करना न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** महाव्रत और तप, यह सब भटकने का फल है। आहाहा! है या नहीं **किन्तु...** इसमें देखो न!

**किन्तु...** ऐसा कहा है न वापस ? ऐसा कि जिनवाणी में ऐसा कहा है न ? तो उसका तो कुछ लाभ होगा या नहीं ? जिनवाणी में ऐसा व्यवहार उपदेश किया है न, बापू! वह तो सहचर देखकर, साथ में ऐसे एक राग की मन्दता का भाव अनुभवी जीवों को भी स्थिरता

न हो, तब उसे आता है, आता है, इससे उसे व्यवहार से उसका उपदेश बतलाया, परन्तु वह व्यवहार, उसका फल संसार है। धर्मी जीव को भी जो व्यवहार बीच में ऐसा आवे, उसका फल संसार है। आहाहा! अभी तो पूरे उपदेश की शैली बदल गयी है। पहले से लगावे कुछ त्याग करो, ब्रह्मचर्य पालन करो, प्रतिमा ले लो, व्रत ले लो। ऐसे विपरीतता से लगायी है। सब मिथ्यात्व के पोषण की प्ररूपणा है। आहाहा! फिर उसे अभिमान हो जाये कि हमने कुछ व्रत लिये हैं। मिथ्यात्व का अभिमान हो जाये उसे। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा वेश तो बदलना पड़े न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वेश बदले तो लोग माने, ऐसा। धूल भी नहीं वेश।

यहाँ तो गृहस्थाश्रम में भी होने पर भी, कोट-पैन्ट रेशम का पहना हो, तथापि अन्दर में समकित दर्शन है, आत्मा का भान है कि 'मैं शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्द हूँ' तो वह मोक्षमार्ग में है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है। पण्डितजी।

समकित्ती आत्मज्ञानी आत्मा के अनुभवी जीव गृहस्थाश्रम में हो, हजारों रानियाँ हों और कोट-पैन्ट रेशम का और तीन रेशम के गद्दे पर सोता हो, तथापि वह मोक्षमार्गी है। और नग्न होकर वस्त्र का टुकड़ा रखता न हो, पत्थर में नीचे सोता हो, रूखा आहार करता हो, तथापि यह धर्म है, ऐसा मानता है तो मिथ्यादृष्टि है, वह संसारमार्ग में है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में है। पण्डितजी श्लोक बोले न! समझ में आया? अटपटी बातें हैं, बापू! बहुत फेरफार... बहुत फेरफार, श्रेष्ठ है, मोक्षमार्गी है। हजारों रानियों के भोग में पड़ा हो और चक्रवर्ती के पद में पड़ा हो, परन्तु समकित्ती है, वह मोक्षमार्गी है। जिसने आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किये हैं, वह मोक्षमार्गी है और जिसने स्त्री छोड़कर, वस्त्र भी छोड़ा, नग्न हुआ, परन्तु जिसे राग की एकता से लाभ होता है, यह व्यवहार करते-करते लाभ होता है, (ऐसी मान्यता है) वह मिथ्यादृष्टि संसारमार्गी है। आहाहा! बाबूलालजी! ऐसी बात है। कितना पण्डितजी ने कैसा अर्थ भरा है! आहाहा!

**मुमुक्षु :** पण्डित तो ऐसे ही होते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहा! वस्तुस्थिति ही ऐसी है। आहाहा!

**किन्तु...** ऐसा कहा है न वापस? कि जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश बहुत किया है न! शास्त्र में चरणानुयोग में कितना अधिकार, करणानुयोग में कितना कर्म से होता है... कर्म से होता है... ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, दर्शनावरणी... ऐसा व्यवहार का उपदेश

तो भगवान ने भी किया है। आहाहा! और मुनि को देखकर चलना, विचारकर बोलना, निर्दोष आहार लेना, ऐषणासमिति, ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान, निक्षेपण ऐसी समिति कही है। भगवान ने व्यवहार कहा है। भले कहा हो, सुन न! वह तो त्रिकाली के आनन्द के आश्रय से सहचर का ऐसा राग देखकर उपचार से कथन किया है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न कि निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ व्यवहार समकित का जो विकल्प उठता है, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का... आहाहा! उसे आरोप से सहचर देखकर, निमित्त देखकर, उपचार से व्यवहार समकित कहा है। वह कहीं समकित है नहीं, वह तो राग है। आहाहा! व्यवहार समकित, वह समकित का निरूपण दो प्रकार से है, समकित दो प्रकार से नहीं। समकित तो एक ही प्रकार से है। निरूपण आया, इसलिए वह कहे देखो, दो है या नहीं? भगवान ने कहा है या नहीं? परन्तु वह तो निरूपण का कथन है। वह तो व्यवहार का कथन है। सहचर देखकर उसका ज्ञान कराया है। आया है न यह मोक्षमार्गप्रकाशक में? ऐसा कि व्यवहार निमित्तादि को यहाँ ज्ञान कराने के लिये व्यवहार कहा है। ५६ पृष्ठ मोक्षमार्गप्रकाशक। आहाहा! कैसे कहा ऐसा व्यवहार? कि निमित्ताधीन निमित्त को सहचर आदि का ज्ञान कराने-ज्ञान कराने-करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा है।

एक तो समझने की निवृत्ति नहीं मिलती। समझने की निवृत्ति नहीं मिलती। और पूरे दिन प्रपंच पड़े हों बाहर में और उसे ऐसे मिले, कहा न व्यवहार के उपदेश देनेवाले। इसलिए इसे ठीक पड़ता है। मानो कि अपने यह भक्ति करते हैं, प्रतिदिन देवदर्शन करते हैं और पाव घण्टे, आधा घण्टे पढ़ते हैं, शास्त्र स्वाध्याय। देव दर्शन, गुरु की सेवा, गुरु को वन्दन, ....। श्रावक के आचार हैं, यह तो करते हैं। आहाहा! वह तो सब राग है, वह आचार है ही नहीं। श्रावक का आचार तो अन्दर सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से जितनी लीनता हो, उतना मोक्ष का मार्ग है। बीच में यह सब भाव जिनवाणी ने कहा हुआ, उसका भी... किन्तु... है न? किन्तु उसका फल.... कोई कहे कि जिनवाणी में कहा है, इसलिए कुछ लाभ है। समझ में आया? वीतरागमार्ग, वीतराग ने स्वयं कहा है कि ऐसा व्यवहार होता है... ऐसा व्यवहार होता है.... परन्तु वह कहा भगवान ने बहुधा वह तो सहचर और निमित्त का ज्ञान कराने के लिये, तथापि वह सहचर और निमित्त की दशा का फल संसार है। समझ में आया? आहाहा!

निश्चय-व्यवहार का बहुत ही स्पष्ट कथन स्पष्ट कर दिया है पण्डितजी ने स्वयं।



पण्डित हैं, यह जयचन्द्र पण्डित। गृहस्थाश्रम में समकित को और तिर्यच के समकित और सिद्ध के समकित में अन्तर क्या? समकित तो दोनों समान जाति, एक ही जाति है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह समकित क्या, बापू! लोगों को अभी... आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो, बस, वह समकित। अब व्रत ले लो, परन्तु यहाँ कहे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का भाव आया, शास्त्र में कहा है, परन्तु है राग और उसका फल संसार। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र को पढ़ो, बहुत सुनो, ऐसा शास्त्र में आवे, परन्तु उसका फल विकल्प है और विकल्प का फल तो बन्धन है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पुस्तक हाथ में लेकर सिर (पर रखना), ऐसा विनय का भाव समकित को आता है, तथापि वह राग है और उस राग का फल तो बन्धन है। अज्ञानी की तो बात क्या करना! अज्ञानी को तो निश्चय भी नहीं और व्यवहार भी नहीं। एक भी नहीं उसे तो कुछ। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ज्ञानी तो राग को हेय मानता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हेय माने और वह (अज्ञानी) तो भला मानता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** हेय माने तो संसार कैसे हो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तथापि संसार है न! राग है न! हेय मानता है, वह तो मान्यता है, परन्तु भाव है, उसका क्या फल?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव वह संसार-जगत है। भव करेगा। आहाहा! कहा न जगपन्थ। ४०वीं गाथा (काव्य)। मुनि के पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम वह जगपन्थ है, संसार का पन्थ है। है उसमें? समयसार नाटक, मोक्ष अधिकार का ४०वाँ बोल है। समयसार नाटक। आहाहा! तीन बोल में तो निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण कर दिया है। व्यवहार होता है और जिनवाणी ने भी बतलाया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अन्तर में स्वरूप की रमणतावाला चारित्रवन्त, उसे भी पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं, ऐसा जिनवाणी ने कहा है। आहाहा! परन्तु उन पंच महाव्रत के विकल्प का फल बन्धन और संसार है। ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कौन करे? सब पक्ष को बाँधकर बैठे हैं!

है? किन्तु उसका फल... जिनवाणी में कहे हुए व्यवहार का फल संसार है। अज्ञानी ने कहे हुए व्यवहार की तो बात कहीं रह गयी। आहाहा! ईश्वर कर्ता है और ईश्वर की भक्ति करो। उसकी तो बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकर

सर्वज्ञदेव की भक्ति करो, वह शुभभाव है। वह आता है, इसलिए जिनवाणी ने बतलाया है, परन्तु उसका फल बन्धन है। समझ में आया ? आहाहा !

**शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं....** देखो ! पक्ष अर्थात् यह शुद्ध चैतन्य है, उसका आश्रय कभी आया नहीं। आहाहा ! है ? **उसका उपदेश भी विरल है—**आहाहा ! पक्ष कभी आया नहीं। कभी आया नहीं, इसका अर्थ कि शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसका आश्रय एक क्षण भी कभी नहीं आया। वह नौवें ग्रैवेयक में ( गया ), अनन्त बार मुनि दिगम्बर हुआ, हजारों रानी छोड़कर पंच महाव्रत निरतिचार ( पालन किये ) उसके लिये भोजन करके दे ( तो ) प्राण जाये तो न ले, ऐसा अनन्त बार पालन किया, परन्तु उसे शुद्ध चैतन्य प्रभु अन्दर भिन्न है, यह क्रियाकाण्ड के विकल्प से, उसका इसने आश्रय नहीं लिया, उसका पक्ष नहीं किया। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

**मुमुक्षु :** पक्ष अर्थात् ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आश्रय। वह व्यवहार का पराश्रय है, इसका स्वआश्रय नहीं लिया। यह कहेंगे।

देखो ! **शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर....** ऐसा कहा है न वापस ? आयेगा उसमें तुरन्त वापस। यहाँ **शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं....** अर्थात् कि आत्मा को कभी ग्रहण ही नहीं किया। आहाहा ! अखण्ड आनन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य, उसकी तो दृष्टि कभी की नहीं। ऐसे तो ग्यारह अंग पढ़ा है, पंच महाव्रत पालन करे, परन्तु यह शुद्ध चैतन्य है, उसका आश्रय नहीं किया। सब व्यवहार का आश्रय करके रुक गया है। आहाहा ! **शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं....** अर्थात् कि जिसका फल मोक्ष है, ऐसा जो स्वद्रव्य का आश्रय तो कभी आया नहीं। वह यहाँ कहते हैं। वापस उसका फल मोक्ष है, ऐसा बतलाना है। जैसे वह व्यवहार जिनवाणी में कहा, उसका फल संसार है। उसी प्रकार इस शुद्धनय का पक्ष है—आश्रय, उसका फल मोक्ष है। समझ में आया ? आहाहा !

**और उसका उपदेश भी विरल है—**उसका उपदेश ही विरल वहाँ है। बाकी तो सब बहुधा मिथ्यात्व का व्यवहार की श्रद्धा है। विशेष कहेंगे.....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )

११

श्री समयसार, गाथा - ७६, श्लोक - ४९, प्रवचन - १०४  
दिनांक - १४-१०-१९६१

यह समयसार का 'कर्ता-कर्म अधिकार' चलता है। इसमें ७५ गाथा की टीका पूरी हुई। शिष्य ने प्रश्न किया है कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप हुआ अथवा आत्मस्वरूप हुआ अथवा ज्ञानी हुआ, वह किस प्रकार पहिचाना जाता है? उसका क्या लक्षण और क्या चिह्न है? ऐसा शिष्य का प्रश्न था। समझ में आया? भगवान आत्मा अनादि से जो अज्ञानी था, वह ज्ञानी (हुआ, ऐसा) कैसा पहिचाना जाता है? और अनादि से अनात्मस्वरूप के भाववाला था, वह आत्मस्वरूप हुआ, यह कैसे ज्ञात हो है? ऐसे प्रश्न का उत्तर देते हैं। उत्तर टीका में आ गया। कलश में कहते हैं।

अब इसी अर्थ का समर्थक कलशरूप काव्य कहते हैं :—

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि  
व्याप्यव्यापकभावसम्भवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः।  
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहोभारेण भिन्दंस्तमो  
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥४९॥

पूरी टीका का कलश कर दिया है। टीका दो घण्टे चली न? उस पूरे को एक कलश में समाहित कर दिया। व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है,.... वह पहला शब्द। सिद्धान्त। व्याप्य अर्थात् अवस्था, व्याप्य अर्थात् कर्म, व्याप्य अर्थात् कार्य और व्यापक अर्थात् कर्ता, व्यापक अर्थात् परिणामी, व्यापक अर्थात् द्रव्य। वह व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है,.... इन दो का पहले अर्थ किया। व्याप्य अर्थात् अवस्था अर्थात् कार्य और व्यापक अवस्थायी अर्थात् द्रव्य अथवा परिणामी और व्याप्य परिणाम। यह व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है,.... कैसा तत्स्वरूप?—कि आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वह तदात्मस्वभाव है, वह तत्स्वरूप है। आत्मा व्यापक है, कर्ता है, परिणामी है और उसका परिणाम-व्याप्य-कर्म-कार्य तत्स्वरूप में ही होता है, अभिन्न में (होता है)।

तो अपना ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाववान आत्मा, उस स्वभाव का परिणमन करे, वह स्वभाव की व्याप्य दशा, उसका कार्य और स्वभाववान उसका व्यापक अर्थात् कर्ता। समझ में आया ? सूक्ष्म तो है न ?

**व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है,....** आहाहा! एक शब्द में तो अस्ति-अस्ति कही। पश्चात् नास्ति कहेंगे। **अतत्स्वरूप में नहीं ही होती।** यह नास्ति कहेंगे। अनेकान्त की बात चलती है। भगवान आत्मा अपना स्वरूप व्यापक परिणामी है, वह परिणमन होने पर पर्याय में कर्म-कार्य जो हुआ, वह व्याप्य और परिणामी व्यापक। वह तत्स्वरूप में होता है। जिसके साथ अभेद है, उसके साथ व्याप्य-व्यापकपना हो सकता है।

**अतत्स्वरूप में नहीं ही होती।** राग, दया, दान, विकल्प व्यवहाररत्नत्रय विकल्प अतत्स्वरूप है, वह परद्रव्य है। समझ में आया ? विकल्प उठता है, भेद उठता है, अरिहन्त-सिद्ध की भक्ति का विकल्प उठता है, गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठता है और दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, वह अतत्स्वरूप है, तत्स्वरूप से विरुद्ध स्वरूप है। वह **व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है, अतत्स्वरूप में नहीं ही होती।** विकार का व्याप्य जीव का और आत्मा व्यापक, यह तत्स्वरूप नहीं। इसलिए, यह व्याप्यव्यापक नहीं हो सकता। समझ में आया ? **अतत्स्वरूप में नहीं ही होती।** अनेकान्त किया।

दो द्रव्य हैं। एक ओर आत्मा स्वभाव भगवान तथा एक ओर विकार रागादि, देहादि, शरीरादि, कर्म आदि सब पदार्थ। वे सब परद्रव्य में आते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी परद्रव्य में जाता है। तो परद्रव्य व्यापक और परद्रव्य व्याप्य होता है, परन्तु अतत्स्वरूप ऐसा भगवान आत्मा उसमें व्यापक होकर पसरे, विस्तार पावे और विकारी पर्याय उसका व्याप्य हो, ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि वह अतत्स्वरूप है, इसलिए (नहीं हो सकता)। अतत्स्वरूप के कारण। समझ में आया ?

**और व्याप्यव्यापकभाव के सम्भव बिना...** तीसरा सिद्धान्त। दो में अनेकान्त किया। **और व्याप्यव्यापकभाव के सम्भव बिना....** अवस्था और अवस्थायी, परिणाम और परिणामी, द्रव्य और पर्याय ऐसे व्याप्यव्यापकभाव के सम्भव बिना। **कर्ताकर्म की स्थिति कैसी ?** समझ में आया ? **कर्ताकर्म की स्थिति कैसी ?** राग परद्रव्य, वह अपना कार्य और आत्मा उसका कर्ता, ऐसा व्याप्यव्यापकभाव उसके साथ नहीं, तो कर्ताकर्म की स्थिति कैसी ? व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आत्मा का कार्य और आत्मा उसका कर्ता कहाँ से हुआ ?

समझ में आया ? यह परमात्मप्रकाश भाई, रखा है यहाँ बराबर। कौन जाने यह लाना भूल गये। परमात्मप्रकाश यहाँ रखा है। और उसमें मुझे वह सचेतन का करना था वहाँ ... लाओ, पुस्तक मँगाऊँ। वहाँ ऐसा देखा तो परमात्मप्रकाश था यह। सचेत और सिद्ध का ध्यान भी परिग्रह, परद्रव्य है।

सिद्ध का ध्यान परद्रव्य है, उसका वास्तव में व्याप्यव्यापकपना आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! गजब बात! वस्तु ऐसी चैतन्य ज्ञान डली है। ज्ञान की डली है। उसमें से तो ज्ञाता-दृष्टा का प्रवाह बहता है। स्वभाव की दृष्टि से। तो उस प्रवाह में तो निर्मल पर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक इतनी स्थिति है। निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय कर्म अर्थात् व्याप्य अर्थात् कार्य अर्थात् दशा और उसका व्यापक अर्थात् कर्ता अर्थात् द्रव्य, वह रचनेवाला है। उसमें कर्ताकर्म की स्थिति है। अतत्स्वरूप ऐसा सिद्ध भगवान का ध्यान या राग या दया, दान, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की वृत्ति जो उत्पन्न होती है, उसके साथ भगवान आत्मा का व्याप्यव्यापकपना नहीं है, उसका व्याप्यव्यापकपना परद्रव्य के साथ व्याप्यव्यापकपना है। समझ में आया ? श्यामस्वरूपजी! इतनी सूक्ष्म बात है, भाई! ओहोहो!

**मुमुक्षु :** सत्य बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सत्य, त्रिकाल सत्य, त्रिकाल सत्य, शाश्वत् सत्य। समझ में आया ? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में यही सत्य, परमसत्य आया है।

अरे! आचार्य थोड़े शब्दों में पूरी गाथा की टीका का सार निकाल कर कलश किया है। व्याप्यव्यापकभाव के सम्भव... सम्भव। व्याप्यव्यापकभाव के सम्भव अर्थात् उत्पत्ति विना, उसके सम्बन्ध बिना कर्ताकर्म की स्थिति कैसी ? अर्थात् कर्ताकर्म की स्थिति नहीं ही होती। भगवान आत्मा... यह ज्ञानी का लक्षण पूछा है न ? ज्ञानस्वरूप हुआ, ज्ञानी हुआ, आत्मस्वरूप हुआ, अनात्मस्वरूप का अन्दर अभावरूप परिणमन हुआ, अनात्मस्वरूप का अभावरूप परिणमन हुआ, परद्रव्य का अभावरूप परिणमन हुआ, रागादि परद्रव्य से अभावरूप परिणमन हुआ, स्वद्रव्य का सद्भावरूप परिणमन हुआ तो व्याप्यव्यापकपना अपनी निर्मल परिणति और निर्मल भगवान में व्याप्यव्यापकपना है। मलिन रागादि परिणाम और उसके व्यापकपने में आत्मा है नहीं। और व्याप्यव्यापकपने बिना सम्बन्ध ही नहीं है, पर का सम्बन्ध ही नहीं है।

निश्चय से तो यह व्यवहाररत्नत्रय का... यह पहले आ गया जीव-अजीव अधिकार

में। द्रव्यस्वभाव में अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? यह चार जो न्याय के अभाव हैं, वे दूसरे हैं। न्याय ग्रन्थों में चार जो अभाव हैं—अन्योन्य अभाव, अत्यन्त अभाव... है न? प्राग्भाव, प्रध्वंस अभाव वह दूसरी बात है। वह तो छह द्रव्य में व्यवहार की बात है। यहाँ अध्यात्म में तो जो राग है, वर्तमान में परद्रव्य, उसका स्वभाव में अत्यन्त अभाव है। वह दूसरा भाव है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प उठता है, वह भी स्वभावभाव और स्वभावभाव का परिणामन-कार्य, उसमें इस विकार का-व्यवहाररत्नत्रय का अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव के कारण आत्मा व्यापक होकर वह व्याप्य बने, ऐसी स्थिति कभी नहीं होती। समझ में आया?

प्रभु! तेरी चैतन्यलीला तो देख! लोग कहते हैं कि ईश्वर की लीला। वह ईश्वर की नहीं, तेरी लीला है। तेरा ईश्वर स्वभाव पड़ा है पूर्णानन्द प्रभुत्वशक्ति से भरपूर। वह प्रभुत्वशक्ति तो अनन्त गुण में प्रभुता आती है। एक प्रभुत्वशक्ति है तो अनन्त गुण में अविनाभावी प्रभुत्व साथ रहता है। क्योंकि विभुत्व भी उसकी शक्ति है। तो प्रभुत्व की शक्ति अनन्त गुण में व्यापकर विभुतारूप से अनन्त गुण को प्रभु बनाती है। ऐसे अनन्त गुण के प्रभुत्व सम्पन्न अपना परमेश्वर आत्मा जहाँ राग से पृथक्, परद्रव्य से पृथक् अपनी दृष्टि का भान हुआ तो निर्मल पर्याय का व्याप्य कहो, कार्य कहो, कर्ता द्रव्य कहो। क्योंकि (वहाँ) व्याप्यव्यापकभाव का सम्भव है, परन्तु परद्रव्य ऐसा राग विकार, दया, दान, जिससे तीर्थकरगोत्र बँधे, ऐसा भाव, उसका स्वद्रव्य-गुण में तो अत्यन्त अभाव है, परन्तु पर्याय में अत्यन्त अभाव है। निर्मल परिणाम मोक्षमार्ग की जो व्याप्यव्यापक की अवस्था है, उसमें भी वह परिणाम अत्यन्त अभावरूप है और अत्यन्त अभावरूप होने से व्याप्यव्यापक बिना अथवा उसमें व्याप्य हुए बिना, आत्मा कर्ता और परिणाम कार्य कैसे हो सकता है? समझ में आया? आहाहा! कितने टुकड़े, अकेले सिद्धान्त हैं!

**व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही...** अरे! भगवान! 'ही' तो जैनशासन में आता नहीं न? 'ही' आवे तो एकान्त हो जाये। अरे! सुन तो सही, प्रभु! 'ही' नहीं। कथंचित् ऐसा और कथंचित् ऐसा, ऐसा है? कथंचित् का अर्थ क्या?—कि तत्स्वभाव में व्याप्यव्यापकपना है और अतत्स्वभाव में व्याप्यव्यापकपना है ही नहीं, इसका नाम अनेकान्तपना है। कथंचित् अतत्स्वभाव में यह कर्ता-कर्म और कथंचित् व्याप्यव्यापक तत्स्वभाव में भी कर्ता-कर्म, ऐसा नहीं है। ओहोहो! भारी गड़बड़ी। अनेकान्त के नाम से गड़बड़ हो गयी। फुदड़ीवाद बना दिया। फुदड़ी। फुदड़ी कहते हैं न? क्या कहते हैं? चक्कर। फुदड़ी में चक्कर लगावे।

यह फुदड़ी। फदड़ीवाद। ऐसा भी होता है... ऐसा भी होता है... ऐसा भी होता है... क्या ऐसा भी होता है? स्वरूप में अस्ति है तो पर से नास्ति, ऐसा होता है, परन्तु पर का व्याप्यव्यापकपना भी है और अपना भी व्याप्यव्यापकपना है, ऐसी चीज़ ही नहीं है। उसे स्याद्वाद नहीं कहते, उसे अनेकान्त नहीं कहते। समझ में आया ?

कहते हैं कि व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही.... ऐसा लिया है। सम्यक् एकान्त लिया। अतत्स्वरूप में नहीं ही होती। रागादि परद्रव्य के साथ सम्यग्ज्ञान में व्यापकपना नहीं है। व्याप्य अवस्था नहीं। स्वभाव की पर्याय में विकार अत्यन्त अभावरूप है। इसलिए आत्मा का अतत्स्वभाव में व्याप्यव्यापकपना तीन काल में नहीं होता। आहाहा! भ्रमणा तो अनादि काल से है। पढ़े-गुने हुए को अभी भ्रमणा है। शास्त्र में ऐसा लिखा है... शास्त्र में ऐसा लिखा है। अरे! प्रभु! शास्त्र में सब लिखा है, यह अनेकान्त का अमृत प्रगट करने के लिये लिखा है। सभी शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है। सभी शास्त्र का वीतरागता तात्पर्य है, इसका अर्थ? अनेकान्त होकर वीतरागपर्याय झरे और अमृत के आनन्द का अनुभव हो, इसका नाम अनेकान्त कहते हैं। क्या राग के साथ व्याप्य होकर व्यापक आत्मा हो और वीतरागता प्रगट हो और अनेकान्तरूप से उसमें अमृत का अनुभव हो, ऐसा होता है?—ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ?

यह कहते हैं, देखो! 'ही' तो दोनों में लगाया है। 'ही' आत्मा द्रव्य से नित्य है तो नित्य ही है, पर्याय से अनित्य है तो अनित्य ही है। ऐसा नहीं कि द्रव्य से नित्य है और कथंचित् अनित्य भी है, ऐसा नहीं। ऐसे भगवान आत्मा को अपने द्रव्यस्वभाव के साथ व्याप्यव्यापकपना है, ऐसा अतत्स्वभाव के साथ राग और व्यवहार के साथ भी व्याप्यव्यापकपना है, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया ? ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य। यह कलश जब लिखे गये होंगे... वाणी तो परमाणु की पर्याय है, विकल्प तो निमित्त है और विकल्प के कर्ता भी हम नहीं, ऐसे काल में यह श्लोक लिखा गया है।

विकल्प व्याप्य और हम व्यापक, ऐसा है ही नहीं। किसको कहता है कि हमने शास्त्र बनाया ? आहाहा! प्रभु! किसे कहता है ? हमको गाली नहीं देना। क्योंकि विकल्प है वह हमारा व्याप्य नहीं और हम उसके व्यापक नहीं। यह हमारी कार्य-दशा नहीं और मैं उसका कर्ता नहीं। हमने बनाया। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अपने तत्स्वरूप में व्याप्यव्यापक है या अतत्स्वरूप में—विकल्प में व्याप्यव्यापक है ? प्रभु! ऐसा नहीं करते। ऐसी हमें गाली

नहीं देना कि विकल्प का कर्ता हुए आचार्य और शास्त्र की रचना की। यह निमित्त से कथन किया जाता है। क्या था, उसका ज्ञान (कराते हैं)। कर्ता-कर्म के स्वरूप में तीन काल में राग साथ में नहीं तो फिर शास्त्र की रचना की पर्याय में कर्ता-कर्म है, (ऐसा तो है ही नहीं)। समझ में आया ?

और ऐसा लिखा, देखो! कर्ताकर्म नहीं मानते परन्तु लिखकर दूसरों को समझाते हैं, तो दूसरे का कार्य कर सकते हैं, ऐसा इसमें आ जाता है। कहाँ से आया ? पण्डितजी! आया न? तुम्हारे ऊपर आक्षेप डाला है। लेख में आया है। तुमने लेख देखा है या नहीं? नहीं देखा? लेख आया है। पीछे नाम लिखा है। समझ में आया? पण्डितजी के ऊपर दो आक्षेप हैं।—कि तुम कहते हो कि मैं कर्ता नहीं, यह सोनगढ़ की बात तुमने सिद्ध की, परन्तु तुम्हारी श्रद्धा ऐसी नहीं है क्योंकि तुमने पुस्तक तो बनायी। इसलिए तुम्हारी कर्ता-कर्म की श्रद्धा, उसका कार्य नहीं कर सके, ऐसी है ही नहीं, जाओ! एक बात। दूसरी बात, तुम कहते हो कि क्रमबद्ध होगा। तो तुम्हारी श्रद्धा में क्रमबद्ध है ही नहीं। यह तो तुमने दूसरे का अर्थ किया। क्रमबद्ध नहीं। क्यों? यदि तुम क्रमबद्ध मानो तो तुम्हारे शब्दों से समझाने से दूसरे की पर्याय होगी, ऐसा तुम्हारी श्रद्धा में है तो क्रमबद्ध तुम्हारी मान्यता में है ही नहीं। आहाहा! यह नहीं सुना? आया था। ऐसा लेख प्रकाशित हुआ है। आहाहा! यहाँ तो हम सब देखते थे। क्या कहते हैं, ऐसा उसका अभिप्राय है। समझ में आया ?

अरे! भगवान अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं, व्याप्यव्यापकपना अतत्स्वभाव में नहीं, तो राग हुआ और बनाने का भाव आया तो ऐसा कहने में आया तो क्या कर्ता है? और क्या उसकी क्रमबद्ध की श्रद्धा चली गयी है? आहाहा! समझ में आया? ऐसे विकल्प के काल में विकल्प आता है, व्याप्यव्यापक बिना। वह परमाणु की पर्याय... एक परमाणु में स्वतन्त्र परिणमने की अपने गुण-पर्याय में द्रव्य उत्पाद-व्यय करता है तो होता है। अनन्त परमाणु के संयोग में अक्षर हो गये। स्कन्ध में से अक्षर हुआ, उसमें आत्मा ने क्या किया? अक्षर बना तो... तब तो ऐसा हुआ कि भाई! भगवान ने उपदेश दिया है, उससे दूसरे को लाभ होगा, तो उसकी पर्याय में क्रम होनेवाला था, तब तो भगवान ने पलटा दिया तो भगवान की श्रद्धा में क्रमबद्ध नहीं। भगवान के ज्ञान में क्रमबद्ध नहीं। सभी द्रव्य की जहाँ-जहाँ जैसी पर्याय जिस समय में जो होती है, वह होगी... होनी है, वह होगी ही। तीन काल-तीन लोक में (ऐसा होता है), ऐसा भगवान ने ज्ञान में देखा है। वाणी निकलती है वाणी के काल में।



वह समझने की उसकी योग्यता हो तो उसे वह समझता है। यह सब भी क्रमबद्ध में ही है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म विवाद करते हैं।

यह कहते हैं न, भगवान! हम राग में भी व्यापक नहीं और व्याप्य नहीं। राग का व्याप्य तो पुद्गल के साथ चला जाता है। तो हमारा आत्मा कर्ता और राग हमारा व्याप्य, यह कहाँ से आया? और दूसरे की जो पर्याय है, सम्यग्ज्ञान समझने की पर्याय हुई, वह व्याप्य और व्यापक तो उसका आत्मा है। उसने सुना और विकल्प है, वह भी उसका व्याप्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! सुनाने में आया या नहीं? क्या? उसने सुना वह तो वाणी हुई, विकल्प वह तो राग हुआ। तत्पश्चात् राग से हटकर यह तो आत्मा वस्तु की व्यवस्थित पर्याय चलती है, ऐसा कहते हैं। ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, पर की कर्तृत्वबुद्धि हटकर और राग को रचूँ, ऐसी बुद्धि छूटकर ज्ञाता-दृष्टा में अन्तर परिणति हुई, दृष्टि हुई, तब विकल्प और श्रवण को निमित्त कहा जाता है, परन्तु विकल्प और निमित्त में व्याप्य होकर व्यापक होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

समझनेवाला भी राग को व्याप्य बनाकर व्यापक आत्मा को बनावे, तब तक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति उसे भी नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? वह भी आत्मा। अपने स्वभावसन्मुख देखे, तब आत्मा को व्यापक बनाया, व्याप्य अवस्था स्वयं व्यापक में पर्याय में व्याप्य हो गयी। निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। तो व्याप्यव्यापक उसके साथ सम्बन्ध है। उसके विकल्प के साथ सम्बन्ध नहीं, तो वाणी के साथ और समझानेवाले के साथ व्याप्यव्यापकपना है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? प्रभु! चीज़ तो ऐसी है। अब तुझे रुचे या न रुचे, उसमें शंका की दलील उठे कि ऐसा होगा और ऐसा नहीं होगा। ऐसा वस्तु में है ही नहीं। वस्तु ही ऐसी है। पुकार करो तो करो। भाई! आसमीमांसा में आया है न? आसमीमांसा में समन्तभद्राचार्य (कहते हैं) कि नित्य है और अनित्य है, एक है और अनेक है। लोगों को विरोध लगता है तो पुकार करते हैं। तो वहाँ टीका में कहते हैं कि पुकार करो तो करो, वस्तु तो ऐसी है। यह समन्तभद्राचार्य ने आसमीमांसा में लिखा है। पुकार करो तो करो। एक वस्तु नित्य, वही वस्तु अनित्य, वही वस्तु एक, वही वस्तु अनेक, वही वस्तु शुद्ध, वही वस्तु पर्याय में अशुद्ध। बहुत विपरीत लगे। पुकार करो तो करो, वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह तुम्हारी मिटायी मिटती नहीं और किसी से मिटायी मिटती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि कर्ताकर्म की स्थिति नहीं ही होती। ऐसे.... देखो! अब लिया। प्रबल विवेकरूप,.... ओहो! विवेक आया। प्रबल विवेकरूप,.... प्रबल है न? 'उद्दाम-विवेक'

प्रबल विवेक का अर्थ परद्रव्य राग और स्वद्रव्य भगवान स्वभाव, दोनों का विवेक अर्थात् भेदज्ञान हुआ। 'उद्दाम-विवेक' प्रबल विवेक। राग का विकल्प और भगवान स्वभाव, दो के बीच प्रबल विवेक अर्थात् भेदज्ञान हुआ। और सबको ग्रासीभूत करने के स्वभाववाले ज्ञानप्रकाश.... प्रबल विवेकरूप हुआ ज्ञानप्रकाश और सबको ग्रासीभूत करने के स्वभाववाले ज्ञानप्रकाश.... दो लिये। कैसा है भगवान ज्ञानप्रकाश अपनी पर्याय का? द्रव्यस्वभाव में तो अचिन्त्य और अपरिमित है। परन्तु जहाँ अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई, वहाँ राग से प्रबल विवेक हुआ और रागादि का तथा स्व का ज्ञान हुआ। सबको ग्रासीभूत-ग्रास कर डाले। मुख बड़ा है और ग्रास छोटा है। ग्रास-कवल।

ऐसा कहते हैं कि राग, विकल्प, व्यवहार से मेरी व्याप्य-व्यापकता नहीं। मेरी व्याप्य-व्यापकता स्वभाव के साथ है। उसका प्रबल उद्दाम विवेक हुआ तो रागादि चाहे जिस प्रकार की वस्तु हो, सर्व को और अपने को ग्रासीभूत अर्थात् प्रकाशरूप ज्ञान में जानने का कार्य आत्मा करता है, ऐसा विवेक प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहाहा!

सबको ग्रासीभूत.... क्या कहा? देखो! प्रबल विवेकरूप, स्वभाववाले और सबको ग्रासीभूत करने के स्वभाववाले ज्ञानप्रकाश के भार से.... आहा! क्या कहा? भगवान आत्मा राग पर अन्धकार है। राग तो अन्धकार है। उसमें व्याप्यव्यापकपना अज्ञानभाव से मान रखा था। अज्ञानभाव से कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति मान ली थी, स्वभाव में है नहीं। वह राग व्यवहार मेरा कार्य और मैं करनेवाला व्यापक, ऐसा मान रखा था। जहाँ भेदज्ञान हुआ, ज्ञानप्रकाश राग से भिन्न हुआ और स्वभाव का आश्रय लिया तो द्रव्य व्यापक होकर निर्मल ज्ञानपर्याय व्याप्य हुई तो प्रबल विवेक हुआ और रागादि सभी वस्तु को अपने ज्ञान में जानता है, पर को जानना, ग्रासीभूत होना, ग्रास कर जाना, ऐसा प्रकाश प्रगट हुआ है। उसे ज्ञानी कहते हैं। यहाँ तो अभी श्रुतज्ञानी की बात चलती है। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञानी तो कहीं रहा, यहाँ तो साधक में श्रुतज्ञान की बात करते हैं। जहाँ भावश्रुतज्ञान हुआ, जो विकल्प और पर में एकाकार मानकर परद्रव्य में स्वद्रव्य की एकत्वबुद्धि थी, उसके अज्ञान से कर्ताकर्म मान रखा था। स्वभाव भिन्न और राग भिन्न है, परद्रव्य है, उसमें मेरा व्याप्यव्यापकपना नहीं, मैं उसमें पसरनेवाला नहीं, मैं उसमें रुककर रचूँ, ऐसा नहीं। मैं ज्ञानस्वभाव में रुककर ज्ञान की पर्याय का रचनेवाला मैं और मेरी पर्याय मेरा रचनारूपी कार्य, ऐसे विवेक से सम्यग्ज्ञान हुआ तो रागादि, व्यवहारादि को ग्रासीभूत करता है, अपने ज्ञान में जान लेता है। १२वीं गाथा में आया, वह सर्वत्र लिया है। उस काल

में जाना हुआ प्रयोजनवान है। 'तदात्वे' है न? 'तदात्वे'। उस समय वह बात रखकर सब सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते हैं। 'तदात्वे' .... वहाँ अस्ति की व्याख्या है। जीव की अस्ति और अजीव की नास्ति। अजीव शब्द से राग की भी नास्ति।

यहाँ कर्ता-कर्म की बात है। जो राग अजीव है तो उसका कर्तव्य-कार्य नहीं। आत्मा के अस्तित्व में राग नहीं और राग के अस्तित्व में आत्मा नहीं। यह जीव-अजीव प्रकार में अस्तित्व को सिद्ध किया है। यहाँ कर्ताकर्म में राग का व्याप्यपना और आत्मा का व्यापकपना नहीं है, ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया? कहते हैं, कि **ऐसे प्रबल विवेकरूप,...** अत्यन्त अभाव स्वभावरूप, विकार रागादि मेरे स्वभाव में अत्यन्त अभावरूप और मेरा ज्ञाता-दृष्टा व्यापक अपने स्वभाव में पर्याय में व्यापता है, यह अभिन्न कर्ता-कर्म है। भिन्न के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध तीन काल में नहीं हो सकता। ओहोहो! विकार का परिणामन भी भिन्न है। उसके साथ कर्ता-कर्म नहीं तो परद्रव्य तो स्वतन्त्र पर्यायरूप कार्य कर रहे हैं, उसके साथ कर्ता-कर्म मान लेना, वह आत्मा की बड़ी विडम्बना है। मूलजीभाई! आहाहा!

प्रभु! तेरे ज्ञान के विकास में कली खिले। यदि कमल की कली खिले तब तो कमल खिले तो कमल की पर्यायरूप ही खिलता है। क्या कोयले की पर्यायरूप कमल की पर्याय खिलती है? या लकड़ी की पर्यायरूप खिलती है? इसी प्रकार भगवान आत्मा राग और परद्रव्य से लक्ष्य छोड़ दिया। मेरा स्वद्रव्य स्वभावभाव है, ऐसा लक्ष्य किया तो ज्ञान का परिणामन हुआ। उस ज्ञान की पर्याय ने राग को प्रबल विवेक से भिन्न कर दिया, और ज्ञान की पर्याय तथा रागादि विकल्प आदि दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय को जान लेता है तो तिर जाता है। जान लेता है। ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। कर्ता-कर्म स्वभाव नहीं, परन्तु ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध हो जाता है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध जो अज्ञान से मान रखा था, व्यवहार तो था ही नहीं परन्तु व्यवहाराभास अज्ञान में (था), वह कर्ता-कर्म छूटकर व्यवहार ज्ञेय और आत्मा उसका ग्रासीभूत करनेवाला, जाननेवाला, ऐसा ज्ञान का ज्ञायक-ज्ञेय सम्बन्ध रहा, वह ज्ञान का लक्षण और ज्ञानीस्वरूप हुआ उसका न्याय। समझ में आया?

उसमें जम सके, ऐसी बात है, न जँचे ऐसी बात नहीं है, परन्तु इसने ऐसी पकड़ कर ली है कि हमने माना है, ऐसी वस्तु नहीं आयी हमने माना है ऐसी वस्तु नहीं आयी। परन्तु तूने मान रखा है वह खोटी वस्तु है, दूसरी वस्तु है। राग से लाभ हो और पुण्य से लाभ हो

और पर मेरा कार्य है, व्यवहार पहले होता है और निश्चय बाद में होता है, ऐसा कभी है ही नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि ऐसे प्रबल विवेकरूप, और सबको ग्रासीभूत.... सर्व में क्या बाकी रहा ? अपने द्रव्य-गुण-पर्याय स्वपने, रागादि परपने। सर्व को जानने का स्व-परप्रकाश का सामर्थ्य अपने सामर्थ्य से अपने उपादान में व्यापक द्रव्य से उपादान की पर्याय का व्याप्य हुआ। समझ में आया ? ओहो ! देखो ! यह धर्मदशा। सुने नहीं, श्रवण करे नहीं, विचारे नहीं। ऐसी बात। आवे तो चिल्लाहट मचाये कि निश्चय हो गया.... निश्चय हुआ। निश्चय हुआ अर्थात् सत्य हुआ। व्यवहार हुआ वह तो उपचार हुआ, वस्तु में नहीं। स्वभाव में व्यवहार तीन काल में नहीं। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। क्योंकि व्यवहार परद्रव्य है। उसमें आया या नहीं ? व्यवहार से मुक्त है और निश्चय से लीन है। निश्चय का अर्थ ज्ञायकभाव में एकाकार की परिणति चलती है, बस। समझ में आया ?

ज्ञानप्रकाश के भार से.... क्या कहा ? ओहो ! ज्ञान की सामर्थ्यता। इतना भार-समर्थता, भार अर्थात् समर्थता कि राग से भिन्न हुआ ज्ञान और ज्ञान सर्व को जाने, ऐसा जहाँ ज्ञानप्रकाश हुआ अज्ञानान्धकार को भेदा हुआ,.... है न 'तमः' 'तमः' भेदता हुआ। समझ में आया ? कहाँ गया 'तमः' ? 'भिन्दन् तमः' इसका अर्थ है। अज्ञानान्धकार को भेदा हुआ,.... यह भी कथन पद्धति है। समझ में आया ? उत्पन्न नहीं होता। उत्पन्न नहीं होता, उसे भेदता हुआ कहा गया है। आहाहा ! ज्ञान का प्रकाश, अपने स्वभाव का आश्रय किया। व्यापक होकर निर्मल पर्याय प्रकाशित हुई तो अज्ञान अन्धकार रहता नहीं। उसे भेदता हुआ, ऐसा कहा जाता है। अज्ञान को छेदना, उसमें क्या है ?

**मुमुक्षु :** ज्ञानभाव में अज्ञानभाव नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। बस, इतनी बात है। ज्ञानभाव हुआ तो अज्ञानभाव रहा नहीं, उसे भेदा, ऐसा कहा जाता है।

भगवान आत्मा भेदता हुआ यह आत्मा ज्ञानस्वरूप होकर,.... यह पहले राग का कार्य मानकर रागस्वरूप होकर अपने अस्तित्व को कर्ता-कर्म मानता था। अब ज्ञानस्वरूप होकर, उस समय कर्तृत्वरहित हुआ शोभित होता है। उस समय कैसे कहा ? कि पहले तो राग और विकार को कार्य मानता था। जब दृष्टि हट गयी और ज्ञानप्रकाश में अपनी पर्याय से राग से भिन्नता की, उस समय राग के कर्तृत्वरहित ज्ञानप्रकाश शोभता है और अपने में

व्याप्यव्यापकरूप से परिणमन करता है। कर्तृत्वरहित हुआ। देखो! उस काल में... 'तदा' 'तदा' है न? 'ज्ञानीभूय तदा' यह शब्द है चौथे पद में। 'तदा' क्यों लिया? कि उस समय शोभता है। राग का कार्य हटाकर ज्ञान के प्रकाश का व्याप्यपना हुआ (उस समय) 'तदा' ज्ञानप्रकाश शोभता है। तब ज्ञानप्रकाश ओपता है। उसे पण्डित होना है या नहीं धीरे-धीरे। यह तो तुम्हारे चिरंजीवी की बात की। अशोकभाई की। उसे भी फिर थोड़ा-थोड़ा पण्डित होना है न? समझ में आया?

क्या कहते हैं? यह आत्मा ज्ञानस्वरूप होकर,... 'तदा' उस समय कर्तृत्वरहित हुआ.... आहाहा! क्या कहते हैं? राग मेरा व्याप्य-मेरा कार्य और मैं कर्ता, वह आत्मा शोभता नहीं। वह आत्मा शोभता नहीं। उसमें सुन्दरता नहीं। सुन्दरता नहीं।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।

बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥३॥

इन सबका विशेष स्पष्टीकरण चलता है। भगवान आत्मा राग से पृथक् हुआ और राग का कर्तृत्व छूट गया, तब आत्मा शोभता है। वह आत्मा की सुन्दरता है। राग मेरा कार्य और मैं कर्ता, वह सुन्दरता नहीं। प्रभु! यह तो लांछन है। यह आत्मा की पर्याय में लांछन है। यह लक्षण नहीं, लांछन है। समझ में आया? लो, एक कलश हुआ। पूरी टीका का सार थोड़े शब्द में (कहा)। ओहोहो! जंगल में रहकर सिद्ध भगवान आत्मा के साथ बात करते... करते... करते... यह शास्त्र बन गया।

भावार्थ :- जो सर्व अवस्थाओं में व्याप्त होता है, सो तो व्यापक है.... यह व्यापक की-कर्ता की व्याख्या करते हैं। सर्व अवस्थाओं में.... सर्व हालतों में, सर्व पर्यायों में व्याप्त होता है, सो तो व्यापक है और कोई एक अवस्थाविशेष वह, ( उस व्यापक का ) व्याप्य है। इस प्रकार द्रव्य तो व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। परन्तु यहाँ कौन सी द्रव्य-पर्याय लेनी है? निर्मल शुद्धपर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक है, यह लेना है। यहाँ वह विकार व्याप्य पर्याय और आत्मा व्यापक, ऐसा नहीं है। वह तो परद्रव्य है। है? आहाहा!

द्रव्य तो व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। द्रव्य-पर्याय अभेदरूप ही है। कौन सी? ज्ञायकभाव आत्मा ऐसी परिणति ज्ञान की शुद्ध श्रद्धा-ज्ञानादि हुए, वह द्रव्य-पर्याय अभेद है। रागादि भाव तो भेदरूप है, परद्रव्य है, उसके साथ आत्मा द्रव्य (और) वह पर्याय आत्मा की और आत्मा द्रव्य, ऐसा परद्रव्य के साथ है ही नहीं। समझ में आया? परद्रव्य शब्द से राग, विकल्प, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय वह अपनी पर्याय नहीं, वह द्रव्य की

अवस्था नहीं, वह द्रव्य का परिणाम नहीं। समझ में आया ? द्रवति इति द्रव्यम्। तो द्रव्य तो शुद्ध स्वभाव है। वह द्रवता है तो शुद्धपर्याय प्रगट होती है। द्रव्यति इति द्रव्यम्। द्रवे। पानी में से पानी का लोढ द्रवता है। पानीरूप लोढ होता है। क्या मैलरूप होता है ? उसी प्रकार भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव राग से पृथक् हुआ। द्रवता है तो निर्मल पर्याय द्रवती है। निर्मल पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय, वह उसका व्याप्य, वह व्यापक। वह पर्याय और पर्यायवान। यह पर्याय-पर्यायवान अभेद है।

जो द्रव्य का आत्मा, स्वरूप अथवा सत्त्व.... देखो ! क्या कहते हैं ? जो द्रव्य का स्वरूप है, द्रव्य का सत्त्व है, वही पर्याय का आत्मा, स्वरूप अथवा सत्त्व है। है। जैसे ज्ञायकभाव द्रव्य है तो निर्मल पर्याय भी उसका ही स्वरूप है, उसका सत्त्व है, उसका भाव है। विकारी भाव उसका आत्मा अर्थात् स्वरूप और राग आत्मा का सत्त्व, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? जो द्रव्य का आत्मा,.... आत्मा अर्थात् स्वरूप। आत्मा अर्थात् द्रव्यरूप। जैसा द्रव्य का भावरूप, वैसा उसका सत्त्व, उसका स्वरूप, वही पर्याय का स्वरूप है। जैसा ज्ञायकभाव शुद्ध है तो उसकी पर्याय भी शुद्ध है। वह उसका अभेद कार्य, कर्ता-कर्म है। स्वरूप अथवा सत्त्व है। ऐसा होने से द्रव्य पर्याय में व्याप्त होता है... द्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा अपनी निर्मल निर्विकारी निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में व्यापता है।

और पर्याय द्रव्य के द्वारा व्याप्त हो जाती है। देखो ! यह निर्विकल्प पर्याय, निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वे द्रव्य द्वारा व्याप्त हैं, द्रव्य द्वारा व्याप्त हो जाती हैं, वे विकल्प द्वारा व्याप्त हो जाती हैं, ऐसा नहीं है। ऐसी व्याप्यव्यापकता तत्स्वरूप में ही.... है। वापस योगफल लिया। ऐसी व्याप्य-व्यापकता, अवस्था-अवस्थायी, कर्ता-कर्म तत्स्वरूप में ही होता है। व्याप्यव्यापकभाव के बिना कर्ताकर्मभाव नहीं होता। जो ऐसा जानता है, वह पुद्गल और आत्मा के कर्ताकर्मभाव नहीं है, ऐसा जानता है। ऐसा जानता है। यह पुद्गल शब्द से विकारी परिणाम और आत्मा दो के बीच कर्ता-कर्म भाव नहीं है, ऐसा जानता है। ओहो ! रजनीभाई ! समझ में आया ? देखो ! बैरिस्टर में यह बैरिस्टर है। रजनीभाई बैरिस्टर हुए हैं न ! लो, यह समझे बिना बैरिस्टरपना कुछ नहीं, ऐसा भाई कहते हैं। समझ में आया ?

अरे ! भगवान ! तेरा चैतन्य निधान सिंहासन पूर्ण स्वरूप पड़ा है न ! राग तो कृत्रिम विकार परचीज की तो यहाँ बात ही कहाँ है। शरीर बनावे, कर्म बनावे, वाणी रचे और पैसा पैदा करे और पैसे का व्यापार करे, यह कहाँ रहा ? तुझमें है ही नहीं। मान्यता करो। मान्यता तो करे, स्वतन्त्र उल्टी मान्यता है, परन्तु ऐसी वस्तु होती नहीं है।

जो ऐसा जानता है वह पुद्गल और आत्मा के कर्ताकर्म.... पुद्गल शब्द से यह विकारी पर्याय, हों! विकारी पर्याय से लेकर कर्म, शरीर, वाणी, मन सब पुद्गल है। एक ओर अज्ञान तथा एक ओर ज्ञान, दो बात है। अज्ञान शब्द से अपने ज्ञानभाव का जिसमें अंश नहीं, उस राग से लेकर सब अज्ञान है। पाँच द्रव्य अज्ञान है अपनी अपेक्षा है। आहाहा! अपना ज्ञान उनमें नहीं। अपना ज्ञानस्वरूप प्रकाशमय मूर्ति, उसे पर से भिन्न जानने पर पुद्गल और आत्मा के कर्ताकर्मभाव नहीं है, ऐसा जानता है। ऐसा जानने पर वह ज्ञानी होता है,.... लो! ऐसा जानने पर वह धर्मी होता है। धर्मी होता है, ज्ञानी होता है, साधक होता है, मोक्षमार्गी होता है। ऐसा होता हुआ धर्मी होता है।

कर्ताकर्मभाव से रहित होता है और ज्ञातादृष्टा-जगत का साक्षीभूत-होता है। यह पहले कलश लिया था, उसकी यहाँ बात है। ७५ गाथा पूरी हुई। यह पण्डितजी आये तो शाम-सवेरे लेते हैं। नहीं तो समयसार तो एक ही बार लेते हैं। यह तो थोड़ा झट चले और लक्ष्य में थोड़ा आवे (इसलिए दो बार लेते हैं)।

अब यह प्रश्न करता है कि पुद्गलकर्म को जाननेवाले जीव के पुद्गल के साथ कर्ताकर्मभाव है या नहीं? क्या प्रश्न किया? आप तो कहते हो कि ग्रासीभूत किया। राग-व्यवहार को ज्ञान ने ग्रासीभूत कर लिया। राग और व्यवहार को ज्ञान ने जान लिया। इतना तो सम्बन्ध हुआ न? अब यह प्रश्न करता है कि पुद्गलकर्म को जाननेवाले जीव के.... जाननेवाला तो कहा, हों! इतना सम्बन्ध तो रखा, बिल्कुल सम्बन्ध नहीं, ऐसा नहीं। जो राग उत्पन्न हुआ उसे जाननेवाला आत्मा, ऐसा तुमने कहा, जाननेवाला कहा। उसे जाननेवाला कहा, ग्रासीभूत करनेवाला कहा। तो ऐसे जीव के पुद्गल के साथ जिसका जानना हुआ, जिसका जानना अपने में अपने कारण से हुआ, उसके साथ कर्ताकर्मभाव है या नहीं? ऐसा विशेष स्पष्टीकरण करने के लिये कहते हैं, हों! विशेष स्पष्टीकरण इसमें आयेगा। समझ में आया?

भगवान! आपने तो ऐसा कहा कि अपने स्वभाव से जानता है। अपने ज्ञान में वह व्यवहार निमित्त पड़ा है। उपादान स्वयं से स्व-परप्रकाश की पर्याय हुई। तो अपने में स्व-परप्रकाश सामर्थ्य अपना कार्य अपने कारण से हुआ, उसमें यह व्यवहार जरा निमित्त कहलाया। तो उसे जानता है, ऐसा आपने कहा। जानता है तो पर के साथ कुछ कर्ता-कर्म सम्बन्ध है या नहीं? जानने का सम्बन्ध है, वह तो आपने सिद्ध किया। तो कर्ता-कर्म कोई सम्बन्ध है या नहीं? विशेष स्पष्टीकरण करने के लिये यह प्रश्न उठाया है। समझ में आया?

उसका उत्तर कहते हैं :— गाथा ।

ण वि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।  
णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥७६ ॥

बहुभाँति पुद्गलकर्म सब, ज्ञानी पुरुष जाना करे ।  
परद्रव्यपर्यायों न प्रणमे, नहिं ग्रहे, नहिं ऊपजे ॥७६ ॥

टीका । टीका जरा सूक्ष्म पड़े । ध्यान रखना । सूक्ष्म पड़े, ऐसी चीज़ है ।

प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा, व्याप्यलक्षणवाला पुद्गल के परिणामस्वरूप कर्म.... इतने की व्याख्या चलती है । प्राप्य,... जो पुद्गल का परिणाम जिस समय में जो होनेवाला है, उसे पुद्गल प्राप्त करता है । पुद्गल में जो परिणाम जिस समय में होनेवाला है, उसे पुद्गल प्राप्त करता है । वह पुद्गल का व्याप्यरूपी कर्म है । तीन अर्थ है । राजवार्तिक में तीन अर्थ लिये हैं । प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य । प्राप्य क्या ? कि रचना नहीं, विकार नहीं । जैसे कि गाँव । गाँव-गाँव । गाँव पहुँचना हो तो गाँव को रचना भी नहीं और गाँव को पलटना भी नहीं, उसे प्राप्य कहा ।

विकार्य,... आटा में से रोटी होती है, उसे विकार्य कहा, पलटना । और निर्वर्त्य.... यह ताने में से कपड़ा हुआ, उसे निर्वर्त्य कहा है । तीन उदाहरण दिये हैं । यह तो एक साधारण उदाहरण है । अब यहाँ क्या कहा ? यहाँ तो प्राप्य, जो पुद्गल की पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उसे द्रव्य प्राप्त करता है । समझ में आया ? और विकार्य—पूर्व की पर्याय पलटकर हुई । है तो एक की एक । कार्य तो एक का एक, परन्तु तीन लक्षण से उसे जानने में आता है । एक तो है, उसे प्राप्त करना । पूर्व की पर्याय पलटकर विकार्य हुआ और यह उपजना-होना, उपजना-होना यह निर्वर्त्य । वस्तु तो व्याप्य लक्षण एक है, कर्म एक है, परन्तु कर्म को देखने की तीन दृष्टियाँ हैं । समझ में आया ?

प्राप्य का अर्थ तो पहुँचना, यही होता है, परन्तु हमने तो पहले शुरुआत में ऐसा कहा था, शुरुआत में कि प्राप्य का अर्थ जो पुद्गल की जो समय की पर्याय (होनेवाली है), वह ध्रुवरूप है । ध्रुव अर्थात् वही होनेवाली है, उसे पहुँचता है । देखो ! ध्यान रखना । पर्याय में तीन उतारते हैं । उत्पाद, व्यय और ध्रुव । किस अपेक्षा से ? यहाँ तो भाई, रागादि सब पुद्गल का प्राप्य, हों ! पुद्गल की पर्याय रागादि होनेवाली है, उसे पुद्गल प्राप्त कहते हैं । उसका अर्थ कि उस पर्याय का काल ध्रुव है । उस पर्याय का काल ध्रुव है तो इस अपेक्षा से ध्रुव कहा । है तो पर्याय, परन्तु ध्रुव निश्चल वही पर्याय होनेवाली है, उसे पुद्गल प्राप्त करता है,



ध्रुव । और विकार्य हुआ । विकार्य । व्यय होकर उत्पन्न हुआ । विकार्य में व्यय हुआ । पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ । निर्वर्त्य में उस अवस्था का उत्पाद (हुआ) ।

फिर से । समझ में आया ? यहाँ दो में लेंगे, हों ! आत्मा में और पुद्गल में । दो में यह चार गाथा में लेंगे । बहुत अच्छी गाथायें हैं । ७६, ७७, ७८, ७९ । गजब वस्तु की स्थिति है । यहाँ कहते हैं कि प्राप्य । प्राप्य का अर्थ तो ऐसा है कि पहुँचना । तो किसे पहुँचना ? प्राप्य किसे करना ? है, उसे प्राप्त करना । जैसे वह गाँव लिया न ? गाँव है, उसे पहुँचना । उसी प्रकार जिस समय की जिस द्रव्य की पर्याय है, उसमें वह द्रव्य पहुँचता है ।

**मुमुक्षु : ...**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, स्वकाल में... यह हम पहले बहुत वर्ष से कहते थे । इस प्राप्य में से । समझ में आया ? ध्रुव है, उस समय का सत्, सत् उस समय का, अहेतुक पर्याय उसे द्रव्य प्राप्त करता है । तो जिस समय राग आनेवाला है, उस राग को प्राप्य कहा । उसे पुद्गलद्रव्य प्राप्त करता है अथवा वह प्राप्य अर्थात् ध्रुव । उस समय नियत वह ध्रुव, उसी समय का ध्रुव सत् है, वह द्रव्य, पर्याय को प्राप्त करता है । वह द्रव्य, पर्याय को प्राप्त करता है । समझ में आया ? वह प्राप्य है तो व्याप्य । प्राप्य है तो व्याप्य, प्राप्य है तो कर्म, प्राप्य है तो अवस्था, परन्तु एक अवस्था को तीन लक्ष्य से देखने की चीज़ यहाँ कहते हैं । समझ में आया ?

यहाँ तो पहले पुद्गल की बात है, हों ! पुद्गल की बात करते हैं । एक प्राप्य । राग जिस समय में होना है, वह नियत है, उसे द्रव्य पहुँचता है । उसे द्रव्य पहुँचता है तो उसे प्राप्य हुआ और विकार्य, पूर्व की अवस्था पलटकर उसे देखो तो उसे विकार कहा जाता है । पूर्व की अवस्था पलटने कर हुई तो उसे विकार कहते हैं । और पूर्व की नहीं और ध्रुव की नहीं और नयी उत्पन्न हुई, ऐसे देखो तो उसे निर्वर्त्य कहते हैं । समझ में आया ? उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक समय के । यह, हों ! इस अपेक्षा से । वह त्रिकाली ध्रुव नहीं ।

उस समय निश्चय वह ध्रुव पर्याय है । जिस समय की जड़ की, राग की, पुण्य की पर्याय । ऐसी यह शरीर की । सभी द्रव्य की । यहाँ सर्व पुद्गल की पर्याय चलता है न ! सर्व द्रव्य अपनी वर्तमान जो पर्याय होनी है, जो होनेवाली है, वह ध्रुव है । ध्रुव अर्थात् निश्चल है, निश्चय है, उसे द्रव्य प्राप्त करता है । समझ में आया ? उसमें रचना भी नहीं, पलटना भी नहीं । 'है' । जैसे द्रव्य-गुण है, वैसी उस समय की पर्याय है । बस । समझ में आया ? उसे प्राप्य कहते हैं । क्या कहते हैं ।

ये तीनों व्याप्यलक्षणवाला पुद्गल के परिणामस्वरूप कर्म.... ओहोहो ! आचार्य ने

तो कितनी बात संक्षिप्त में ऐसी चीज़ ( भर दी है ) । भगवान ! राग आता है न व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प ? तो उस विकल्प का काल ही ध्रुव है । ध्रुव का अर्थ है ही । उसे रचना नहीं, पलटना नहीं, निवृत्त करना नहीं, पलटना नहीं, इस दृष्टि से देखो तो विकार की पर्याय, जड़ की पर्याय, शरीर की पर्याय, कर्म की पर्याय वह है, उसे द्रव्य प्राप्त करता है । उस समय में होनेवाली है, उसे प्राप्त करता है । समझ में आया ? उसमें गर्भ पड़ा है जरा । आहाहा ! और विकार्य । पूर्व की अवस्था से पलटकर हुई । अवस्था तो वह ही है । अवस्था तो वह ही है, परन्तु पूर्व की अवस्था से पलटकर हुई, ऐसा देखे तो उसे विकार कहते हैं । और नयी उत्पन्न हुई, ऐसा देखना, उसे तो निर्वर्त्य कहते हैं ।

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** और उपजी देखना और ध्रुव देखना... प्राप्त को देखना । समझ में आया ?

देखो न ! प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा, व्याप्यलक्षणवाला पुद्गल के परिणामस्वरूप कर्म ( कर्ता का कार्य ),.... है । कर्ता का कार्य है । एक समय में तीनों कर्ता का कार्य है । तो पुद्गलद्रव्य है कर्म जड़ आदि, उसकी जो पर्याय जिस समय में जो होनेवाली है, वह प्राप्य, ( पलटना हुआ वह ) विकार्य, नयी उपजने की दृष्टि से देखो तो निर्वर्त्य है । यह व्याप्यलक्षणवाला कार्य पुद्गल का है । समझ में आया ? कोई कहता है न कि परन्तु अरे ! भाई ! हम यह निश्चय समझें तो व्यवहार का क्या होगा ? क्या है परन्तु तुझे ? व्यवहार के काल में व्यवहार प्राप्य होकर उसमें जड़ द्रव्य की पर्याय होती है । वह अचेतन, रागादि वास्तव में जड़ की पर्याय है, पुद्गल की पर्याय है । प्राप्य लक्षणवाली पर्याय, उस काल में आये बिना रहती नहीं, उसका तू जाननेवाला है । वह जानने की पर्याय भी प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य हुए बिना नहीं रहती, ऐसा कहेंगे । आहाहा ! समझ में आया ?

उस समय में तेरा रागादि है, उसकी जानने की पर्याय, वही यहाँ ध्रुव प्राप्य है । पूर्व की पलटने की अपेक्षा से विकार्य और उपजने की दृष्टि से वह निर्वर्त्यय । उसी द्रव्य में पर्याय प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्यरूपी कर्म, उसका आत्मा कर्ता और वह उसका काम है और जड़ के प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य परिणाम का कर्ता पुद्गल और वह पुद्गल का काम है । दोनों भिन्न-भिन्न काम होते हैं । समझ में आया ? इसकी विशेष बात करेंगे....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )

१२

श्री योगसार, गाथा - ३८ से ४२, प्रवचन - १५  
दिनांक - २२-०६-१९६६

३८ (गाथा) थोड़ी बाकी है। जीव-अजीव का भेद..... योगसार।

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।

मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥३८ ॥

हे धर्मी! ऐसा सम्बोधन करके कहते हैं, हे योगी! योगसार है न? आत्मा... जड़ और चैतन्य दोनों अत्यन्त पृथक् हैं - ऐसा जो भेदज्ञान करे तो आत्मा को - स्वयं को शुद्ध ज्ञान और आनन्दमय देखे और अजीव को राग-द्वेष, कर्म आदि स्वरूप देखे। समझ में आया?

जीवाजीवई भेउ जो झाणइ जो जीव-अजीव का भेद जाने। जीव, वह ज्ञान, शुद्धआनन्द आदि स्वरूप है; अजीव, ये सब रागादि, शरीरादि, कर्म - ये सब अजीव हैं। दोनों का सम्बन्ध न होवे तो बन्ध न होवे और दोनों का सम्बन्ध छूटे तब मुक्ति होती है; इसलिए इसे इन दोनों का ज्ञान भलीभाँति करना चाहिए।

मोक्खहँ कारण एउ यही मोक्ष का कारण है - ऐसा भगवान ने कहा है। जीव - अजीव का भेदज्ञान, वह मोक्ष का कारण है - ऐसा कहा है। समझ में आया? 'भेदज्ञान, वह ज्ञान है; शेष बुरा अज्ञान' - भेदज्ञान अर्थात् आत्मा और जड़ दो चीजें हैं न? न होवे तो इसे इस सम्बन्ध का बन्ध और बन्ध के अभावरूपी मुक्ति - यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती। इससे आत्मा और अजीव दोनों के लक्षण भिन्न हैं, दोनों का स्वरूप भिन्न है, दो के भाव अलग हैं - ऐसे यदि दोनों को भलीभाँति भिन्न जाने तो उसे मोक्ष का कारण -पर से भिन्न स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की दशा प्रगट होती है; अतः उसके कारण, हे योगी! भगवान ने तुझे ऐसा कहा है - ऐसा कहते हैं। जीव-अजीव का भेदज्ञान होवे तो इसे मोक्ष-कारण होता है - ऐसा भगवान ने कहा है। इसमें बहुत आ गया है।

अन्त में समयसार का श्लोक भी दिया है। जीव और अजीव, लक्षण से ही भिन्न है,

इसलिए ज्ञानीजन अपने को सर्व रागादि और शरीरादि से ही भिन्न ज्ञानमय प्रकाशमान एकरूप अनुभव करते हैं। पर से भिन्न और स्व-स्वभाव से एक आत्मा। अपने शुद्धस्वभाव से एक अभेद आत्मा और रागादि से पर (-भिन्न) – ऐसा भेदज्ञान करे तो उसे स्वभावसन्मुख की एकता होती है और उसमें से परसन्मुखता जाती है, तो निश्चित इसे अनुभव करने से मोक्ष होता है। इसे मुक्ति अर्थात् निर्मलानन्द शुद्ध, राग से भिन्न है – ऐसा अन्तर भासित होने से – एकता होने से राग से छूटकर वीतराग पद को पाता है। अब सार कहते हैं।

३९ – आत्मा केवलज्ञान स्वभाव का धारक है। पहले, जीव-अजीव दो भिन्न किये न? तब अब जीव की पहचान देते हैं। पहले सामान्य बात की थी। ग्रन्थकार आचार्य स्वयं कहते हैं –

**केवल-णाण-सहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।**

**जइ चाहहि सिव-लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥३९ ॥**

हे योगी! योगियों ने कहा है..... सर्वज्ञ परमेश्वर अथवा सन्तों ने कहा है कि तुहुँ केवलणाण सहाउ सो अप्पा जीव मुणि तू केवलज्ञान-स्वभावी आत्मा को जान। केवलज्ञान, अर्थात् यहाँ केवलज्ञान पर्याय की बात नहीं है। केवलज्ञान-अकेला ज्ञानस्वभाव, अकेला ज्ञानस्वभाव; उसमें सर्वज्ञस्वभाव आ गया, परन्तु अकेला स्वभाव – ज्ञानस्वभाव आत्मा। समझ में आया? केवलज्ञान अर्थात् उस पर्याय का केवलज्ञान, (उसका) यहाँ काम नहीं है।

यह तो पूरा ज्ञानस्वरूप चैतन्य, 'दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो' – आता है न? 'दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो, तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब; तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब, चरित्र-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा, वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब, अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा' – स्वरूप की स्थिरता का ध्यान कैसे वर्ते? ऐसा। बाकी दर्शनमोह, जीव और अजीव की एकताबुद्धि का नाश होने पर आत्मा, देह से भिन्न अकेला – केवलज्ञान की मूर्ति है – ऐसा अनुभव में आना चाहिए। समझ में आया?

अकेला आत्मा ज्ञानस्वरूप, देह से भिन्न चैतन्य। देह से भिन्न अथवा देह अर्थात् रागादि सब पर में जाते हैं। उनसे (भिन्न) अकेला चैतन्यस्वरूप है, वह केवलज्ञान स्वभाव का धारक है। अकेला ज्ञानस्वभाव, ऐसा। केवल अर्थात् अकेले ज्ञानस्वभाव का धारक है। वह शरीर को नहीं धारता है, कर्म को नहीं धारता है, विकार के भाव को नहीं पकड़ता है,

अपने में नहीं रखता है; अकेला केवलज्ञान चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वभाव सर्वज्ञ स्वभाव का धारक (है)। केवलज्ञानस्वभावी शब्द लिया है न? फिर इन्होंने 'धारक' शब्द का प्रयोग किया है।

**केवलगाण सहाउ** उसका स्वभाव ही अकेला ज्ञानस्वरूप चैतन्य है। ऐसा अन्तर में जीव का भान, ज्ञान होने पर **मुणि जीव तुहुँ। जइ चाहहिं सिव-लाहु** यदि मोक्ष का लाभ चाहता हो, अर्थात् निर्मल आनन्द की पूर्ण पर्याय की प्राप्ति को चाहता हो तो इस केवलज्ञानस्वभाव धारक आत्मा को तू जान। देखो! यहाँ दूसरे शास्त्र को जान, यह कुछ बात नहीं की है। समझ में आया?

यदि तू मोक्ष का लाभ चाहता हो ..... मोक्ष अर्थात् पूर्ण पवित्रता। पूर्ण पवित्रता की पर्याय को प्रगट करना चाहता हो, ऐसा। केवलज्ञान और केवलदर्शन, परमानन्द – ऐसी दशा को प्रगट करने की भावना हो तो भगवान ज्ञानस्वभाव, अकेला ज्ञानस्वरूपी है – उसका अनुभव कर। अकेले ज्ञानस्वभाव का अनुभव करने से तुझे मुक्ति मिलेगी। कहो, समझ में आया इसमें? लो! इसमें केवलज्ञानस्वभावी **मुणि** जानना – यह तुझे मोक्ष के लाभ के लिए कारण है। जानना आया, इसमें चारित्र तो नहीं आया? अन्य (लोग) कहते हैं कि ज्ञान-ज्ञान आया, परन्तु इसमें चारित्र नहीं आया....? परन्तु जो आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूप सूर्य है – ऐसा जानने से प्रतीति और स्थिरता व आनन्द का अंश – सब साथ आये हैं। यहाँ बहुत संक्षिप्त कहा है। (गाथा) ३८ में जीव-अजीव की व्याख्या की, फिर (३९ में) जीव है, वह ऐसा है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अकेली चैतन्यमूर्ति, केवल की मूर्ति है, उसमें पुण्य और पाप, रागादि, शरीर, कर्म-फर्म कुछ नहीं। कुछ नहीं, यह पर तो नहीं और है तो अकेला ज्ञानस्वभाव परिपूर्णता से भरा आत्मा है। ऐसे ज्ञानस्वभाव को **मुणि** जान, जान। इस जानने में मुक्ति आ गयी। मोक्ष का मार्ग – सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। यह केवलज्ञान की मूर्ति आत्मा है – ऐसी श्रद्धा, वह समकित; अकेला ज्ञानमय आत्मा, उसका ज्ञान, वह ज्ञान और अकेला ज्ञानमय आत्मा, उसकी रमणता, वह चारित्र है। कहो, समझ में आया इसमें?

**प्रत्येक आत्मा को जब निश्चयनय से देखा जाए....** पुद्गल को स्वभाव से देखा जाए, तब देखनेवाले के सामने अकेला एक आत्मा सर्व पर के संयोगरहित खड़ा हो जाएगा। ऐसा कहते हैं। पर से भिन्न देखेगा तो अकेला आत्मा दिखेगा। उसमें दूसरा-दूसरा

शामिल नहीं होगा – ऐसी जरा लम्बी बात करते हैं। आठ कर्म से रहित, शरीर से रहित, राग-द्वेष और भावकर्म से रहित देखता है – ऐसे आत्मा का अनुभव करो। आत्मा के अनुभव से यह सब चीजें अलग है। समझ में आया ?

उसके गुणों का वर्णन किया है। आत्मा में एक प्रधानगुण ज्ञान है। उसे ही केवलज्ञानस्वभाव कहते हैं। उस गुण से ही दूसरे गुणों का प्रतिभास होता है – ऐसा कहते हैं। आत्मा में ज्ञान है, उस ज्ञान से दूसरे गुणों का भान होता है। दूसरे गुणों से ज्ञान का भान – ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। उसे यहाँ केवलज्ञानस्वभावी विशेष क्यों कहा ? कि ज्ञानस्वभाव को जानने से, वह ज्ञान दूसरे आनन्द का, श्रद्धा का, अस्तित्व का, वस्तुत्व का ( – ऐसे) अनन्त गुणों का प्रतिभास ज्ञान करता है। समझ में आया ? दूसरे गुण अस्तित्व रखते हैं परन्तु वे गुण नहीं जानते अपने को; नहीं जानते ज्ञान को। यह ज्ञानगुण ऐसा है कि जो ज्ञान स्वयं को जानते हुए, दूसरे गुण ऐसे हैं – ऐसा स्वयं जानता है। समझ में आया ? आनन्द का अनुभव होता है परन्तु उस आनन्द के अनुभव को ज्ञान जानता है कि यह आनन्द है। समझ में आया ?

इसी तरह ज्ञानस्वरूपी आत्मा की श्रद्धा-सम्यग्दर्शन ( होवे), उसे ज्ञान जानता है कि यह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन जानता नहीं। ज्ञान जानता है कि मैं त्रिकाल अस्तित्व हूँ। ज्ञान में यह प्रतिभास होता है। ज्ञान में ऐसा स्वभाव है, प्रतिभास होता है कि यह त्रिकाल अस्तित्व है। त्रिकाल अस्तित्व है, वह स्वयं ज्ञान नहीं करता, क्योंकि उसमें ज्ञान स्वभाव नहीं है। समझ में आया ? ज्ञान है, वह त्रिकाल अस्तित्व है, यह त्रिकाल है – ऐसे अस्तित्व की सत्ता का बोध ज्ञान के द्वारा होता है। समझ में आया ?

अन्य गुणों का प्रतिभास होता है, उसे ही सर्वज्ञपना कहते हैं। लो ! प्रत्येक आत्मा स्वभाव से सर्वज्ञ है। प्रत्येक आत्मा स्वभाव से तो सर्वज्ञस्वरूपी है। सर्वज्ञ अर्थात् ज्ञानस्वभाव कहा तो यहाँ ज्ञान में सभी गुणों का ज्ञान आ गया और वह सर्वज्ञस्वभावी हो गया। उन समस्त गुणों का जाननहार और अपना जाननहार – ऐसा आत्मा का स्वभाव, वह सर्वज्ञस्वभाव है। अद्भुत बात, भाई ! परन्तु इसमें क्रिया क्या करना ? वे कहते हैं – तुम्हें बातें करनी हैं – ऐसी बातें कितने ही करते हैं। कौन कहता था ? कल कोई (कहता था)। राणपुरवाले उन 'लल्लूगोविन्दजी' वाले न ? आहा....हा... ! भाई ! क्रिया की व्याख्या क्या ? यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इसे जानना, वह क्रिया नहीं है ? इसे जानना, वह क्रिया है। यह ज्ञानस्वरूपी

आत्मा अनन्त गुण को जाननेवाला – ऐसा ज्ञान, उसकी निर्विकल्प प्रतीति करना – यह प्रतीति करना क्रिया नहीं है ?

**मुमुक्षु** – बाहर परिवर्तन नहीं दिखता न।

**उत्तर** – बाहर में परिवर्तन क्या दिखे ? बाहर में कहाँ वह चीज थी ? बाहर में वह चीज कहाँ थी कि उसका परिवर्तन बाहर में दिखे ? क्या कहा ? समझ में आया ? क्या कहा ? यह ज्ञानस्वरूपी भगवान बाहर में कहाँ है ? शरीर में, वाणी में, उनमें तो नहीं; तो उनमें नहीं, तब उनका परिवर्तन बाहर में कहाँ दिखेगा ? कुछ समझ में आया ? उसका परिवर्तन तो, उसमें जहाँ स्वयं है, वहाँ दिखेगा।

ज्ञानस्वरूपी आत्मा माना नहीं था, जाना नहीं था, तब (इस) राग को एकत्वरूप जानकर, मानकर, लीन होता था। अब वह परिवर्तन कहाँ होगा ? शरीर में होगा ? पर में होगा ? क्योंकि फेरफार-विकार की अवस्था भी इसमें हुई थी। है ? इसमें हुई थी, यह बदला तो परिवर्तन तो इसमें होगा ? शरीर, वाणी, मन में होगा ? बाहर में परिवर्तन होगा ? कहो ? मन्दिर में यह कहाँ बैठा है ? यह बैठा है ज्ञान में। अब यह ज्ञान में बैठा है या ज्ञान में एकत्व – राग करके बैठा है – इसका निर्णय तो अन्दर में है या बाहर में है ? वहाँ बैठे 'स्वाध्याय मन्दिर' के बाह्य क्षेत्र में वह आया नहीं, वह तो आता नहीं, वह आत्मा तो अपने ज्ञान क्षेत्र में है। अब वह ज्ञानक्षेत्र में है, वह बाह्य क्षेत्र में बैठा दिखे, (वह) अन्दर में क्या करता है ? यह तो अन्दर की बात रही। हैं ? कि मैं यहाँ आया, इसलिए मुझे निवृत्ति मिली, मैं यहाँ आया, इसलिए मेरे राग घटा – यह तो मान्यता सब अन्तर में एकाग्र करते हैं। यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है, यह तो बाह्य लक्ष्य से निर्णय करता है।

अन्तर में आत्मा ज्ञानस्वभाव है, चैतन्यबिम्ब है – ऐसा जो निर्णय होना, उसकी जो क्रियाओं का परिवर्तन होना, वह तो उसकी दशा में होता है तो उस दशा का जाननेवाला (होवे), उसे दशा का पता पड़े। कहो, समझ में आया ? दूसरे परमाणु, शरीरादि तो पर-पदार्थ हैं, उसकी अवस्था का बदलना, घटना, कम होना, उसके माप से आत्मा में निवृत्ति का माप आया – वह कहाँ से आया ? पृथक् ही पड़े हैं, कब अन्दर एकत्रित हो गये थे ? प्रत्येक रजकण पृथक् हैं। इसकी सत्ता अस्तिरूप तो ज्ञानस्वरूप अस्तिरूप है, अब ऐसा अस्तित्व है, उसे न मानकर मैं इस शरीर का कुछ करता हूँ-राग करता हूँ-यह करता हूँ, यह करता हूँ, यह करता हूँ, यह करता हूँ तो जो करता हूँ – ऐसी सत्तावाला माना। अब बाहर

में भले स्वाध्याय मन्दिर में बैठा हो या हाथ ऐसे करके बैठा हो परन्तु बैठा है अन्दर में-बाह्य में। समझ में आया? हरिभाई!

ज्ञानस्वभावी भगवान... यहाँ तो यह कहा न? ज्ञानस्वभावी आत्मा। देखो! एक मूलस्वभाव इन्होंने लिया... मूल पाठ में है न? **भणइ जोइ जोइहिं भणिऊँ** हे योगी! योगियों ने ऐसा कहा है, सन्तों ने ऐसा कहा है.... तो इसका अर्थ कि तू ज्ञानस्वभाव है – ऐसी जो दृष्टि पलटे और रागादि नहीं – ऐसी जो दृष्टि होवे, उसका परिवर्तन तो उसकी दशा में होता है, अरूपी में होता है। यह जाननेवाला जाने, ज्ञान से जाने कि यह परिवर्तन हुआ (या) नहीं हुआ... यह बाहर की क्रिया से कैसे ज्ञात हो इसमें? समझ में आया?

अन्दर में परिवर्तन हुआ। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, राग का कण भी नहीं – ऐसी दृष्टि हुई, यह परिवर्तन तो पर्याय में हुआ। इस अरूपी ज्ञान ने जाना। अब इस बाहर की क्रिया में तो लड़ाई में खड़ा दिखे.... लड़ाई में खड़ा दिखे, फिर भी अन्तर में पूरा पलटा खाय है कि जिसमें अकेला ज्ञानस्वभावी आत्मा का स्वामी होता है और राग तथा उसका स्वामी नहीं होता। यह अन्दर की दशा में ज्ञात होता है या बाहर से ज्ञात होता है?

एक (जीव) बाह्य से अत्यन्त त्याग करके बैठा है। लो! स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, नग्न होकर बैठा है परन्तु वह तो बाह्य चीजें संयोग में कम दिखाई दी परन्तु अन्दर में संयोगभाव को अपने स्वभाव के साथ मानता है, रागादि विकारभाव संयोगी है, उसे स्वभावभाव – चैतन्य का त्रिकालभाव है, उसके साथ मानता है तो उसे कोई भी संयोग छूटा नहीं है, जरा भी नहीं छूटे हैं, अत्यन्त संयोग के विकार में ही पड़ा है। यह माप बाहर से होता है या अन्दर से होता है? बाहर में वह कहाँ आता है तो बाहर से हो? कहो, इसमें समझ में आया? अपना निर्णय करे और फिर दूसरे का काम.... दूसरे का क्या काम है इसे? ऐसा ज्ञानस्वभाव आत्मा का है।

इसमें ऐसा एक दर्शनस्वभाव इसके साथ इन्होंने लिया है। ऐसे सुखस्वभाव है, वीर्यस्वभाव है, चैतन्य का अमूर्तस्वभाव है। इतने मूलस्वभाव इन्होंने अधिक लिये हैं। शास्त्र के दूसरे आधार लेकर भी लिये हैं।

४० गाथा... **ज्ञानी को हर जगह आत्मा ही दिखता है।** इस देह में विराजमान चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द है, यह देहादि वाणी आदि तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। रागादिभाव होते हैं, वह तो विकार, दोष है, वह आत्मा नहीं है; अतः आत्मा के जाननेवाले को सर्वत्र आत्मा ही भासित होता है, यह बात यहाँ अधिक कहते हैं।



**को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ।**

**हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ ॥४० ॥**

देखो, यहाँ जोर है। जहाँ देखते हैं, वहाँ आत्मा दिखता है। **कौन समाधि करे, कौन अर्चा-पूजा करे....** भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्यसूर्य प्रभु आत्मा है। ऐसा जहाँ अन्तर में भासित हुआ, अब उसे समाधि करूँ – यह कहाँ रहा? स्वरूप ही ज्ञान है। मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ – ऐसा जहाँ भासित हुआ, वहाँ उसे दूसरे सभी आत्मा भी ज्ञान और आनन्दमय हैं – ऐसा भासित होता है। समझ में आया?

यह आत्मा ही ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। यह शरीर, वाणी तो जड़ है, मिट्टी है। दया, दान, काम, क्रोध के शुभ-अशुभभाव होते हैं, वह तो विकार है, उस विकाररहित आत्मा अन्तर में जहाँ जाना, कहते हैं कि, उसे अब क्या करना रहा? समझ में आया? अब **कौन समाधि करे.....** समाधि अर्थात् ऐसे स्थिर होओ... जाना कि आत्मा है, उसमें स्थिर हुआ ही है। समझ में आया?

**कौन अर्चा या पूजन करे....** स्वयं भगवान ज्ञानस्वरूपी आनन्दमूर्ति का जहाँ भान हुआ, वह आत्मा में ही स्वयं परमात्मस्वरूप का धारक, किसकी अर्चा-पूजा करना इसे अब? पूजा और अर्चा जो पर की करता था, वह तो शुभभाव था। भगवान की पूजा और अर्चा यह तो शुभ-पुण्यभाव था। वह पुण्यभाव जहाँ मैं नहीं, मैं तो ज्ञानस्वरूपी चिदानन्द आत्मा हूँ – ऐसा भान होने पर वह किसकी पूजा करे? वह तो अपनी पूजा करता है। आहा...हा...! अर्चा.... अर्चा है न? किसे अर्चे? भगवान को अर्चता है न? पूजा करता है, वह तो शुभभाव होता है तब होता है। परन्तु जहाँ आत्मा ही शुभभाव से भिन्न भासित हुआ, चैतन्यस्वरूप भासित हुआ और उसमें स्थिर हुआ तो वह स्वयं की पूजन करता है, स्वयं, स्वयं को अर्चना और बहुमान देता है। अब उसे दूसरे की पूजन करना नहीं रहा। समझ में आया?

**कौन स्पर्श-अस्पर्श....** करे। समझ में आया? यह अमुक हाथ का स्पर्श करना है, अमुक हाथ का स्पर्श नहीं करना, यह स्पर्श करने योग्य है, यह अस्पर्श करने योग्य है, यह छूने योग्य नहीं, यह छूने योग्य नहीं, यह छूने योग्य है.... परन्तु वस्तु के ज्ञानस्वरूप में यह है कहाँ? किसे स्पर्श और किसे अस्पर्श? स्पर्श-अस्पर्श की बुद्धि तो बाह्य लौकिक में है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का स्वरूप जहाँ स्वयं ही आत्मा सच्चिदानन्द है

– ऐसा अन्तर में भान का भास और भाव प्रगट हुआ तो कहते हैं कि किसके साथ स्पर्श-अस्पर्श? फिर इस चीज को छूना नहीं, इस माँस को छूना नहीं, पानी को छूना, अच्छी चीज को (छुआ जाता है), यह वस्तु में कहाँ रहा? समझ में आया? छोपु अछोपु करिवि है। कौन स्पर्श करे? वस्तु ही भगवान आत्मा अपने चैतन्यमन्दिर में विराजमान है, उसे जहाँ अन्तर में जाना, देखा, अनुभव किया – ऐसे आत्मा को अब स्पर्श-अस्पर्श कुछ नहीं रहता। समझ में आया?

‘को वंचउ’ कौन वंचना या मायाचार करे? भगवान आत्मा जानने-देखनेवाला चिदबिम्ब है, ऐसा आत्मा का भान हुआ तो दूसरे आत्माएँ भी ऐसे हैं। दूसरे देह में विराजमान आत्मा भी देह, वाणी से भिन्न, इस मिट्टी से भिन्न हैं और इन राग-द्वेष से भी पृथक् अन्दर चैतन्य आनन्द है। किसे ठगूँ और किसे नहीं ठगूँ? ऐसा कुछ उसमें नहीं रहता। आहा...हा...! कौन वंचना या मायाचार करे? किसके साथ मायाचार करे? सब भगवान आत्मा चैतन्य ज्योत प्रभु आत्मा है, आनन्द की मूर्ति वह आत्मा है। विकार और शरीर, वह आत्मा नहीं है – ऐसा जिसने आत्मा को जाना, वह किसे ठगे? किसके साथ माया करे? सब भगवान दिखे, उसमें माया किसके साथ करे? – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु...! यह योगसार है। चैतन्यभगवान ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु है – ऐसा जहाँ योग अर्थात् अपने भाव का जुड़ान जहाँ स्वभाव के साथ हुआ, अब वह दूसरे के साथ मायाचार, वंचना करने का कहाँ रहा? समझ में आया? इस आत्मा को जानता नहीं था, तब तक वह मायाचार करता था। किसी दोष को छुपाना, इसे ऐसा बताऊँ, इसे यह बताऊँ, यह तो आत्मा को जानता नहीं था कि आत्मा ऐसा है ही नहीं। राग, द्वेष और माया, कपट यह माया आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। इस आत्मा को जानने पर कौन मायाचार करे?

कौन किसके साथ मैत्री और कलह करे? शत्रु... शत्रु... ओ...हो...हो...! यह आत्मा, देह के रजकणों से भिन्न और पुण्य-पाप के राग से भिन्न है – ऐसा जहाँ ज्ञानस्वरूपी आत्मा का भान हुआ, वह किसके साथ मैत्री करे? सब परमात्मा हैं, मैत्री किसके साथ करना? कहो, प्रवीणभाई! किसका भजन करना? – ऐसा कहते हैं। यह भजन करनेवाला आत्मा जगा, चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, आनन्द का कन्द, वह अतीन्द्रिय आनन्द के मनके अन्दर फिराता है। आहा...हा...! समझ में आया? देह से, यह रजकण, मिट्टी, धूल, राग, मलिनता

है। निर्मलानन्द प्रभु आत्मा, वह मैं हूँ – ऐसा जहाँ अन्दर में भासित हुआ, उसे तो निर्मल ज्ञान और आनन्द के मनके पर्याय में फिरते हैं। किसे फेरना? कौन सी माला इसे गिननी? किसकी माला गिननी? आहा...हा...! किसके साथ मैत्री करना? समझ में आया? किसके साथ क्लेश करना?

**कलहु** अर्थात् शत्रुता। किसके साथ क्लेश करे? भगवान आत्मा शान्त-आनन्द ज्ञानमूर्ति को आत्मा कहते हैं – ऐसा शान्तस्वभाव जहाँ ज्ञात हुआ, (वहाँ) किसके साथ क्लेश (करे)? स्वयं के साथ क्लेश नहीं, स्वयं में क्लेश नहीं, पर के साथ कहाँ क्लेश करे? पर-आत्मा में क्लेश देखता नहीं। पर के आत्मा में क्लेश है नहीं, वे तो क्लेशरहित आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया? किसके साथ क्लेश करे?

**‘जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ’** वजन यहाँ है, हाँ! **जहाँ कहीं देखो, वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होता है।** इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि समस्त आत्माएँ एक ही हैं – ऐसा यहाँ नहीं कहना है। जहाँ देखो उसकी दृष्टि में से राग-द्वेष और शरीर से उठ गयी है, राग-द्वेष के भाव से, शरीर से उठकर (मैं) आत्मा ज्ञान हूँ – ऐसी हो गयी है; इसलिए ऐसा ही आत्मा जैसे अपने को देखता है – ऐसे दूसरे आत्मा को भी ऐसा देखता है। आत्मा दूसरे का है – ऐसा देखता है। रागादि, शरीरादि तो अजीव में जाते हैं। समझ में आया?

पहले जीव-अजीव का भेद कहा, फिर केवलज्ञानस्वभावी जीव कहा – ऐसा जाना उसे दूसरे के साथ कलह करना कहाँ रहा? दूसरे का पूजन करना कहाँ रहा? स्वयं ही पूजने योग्य – ऐसा आत्मा अपने ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसे दूसरे के साथ क्लेश, शत्रुता या पूजन – यह कुछ नहीं रहता। आहा...हा...! समझ में आया?

**‘जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ’** जहाँ-जहाँ देखो वहाँ भगवान आत्मा (दिखता है)। आहा...हा...! धर्मी जीव अपने आत्मा को विकार और शरीर के संयोगरहित देखता है तो जैसी दृष्टि से स्वयं को देखता है, वैसी ही दृष्टि से दूसरे आत्माओं को देखता है। समझ में आया? दूसरे का आत्मा, यह रागवाला आत्मा देखे? राग तो विकार है। शरीरवाला आत्मा देखेगा? शरीर तो अजीव है। समझ में आया? दूसरे के आत्मा को भी, आत्मदृष्टि से स्वयं को जैसा देखा-राग और विकाररहित, शरीररहित वह आत्मा – ऐसा जहाँ भान हुआ, ऐसी दृष्टि दूसरे आत्मा को भी आत्मा, आत्मा देखता है। जहाँ देखता है वहाँ आत्मा की पर्याय अपने (जैसी) देखता है। दूसरे प्रकार से ऐसा है। सूक्ष्म बात रखी है।

‘जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ’ इसका अर्थ क्या? आत्मा दूसरा है – ऐसा देखता है। यह परमाणु आदि को देखे तो भी उसमें ज्ञान देखता है कि मैं इन्हें जाननेवाला हूँ, यह तो जड़ हैं। समझ में आया? रागादि को जानता है तो जाननेवाला तो ज्ञान है, उस ज्ञान को जानता है। शरीर को जानते हुए ज्ञान है, उस ज्ञान को ज्ञान जानता है अर्थात् आत्मा ही जहाँ हो, वहाँ ज्ञात होता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अपनी मौजूदगी में तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है – ऐसा जाना तो दूसरे की मौजूदगी को देखने पर भी उसका ज्ञान ही स्वयं का उसमें होता है, उस ज्ञान को ही स्वयं देखता है। इसलिए जहाँ देखो वहाँ आत्मा, आत्मा और आत्मा.... यह स्वयं का आत्मा का ज्ञान ही देखता है। अद्भुत बात, भाई! ऐसा यह धर्म किस प्रकार का? इसने कभी सुना नहीं है।

अनन्त काल में भटक-भटक कर मर गया। चौरासी के अवतार में भुक्का (निकल) गया। अनादि का आत्मा कहाँ नया है? आत्मा कहीं नया होता है? अनादि का है परन्तु अनादि का वह स्वयं कौन तत्त्व है, उसका ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान, चैतन्यज्ञान है – ऐसा कभी जाना नहीं। यह तो राग वह मैं, शरीर की क्रिया वह मैं, मैं पर का कुछ कर दूँ, पर से मुझमें कुछ होवे वह मैं, यह सब आत्मा को अनात्मा के रूप में माना है। समझ में आया?

कोई अमुकभाई नहीं, सब आत्मा है – ऐसा जानें। उस समय जाननेवाले का ज्ञान जाननेवाले के ज्ञानरूप ज्ञातारूप से परिणमता है, उसे जाने ऐसे निश्चय की बात यहाँ की है। वह जैसा है – ऐसा जाने। समझ में आया? उसकी पर्याय भी जैसी है, ऐसी जानें परन्तु उस पर्याय का ज्ञान होने पर ज्ञान स्वयं का होता है न? सामनेवाले के दोष का ज्ञान हुआ परन्तु वह ज्ञान हुआ न? उसमें ज्ञान हुआ (वह) तो स्वयं में हुआ है और स्वयं का ज्ञान हुआ है, दोष का ज्ञान नहीं। समझ में आया? दूसरे के आत्मा, जड़ को देखनेवाले की मुख्यता में ज्ञान न हो तो यह है, ऐसा निर्णय किसने किया? यह तो स्वयं जानता है, यह तो स्वयं जानता है। जहाँ हो वहाँ मेरा ज्ञान, जहाँ हो वहाँ मेरा ज्ञान। हैं? स्वयं का ज्ञान दिखता है – ऐसा कहते हैं।

मेरा ज्ञान आया था या नहीं? वह पुस्तक नहीं, नहीं? मेरा ज्ञान कहा था न? हैं? अभी रख दी लगती है। सेठिया का है न? मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान, वहाँ कहा है न? हैं? लड़का मर गया, लड़के का लड़का (मर गया).... मुर्दा पड़ा था, उसकी माँ को कहे, क्या

है ? मैं गायन बनाऊँ वह बोल.... रोने का क्या ? इसमें किसका रोना लगे ? रोनेवाला नहीं रे रहनेवाला रे..... रोनेवाला रहनेवाला नहीं है ! किसकी लगाना इसमें ? समझ में आया ? 'सेठिया' है, हाँ ! सरदारशहर का गृहस्थ व्यक्ति है । अन्तर अरहन्त ध्याये, सम्यक्सूर्य उगसे जी.... मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... यह बहिर्नें रोवे तब कहे न ? मेरा पेट... मेरा पेट... । अब पेट रख न, पेट कब तेरा था ? लड़का मर जाये तो कहे मेरा पेट.... मेरा (पेट) । ऐसा, स्त्रियाँ बोलती हैं । बोलती हैं – ऐसा थोड़ा-थोड़ा सुना है । ऐसी उनकी मथने की सब रीति होती है, मूढ़ की ।

यहाँ कहते हैं कि परन्तु 'गुणी जन सम्यक् सिद्ध प्रभु नित ध्याये, चैतन्य सूर्य उगसे जी, म्हारा ज्ञान....' मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... रतनलालजी ! दीपचन्द सेठिया है न ? दीपचन्द सेठिया, सरदारशहर का । पूरे दिन उनके घर में ऐसी ही बातें करते हैं । गृहस्थ व्यक्ति है, पाँच-सात लाख रुपये । गृहस्थ व्यक्ति.... बस ! यह सबको (कहे) मर गया लड़का, लड़के का लड़का... घर में मुर्दा पड़ा है, बड़ी बिल्डिंग है, पैसावाला है, लड़के की बहू से कहे क्या करना है ? रोना है ? नहीं, बापूजी ! आप कहो, फिर गीत बनाया । मुर्दे के पास यह गीत बोले.... फिर सगे-सम्बन्धी सभी लोग आये सभी साथ में गीत बोलने लगे.... रोना किसका ? इसमें किसका रोना ? समझ में आया ? यह गीत उस दिन वहाँ बोले थे, हाँ ! हैं ?

'गुणीजन अर्थ ग्राही उपयोग, गुणीजन.....' पदार्थ जो है, उसे जाननेवाला मेरा उपयोग है, मेरा आत्मा अर्थ / वस्तु जो है, उसे जाननेवाला मेरा उपयोग है । मेरी चीज ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसे ग्रहण करनेवाला मेरा उपयोग है । 'चैतन्य निज प्राण छे जी....' समझ में आया ? 'गुणीजन ज्ञायक ज्योत जगाय, देखो तो शान्ति जीव में, जी' किसकी लगायी इसमें ? ए... मोहनभाई ! तीन-तीन वर्ष का लड़का मर गया । वे गृहस्थ लोग इसलिए छोड़ो रोना ! किसका रोना-धोना ? वह तो आत्मा है, अब यहाँ से चला गया, इतने दिन यहाँ शरीर में रहा । अब अन्यत्र गया ? वहाँ कहाँ आत्मा नष्ट हो ऐसा है । आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह धर्मी के जीवन में क्षण-क्षण में वैराग्य होता है, ऐसा कहते हैं । आहा...हा... ! ऐसे प्रसंग में हो, परिवार में हो फिर भी मेरा ज्ञान... मेरा ज्ञान... उस क्षण मैं तो जानने-देखनेवाला वह मेरा ज्ञान, बाकी तो वह (पुत्र) मेरा नहीं, राग मेरा नहीं, कोई मेरा नहीं ।

समझ में आया ? सही समय पर काम आये या नहीं ? बातें करे ( काम न आवे ) परन्तु जब मरण हो घर में बीस वर्ष का ( लड़का ) मर गया हो, फिर पता पड़े.... हैं ? अरे ! भाई मर गया, कौन मर जाता है ? आत्मा मरता होगा ? शरीर मरता होगा ? यह तो मिट्टी है, यह तो पर्याय-अवस्था बदली दूसरी हो गयी, राख की हो गयी । यहाँ थी ( अब ) राख की हो गयी । मरे कौन ?

आत्मा त्रिकाली सनातन शुद्ध चैतन्य है, उसके भान में कहते हैं । देखो ! समझ में आया ? देखो ! यह अन्तिम आया ' गुणीजन जड़सुख छे जी जंजाल ' यह कल्पना की है कि इसमें सुख है और इस लड़के में सुख है, पैसे में सुख है; धूल है मूढ़ ! ' गुणीजन जड़ सुख छे जी जंजाल, आनन्दघन आप छे जी ' मैं आनन्दघन आत्मा हूँ, आनन्द का धारक आत्मा । यह सही समय पर इसकी कसौटी होती है । निहालभाई ! यह बीस वर्ष का मर जाये और स्त्री छोड़कर बैठ जाये, और दूसरे रोने लगें.... हाय...हाय... ! क्या है परन्तु ? किसकी लगा रखी है ? श्मशान है यहाँ ? यहाँ तो आत्मा है । आहा...हा... !

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति है – ऐसा जहाँ अन्तरभान हुआ, कहते हैं कि वह सर्वत्र ज्ञान ही देखता है । ज्ञान अर्थात् यहाँ आत्मा । समझ में आया ? आहा...हा... ! एक अद्वैत आत्मा का ही अनुभव आ रहा है, अनुभव के समय में तो अपने में ही लीन होता है । अनुभव के काल में हमें जाननेवाला देख – ऐसा कहते हैं । अनुभव की माता भावना है । ऐसा कहकर बहुत लम्बा किया है, दृष्टान्त दिया है, जरा ! ठीक कहा है । जैसे कोई खेत में जाये.... यह चने पकते हैं या नहीं ? चने... खेत में चने पकते हैं न ? चने, उसकी नजर चने पर होती है, कितने चने हुए ? ऐसी ( नजर ) होती है । पत्तों और जड़ पर नहीं होती । खेत होवे न दो-पाँच ? उसकी नजर वहाँ ( चने पर होती है ) । यहाँ तो चना क्यों लिया है ? चना खाने में तुरन्त ही मिठास लगती है न ? कच्चा भी अच्छा लगता है और पका भी अच्छा लगता है । वह चना देखने जाये और वे गुच्छे हुए हों न ? उस चने पर उसकी नजर होती है, उन पत्तों पर नहीं । कितने पके हैं ? चने कितने हुए हैं ? पूरे खेत में फिरे तो चने पर नजर ( होती है ) । फल अच्छा आया है चने का फल अच्छा आया है – ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? वह डाली पत्ते, मूल को नहीं देखता और कहता है कि इस खेत में से पाँच मण चना निकलेगा । ऐसा कहे, लो ! इस एक बीघा में पाँच मण चना ( निकलेगा ), चना आयेगा, ऐसा कहते हैं । पत्तियाँ आयेंगी – ऐसा वह कहता है ?

दूसरा दृष्टान्त दिया है, सोने में मणि जड़ी हुई हो । स्वर्ण में मणि जड़ी होती है न ?

जब झवेरी के पास बेचने ले जाओ तब वह केवल मणियों को देखता है... ऊँचा झवेरी अन्दर मणि-मणि देखता है। सोना किसलिए (देखे) ? उसे तो मणि लेना है। मणि, मणि, मणि.... मणि स्वर्ण पर नजर नहीं और स्वर्णवाले के पास जाओ तो मणि नहीं देखता। वह सोना-सोना देखता है, बात सत्य है। समझ में आया ? आहा...हा... !

इसी प्रकार भगवान आत्मा जहाँ देखो वहाँ मैं जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला.... मेरे जानने में ज्ञान का फल जानने का आया है, उसे वह देखता है। समझ में आया ? दृष्टान्त ठीक किया है। इन लोगों का कुछ चलता होगा, चना... चना... चना... देखे, मीठे सरस लगते हैं। चने पर नजर है, वह चने देखता है। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है – ऐसी जिसे आत्मा की श्रद्धा और भान हुआ है, वह जहाँ हो वहाँ आत्मा का ही पाक देखता है। मैं जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला, जानने-देखनेवाला.... दूसरा मुझमें है नहीं, मैंने दूसरा जाना-देखा नहीं, मैं ही मुझे जानने-देखनेवाला हूँ। कहो, समझ में आया ? यह सब (लिया है)। व्यवहार निश्चय की अपेक्षा से असत्य है।

किसके साथ मैत्री और किसके साथ (क्लेश) करना ? समझ में आया ? एक दृष्टान्त सर्वार्थसिद्धि में दिया है, वह जरा ठीक लगता है। सामायिक का, यह आत्मा की सामायिक किसे कहें कि –

एकत्वेन प्रथमं गमनं समयः, समय एव सामयिकं,  
समय प्रवर्तानमस्येति वापिगृह्य सामायिकं ॥ अ. ७, सूत्र २१ ॥

आत्मा के साथ एकमेक हो जाना, आत्मामय हो जाना, वह सामायिक है। यह सामायिक लेकर बैठते हैं न ? वह सामायिक कहाँ है ? आत्मा का भान तो कुछ है नहीं, सामायिक करके बैठे, किसकी ? धूल की सामायिक ? जिसने आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप को देखा, जाना है, वह ज्ञान में लीन हो जाता है, उसे सामायिक कहते हैं। कहो, समझ में आया ? सामायिक – सम-समतास्वरूप चैतन्य ज्ञान में ज्ञान की लहर में, लहर में लीन हो गया, जो समतास्वरूप कायम है, उसके अन्दर में वर्तमान पर्याय से समता में लीन हो गया, उसे सामायिक कहते हैं। समझ में आया ? बहुत से यह सामायिक करते हैं या नहीं ? हम सामायिक करते हैं ! ऐ...शोभाचन्दजी ! यह सब करते हैं, यह सब प्रतिमाधारी नाम धराकर सामायिक करते हैं, सबेरे-दोपहर सामायिक करते हैं। किसकी सामायिक ? आत्मा जाने

बिना कहाँ से होगी ? पहले आत्मा ही कौन है, इसकी खबर बिना एकाग्र किसमें होगा ? यह सब ऐसे के ऐसे.... आहा...हा... !

**मुमुक्षु** – हिले-चले बिना स्थिर रहते हैं।

**उत्तर** – हिले-चले कौन ? शरीर नहीं चले, उसमें इसके बाप का क्या हुआ ? आत्मा अन्दर हलचल करता है। खलबलाहट... पुण्य-पाप के विकल्प उठाकर मेरे हैं, और उस पर दृष्टि पड़ी है, वह सब खलबलाहट हो रहा है। णमोकार गिनता हो या भगवान के भजन का विकल्प उठता हो, वह विकल्प मेरा है (ऐसी) दृष्टि वहाँ पड़ी है। वस्तु ऐसी भिन्न है, उसका तो भान नहीं... भान नहीं और विकल्प पर दृष्टि है तो वह सामायिक में है या मिथ्यात्व में है ? मिथ्यात्व ही है। ऐ.... भगवानभाई !

**श्रोता** – नये व्यक्ति हैं।

**उत्तर** – आ गये न अब, पकड़ में आ गये अब।

आत्मा कैसा है ? आत्मा कौन है ? यह जाने बिना, उसके साथ एकमेक कौन होगा ? ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न ? सामायिक की व्याख्या की न ? सर्वार्थसिद्धि, हाँ ! पूज्यपादस्वामी... आहा...हा... ! आत्मा के साथ एकमेक हो जाना, आत्मामय हो जाना, वह सामायिक है। आत्मा पहले सम्यग्ज्ञान में, दर्शन में भासित हुए बिना एकमेक होना कहाँ से होगा ? यह तो देह की क्रिया मैं करता हूँ, ऐसा बैठा तो (मानता है कि) मैं बैठा.... कुछ राग होवे तो यह मेरा आत्मा है – ऐसा तो यह मानता है। अनात्मा को आत्मा मानता है तो स्थिर किसमें होगा ? (अनात्मा में) एकाग्र हुआ। आत्मा रागरहित और शरीररहित चीज है, उसका ज्ञान हो, वह उसमें स्थिर हो, उसे सामायिक कहते हैं। यह ४० (गाथा पूर्ण) हुई।

अनात्मज्ञानी कुतीर्थों में भ्रमता है। कुतीर्थ शब्द का प्रयोग किया है। फिर दूसरा प्रयोग करेंगे।

ताम कुतित्थिँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ।

गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ ॥४१ ॥

गुरु महाराज की कृपा से जब तक एक अपने आत्मारूपी देव को नहीं पहचानता.... भगवान आत्मा, देह-देवल में आत्मा स्वयं सच्चिदानन्ददेव है। ये हड्डियाँ और चमड़ी मिट्टी और धूल है। भगवान आत्मा अन्दर देह-देवल में विराजमान है। अपने देव के स्वरूप को



न जाने, तब तक मिथ्या तीर्थों में भटकता है। यह शब्द प्रयोग किया है न? ताम कुतिथिइ शब्द प्रयोग किया है पहला भाई! कुतीर्थ शब्द प्रयोग किया है, हाँ! फिर उसमें लेंगे। फिर इस देव को लेंगे। बाहर कहाँ तेरा भगवान है? यह बाद में (लेंगे) परन्तु पहले तो कुतीर्थ (लेंगे)। जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है, आत्मा देवस्वरूप है, उसका जहाँ भान नहीं है, वह जहाँ-तहाँ भटका करता है। नदी, सागर में स्नान करता है। है न? नदी और सागर में स्नान करने जाता है। वहाँ स्नान करने से कल्याण (होता है)? वहाँ बहुत मछलियाँ स्नान करती हैं। समझ में आया? वहाँ नहाने जाओ, वहाँ अपना कल्याण होगा। शत्रुंजय में नहाने जाओ, कल्याण होगा.... धूल में (नहीं होगा)। वहाँ तो बहुत मछलियाँ नहाती हैं, वहाँ नहाने से कल्याण होता होगा? जहाँ-तहाँ कुतीर्थ में रेत और पत्थर के ढेर करने से.... पत्थर लगाते हैं न? दो-दो, तीन-तीन, देवी-देवता और पर्वत से गिरने से, अग्नि में जलकर मरने से भला होगा.... ऐसा मानते हैं न?

अभी किसी ने कहा कि एक व्यक्ति मरा है। शंकर के पास सिर दिया है, हाँ! राज्य लेने के लिए, मर गया, ऐसे का ऐसा मूढ़ जीव। धूल में भी वहाँ राज्य नहीं मिलता। ऐसे कुतीर्थ में आत्मा के देव को जाने बिना पाप है, पुण्यलाभ नहीं। लोक मूढ़ता है। यह लोक मूढ़ता है। समझ में आया?

जब तक यह जीव अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, संसार में आसक्त है, तब तक इसे इन्द्रियों के इष्ट विषयों की प्राप्ति की कामना रहती है और उसके बाधक कारण मिटाने की लालसा रहती है। ऐसा कहते हैं। मिथ्यामार्ग के उपदेशकों द्वारा जिस किसी की पूजा-भक्ति से और जहाँ-तहाँ जाने से विषयों की प्राप्ति में मदद होना जानते हैं, उसकी भक्ति पूजा करते हैं। देखो न! कुतीर्थ में कर्ता है या नहीं? यहाँ तो भगवान के नाम से करता है, अभी तो। मिथ्यादेवों की मिथ्या गुरुओं की, मिथ्या धर्मों की और मिथ्या तीर्थों की बहुत भक्ति करता है। नदी, सागर में स्नान करे, इस्लाम माने। खेल-तमाशा में विषय का पोषण करके धर्म मान लेता है। यह मूढ़ता है, कहते हैं। समझ में आया? इत्यादि बात करते हैं। लो!

आत्मानुभव को ही निश्चय धर्म मानना, सम्यग्दर्शन है। भगवान आत्मा को शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनुभव करना, वह आत्मदेव और उसका नाम सम्यग्दर्शन है, वह देव की पूजा है। कुतीर्थ में जहाँ-तहाँ भटकने से कुछ मिले ऐसा नहीं है। गंगा में स्नान करेंगे तो मैल जाएगा.... शरीर का मैल जाएगा, आत्मा का मैल नहीं जाएगा। तुम्बी, तुम्बी का दृष्टान्त

नहीं आता ? कड़वी तुम्बी साथ में ले जाना, उसने कहा। आता है न ? तीर्थयात्रा को निकले थे, तो साथ में कड़वी तुम्बी दी, इसे भी साथ में स्नान कराना, कराते-कराते सबमें नहाये और तुम्बी को स्नान कराकर आये, तीर्थ की हुई तुम्बी लाओ, काटो, टुकड़े करो.... (टुकड़े होने के बाद कहा) कड़वी है.... इतना-इतना स्नान किया (तो भी) तुम्बी की कड़वाहट तो मिटी नहीं और तुम इतने-इतने तीर्थ करने गये और आत्मा के भान बिना तुम्हारी कड़वाहट तो मिटी हुई दिखती नहीं। तीर्थ कर-करके यह सब भ्रम दिखता है। ऐसा दृष्टान्त आता है। तुम्बी को सब तीर्थ कराये परन्तु तुम्बी तो कड़वी रही। ऊपर से मैल निकला, अन्दर तो कड़वाहट रही। इसी प्रकार बाहर से स्नान करे, जहाँ-तहाँ गिरे परन्तु भगवान आनन्द शुद्ध आनन्दकन्द है – ऐसा न मानकर उसे दया, दान के विकल्प से लाभ होता है और इस पर से मुझे लाभ होता है, मुझे लाभ मिलता है, और इससे कुछ प्रतिकूलता टलती है, सन्तानहीनता मिटती है, पुत्रादि होते हैं और पैसा मिलता है, यह सब भ्रम तो पड़े हैं। भ्रम का जहर तो तेरा उतरा नहीं, तूने किसका तीर्थ किया ? समझ में आया ? यह तो फिर व्यवहार की क्रिया है, वह निमित्तरूप है – ऐसा कहेंगे।

निज शरीर ही निश्चय से तीर्थ व मन्दिर है। अब यह अन्दर का आया।

तिथ्यिँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु।

देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु ॥४२ ॥

श्रुतकेवली भगवान, जिस ज्ञान में पूर्ण सर्वज्ञ आदि अथवा श्रुतकेवलियों ने तीर्थक्षेत्रों में और देवमन्दिर में परमात्मादेव नहीं..... ऐसा कहा है परन्तु णिरुत्तु हाँ! णिरुत्तु अर्थात् निश्चय से। समझ में आया ? श्रुतकेवली और भगवान, सन्तों ने बाहर देवालय में देव नहीं है, परमात्मा वहाँ नहीं है (– ऐसा कहा है)। निश्चय से परमात्मा नहीं। निश्चय से परमात्मा देह-देवल में तेरा आत्मा विराजमान है। समझ में आया ?

निश्चय से ऐसा जान.... देखा ? निश्चय से है न पाठ ? णिरुत्तु ऐसा जान, ऐसा। 'देहादेवलि जिणु देउ' शरीररूपी देवालय में जिनदेव है। भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप विराजमान आत्मा है, उसे तू पहचान और उसकी पूजा कर, यह देव की पूजा है। समझ में आया ? उन कुतीर्थों को लेकर अब यहाँ थोड़ा बाहर का डाला है। वहीं का वहीं भटका करे, सम्पेदशिखर और वह यहाँ है न, शत्रुंजय, वहाँ मानो भगवान है। वहाँ तो भगवान की स्थापना है। वास्तविक भगवान भी वहाँ नहीं, वे पर भगवान परन्तु वास्तविक वहाँ नहीं,

ऐसा कहते हैं। क्या कहा? जो भगवान की स्थापना की है, वे वास्तविक भगवान भी वहाँ नहीं। वास्तविक भगवान तो समवसरण में विराजमान तीर्थकररूप से वे वास्तविक भगवान हैं और वहाँ तो उन्हें देखेगा तो शरीर और वाणी तुझे अकेले दिखेंगे, भगवान नहीं दिखेंगे; उनका आत्मा नहीं दिखेगा। वह आत्मा कब दिखता है? कि तू तेरा देखेगा तो उनका आत्मा तुझे ज्ञात होगा। उनके आत्मा का ज्ञान कब होता है कि यह भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर हैं? इस रागरहित तेरे आत्मा का ध्यान तू करे तब यह भगवान है – ऐसा तुझे ख्याल में आयेगा नहीं तो शरीर, वाणी दिखेंगे, समवसरण दिखेगा, लोग दिखेंगे, इन्द्र दिखेंगे आहा...हा...! मानो ऊपर से आये गंगाधर और विद्याधर.... समझ में आया? साक्षात् परमात्मा विराजते हों तो वहाँ तुझे क्या दिखेगा? परमात्मा, उनका आत्मा दिखेगा? उनका आत्मा कब दिखेगा? कि तू स्वयं जब उसे राग की आँख छोड़कर, पर को देखना छोड़कर और स्व को देखने जाये, तब तेरा आत्मा ज्ञात होगा (और तब) परमात्मा ऐसे होते हैं (ऐसा ज्ञात होगा)। समझ में आया?

**शरीररूपी देवालय में जिनदेव है।** बाहर में तो व्यवहार है। शुभभाव, पूजा, भक्ति का शुभभाव व्यवहार है परन्तु परमार्थ से वहाँ देव है (ऐसा नहीं)। तेरा वह नहीं और परमार्थ से भगवान विराजते हैं, जो आत्मा, वह आत्मा यहाँ नहीं, वह तो स्थापना निक्षेप है और स्थापना निक्षेप में भी, स्थापना में भी भगवान के गुण गाते हैं न? या मूर्ति के गुण गाते हैं? भगवान ऐसे, तुम भगवान ऐसे, तुम भगवान ऐसे, तुम भगवान ऐसे.... परन्तु इस आत्मा की दृष्टि होवे तो उसे ऐसे शुभभाव के भाव को व्यवहार कहा जाता है परन्तु जिसे आत्मदृष्टि नहीं और अकेला वहीं देखता है, उसे कहते हैं कि आत्मा देव यहाँ है, वहाँ बाहर में कहीं नहीं है। अपने देव को छोड़कर दूसरे देव को पूजने जाये, वह पूजन सच्ची नहीं होती। समझ में आया? इसकी विशेष व्याख्या करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३

श्री परमात्मप्रकाश, गाथा - ५७-५८, प्रवचन - ३७

दिनांक - १७-०७-१९७६

परमात्मप्रकाश गाथा ५७। द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या।

**भावार्थ :-** जो द्रव्य होता है, वह गुणपर्यायकर सहित होता है। कोई भी चीज़ है, (वह) उसके गुण और पर्यायसहित ही होती है। लो! प्रत्येक द्रव्य उसके गुण, पर्यायसहित ही होता है। दूसरा उसकी पर्याय किस प्रकार करे? प्रत्येक क्षण की बात है न? प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायसहित है। प्रत्येक समय। इससे दूसरा पदार्थ उसकी पर्याय को (ऐसा है नहीं)। है (पर्याय) सहित उसे दूसरा क्या करे?

**मुमुक्षु :** अनन्त शक्ति उसमें होती है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनन्त शक्ति किसमें? अपने में या पर के कारण? यह कलश में आया है। ऐसी एक शक्ति लो कि पर का कर सके। अन्दर कलश में है। ऐसी शक्ति है ही नहीं। आहाहा!

पहला सिद्धान्त यह। प्रत्येक द्रव्य गुणपर्यायकर सहित होता है। आहाहा! प्रत्येक समय में वह-वह द्रव्य अपने गुण, पर्यायसहित है। आहाहा! इतना सिद्धान्त है। उसे दूसरा द्रव्य आवे तो पर्याय हो (ऐसा नहीं है)। गुण, पर्यायसहित तो है। आहाहा! दो कारण कहे हैं न? वह तो दूसरा कारण तो उपचारिक जानने के लिये कहा है। वास्तविक तो प्रत्येक पदार्थ-प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण वर्तमान अपने गुण और कार्यसहित है। पर्याय अर्थात् कार्य। समझ में आया? प्रत्येक द्रव्य गुण और कार्यसहित है। पर्यायसहित कहो या कार्यसहित कहो। तो उसके कार्य के लिये दूसरे द्रव्य की आवश्यकता है, ऐसा उसमें है नहीं। आहाहा! एक बात।

यही कथन तत्त्वार्थसूत्र में कहा है, 'गुणपर्यायवद्द्रव्यं'। देखा? गुण और पर्यायवाला वह द्रव्य। उसके गुण और पर्यायवाला द्रव्य। आहाहा! ऐसे सिद्धान्त हैं न! अब गुणपर्याय का स्वरूप कहते हैं.... 'सहभुवो गुणाः क्रमभुवः पर्यायाः' यह नयचक्र ग्रन्थ का कथन है,

अथवा 'अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायाः' व्यतिरेक (अर्थात्) भिन्न हो वह पर्याय। इनका अर्थ ऐसा है कि गुण तो सदा द्रव्य से सहभावी हैं,.... यह व्याख्या बराबर नहीं। गुण को जो सहभावी कहा है, वह द्रव्य के साथ है, इसलिए सहभावी कहा है, ऐसा नहीं। क्योंकि द्रव्य के साथ गुण भी है और द्रव्य के साथ पर्याय भी है। इसलिए द्रव्य के साथ गुण रहे, तो उसे सहभावी कहना, तो यह अतिव्याप्ति दोष हो जाता है। क्योंकि पर्याय भी साथ (रहती है)। पंचाध्यायी में है। पंचाध्यायी में। भाई! यह बात पहले हो गयी है।

द्रव्य से सहभावी हैं, द्रव्य में हमेशा एकरूप नित्य पाये जाते हैं,.... ऐसी व्याख्या नहीं है। गुण उसे कहते हैं प्रत्येक गुण सहभावी-साथ में गुण होता है। क्या कहा? चन्दुभाई! द्रव्य के साथ हो, ऐसा नहीं। गुण प्रत्येक साथ में ही होता है। पर्याय साथ में नहीं होती, क्रमसर (होती है)। ऐसी इसकी व्याख्या है।

**मुमुक्षु :** ....गुण के साथ लागू होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गुण के साथ गुण है। द्रव्य के साथ गुण है, इसलिए सहभावी—ऐसा नहीं। सहभावी गुण कहा है। गुण, गुण के साथ एकसाथ होते हैं। उसका अर्थ यह है कि वस्तु है, उसमें गुण जो है, वह प्रत्येक गुण ऐसे साथ में है। एकसाथ। गुण, गुण के साथ सहभावी है। गुण, द्रव्य के साथ सहभावी है—ऐसा नहीं। समझ में आया? समझ में आया?

**मुमुक्षु :** सब समान लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या लगता है समान? पूरब-पश्चिम का अन्तर (पड़ता है)। द्रव्य के साथ रहे तो गुण कहो तो पर्याय भी द्रव्य के साथ रहती है। उसका लक्षण यथार्थ नहीं हुआ। यहाँ तो ऐसी बात है। वाणियावाड नहीं यहाँ। आहाहा! द्रव्य के साथ गुण रहे, इसलिए सहभावी। तो द्रव्य के साथ पर्याय भी सदा रहती है। यह लक्षण अतिव्याप्ति हो गया। यह वास्तविक लक्षण नहीं हुआ। धन्नलालजी! यह बात पंचाध्यायी में ली है। यह तो उस दिन पढ़ा तब (कहा था)।

'सहभुवो' का अर्थ यह नहीं। गुण, द्रव्य के साथ रहते हैं, इसलिए 'सहभुवो', ऐसा नहीं है। गुण, गुण के साथ रहते हैं; इसलिए 'सहभुवो'। आहाहा! लक्षण और स्वरूप ऐसा होना चाहिए न कि जिसमें समुचितपना खड़ा हो, यथार्थरूप से। आहाहा!

**मुमुक्षु :** गुण, गुण के साथ रहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गुण, गुण के साथ (रहते हैं)। और इसलिए... देखो!

‘सहभुवो गुणाः’ है ? ‘क्रमभुवः पर्यायाः’ अर्थात् पर्याय सब एकसाथ नहीं होती। क्रमसर पर्याय होती है। गुण एकसाथ होते हैं। गुण, गुण एकसाथ होते हैं। पर्याय एकसाथ नहीं होती, क्रमभावी (होती है)। आहाहा! समझमें आया? यह वीतरागदर्शन का द्रव्यानुयोग तत्त्व इस प्रकार से है। दूसरे प्रकार से माने तो वस्तु की स्थिति पलट जाती है। द्रव्य में गुण जो है, वह एकसाथ ऐसे गुण का विस्तार है। गुण, गुण के साथ एकसाथ है। इसलिए उन्हें सहभावी कहा है। गुण, द्रव्य के साथ है; इसलिए सहभावी कहा है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? और पर्याय को क्रमभावी कहा है। वह ऐसे जब गुण एकसाथ है, पर्याय एकसाथ नहीं। क्रमसर, क्रमभावी, क्रमबद्ध है। ऐसा है। उसकी मश्करी करती हैं।

ललितपुर में हुआ न? मारा है। ऐसा कि, क्रमबद्ध होनेवाला कानजीस्वामी का मत है तो क्रमबद्ध है, ऐसा मान लेना, उसकी टीका करना नहीं। अरेरे! ऐसा अखबार में आया है। भाई का पत्र बेचारे का आ गया। रमेशभाई, वह जरा कड़क भाषा लिखी थी। स्वाध्यायमन्दिरवाले नपुंसक हैं। कुछ सामने नहीं कहा। यह फिर कल पत्र आया। मेरी भूल हो गयी, मैंने आवेश में लिख दिया। किसी के सामने पड़ना, यह कुछ काम है? सहन कर लेना। माफी आयी है। कल पत्र आया है। मेरी भूल हो गयी। मैंने स्वाध्याय मण्डल को नपुंसक कहा। मारा और सामने कोई मदद में नहीं रहा न! कुछ किया नहीं इसलिए। यह तो किसे कहना? बापू! आहाहा!

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर एक के बाद एक, एक के बाद एक, वह वह होनेवाली, वह-वह होती है। तो क्रमसर कहलाता है। आड़ी-टेढ़ी होती नहीं। आहाहा! पर्याय का ऐसा स्वरूप है और गुण का ऐसा स्वरूप है कि सब एकसाथ रहे। ऐसी द्रव्य के गुण की और द्रव्य के पर्याय की व्याख्या है। आहाहा! यह तो पहले मुद्दे की रकम है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** परन्तु क्रमबद्ध पर्याय तो आपकी ही है न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसकी है? लोग ऐसा कहते हैं। इन्होंने निकाली है न। यहाँ से निकली है न, इसलिए (कहते हैं)। यह तो पहले जब (संवत्) २०१३ में निकले थे, तब बनारस में एक गृहस्थ के यहाँ आहार करने जाते थे। झबेरी है न? कोई गृहस्थ है। उसके यहाँ बड़ी प्रतिमा जवाहरात की थी। चोरी हो गयी और वापस आ गयी। वहाँ आहार करने जाते थे। सब साथ में थे। फूलचन्दजी, कैलाशचन्दजी। कहा, वस्तु क्रमबद्ध है। फूलचन्दजी कहे, यदि क्रमबद्ध न हो तो वैशेषिकमत हो जाता है, इसलिए बराबर है।

यहाँ विद्वत परिषद के समय क्रमबद्ध की बड़ी चर्चा हुई थी। जगनमोहनलालजी कहे, क्रमबद्ध नहीं। क्योंकि वे सब दूसरे तरह से पढ़े हुए न, और लालबहादुर ने तब क्रमबद्ध स्वीकार किया था। तब स्वीकार किया था। है न? तब स्वीकार किया था। अब वापस बादल गया। यथार्थपना बदले? पर्याय बदले। मार्ग तो यह है। यह कहीं किसी के घर का है? सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा ही वस्तु का स्वरूप देखा है, वैसा कहा है। जाना और देखा, वैसा कहा। आहाहा! द्रव्य, गुण, पर्याय की तीन की व्याख्या बराबर समझना चाहिए। तो सब झगड़ा निकल जाये। दूसरे से होता है और इससे होता है और आड़ी-टेढ़ी होती है, यह सब झगड़ा निकल जाये। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** यह किस प्रकार निकल जाये, सब समझाओ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कहते हैं न! द्रव्य है, उसका जिस ज्ञान करना हो तो द्रव्य में जितने गुण है, वे सब एकसाथ रहते हैं। आड़े-टेढ़े नहीं, एक के बाद एक नहीं। कि पहले ज्ञान और फिर दर्शन और फिर (चारित्र... ऐसा नहीं है)। एकसाथ ऐसे हैं, इसलिए उसे सहभावी कहते हैं। पर्याय को क्रमभावी कहते हैं। कोई पर्याय एकसाथ अनन्त नहीं होती। प्रत्येक गुण की पर्याय, ऐसी अनन्त होती है। परन्तु एक गुण की पर्याय एकसाथ दो, तीन, चार साथ में हो ऐसा नहीं होता। क्रमसर होती है। समझ में आया? आहाहा! यह एक व्याख्या समझे तो इससे होता है और इससे नहीं होता और कैसे कहा, इसका स्पष्टीकरण आ जाता है। आहाहा!

कल आया है। दो कारण से, दो सामग्री से द्रव्य का कार्य होता है। परन्तु यह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है, भाई! प्रत्येक समय पर्याय क्रमसर होती है और उसमें निमित्त भी सामने चीज़ होती ही है। होती है, इसलिए हुई है, ऐसा नहीं। यह बड़ा अन्तर। समझ में आया? धर्मास्तिकाय है, इसलिए जीव गति करता है, ऐसा है? तो धर्मास्ति तो त्रिकाल है तो गति त्रिकाल करते ही रहना चाहिए।

**मुमुक्षु :** तब तो गति ही किया करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो गया। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि गति करने के काल में वह क्रमसर में गति होने की पर्याय होती है, तब धर्मास्ति है, उसे निमित्त से, आरोप से कहा जाता है। आहाहा! यह तो वास्तविक तत्त्व की दृष्टि का स्वरूप है। द्रव्य, गुण, पर्याय के ज्ञान में गड़बड़ उठी तो यह सब गड़बड़ उठी है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** हमें द्रव्य, गुण, पर्याय से क्या मतलब है ? धर्म करना है ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धर्म, वह पर्याय है, तो किससे होती है ? द्रव्य, गुण से होती है । उसका इसे निर्णय करना पड़ेगा या नहीं ? धर्म पर्याय है । करना है न इसे ? धर्म करना है न ? तब इसका अर्थ हुआ कि इसकी पर्याय में धर्म नहीं है । पर्याय में नहीं, द्रव्य-गुण में है । यदि इसकी पर्याय में हो तो करना है; यह है, उसे टालना है और नया करना है—ऐसा हो नहीं । आहाहा ! इसलिए जिसे धर्म करना है, यह प्रश्न उठे, वहाँ उसे पर्याय में धर्म होता है, वह पर्याय क्रमवर्ती है । गुण और द्रव्य त्रिकाल है, उसके आश्रय से होता है । आहाहा ! बात तो बहुत सादी है परन्तु अब.... गम्भीर है । आहाहा !

**द्रव्य से सहभावी....** ऐसा नहीं लेना । **द्रव्य से सहभावी....** ऐसा नहीं लेना । द्रव्य में गुण सदा होते हैं, इतना । परन्तु सहभावी जो शब्द है, वह गुण और गुण के साथ सहभावी है । समझ में आया ? अन्तर कहाँ पड़ा है ? द्रव्य के साथ रहे, वह गुण (—ऐसा कहो तो) द्रव्य के साथ पर्याय सदा रहती है । कब पर्याय नहीं ? विशिष्टता तो यह है कि एक समय में ऐसे अक्रम गुण हैं । गुण, गुण के साथ अक्रम कहो या साथ में कहो और पर्याय क्रम है । क्रम है तो ऐसा है । एक के बाद एक, एक के बाद एक.... धारावाही.... छहों द्रव्यों का परिणमन धारावाही चलता है । एक समय भी वहाँ विश्राम नहीं । आहाहा ! यह परिणति अपने से होती है । इसलिए प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि उसकी उत्पत्ति का वह काल है । पर्याय की उत्पत्ति का वह क्षण है । इसलिए उत्पत्ति हुई है । अमरचन्दभाई ! निमित्त आया, इसलिए हुई है (—ऐसा नहीं है) । आहाहा !

**मुमुक्षु :** ....समझ जाना चाहिए न !

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या समझे ? यह तो ज्ञान करने के लिये है, परन्तु यह आया तो होता है, इसलिए यह नहीं है । समझ में आया ? निमित्त में भी उसके क्रमसर पर्याय होती है या नहीं उसे भी ? उसका भी उपादान है या नहीं ? वह तो इसकी अपेक्षा से निमित्त है । निमित्त-उपादान की पर्याय भी क्रमसर उसमें होती है । आहाहा ! भगवान आत्मा अपने स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उस क्षण में पर्याय होनेवाली वह हुई । उसका काल वह था । उस समय वहाँ दर्शनमोह का अभाव हुआ, उसका भी क्रमबद्ध में अभाव होने की पर्याय का उसका काल था । आहाहा ! समझ में आया ? गजब मार्ग, भाई ! वीतराग सर्वज्ञदर्शन विश्वदर्शन है । वह विश्वधर्म प्रेरक कहते हैं, ऐसा यह नहीं है । वे



विद्यानन्दजी और वे सुशील (कहते हैं)। विश्वधर्म प्रेरक। विश्वधर्म तो यह जैनधर्म है। वास्तविक स्वरूप है, वह तो जैनधर्म है। आहाहा! जैनधर्म कहो या विश्वधर्म इस प्रकार से। दूसरे कहते हैं और मिलाकर विश्वधर्म है, ऐसा नहीं। आहाहा! जगत की द्रव्य, गुण, पर्याय की स्थिति ऐसी है, यह जैनदर्शन में ही है। समझ में आया? उसकी जिसे स्वीकृति हुई, उसे विश्वदर्शन हुआ। विश्व का पदार्थ जो आत्मा या जड़, उसका यहाँ दर्शन होने पर जड़ इसमें नहीं, यह भी साथ में प्रतीति आ गयी। समझ में आया? आहाहा!

क्रमसर में पर्याय क्रम से हुई, वह पर्याय सम्यग्दर्शन को आधार तो द्रव्य था। वहाँ आश्रय द्रव्य का था। उस द्रव्य में क्रमसर हुई। समझ में आया? ऐसी पर्याय का निर्णय करे, उसकी तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाती है और पर्याय स्वयं से होती है। ऐसी बात है जरा। बात झगड़े से पार पड़े, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं, निश्चय की बात करते हो और व्यवहार के साधन द्वारा निश्चय को सिद्ध करना चाहते हो। अरे रे! यह क्या है? भाई! कोई भी बात कहनी हो तो वाणी द्वारा आवे। वाणी जड़ है। द्रव्य के साथ रहे, वे गुण नहीं। परन्तु गुण के साथ रहे, वह गुण। यह बोले कौन? वाणी। तुमने ऐसा वहाँ वाणी का आश्रय लिया या नहीं कहने में? भाई! ऐसा नहीं है। वाणी भी उसके क्रमकाल में वाणी निकलती है। उसका भी पर्याय का क्रम है, वहाँ वह वाणी हुई है। आत्मा ने की नहीं है। आहाहा! क्या हो?

‘सहभुवो’ द्रव्य में हमेशा एकरूप नित्यरूप पाये जाते हैं.... यह तो और दूसरी साधारण बात है। और पर्याय नानारूप होती हैं,.... अनेकरूप होती है। जो परिणति पहले समय में थी, वह दूसरे समय में नहीं होती,.... यह क्रम सिद्ध करते हैं। गुण तो एक समय में सब साथ में होते हैं। और पर्याय एक समय में हुई। पहले समय में नहीं थी। वह दूसरे समय में नहीं रहे। आहाहा! अरे! समय-समय में उत्पाद-व्यय होता है,.... लो। किस द्रव्य में किस समय में उत्पाद-व्यय नहीं? वह तो अपना स्वभाव है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव। उत्पादरूपी कार्य किस द्रव्य में किसी समय में हुए बिना रहता है? आहाहा! समझ में आया? यह तो निमित्तपना जो मानता न हो, निमित्त से होता है, ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त ही नहीं है, ऐसा मानता हो, उसे बताया है। परन्तु निमित्त से होता है, वह यहाँ बताना नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

पर्याय एक के बाद एक (होती है)। एक के बाद एक अर्थात्। समय-समय में उत्पाद.... लो। पहले समय में थी, वह दूसरे समय में नहीं होती,.... लो। समय-समय में उत्पाद-व्यय होता है.... आहाहा! इसलिए पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है। इस कारण पर्याय

को क्रमवर्ती ( कहा जाता है ) । साधारण शब्द नहीं है, हों ! पूरे तीन काल-तीन लो के द्रव्य की समय-समय की पर्याय क्रमसर है । सम्यग्दृष्टि द्रव्य को जहाँ अवलम्बता है, फिर पर्याय क्रमसर होनेवाली, वह होती ही है । उसे—पर्याय को भी करता नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? पर्याय, पर्याय को उस समय में करती है । द्रव्य भी पर्याय को करता नहीं । यह तो आया । ३२० गाथा । आहाहा ! क्रमसर पर्याय, पर्याय को करती है, उसमें द्रव्य का कहाँ काम है । समझ में आया ? मार्ग वीतराग का... भाई !

**मुमुक्षु :** पर्याय, पर्याय को....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय, पर्याय को करे । द्रव्य नहीं । द्रव्य तो ध्रुव है । परिणति हो... एक समय की पर्याय में षट्कारक परिणमन है । द्रव्य-गुण की अपेक्षा बिना । क्या कहा ? प्रत्येक द्रव्य की जिस समय की क्रमवर्ती पर्याय ( होती है ), उस एक समय की पर्याय में षट्कारकपना—पर्याय, पर्याय को करती है; पर्याय, पर्याय का कर्म; पर्याय का साधन पर्याय । वह पर्याय, हों ! वह की वह । पर्याय का अपादान उससे हुई, उसके आधार से हुई, वहाँ की वहाँ रही । यह षट्कारक एक समय की पर्याय में स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध षट्कारक है । द्रव्य-गुण के कारण नहीं, निमित्त के कारण नहीं । क्रमवर्ती क्रम से वर्तती होती है, ऐसा कहा न ? होती है, इसका अर्थ क्या हुआ ? द्रव्य करता है, गुण करता है, ऐसा नहीं आया ।

**मुमुक्षु :** पर्यायार्थिकनय से करता है, ऐसा आता है ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्यायार्थिकनय से करता है । वह तो पर्याय, पर्याय को करती है । वह तो यह हुआ । यह तो पर्यायार्थिक भेद से जब कथन करे तब कहे । क्योंकि एक समय की पर्याय जो होती है, वहाँ की वहाँ । होती है वहाँ से । इतनी भेद की अपेक्षा लेकर द्रव्य पर्याय को करे, ऐसा कहा जाता है । परन्तु वस्तुस्थिति देखें तो पर्याय, पर्याय को करती है; द्रव्य, पर्याय को करता नहीं । क्योंकि पर्याय का क्रमवर्ती होने का स्वभाव है । पर्याय का क्रमवर्ती होने का स्वभाव है । आहाहा !

**मुमुक्षु :** परन्तु द्रव्य, पर्याय को करे, इसमें क्या दोष आता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक सत् को दूसरे सत् की अपेक्षा है ही नहीं । सत् तो स्वयं सत् अहेतुक होता है ।

**मुमुक्षु :** द्रव्य-पर्याय में भी... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसके लिये तो बात चलती है । पर्याय सत् है । वह अहेतुक है ।

कोई हेतु नहीं। है, उसे हेतु क्या? आहाहा! ऐसा स्पष्टीकरण दिगम्बर सन्तों ने ही किया है। उन्होंने जैनधर्म और अनादि सत् है, उसे टिकाये रखा है। आहाहा!

देखो न! इतनी व्याख्या बाँधी। गुणपर्यायवत् द्रव्यम्। उसमें तो सब आया। प्रत्येक द्रव्य, उसके गुण और उसके कार्यसहित होता है। अब उसके कार्य के लिये दूसरा कारण (होगा)? समझ में आया? कोई एक सूत्र भी निर्णय करना चाहिए न इसे? कि प्रत्येक द्रव्य, गुण-पर्यायसहित है। ऐसा आया न? गुण और पर्याय अर्थात् कार्य। प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समय में अपने कार्य और गुणसहित है। अपने कार्य और गुणसहित है। आहाहा! पर के कार्य और निमित्तसहित है, ऐसा यहाँ नहीं आया। आहाहा!

**मुमुक्षु** : तो फिर दो कारण से कार्य होता है, ऐसा नहीं कहना।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : यह कथन तो ज्ञान करने के लिये है। कारण दो है ही नहीं, एक ही कारण है। मोक्ष का मार्ग एक ही है। मार्ग कहो या कारण कहो। दो मोक्ष के मार्ग (नहीं है)। मार्ग दो कहो या कारण दो कहो, वे हैं ही नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है, वहाँ अब इसे...

प्रत्येक द्रव्य, परमाणु वह भी गुण, पर्यायसहित है। आहाहा! प्रत्येक परमाणु उस-उस समय में स्वयं गुण और पर्यायसहित है। आहाहा! कायम रही हुई शक्ति और कार्यरूपदशा, उससहित द्रव्य है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! कहो, पानी छानना वह आत्मा नहीं कर सकता, ऐसी यहाँ तो बात है।

**मुमुक्षु** : कौन करता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : वह परमाणु की पर्याय, उसमें क्रमसर उस प्रकार की पर्याय होने के काल में होती है। निश्चय, वह सत्य है और व्यवहार है, वह उपचार के कथन हैं। आहाहा! वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा भी कहा है, निश्चय है, वह यथार्थ है और व्यवहार कहता है, उसकी श्रद्धा छोड़ना। है सही उसकी चीज़, परन्तु श्रद्धा छोड़ना, ऐसा कहा। नहीं? अन्तिम सातवें में। ओहोहो!

टोडरमलजी ने तो बहुत सरस किया। उसमें भी सातवाँ अध्याय और उसमें भी निश्चय-व्यवहाराभास का भाग... गजब काम! (संवत्) १९८४ में जब... पढ़ा था १९८२ में, मोक्षमार्गप्रकाशक। १९८२। ५० वर्ष हुए। समयसार (संवत्) १९७८ में (हाथ आया)। ५४ वर्ष हुए। समयसार १९७८। पंचाध्यायी, मोक्षमार्गप्रकाशक, पुरुषार्थसिद्धिउपाय यह

सब १९८२ (में पढ़े)। १९८२ में यह पढ़ते हुए, खाना-पीना कहीं सुहावे नहीं। उसके वाँचन की धुन (लगी)। राजकोट। पहले मिला था भाई के पास से। लाखाणी... लाखाणी। दामोदर चत्रभुज से मिला था। कमरे पर। यह हीराभाई सामने रहते हैं न? उनके सामने वहाँ कमरा नहीं? राजकोट। निवास में थे न हीराभाई? रहते हैं? वहीं के वहीं रहते हैं? सामने कमरा। वहाँ पुस्तकें रहती थी। यह १९८२ की बात है। पचास वर्ष हुए परन्तु हमें तो मानो कल हुआ हो, ऐसा लगता है। चत्रभुजभाई थे, बुजुर्ग। मैंने कहा, मोक्षमार्ग (प्रकाशक) चाहिए। दामोदरभाई.... खड़े हो। सीढ़ी है न? सीढ़ी, चढ़ने की। वह ऐसी पुस्तक है। ऐसे नहीं। परन्तु एक-एक शब्द सातवें अध्याय का... ओहोहो! यह तो निचोड़ कर डाला है। फिर साथ में रखते नहीं थे। १९८४ में लिख लिया। सातवाँ (अधिकार) लिख लिया। आहाहा! वस्तु तो वस्तु यह है, बापू! यह किसी के धर की है? आहाहा!

तू भी आत्मा है। ठीक! तू भी गुण-पर्यायसहित है। प्रत्येक समय में तू गुण-पर्यायसहित है। अब तेरी पर्याय के कार्य के लिये पर के सहित की आवश्यकता नहीं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह उपचारिक कारण, खोटा कारण है। व्यवहार कारण, वह अयथार्थ कारण है। उसकी श्रद्धा छोड़ना। आहाहा! यह एक ही सिद्धान्त वीतराग का। द्रव्य, वह गुण-पर्यायसहित है। आहाहा! किस समय में वह गुण-पर्यायरहित होगा? आहाहा! कि जो पर्याय पर के कारण हो? वह कार्य और गुण, कार्यसहित तो है। गुण, कारण है; पर्याय, कार्य है। उसके कारण-कार्यसहित तो वह द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा है, भाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** मिथ्यात्व के टुकड़े कर डालने की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात तो ऐसी है, भाई! बात तो ऐसी है। आहाहा!

गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं,.... यह नहीं। पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है। अब इसका विस्तार कहते हैं। जीवद्रव्य के ज्ञान आदि अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य.... अनन्त गुण एक समय में है। जीवद्रव्य में एक समय में अनन्त गुण हैं। है न? और पुद्गलद्रव्य के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, इत्यादि अनन्त गुण हैं,.... पुद्गल के, एक परमाणु में। आहाहा! सो ये गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं,.... यह इन्होंने व्याख्या कर डाली। परन्तु

वह गुण, गुण में सहभावी है। टीका में यह शब्द नहीं हैं। नहीं। न्याय से मिलना चाहिए न वापस। परमाणु में—द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण इत्यादि अनन्त गुण हैं,.... गुण तो है। अन्वयी हैं, सदा नित्य हैं, कभी द्रव्य से तन्मयपना नहीं छोड़ते। इस अपेक्षा से अर्थ किया है। द्रव्य से गुण पृथक् नहीं पड़ते, इतना। सहभावी का अर्थ गुण, गुण के साथ है।

तथा पर्याय के दो भेद हैं—एक तो स्वभाव, दूसरी विभाव। आहाहा! जीव के सिद्धत्वादि स्वभाव-पर्याय हैं,.... लो। सिद्ध आदि है, वह स्वभाव पर्याय है और केवलज्ञानादि स्वभाव-गुण हैं। उसे गुण गिना है, अपेक्षा से। केवलज्ञान को, हों! और अन्तर के गुण हैं, वे स्वभाव गुण हैं, त्रिकाल है। अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते।

अस्तित्व,.... मौजूदगीपना, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, ये स्वभावगुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं। सब द्रव्यों में यह गुण है। आहाहा! अगुरुलघुगुण का परिणमन षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप है। पर्याय लेनी है न। यह स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में हैं,.... लो, यह सूक्ष्म आया। छहों द्रव्यों में अगुरुलघु की षट्गुण हानि-वृद्धि की पर्याय (होती है)। अगुरुलघु एक प्रतिजीवी गुण है। एक अगुरुलघु अनुजीवी गुण है। और उस-अगुरुलघु की पर्याय में षट्गुण की हानिवृद्धिपना (होता है), ऐसा प्रत्येक गुण की पर्याय में षट्गुण की हानिवृद्धिपना है। 'सर्वविशुद्ध' तो यह लिया है न? 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' में। अगुरुलघुगुण के कारण उत्पाद-व्यय है। इसलिए वहाँ (लिया है), बस। षट्गुण हानि... सर्वविशुद्ध में आया है। उसके कारण से परिणमन है। आता है। है, वह सब आ गया है। अगुरुलघु के कारण पर्याय है। बस, इतना वहाँ है।

यह स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में है, कोई द्रव्य षट्गुणी हानि-वृद्धि बिना नहीं है, यही अर्थपर्याय कही जाती है,.... लो! वह शुद्ध पर्याय है। यह शुद्ध पर्याय संसारीजीवों के सब अजीव पदार्थों के तथा सिद्धों के पायी जाती है,.... अभव्य जीव के गुण की पर्याय में भी षट्गुणी शुद्ध है। मिथ्यादर्शन की पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि है न, वह शुद्ध है, ऐसा कहना है। आगमगम्य है। क्या कहा यह? मिथ्यात्व की पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय, प्रत्येक पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धिवाली शुद्धपर्याय है। वस्तु ऐसी है। गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर....

यह शुद्धपर्याय संसारी जीवों के, सब अजीव पदार्थों के तथा सिद्धों के पायी जाती है,.... लो। सिद्धपर्याय तथा केवलज्ञानादि गुण सिद्धों के ही पाया जाता है, दूसरों

के नहीं। संसारी जीवों के मतिज्ञानादि विभावगुण.... उसे गुण कहा। है तो पर्याय। केवलज्ञान को गुण कहा, मतिज्ञान को गुण कहा है। है वह पर्याय, परन्तु उसे गुण कहा है। अवगुण टलकर हुई, इसलिए गुण कहा है। अवगुण की पर्याय टलकर हुई, इसलिए गुण (कहा है)। है तो पर्याय।

**मुमुक्षु :** यह सबको लागू पड़े ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सबको लागू पड़े। आहाहा!

मतिज्ञानादि विभावगुण और नर-नारकी आदि विभावपर्याय ये संसारी-जीवों के पायी जाती है। ये तो जीव-द्रव्य के गुण-पर्याय कहे और पुद्गल के परमाणुरूप जो द्रव्य तथा वर्ण आदि स्वभावगुण.... यहाँ अब पर्याय की बात है। एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप होना,.... यह पर्याय। स्वाभाविक पर्याय, हों! विभाव शब्द है, वह खोटा है। विभाव शब्द पड़ा है, वह खोटा है। एक वर्ण दूसरे वर्णरूप होना स्वभावगुणपर्याय है। आहाहा! यह व्यंजन भी खोटा है। स्वभावगुणपर्याय चाहिए, बस इतना। व्यंजन है, उसका काम नहीं। गुणपर्याय की बात है न यहाँ। यह द्रव्यपर्याय की व्याख्या नहीं। द्रव्यपर्याय की व्याख्या हो तो व्यंजन कहलाये। यह तो गुणपर्याय की (व्याख्या है)। यह तब व्याख्यान हो गये हैं। तब यह सब कहा गया है। परमात्मप्रकाश का वाँचन हो गया। कहा है वहाँ।

एक परमाणु में दो-तीन इत्यादि अनेक परमाणु मिलकर स्कन्धरूप होना, ये विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है। यह बराबर है। अधिक रजकण इकट्ठे होकर जो विभावपर्याय हो, उसे विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय कहते हैं। आहा! यह भी गुण-पर्यायसहित ही द्रव्य होता है, विभाव के समय भी। आहाहा! समझ में आया? विभाव के समय दूसरी चीज़ का आश्रय, वह विभाव, यहाँ नहीं लेना। इस विभावपर्याय के काल में यह पर्याय और गुणसहित ही परमाणु है। आहाहा! उस-उस काल में अनन्त रजकण स्कन्ध ऐसी विभाविक द्रव्य की पर्यायसहित ही द्रव्य है। पर के कारण नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म गम्भीर बात है, भाई! वीतरागदर्शन....

द्वयणुकादि स्कन्ध में जो वर्ण आदि है, वे विभावगुण कहे जाते हैं,.... स्कन्ध है न इकट्ठा, इसलिए विभाव। वर्ण से वर्णान्तर होना, रस से रसान्तर होना, गन्ध से अन्य गन्ध होना, यह विभाव-पर्याय है। स्कन्ध में, हों! स्कन्ध में। आहाहा! परमाणु शुद्ध द्रव्य में एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और शीत-उष्ण में से एक तथा रूखे-चिकने में से एक,

ऐसे दो स्पर्श, इस तरह पाँच गुण तो मुख्य हैं, इनको आदि से अस्तित्वादि अनन्त गुण हैं, वे स्वभाव-गुण कहे जाते हैं,.... लो। एक परमाणु में अस्तित्व आदि अनन्त स्वभाव गुण कहने में आते हैं। और परमाणु का जो आकार, वह स्वभावद्रव्य व्यंजन-पर्याय है। विस्तार बहुत लिया है। वह गुण कहे।

एक परमाणु वर्ण आदि से रसान्तर हो, वह तो गुणपर्याय में आया। समझ में आया? परन्तु स्कन्ध में हो तो वह विभावपर्याय में आया। और एक परमाणु में आकार वह स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है। स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय। अकेला है न? वर्णादि गुणरूप परिणमन स्वभावगुण.... पर्याय इतना लेना। वर्णादि गुणरूप परिणमन, वह स्वभावगुणपर्याय, ऐसा लेना। व्यंजन नहीं लेना। वर्णादि गुणरूप परिणमन। बस, यहाँ तो गुण का परिणमन। स्वभावगुण। गुण का लेना है न। द्रव्य नहीं लेना। द्रव्य हो तो व्यंजन आवे। समझ में आया? यह तब पढ़ा था, तब सब कहा था। चिह्न कराये थे। क्या कहा यह?

एक परमाणु के रंग, गन्ध, रसगुण का परिणमन वह स्वभावगुणपर्याय है। अकेला है न। ज्यादा इकट्ठे होकर हो तो विभावगुणपर्याय। आहाहा! कितना याद रखना? यह तो साधारण... चौदह पूर्व याद रखते हैं न। आहाहा! बारह अंग एक क्षण में रचे, ऐसी सामर्थ्य जीव की। गणधर का जीव भगवान की वाणी सुनकर फिर (रचना करे)। आहाहा! मुनि पहले हो जाये, हों! फिर वाणी निकले। फिर शास्त्र रचे। बारह अंग, चौदह पूर्व। उसमें क्या? बारह अंग में भी स्थूल कथन है। सूक्ष्म कथन तो अन्दर गम्भीर रह गया है। आहाहा! इसलिए कहा है उससे कुछ विपरीत है, ऐसा नहीं। कहा है उसमें कुछ सूक्ष्मता अनन्त है। ऐसा है। समझ में आया? इसलिए कुछ दूसरे प्रकार से होगा और, ऐसा नहीं है। सूक्ष्मपना उसमें अनन्त है। आहाहा! स्थूलरूप से कहा, इसलिए कोई दूसरी चीज़ विपरीत है, ऐसा नहीं है। कहा हुआ स्थूल है, इसलिए उसमें रहे हुए सत्य की सूक्ष्मता अपार रही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक-एक वाक्य वीतराग के गम्भीर हैं।

जीव और पुद्गल इन दोनों में तो स्वभाव और विभाव दोनों हैं,.... दो है न उसमें? तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इन चारों में अस्तित्वादि स्वभावगुण ही हैं, और अर्थपर्याय षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप स्वभावपर्याय सभी के हैं। उसमें विभाव नहीं, ऐसा कहना है। चार द्रव्य में विभाव नहीं। धर्मादि चार, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल (इन) चार पदार्थों के विभावगुणपर्याय नहीं हैं। आहाहा! बहुत अच्छा स्पष्ट किया है। द्रव्य, गुण और पर्याय का यथार्थ ज्ञान हो न, तो इसे कारण-कार्य के झगड़े उड़ जायें। समझ

में आया? उस-उस समय में गुण, पर्यायसहित का द्रव्य है। भले विभावपर्यायसहित (हो)। गुण स्वभाव और पर्याय विभाव, उस सहित का द्रव्य उस-उस काल में वह स्वयं से ही है। आहाहा! समझ में आया? वह गुण और पर्यायसहित ही द्रव्य स्वयं से ही समय-समय में है। विभाव के समय भी स्वयं से ही है। आहाहा!

आकाश के घटाकाश मटाकाश इत्यादि को जो कहावत है,.... यह तो उपचार है। आकाश तो आकाश है। उसमें घटाकाश (अर्थात्) घट जितना रहे, वह घटाकाश। परन्तु इससे आकाश घटाकाश कहीं अलग नहीं पड़ गया। वह उपचारमात्र है, ऐसा कहना है। आकाश में यह घटाकाश, यह पटाकाश, ऐसा जो कहना, वह उपचारमात्र है। आकाश तो आकाश ही है। उसे पर के कारण उपाधि हुई घटाकाश और मटाकाश - ऐसा नहीं है, ऐसा कहना है। उसके कारण विभाव हुआ, ऐसा नहीं—ऐसा कहना है। आहाहा!

ये षट्द्रव्यों के गुण-पर्याय कहे गये हैं। लो। इन षट्द्रव्यों में जो शुद्धगुण—शुद्धपर्याय सहित जो शुद्ध जीवद्रव्य.... शुद्धगुण और शुद्धपर्यायसहित जो शुद्ध जीवद्रव्य वही उपादेय है। योगफल यह है। भगवान शुद्ध गुण, शुद्ध द्रव्य, पर्याय शुद्ध। परिणति के काल में वह उपादेय है। उपादेय होने के काल में वह उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय शुद्ध, ऐसा जिसे दृष्टि में परिणमन हुआ, उसे वह उपादेय है।

**मुमुक्षु :** शुद्ध पर्यायसहित उपादेय ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, पर्याय है न वह। निर्मल पर्याय। अन्दर में होती है न। शुद्ध पर्याय में द्रव्य-गुण की शुद्धता उपादेय होती है न। आहाहा! यह क्या कहा? शुद्ध पर्याय जो निर्मल है, उसमें जो द्रव्य, गुण और शुद्ध पर्याय उपादेयरूप से परिणमती है। शुद्ध पर्याय भी उपादेयरूप से शुद्ध परिणमन में होती है। अभेदरूप से। आहाहा! ऐसी व्याख्या! बाहर की सिरपच्ची में पड़े, उन्हें यह सूझ नहीं आती। फिर दृष्टि में गड़बड़ उठे।

**आराधने योग्य है।** लो। शुद्ध द्रव्य, गुण और पर्याय सेवनयोग्य है। आहाहा! सेवन तो पर्याय में होता है, परन्तु पर्याय का ध्येय द्रव्य, गुण है, इससे उसे आराधा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह जो शुद्ध पर्याय ली है, वह प्रगटवाली ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निर्मल। निर्मल प्रगट। वह स्वयं प्रगट है, तब शुद्ध पर्याय उपादेय



होती है न। क्या कहा यह ? निर्मल पर्याय उपादेयरूप से परिणमे, तब उसे शुद्ध कहा जाये न। आहाहा! द्रव्य और गुण शुद्ध है, उसका आश्रय लेकर जो परिणति हुई, तब उसे शुद्धपर्याय द्रव्य-गुण उपादेय कहने में आये हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग। इसमें वाद-विवाद में चढ़ा डालकर... अरे! लोगों को बेचारों को मुश्किल से बाहर आया, वहाँ झगड़े खड़े किये।

५७वीं गाथा में द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या आयी। आहाहा! द्रव्य उसे कहते हैं कि गुण-पर्यायसहित हो। आहाहा! अब, कितनी ही पर्यायें मतिज्ञानादि विभावगुण हों, केवलज्ञान आदि.... गुण कहा परन्तु पर्याय है, स्वभावपर्याय होती है, और परमाणु द्रव्य, गुण, पर्याय शुद्ध होती है। उसकी व्यंजनपर्याय शुद्ध है, अर्थपर्याय अगुरुलघु शुद्ध है। दो परमाणु से लेकर स्कन्ध में उसकी विभाविक व्यंजनपर्याय अशुद्ध है। उसमें षड्गुण हानि-वृद्धि पर्याय, वह शुद्ध है। इसी प्रकार अभव्य आदि जीव में गुण शुद्ध है, पर्याय वह अशुद्ध विभावरूप होने पर भी, उसकी पर्याय में अगुरुलघु की शुद्धता अनन्त है। आहाहा! समझ में आया? विभावपर्याय भले हो, परन्तु उसमें षड्गुण हानि-वृद्धि की पर्यायें (शुद्ध है)। गजब है! यह अर्थपर्याय तो शुद्ध ही है। 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग, कहा श्री सीमन्धरनाथ।' आहाहा!

आगे जीव के विशेषपनेकर द्रव्य-गुण-पर्याय कहते हैं :— ५८।

अप्या बुद्धिहि दव्वु तुहुँ गुण पुणु दंसणु णाणु।

पज्जय चउ-गइ भाव तणु कम्म-विणिम्मिय जाणु ॥५८ ॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य, तू आत्मा को तो द्रव्य जान,... तथा एक ओर कहते ऐसा हैं कि वाणी से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यह पहले आ गया है। दिव्यध्वनि से और महामुनि के उपदेश से भी उस वाणी से जीव ज्ञात नहीं होता। यहाँ कहते हैं, हे जीव! जान, ऐसा कहते हैं। जिस अपेक्षा से बात (हो, वह अपेक्षा समझनी चाहिए)। वहाँ पहले कहा, वेद और मौनी। दो आया था न? वेद अर्थात् दिव्यध्वनि। मुनि—उत्कृष्ट मुनि की वाणी से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यहाँ कहते हैं कि हे शिष्य! मैं कहता हूँ, उसे जान। समझ में आया? परलक्ष्यी ज्ञान में यह जानने की बात करते हैं। स्वलक्ष्यी ज्ञान में तो इससे ज्ञान होगा नहीं। आहाहा! यह विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१४

श्री समयसार कलश टीका, कलश-२, प्रवचन - ४

दिनांक - ०२-०९-१९६७

(समयसार कलश) चलता है। दूसरा कलश। वाणी की व्याख्या चलती है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी, उसे नमस्कार करते हैं। यह वाणी कैसी है, इसका स्वरूप वर्णन करते हैं। पहले देव को नमस्कार किया। स्वयं ही स्वयं का गुरु। शुद्धरूप से आत्मा पर्याय में अनुभव में आया। वस्तु जो शुद्ध चैतन्य आनन्द ज्ञायक, वह पर्याय में शुद्धरूप से अनुभव में आया, वह शुद्ध आत्मा, उसे देवरूप से नमस्कार किया है। ...यहाँ वाणी को नमस्कार (किया है)।

वाणी कैसी है ? 'प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं पश्यन्ती' वह वाणी कैसी है ?—कि 'प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं पश्यन्ती' देखो! यह उसकी टीका। 'प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं' उसमें से 'प्रत्यगात्मनः' पहला अर्थ होता है। 'प्रत्यगात्मः' अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग,... यह 'प्रत्यक्' है। 'प्रत्यक्' भिन्न। सर्वज्ञ वीतराग कैसे हैं ? 'प्रत्यक्' ऐसा कहा न ? ग नो क हुआ। 'प्रत्यक्' अर्थात् भिन्न। 'प्रत्यक्' अर्थात् भिन्न; भिन्न अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित,... कैसे हैं सर्वज्ञदेव ? सर्वज्ञदेव परमात्मा वह द्रव्यकर्म—जड़, भावकर्म—पुण्य-पाप का राग, नोकर्म—शरीरादि से रहित है। यह 'प्रत्यक्' का अर्थ है। 'प्रत्यक्' अर्थात् भिन्न। यह 'प्रत्यक्' का अर्थ हुआ। सर्वज्ञ वीतराग 'प्रत्यक्' आत्मा है। 'प्रत्यक्' अर्थात् कि राग, कर्म और नोकर्म से भिन्न भगवान आत्मा है, उसे यहाँ 'प्रत्यक्' आत्मा कहा गया है।

आत्मा अर्थात् जीवद्रव्य। जो भिन्न है, ऐसा है आत्मा-जीवद्रव्य जिसका वह कहलाता है.... जिसका अर्थात् कि रागरहित आदि जो आत्मा, उससे... 'प्रत्यक्' आत्मा कहलाता है। यह तो... ऐसी टीका है। गृहस्थ ने टीका की है, सेठ! राजमल टीका (करनेवाले हैं)। गृहस्थाश्रम में। आत्मा है न! स्त्री, पुत्र, परिवार सब था और ऐसी टीका अलौकिक की। सामान्य को अभी अर्थ समझना कठिन, ऐसी तो टीका की है। आत्मा में सामर्थ्य है या नहीं ?

कहते हैं, जिसका वह कहलाता है 'प्रत्यगात्मा' जिसका अर्थात् जिसका आत्मा राग से, कर्म से, नोकर्म से भिन्न है... आत्मा जीवद्रव्य कहने में आता है। ... उसका स्वरूप-ऐसे सर्वज्ञ वीतराग का तत्त्व, सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा विकार से, कर्म से, शरीर से भिन्न पड़ा हुआ... ऐसा जो आत्मा, उसका स्वरूप। तत्त्व अर्थात् उसका स्वरूप। उसकी... 'पश्यन्ती'। उसके स्वरूप को देखता है अर्थात् कि उसके स्वरूप के अनुभवनशील है,... जैसा सर्वज्ञ का स्वरूप है, उसे अनुसरकर वाणी का होना, ऐसा वाणी का स्वभाव है। समझ में आया? उसकी... 'पश्यन्ती' उस स्वरूप को अनुभवनशील है,... ऐसी जो वाणी। वाणी की व्याख्या की। पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसे तीन अर्थ किये हैं। उसमें यह भी एक आया है, भाई! वाणी भी ऐसी है। पण्डित जयचन्द्रजी ने इसका अर्थ यह किया है कि सर्वज्ञस्वरूप जो आत्मा का ज्ञानस्वरूप पूर्ण स्वरूप, उसे सर्वज्ञरूप से सर्वज्ञदशा जानती है, सर्वज्ञ पर्याय को जानते हैं, उसे श्रुतज्ञान जानता है, उसे वाणी कहती है। समझ में आया? यही आत्मा का स्वरूप कर्म से, शरीर से, विकार से भिन्न वर्तमानरूप से है और उसका—आत्मा का स्वभाव भी सर्वज्ञस्वभाव ही है। समझ में आया? अभी। वह सर्वज्ञस्वभाव, ऐसा जो आत्मा, उसे...

आत्मा का जो तत्त्व है, वह वस्तु है, उसके अनन्त गुण हैं, उसकी पर्याय है। ऐसी जो कर्म, शरीर से रहित भिन्न है, उसे केवलज्ञान की पर्याय देखती है। अर्थात् ज्ञान की पर्याय द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को देखती है। समझ में आया? ...भाई! केवलज्ञान की पर्याय, यह वस्तु है, ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य, उसकी पर्याय सर्वज्ञरूप से प्रगट हुई। सर्वज्ञरूप से प्रगट हुई है, वह पर्याय, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय को देखती है। समझ में आया? समझ में आया? शोभालालजी!

**मुमुक्षु :** अपने द्रव्य-गुण-पर्याय....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसे केवलज्ञानपर्याय देखती है। और श्रुतज्ञानपर्याय, जो भावश्रुतज्ञान हुआ, भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव... यहाँ तो उसे चेतन लिया है न? ....स्वभाव लिया है न? पण्डित जयचन्द्रजी ने। असाधारण चैतन्यस्वभाव। क्योंकि मूल तत्त्व यह है। उसमें सब अनन्त गुण आ जाते हैं। चैतन्यस्वभाव, जो ज्ञानस्वभाव, उसे अनन्त गुणवाला ऐसा जो तत्त्व—चैतन्य स्वभाव, उसे केवलज्ञान की पर्याय ऐसे सबको जानती है—द्रव्य को, गुण को और पर्याय को (जानती है)। अपनी पर्याय को स्वयं जानती है और श्रुतज्ञान जो है, वह

भी अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है। निर्मल राग से, विकार से, पर से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, वह ज्ञान की दशा अपना ज्ञायकतत्त्व अथवा द्रव्य, गुण और पर्याय, ऐसा जो उसका स्वरूप है, उसे वह श्रुतज्ञान जानता है। समझ में आया? निचली दशा में, श्रुतज्ञानदशा में। श्रुतज्ञान अर्थात् यह वाणी आदि नहीं।

अन्तर में ज्ञायक चैतन्य भगवान वह शुद्ध है, ऐसा जो अन्तर भान हुआ, वह ज्ञान-भान भावश्रुतज्ञान में हुआ। वह भावश्रुतज्ञान जो है, उसे शासन-जैनशासन कहा है न, भाई! वह भावश्रुतज्ञान स्वयं अपने को देखता है और जानता है। आहाहा! और उसमें जो रहा हुआ तत्त्व अर्थात् आत्मा का जो तत्त्व यह सर्वज्ञस्वरूप, प्रत्यक्ष भिन्न पड़कर, ऐसा पर्यायसहित सर्वज्ञस्वरूप, उसके अनुसारिणी.... अर्थात् वाणी उसे देखती है। उसे देखती है अर्थात्?— कि भावश्रुतज्ञान और केवलज्ञान उसे देखता है, यह तो ठीक, परन्तु वाणी भी उसे देखती है, अर्थात् क्या? उसे देखती है अर्थात् कि अनुभवनशील है। जैसा उसका—सर्वज्ञ का स्वरूप है, ऐसा जो वाणी में-वाणी का धर्म स्व-परप्रकाशक स्वभाव, वह जैसा है, उसे अनुसरकर होना, ऐसा वाणी का स्वभाव है। सेठी! समझ में आया? गजब टीका परन्तु!

देखते हैं, इसकी व्याख्या यह। पूरा सर्वज्ञ प्रभु एक समय में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण अनन्त धर्म, गुण और द्रव्य, उसे वाणी देखती है। ऐसा जो आचार्य का शब्द पड़ा है, उसका अर्थ यहाँ ऐसा किया और उसे लगता हुआ। लगता समझते हो? मेलवाला, फिट होता हुआ। ऐसे भगवान आत्मा, यह तो अन्तर सुनने की दृष्टि में भी जरा धीरज हो तो वस्तु समझ में आये ऐसी बात है। समझ में आया? यह तो अन्तर की बात है। यह कहीं कोई....

भगवान आत्मा अपने स्वभाव से जहाँ पूरी पर्याय सहितरूप प्रगट हुआ, उसे केवलज्ञान जानता है, उसे श्रुतज्ञान जानता है, उसे वाणी जानती है। वाणी जानती है अर्थात् क्या? वाणी का स्वभाव जानना का तो है नहीं। तब यह जैसा केवलज्ञान स्वरूप है, उसे अनुसरकर वाणी स्वयं के कारण से परिणमती है उसे 'पश्यन्ती' के अर्थ में उसे देखे अर्थात् जैसा वैसा यहाँ परिणमना, उसे वाणी देखती है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वाणी का स्वभाव ऐसा है। वाणी की ही ऐसी पर्याय... समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ...जड़ में। यह जड़ की व्याख्या है। अनुभवशील है जड़ वाणी। अर्थात् कि... यह दूसरी जाति की दलाली है।

ऐसा अर्थ है—यह भगवान आत्मा एक तो प्रतीति कराते हैं कि ऐसा आत्मा द्रव्य, गुण और पर्याय जो निर्मल हो, सर्वज्ञपर्याय वही... ऐसे तेरा आत्मा भी ऐसे द्रव्य, गुण और पर्याय की शुद्धता से सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार करे, तब उसने आत्मा का तत्त्व माना, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! और यह माना और जाना, ऐसे केवलज्ञान से और श्रुतज्ञान से, अब वाणी में क्या? कि वाणी भी उसे ही देखती है। अर्थात् कि जैसा सर्वज्ञस्वरूप है, उसी प्रकार से वाणी अन्ध, जड़, अचेतन होने पर भी... वाणी तो अचेतन है, जड़ है, परन्तु वह जड़ वाणी का ऐसा कोई एक समय का स्वभाव है कि जैसा यह सर्वज्ञस्वरूप है, उसे अनुसरकर वाणी अपने में परिणमे, ऐसा वाणी का शील स्वभाव है। सेठी! आहाहा!

कहते हैं, भाई! यहाँ जब आत्मा में ऐसा आवे कि मुझे ब्रह्मचर्य पालना है, समझ में आया? तो उसकी वाणी में ब्रह्मचर्य पालना नहीं। ऐसी वाणी नहीं आती। क्योंकि ऐसा उसका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। मुझे ब्रह्मचर्य पालना है, ऐसा जो भाव, उसे अनुसरकर वाणी भी ऐसी आवे। वाणी का ऐसा शील स्वभाव है। मैं ब्रह्मचर्य पालने तैयार हूँ। यह वाणी के रजकणों की पर्याय, यहाँ जैसा भाव है, उसे ही अनुसरकर वाणी स्वयं से परिणम रही है। समझ में आया?

मैं आत्मा शुद्ध ज्ञायकमूर्ति हूँ, ऐसा जो भान हुआ तो वाणी में ऐसा नहीं आता कि मैं अशुद्ध अज्ञान आत्मा पर्याय में हूँ, ऐसा नहीं आता। वाणी ही ऐसी आती है। वाणी के स्वभाव से वाणी ऐसी आती है। शुद्ध चैतन्य ज्ञायकमूर्ति आत्मा हूँ। यह आत्मा, वह मैं, रागादि है, वह मैं नहीं हूँ। वाणी में भी ऐसा ही आता है। देखो तो सही! वाणी का ऐसा स्वभाव है। लोगों को अभी वाणी में जड़ की पर्याय में क्या ताकत है, इसकी खबर नहीं होती। वह मानो कि सामर्थ्य बिना की वस्तु है। जड़ में क्या? जड़ अपन चलावें तो चले। इसकी बात मिथ्या है। उसके कारण से चले और उसके कारण से वाणी निकले। आत्मा के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अजीव वाणी में भाव है। वह द्रव्य है या नहीं? परमाणु द्रव्य है या नहीं? तो उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, स्निग्धता आदि गुण है या नहीं? उस गुण की परिणति है, वह उसका

भाव है। जैसे आत्मा में भाव है और परिणाम है, वैसे परमाणु के भाव पर्याय, गुण भाव है और उसका परिणमन वह उसका परिणाम है। लोगों ने तत्त्व-अजीवतत्त्व क्या है, उसे माना नहीं। अजीवतत्त्व। उसे जीव-अजीव की श्रद्धा होनी चाहिए न। जीव ज्ञायक शुद्ध चैतन्य है, ऐसा भान। और अजीव स्वतन्त्र इस प्रकार से अजीवतत्त्व परिणमने के योग्य है, नहीं तो वह अजीव की पर्याय मेरे कारण परिणमी तो अजीव का स्वतन्त्र तत्त्व है, ऐसा ही उसने माना नहीं। समझ में आया ? वह अजीव को मानता ही नहीं। मेरे कारण वाणी निकले और मैं हूँ, इसलिए वाणी की अस्ति का परिणमन होता है तो उसकी अस्ति का परिणमन जो द्रव्य, गुण, पर्याय का है, वह तो वहाँ उड़ा दिया।

यहाँ तो ग्रन्थकार-टीकाकार... व्याख्या की! राजमलजी। इसलिए बनारसीदास ने कहा, 'पाण्डे राजमल जैनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' मर्मी है। भाषा देखो! आहाहा! ऐसी व्याख्या....

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जैसा उसका ज्ञान है, उसे अनुसरकर वाणी, वाणी के कारण से होती है, इसके कारण से नहीं। अज्ञानी को अज्ञान के कारण से होता है। यह उसके कारण से जड़ की है न। अनुसारिणी होती है न। माँस खाने का भाव है तो वाणी में भी ऐसा आता है कि माँस खानेयोग्य है। वह वाणी इसके कारण नहीं परिणमी, परन्तु जैसा इसका भाव है, उसे अनुसरकर वाणी का ऐसा स्वभाव है कि इस प्रकार से परिणमती है। आहाहा! यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ कि कुछ है नहीं। निमित्त का अर्थ ऐसा नहीं कि यह है इसलिए ऐसा है। ऐसा नहीं है। इसका अर्थ यह है कि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पृथक्ता बतलाता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अनेकता बतलाता है। एकता नहीं, अनेकता बतलाता है। आहाहा! समझ में आया ?

भाई! यह तो तत्त्व है। यह तो अनन्त काल में इसने तत्त्व को जाना नहीं। ऐसे तो सब करके मर गया, सूख गया। समझ में आया ? परन्तु वास्तविक आत्मा, वास्तविक अजीवतत्त्व और वास्तविक पुण्य और पाप के परिणाम क्या है, उसकी वास्तविक दृष्टि ही इसने कभी की नहीं; और यह दृष्टि किये बिना भ्रान्ति और मिथ्यात्व में अनन्त बार मर गया है। अपने चैतन्य प्राण की सत्ता का स्वीकार नहीं किया।

इसकी शक्ति... है, ऐसी शक्ति है, ऐसा ज्ञान जाने या उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान जाने ?

इसमें परमाणु में भाषा में सर्वज्ञपद जो है, उसे अनुसरकर वाणी का स्वयं का होना, ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा ज्ञान जाने तो ज्ञान सच्चा कहलाये या भाषा उसके कारण से उसरूप परिणामी है, तो उस भाषा के परिणमन का स्वतन्त्र सत्त्व है, वह तो इसने स्वीकार नहीं किया। इसलिए इसने अजीव को नहीं माना अर्थात् कि इसका ज्ञान जैसा है, वैसा जानना चाहिए, ऐसा न मानकर मेरे कारण यह वाणी निकली है, सर्वज्ञ के कारण अनुशीलन अर्थात् उस प्रकार से (वाणी) परिणमना पड़ा है (ऐसा मानता है परन्तु) ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह तो अजबगजब की बातें हैं, भाई! आहाहा!

कहते हैं, **अनुभवनशील है,....** भाषा भी गजब की है न! और इसका अर्थ आयेगा कहाँ? कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप अनुसारिणी, इसका अर्थ यह। यह नीचे आयेगा। **भावार्थ इस प्रकार है—**देखो! एक तो सर्वज्ञ सिद्ध किये। एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हो, ऐसी आत्मा में ताकत है और ऐसे आत्मा सर्वज्ञ हो सके हैं। और वह सर्वज्ञ हुए और वाणी में यह क्या है, यह न आवे तो दूसरे को समझाने में क्या आवे? उन्होंने तीन काल-तीन लोक जाने और आत्मा का पूर्ण आनन्द का अनुभव हुआ, ऐसा जो है, वह वाणी में यदि न आवे तो दूसरे को समझायेंगे किस प्रकार? ज्ञान तो बाहर आता नहीं। वह ज्ञान की पर्याय बाहर तो आती नहीं। इसलिए कोई ऐसा कहे कि जहाँ सर्वज्ञदशा पूरी हो गयी अर्थात् वह मुक्त हो गये, वह बात खोटी है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। भाई! ऐसा कि पूर्ण हो गये, फिर वाणी कैसी? ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? हिम्मतभाई!

(संवत्) १९८६ में एक बार कहा था। आणन्दजी कुँवरजी वहाँ आया था न? वडवा में। वडवा... वडवा है न? ...गये थे। १९८६ का वर्ष है। यह वाणी ऐसी है कि सर्वज्ञ ने देखो वैसा यदि वाणी में न आवे तो उन्होंने क्या देखा? दूसरे को निमित्तरूप से क्या लाभ हो? इसलिए सर्वज्ञ परमात्मा हुए और कोई ऐसा कहे कि उन्हें वहीं की वहीं पूर्णता हो गयी। मुक्त हो जाये, ऐसा नहीं होता। अरिहन्तपद को सिद्ध करना था, भाई! समझ में आया? वडवा में बात हुई थी। आणन्दजी... कैसा? कुँवरजी आणन्दजी। वह भावनगर के प्रमुख मुख्य (थे)। बड़ी पगड़ी बाँधते थे। नाम बड़ा सुना न इसलिए गाँव में न आ सके, वडवा आये।

वाणी, सर्वज्ञ है, जिन्होंने सब जाना, सब अनुभव किया, सब जाना, ऐसी चीज़ क्या

है, ऐसी यदि उसे स्वतन्त्र वाणी न हो तो जगत को जानने का निमित्त तो कुछ रहा नहीं। समझ में आया? इसलिए उसे वाणी वाणीरूप से होती है। समझ में आया? परन्तु वह वाणी सर्वज्ञ के कारण से नहीं है परन्तु वाणी, वाणी के कारण से होती है। समझ में आया? आहाहा! और इसलिए वाणी सुननेवाले को सर्वज्ञपने क्या जाना, उस वाणी में ऐसा आने का स्वभाव है, इसलिए सुननेवाले को वह जानने को मिलता है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ क्या काम है अभी? उसके साथ क्या सम्बन्ध है? चलता है, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं होता। कहो, समझ में आया? लक्ष्य दूसरा है। कहो, समझ में आया इसमें? धोध चले उसमें घाव किया। अन्दर योग्यता नहीं। अभी क्या बात चलती है, इसके ऊपर लक्ष्य नहीं और इसका अन्यत्र लक्ष्य गया। समझ में आया? कठिन है, भाई! कठिन है। क्या कहलाता है? कि पात्र होने के योग्य कठिन है। ऐसा कोई मान ले कि मैं बातें करना सीखा, इसलिए मुझे आता है, इस बात में कुछ दम नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, सर्वज्ञ भगवान परमात्मा की वाणी में जो वाणी कहती है... ओहोहो! शब्द कैसा कहा है! **अनुभवनशील...** शील। यह परमाणु की वाणी का स्वभाव अनुभव अर्थात् अनुभवना अर्थात् जैसा वहाँ है, वैसा यहाँ होना। अनुभूति आती है न? परमाणु में अनुभूति आता है न! भाई! परमाणु में अनुभूति, परमाणु में अनुभव है। अर्थात् क्या?—उस-उस पर्याय को परिणमता है। ऐसा आता है। दूसरी गाथा में आया न? दूसरी गाथा। '**जीवो चरित्तदंसण**' जीवो की व्याख्या में। आठ बोल जीव के आये हैं न उसमें। परमाणु पुद्गल भी अपने को अनुभवता है। अनुभवता है अर्थात् उस प्रकार से पर्याय को परिणमता है, उसका नाम अनुभूति। परमाणु को अनुभूति। उसके अनुसार होता है।

यहाँ कहते हैं, भाई! यह तो अलौकिक बातें, बापू! यह कोई (कथा-वार्ता नहीं है)। समझ में आया? परमेश्वर... आहाहा! उसे पहिचाने और उसकी वाणी को पहिचाने। उनकी वाणी ऐसी होती है कि सर्वज्ञ ने जो जाना है और जो उनके भाव में है, वह वाणी, वाणी के कारण से परिणम जाती है, तथापि वाणी में सर्वज्ञ के भाव नहीं, हों! सर्वज्ञ के भाव नहीं, हैं पुद्गल के। ऐ... सेठ! कहते हैं न, तुम्हारे यहाँ कहते हैं कि मूर्ति में कहाँ गुण है? वाणी में गुण है। दोनों खोटी बात है। ऐ.. शोभालालजी! तुम्हारे में वहाँ बड़े घोटाले हैं। वे



लोग कहे कि मूर्ति को नहीं मानना। क्योंकि उसमें गुण कहाँ है। वाणी में गुण है, इसलिए मानना। झूठ, बिल्कुल झूठा। सुन न! वाणी में गुण कैसा? भगवान के गुण हैं वाणी में? ऐई! सुना है या नहीं तुमने? बड़े सेठ सामने (रहते हो) तो कुछ गप्प सुनी होगी। सब यह कहते हैं, वाणी नमस्कार करनेयोग्य है, पुस्तक नमस्कार करनेयोग्य है। क्योंकि वाणी में अपने को उसके कारण ज्ञान होता है और भगवान का ज्ञान उसमें है। धूल भी नहीं उसमें। ऐ... शोभालालजी! यहाँ तो बात ऐसी है, भाई! किसी का कण उल्टा रहे, ऐसा नहीं।

वाणी जड़ और मूर्ति भी जड़, दोनों पूज्य है। ऐई! उसमें एक पूज्य नहीं और यह पूज्य है, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। उसे वस्तु की खबर नहीं। ऐई! जिस प्रकार से पूज्य है, उस प्रकार से। आयेगा, हों! समझ में आया? देखो तो सही! यह तो सर्वज्ञ का सत्य है। यह कोई वाडा का या पक्ष का है नहीं। कहते हैं, वाणी स्वयं जड़ के भाववाली है। उसमें भगवान का एक भी गुण और एक भी पर्याय उसमें आयी नहीं। समझ में आया? क्या कहा?

जिनवाणी में 'जिन' के गुण और पर्याय जरा भी आये नहीं। जो आत्मा का गुण और पर्याय भाव है, वह वाणी में बिल्कुल आया नहीं। क्योंकि यदि आवे तो जड़ चेतन हो जाये। वह जीव तो भले वहाँ रहा, परन्तु थोड़ा सा यहाँ घुस जाये, वाणी में थोड़े से गुण घुसें, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वाणी जड़रूप से वाणी है। वाणी का द्रव्य जड़, उसका गुण जड़ और उसकी पर्याय जड़। परन्तु कैसी? परन्तु जैसा सर्वज्ञ को जाना है, उस प्रकार से स्वतः अपने कारण से परिणमती है। उसके—सर्वज्ञ के गुण को स्पर्श किये बिना, सर्वज्ञ के गुण को छुए बिना, उसके गुण की पर्याय को यहाँ लाये बिना, आये बिना। वहाँ गुण की पर्याय यहाँ कहाँ से आती थी। आहाहा! ऐसी बात।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं 'पश्यन्ती' इसका अर्थ करनेवाले कहते हैं कि देखना, ऐसा तो लेना है या नहीं? केवलज्ञान और श्रुतज्ञान ऐसे आत्मा को देखे, ऐसा वाणी देखती है, ऐसा लेना है। अब देखती है अर्थात् क्या? कोई उसे ज्ञान है? समझ में आया? देखती है अर्थात् कि जैसा सर्वज्ञस्वभाव केवलज्ञान का है, उसी प्रकार से वाणी को भी वाणी में अपने कारण से शील अर्थात् उसरूप परिणमना। जैसा भाव वहाँ है, वैसा ही कथन में वाणी में अपने कारण से परिणमा, ऐसा जड़ का स्वतः स्वयंसिद्ध स्वभाव है। समझ में आया? नहीं तो चैतन्य के कारण जड़ और यह चैतन्य की वाणी है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। जड़ और

चैतन्य दोनों को एक माना। भगवान के गुण और पर्याय वाणी में आये। जीव का गुण वहाँ घुस गया। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि टीका की है न! सेठी! यह परमाणु वाणी के जो परिणामते हैं, उनकी परीक्षा चाहिए वापस। समझ में आया? एक बार एक व्यक्ति कहता था, यह समयसार गुरुवाणी है। गुरुवाणी है। (संवत्) १९९९ के वर्ष में तीन श्वेताम्बर साधु आये। (वे कहे), यह तो गुरुवाणी है, जो सर्वज्ञ की वाणी नहीं। कहा, बहुत अच्छी बात है। क्या नाम है तुम्हारा? दर्शनविजय। अच्छा। भव्य-अभव्य का निर्णय किया है? भव्य-अभव्य हो या नहीं?—नहीं, नहीं। भव्य-अभव्य का निर्णय नहीं और तुम वीतराग की वाणी का निर्णय करने निकल गये। तुम्हारे में दर्शनविजय और ज्ञानविजय त्रिपुटी है। इसलिए वे मानो कि यह समयसार की स्थापना देखी न? वहाँ बैठे थे। रामजीभाई थे। स्थापना है न यहाँ। ... यह वाणी गुरु की वाणी है, सर्वज्ञ की नहीं। अरे! भगवान! सर्वज्ञ की वाणी किसे कहना और गुरु की किसे कहना, इसका निर्णय (करने निकला)। क्या नाम है तुम्हारा? दर्शनविजय। भव्य हो या अभव्य, ऐसा निर्णय किया है? भव्य-अभव्य का निर्णय नहीं और यह सर्वज्ञ की वाणी और यह गुरु की वाणी, (इसका) निर्णय करेगा कौन?

जिसकी वाणी में भव के अभाव का स्वरूप वाणी में वाणी के कारण आवे। जिसकी वाणी में, वाणी में भव के अभाव का स्वरूप आवे, वाणी के कारण से, हों! भगवान के कारण से नहीं। आहाहा! वह वाणी उसे अनुसारिणी। शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसा कहते हैं न? वही इसका अर्थ हुआ। आत्मा अनुभवपने वर्तता है, वाणी में ऐसा ही आता है। पहले अपने आ गया है, 'जिनवचसी रमन्ते'। समझ में आया? यह अब आयेगा। हिन्दी में आ गया है न अपने? 'जिनवचसी' जिनवचन अर्थात् वाणी अर्थात् वाणी में यह कहा। वाणी अनुभवनशील सर्वज्ञ को अनुसरकर स्वयं से परिणामित वाणी में ऐसा आया है, ऐसा आया है (कि) आत्मा चिदानन्द भगवान शुद्ध, वह आदरणीय है। यह वाणी ने... वाणी ने... वाणी ने स्वतन्त्र परिणामन किया है, भगवान के ज्ञान का असर लिये बिना। इसलिए पूज्य है। समझ में आया? भाई! तत्त्व को मानना, समझना कठिन है। लोग अपने आप कल्पना से मान लें, (ऐसा सरल नहीं है)। श्रद्धा-मिथ्यात्व को टालना और विपरीत मान्यता टालना, वह महा दुष्कर है, महा अलौकिक बात है। ऐसे का ऐसा अनादि काल बिताया है। समझ में आया इसमें?

कहा न? अनुभवनशील। अर्थात् कि तीन अक्षर। अनु, भवन और शील—तीन

अक्षर हैं। है? अनु, भवन, शील, है—यह चार। अर्थात् कि सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान जो परिणामा है, वह अस्ति उसमें है। वाणी, उसका जैसा स्वरूप है, उसे अनुसरकर भवना अर्थात् होना, ऐसा जिसका स्वभाव, शील अर्थात् स्वभाव है, उसे वीतराग की वाणी कहा जाता है। समझ में आया? कठिन बात है, मिथ्यात्व को समझना। क्या कहा? 'पश्यन्ती' गजब किया है न! राजमलजी ने तो टीका की है न!

पण्डित जयचन्द्रजी में ऐसा आता है, वाणी उसे दिखाती है। इसका अर्थ क्या? वाणी कहती है। इसका अर्थ क्या? जैसा यहाँ है, वैसा यहाँ कहती है। इसलिए वाणी अपने आप परिणमती है। नाम दिये हैं? भारती और ऐसे बहुत नाम दिये हैं। भारती, वाणी, शारदा... आहाहा! वाह! वाक्देवी। वाक्देवी है। दिव्यता। परमाणु की पर्याय की अपने कारण से दिव्यता है, हों! इसलिए दिव्यध्वनि कही जाती है। आहाहा! इस वीतराग की वाणी को पहिचानना, वह भी खास पुरुषार्थ है। उसकी वाणी में भव के छेद की वाणी आवे, क्योंकि वह भव का छेद करके बैठे हैं। वाणी भी भव के छेद की-अभाव की आती है। उस वाणी के कारण वाणी आवे, सर्वज्ञ के कारण नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

**भावार्थ इस प्रकार है—कोई वितर्क करेगा कि दिव्यध्वनि तो पुद्गलात्मक है,....** यह तो पुद्गलस्वरूप है, वह तो जड़ है। सेठ! क्या है? **कोई वितर्क करेगा कि.... है?** कहाँ आया? राजमलजी! **भावार्थ इस प्रकार है—कोई वितर्क करेगा कि....** वितर्क अर्थात् तर्क उठावे। दिव्यध्वनि तो पुद्गलस्वरूप है। वह तो जड़ है, वाणी तो जड़ है। वीतराग की वाणी भी जड़ है, अचेतन है, पुद्गल है, मूर्त है। जैसे मूर्ति भी अचेतन है, पुद्गल है, मूर्त है। यह मूर्ति कहीं चेतन नहीं। वैसे वाणी भी पुद्गल है, जड़ है, अचेतन है, मूर्त है। अचेतन है। इतना.... **पुद्गलात्मक है, अचेतन है,....** वाणी तो अचेतन है। उसमें चेतना का कोई गुण-पर्याय नहीं। जड़ है। **अचेतन को नमस्कार निषिद्ध है।** ऐसे अचेतन को नमस्कार? आपने तो यहाँ पहले निषिद्ध किया था। **अचेतन पदार्थ को नमस्कार निषेधा।** पाँचवीं लाइन, दूसरे पृष्ठ पर। है? दूसरे पृष्ठ पर। **अचेतन पदार्थ को नमस्कार निषेधा।** यहाँ और (यह कहा)। क्या है यह? सुन, भाई! यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है। भगवान की वाणी अलौकिक! उसका परिणमन है वाणी का वाणी के कारण से, हों! भगवान की वाणी कहना, वह तो निमित्त से है। वाणी भगवान की होती नहीं। वाणी जड़ की-पुद्गल की है। और वह वाणी, वाणी के कारण से प्रमाणित है। वाणी भगवान के कारण प्रमाणित है, यह तो व्यवहार से हुआ। वाणी, वाणी के कारण से स्वाश्रित प्रमाणित

है। तब (कोई) कहे, इसमें ज्ञानगुण नहीं। ज्ञानगुण का यहाँ कहाँ काम है? वस्तु, वस्तु के कारण से प्रमाणित है, पर के कारण से नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वाणी-दिव्यध्वनि... ऐसा खानिया (चर्चा) में प्रश्न उठा है, प्रमाणित है या अप्रमाणित है? (प्रामाणिक है तो) स्वतः प्रमाणित है या पर से है? अरे! स्वतः प्रमाणित है। केवलज्ञानी के कारण नहीं। तब तो ऐसा कहलाये, पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण। कहते हैं न लोग? वह तो निमित्त की व्याख्या है। व्यवहार का ज्ञान कराते हैं कि कौन पुरुष था। वाणी, वाणी के कारण स्वतः प्रमाण है। आहाहा! देखो न! अनुभवशील कहा। परमाणु की पर्याय का ऐसा स्वभाव स्वतः परिणमन ऐसा है। अपने कारण से, भगवान के कारण से नहीं, केवली के कारण से नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अचेतन को नमस्कार निषिद्ध है। यह प्रश्न हुआ। इस वाणी को तुमने और कहाँ पूज्य ठहराया? यह तो पुद्गल है, यह तो जड़ है, अचेतन है। उसके प्रति समाधान करने के निमित्त यह अर्थ कहा कि.... उसका समाधान करने के लिये यह अर्थ किया कि वाणी सर्वज्ञस्वरूप.... इतना अलग रखना। वाणी सर्वज्ञस्वरूप... वह वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है,.... वाणी, जैसा सर्वज्ञस्वरूप है, उसे अनुसरकर अपने में होने का उसका स्वतः स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? वाणी सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी.... किसका अर्थ किया यह?-अनुभवनशील का। अनुभवनशील का अर्थ किया। अनुभवनशील अर्थात् कि सर्वज्ञस्वरूप, अनुभवनशील अर्थात् अनुसारिणी। 'प्रत्यगात्मनः' ऐसे सर्वज्ञ। 'पश्यन्ती' अर्थात् अनुभवनशील। अर्थात् कि 'प्रत्यगात्मनः' अर्थात् सर्वज्ञ भगवान। 'पश्यन्ती' अर्थात् अनुभवनशील। अर्थात् सर्वज्ञस्वरूप को अनुसारिणी है। अनुभवनशील अर्थात् उसे अनुसारिणी है।

ऐसा माने बिना भी बने नहीं। आहाहा! भगवान की वाणी सर्वज्ञ को अनुसरकर निकलती है, ऐसा माने बिना भी चले नहीं। आहाहा! तथापि सर्वज्ञ ने कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय का भाव अपने गुण का पर्याय वाणी में जरा भी आया नहीं। कोई ऐसा कहे कि वाणी में तो भगवान के गुण भरे हैं, भगवान के ज्ञान का भण्डार वाणी में पड़ा है, खोटी बात है। ज्ञान चेतन और वाणी जड़। उसमें जड़ में चेतन कहाँ से आवे?

मुमुक्षु : अक्षरदेह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अक्षरदेह अर्थात् जड़ देह। अमरचन्दभाई!

कहते हैं कि ऐसे तो अनुभवनशील की व्याख्या अनुसारिणी, बस। अनुसारिणी, अनुसारिणी। जैसा है, वैसा वाणी वाणी के कारणसे निकल जाती है, स्वतः वाणी का स्वभाव है। स्वभाव ऐसा है। बात यह सिद्ध करनी है। भगवान का ज्ञान है, इसलिए ऐसा हुआ है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसा माने बिना भी बने नहीं। उसका विवरण—वाणी तो अचेतन है। वह तो अचेतन ही है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय सब अचेतन है। वाणी में कोई चेतन का गुण है नहीं, परन्तु उसको सुनने पर जीवादि पदार्थ का स्वरूपज्ञान जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार.... भाषा देखी वापस ? ऐसा कहा है न! उस वाणी को सुनने से उसे निमित्तपना, जैसा यहाँ क्षयोपशम हो, वैसा निमित्त हो। जैसा यहाँ क्षयोपशम हो, उस प्रकार से वह निमित्त हो, उस प्रकार का ज्ञान उसे हो। फिर वाणी में आया हुआ तत्त्व जो है, वह उसके ख्याल में आवे कि यह वाणी ऐसा कहती है कि शुद्धात्मा उपादेय है। तो उसके ख्याल में इतना आया स्वयं की योग्यता के कारण कि (ऐसा कहते हैं), परन्तु शुद्ध उपादेय हो कब ? यह जाना है, ऐसा स्वरूप का आश्रय करे, तब शुद्ध उपादेय होगा। अर्थात् जिस प्रकार से जानना, ऐसा कहा है। जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार जानना.... सीधा तो वाणी में ही कहने में आता है, वह सीधा ज्ञान तो ख्याल में इतना आया। स्वयं के कारण से, हों! इतना। वह भी स्वयं के कारण से हुआ, तब निमित्त कहने में आता है।

अब जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार जानना.... एक प्रकार यह। और दूसरा, कि उस वाणी में ऐसा आया था कि शुद्धात्मा-भगवान आत्मा अन्तर आश्रय करनेयोग्य है। उसका ज्ञान यहाँ उस प्रकार से आया, परन्तु वापस ऐसा जहाँ अन्दर ढला, तब उसका ज्ञान हुआ, तब वाणी उसे निमित्त कहने में आती है। समझ में आया ? आहाहा! भगवान की वाणी तो पूरी निकलती है। एकसाथ वाणी मूसलाधार पूर्ण (निकलती है)। सुननेवाले की जैसी क्षयोपशमता (होती है), उस प्रकार से उसे ज्ञान में ख्याल आता है। समझ में आया ? कल आया था न ? प्रद्युम्न का। नारद भगवान को पूछने गये। सीमन्धर भगवान। प्रद्युम्न, रुक्मणी का पुत्र। ...था न ? विद्याधर ले गया था। कामदेव पुरुष, अन्तिम शरीर, मोक्षगामी। यह देह अन्तिम थी। ऐसे देव (देखते हैं) महासुन्दररूप! बड़ा महासुन्दर... ऐसा सुन्दर कि विद्याधर को कोई पूर्व का बैर था तो ले गया। डाल दिया वहाँ (जंगल में)। कोई राजा निकला, उसे ले गया। उठाओ। इसके घर लड़का नहीं है। रानी को कहा कि यह लड़का नहीं न अपने को मिल गया। लड़का बड़ा हुआ और ऐसा रूपवान, ऐसा रूपवान...

कामदेव है। ...उसकी माँ को उसके साथ विषय-सेवन का मन हो गया, जिसने सोलह वर्ष बड़ा किया। ऐसा सुन्दर। वह आथ आवे नहीं।

नारद भगवान को पूछने गये। सीमन्धर परमात्मा के पास। भगवान की वाणी कोई अलग नहीं निकलती थी। इन्हें प्रश्न था कि प्रद्युम्न कब आयेगा? वाणी में तो सब पूरा आया था, वह ऐसा समझा कि भगवान ऐसा कहते हैं कि सोलह वर्ष में रुक्मणी के घर प्रद्युम्न आयेगा। ऐसा नारद समझा। वह अपने ज्ञान से समझा है। वाणी में तो सब एकसाथ आया। वाणी में ऐसा नहीं आया था कि प्रद्युम्न यहाँ आयेगा। वाणी में तो एकसाथ बारह अंग का ज्ञान आता है। समझ में आया इसमें? वहाँ उसने पूछा नहीं था परन्तु इसे प्रश्न था कि प्रद्युम्न खो गया है, कब आयेगा? क्योंकि वासुदेव का पुत्र। तीन खण्ड के राजा। जिसे अन्तिम शरीर है। मोक्षगामी। दिखाऊ ऐसा शरीर। महा चरमशरीर। उसकी माँ को चैन नहीं आवे। एक बार नारद गये। ...भगवान को पूछे नहीं, हों! पूछे क्या? उन्हें उस जाति का ख्याल लाना था, वह जहाँ वाणी निकली... भगवान कहते हैं कि सोलह वर्ष में आयेगा। सोलह... सोलह। एक और छह। वहाँ रुक्मणी को कहा, भगवान ने ऐसा कहा है कि सोलह वर्ष में आयेगा। भगवान ने कुछ कहा नहीं था, भगवान को तो एक साथ वाणी सब थी, परन्तु इसके क्षयोपशम में जिस जाति का था, उतना ख्याल आया, वह स्वयं के कारण से आता है, वाणी के कारण से (नहीं)। वाणी में तो सब एकसाथ आता है।

**मुमुक्षु : ...**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ...दूसरा क्या? वाणी में उसे ऐसा भास हुआ कि इस वाणी में ऐसा आता है। उसे इतने क्षयोपशम की योग्यता थी, वह आया। उस प्रकार का ज्ञान। कहा न? जिस प्रकार उपजता है, उसी प्रकार जानना.... उसे वह ज्ञान उपजा, भाई! दूसरे को अन्दर में (ऐसा हो), ओहो! भगवान ने आज क्षायिक समकित की बात की। दिव्यध्वनि में तो चला आता है। गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव...

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसको, भगवान तो पहले से जानते हैं। भगवान तो जानते हैं कि इस समय इसकी वाणी निकलेगी। केवलज्ञान में सब जानते हैं। उन्हें कहाँ नया जानना है? इस समय वाणी यहाँ से निकलेगी, यह भी भगवान के ज्ञान में पहले से आ गया है। वाणी करते नहीं, यह कुछ बोलते नहीं, आवाज बोलते नहीं। आहाहा! यह ज्ञान में पहले से आया

है कि वाणी निकलेगी, वहाँ उस समय यह ज्ञात होगा। ज्ञान में पहले से आया है। भगवान को नया नहीं है। सुननेवाले को नया लगा। इसीलिए कहा है, भगवान ने वहा ? बस, जिस प्रकार से उपजे, उस प्रकार से जानना। उसकी जिस प्रकार की योग्यता, उस प्रकार से उसे जानने में आवे, तब वाणी को निमित्त कहा जाता है।

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसके बहुत प्रकार हैं। इसलिए जिस प्रकार से उपजे उस प्रकार से जानना अर्थात् बहुत प्रकार हैं। जैसी जिसकी योग्यता उस प्रमाण उसके ख्याल में आया और उस प्रकार से उतना उसे निमित्त कहने में आया। गणधर को अन्तर्मुहूर्त में एकदम बारह अंग खिले। बारह अंग चौदह पूर्व।

.... इसलिए अन्दर में ऐसे जाता है, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। तब वह भी कहा है, उस प्रकार से हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? गजब टीका परन्तु ! राजमलजी ने की है न ! ऐ... राजमलजी ! ये तुम्हारे नाम के थे।

**जीवादि पदार्थ का स्वरूपज्ञान....** सब है न उसमें तो ? जीव, अजीव, धर्मास्ति (आदि) सब। उसका स्वरूप जैसा वहाँ है, वैसा वाणी में वाणी के कारण से निकलता है। वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की शक्ति वाणी में है। वाणी का स्वभाव ऐसा है कि स्वयं कौन है और पर कौन है, सर्वज्ञ कौन है, द्रव्य क्या है, स्वयं क्या है, पर क्या है, उस स्व-पर को कहने की ताकत वाणी में वाणी के कारण से है, भगवान के कारण से नहीं। ऐई ! आहाहा ! इसलिए उस **वाणी का पूज्यपना भी है**। देखा ! जिसे निषेध हुआ... **वाणी का पूज्यपना भी है**। समझ में आया ? जैसे भगवान की मूर्ति पूज्य है, पूजनेयोग्य है, वैसे वाणी भी पूज्य है। समझ में आया ? **वाणी का पूज्यपना भी है**। यहाँ तक वाणी को सिद्ध किया। भगवान ! अलौकिक बात है। बापू ! उसे पूरा पहुँचना, वह तो महा सामर्थ्य चाहिए। पूरी शक्ति तो श्रुतज्ञानी भी पूरा पार पाड़ नहीं सकते, ऐसी वह वस्तु है। अलौकिक बात, उसके चैतन्यपदार्थ की ! बापू ! उसकी पात्रता, उसकी योग्यता भी कितनी, सज्जनता, कितनी योग्यता उसमें होती है। तब वह वाणी उसे समझने के योग्य होती है। समझ में आया ?

**कैसे हैं सर्वज्ञ वीतराग ?** अब लिये सर्वज्ञ वीतराग को। अति बहुत हैं, गुण जिनके... अनन्त की व्याख्या की। अनन्त अर्थात् अन्त नहीं इतने। अति-बहुत हैं गुण जिनके। कैसे हैं सर्वज्ञ परमात्मा ? जिन्हें आकाश के प्रदेश के अमापपने के जितने प्रदेश हैं... अमाप...

अमाप... अमाप... अमाप आकाश चलता ही जाता है आकाश। कहीं नहीं, ऐसा कुछ है ही नहीं। है... है... है... है... ऐसा आकाश चलता जाता है। उसका एक पॉइन्ट परमाणु का रखे, उतने भाग को प्रदेश कहते हैं, वह प्रदेश ऐसे के ऐसे चलते ही जाते हैं, कहीं अन्त नहीं। उस प्रदेश की संख्या से सर्वज्ञ भगवान की पर्यायें अनन्तगुणी हैं। उनके गुण अनन्तगुणे हैं और उनकी पर्यायें अनन्तगुणी हैं। आहाहा। समझ में आया ?

अति बहुत हैं, गुण जिनके ऐसे हैं। भावार्थ इस प्रकार है—कोई मिथ्यावादी कहता है कि परमात्मा निर्गुण है... उसे सिद्ध करते हैं। गुणी ऐसा भगवान आत्मा, उसमें गुण और पर्याय अनन्त है। गुण नहीं और अकेला गुणी ही है, ऐसा नहीं है। कोई ऐसा कहते हैं कि परमात्मा तो निर्गुण होते हैं। और गुण कैसे? गुण का विनाश होने पर परमात्मपना होता है... ऐसा कोई कहता है। यहाँ कहते हैं कि गुण का प्रगटपना पूर्ण हो, उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा! इन अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानना। यह जाननेवाले को आत्मा का ज्ञान होता है। अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय! परमात्मा सर्वज्ञदेव, उनकी पर्याय कितनी, कितनी सर्वज्ञदशा! उसे जो जाने, वह आत्मा को जाने बिना रहता नहीं। समझ में आया? और प्रयोजनभूत तो आत्मा जानना वह है। बाकी सब बातें हैं। समझ में आया ?

भगवानस्वरूप अन्तर्मुख परमात्मा सर्वज्ञ प्रभु, स्वयं, हों! उसे अन्तर्मुख में जानना, उस वाणी में ऐसा आया था। ऐसा वाणी में भी अनन्त गुण है। वाणी में भी अनन्त धर्म है, यह आया था न? वाणी में भी अनन्त धर्म है। सर्वज्ञ में भी अनन्त धर्म है। इस श्रुतज्ञानी को भी अनन्त धर्म है। तीनों के लिये हैं न? अनन्तधर्मणः तत्त्व। अनन्त धर्म हैं वाणी में, अनन्त धर्म हैं सर्वज्ञ में, अनन्त धर्म है श्रुतज्ञानी में। तीनों में अनन्त धर्म है, अनन्त गुण है। लिखा है न भाई ने! पण्डित जयचन्द्रजी। सत्पना, वस्तुपना, प्रदेशपना, चेतनपना ऐसे एक आत्मा में अनन्त गुण हैं। एकपना, अनेकपना ऐसे अनन्त धर्म हैं। अनन्त गुण हैं, अनन्त धर्म हैं। ऐसे अनन्त धर्मों का मूल तत्त्व जो ज्ञायकतत्त्व है, उसे केवलज्ञान, श्रुतज्ञान जानता है, वाणी उसे बतलाती है। समझ में आया ?

यह वीतराग की वाणी के अतिरिक्त ऐसा तत्त्व अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता और जिसमें सर्वज्ञ एक समय में तीन काल, तीन लोक के जाननेवाले परमेश्वर, वे कैसे होते हैं? शरीर नग्न हो, आहार-पानी उन्हें न हो, एक वाणी हो, अन्दर सर्वज्ञदशा प्रगट हुई हो। ऐसे सर्वज्ञ जिनमें नहीं, उनके ऐसी वाणी नहीं हो सकती और उस वाणी में धर्म का



स्वरूप आया है, उसके बिना दूसरे की वाणी में ऐसा आता नहीं। इसलिए वाणी भी हमारे पूज्य है, जा!

गुण-गुणी का परमात्मपना नाश कहते हैं, गुण का नाश हो तो परमात्मा हो, ऐसा नहीं है। ऐसा मानना झूठा है, कारण कि गुणों का विनाश होने पर द्रव्य का भी विनाश है। भगवान आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आनन्द (गुण हैं)। दीपक की बात करते हैं न? दीपक में धुँआ है न? धुँआ। धुँए का नाश करना हो तो दीपक को बुझा डालो; वैसे आत्मा में से मैल निकालना हो तो आत्मा का ज्ञान ही मिटा डालना। समझ में आता है? ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से, आनन्दस्वभाव से अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। वह पर्याय में-अवस्था में अनन्त गुण की पर्याय जितनी है, वह सब प्रगट हो जाये। उसके गुणपने और पर्यायपने, उसका रहता है। गुणपना, पर्यायपना नाश हो तो परमात्मा हो, यह बात झूठी है। भगवान को केवलज्ञान हो। पश्चात् सिद्ध हुए तो तीन काल, तीन लोक को जानते न हों, ऐसा नहीं है। वे भी सब जानते हैं अपनी पर्याय में जानते हुए। ऐसा गुण भगवान सिद्ध में भी वहाँ रहा हुआ है। इसलिए गुण-गुणी का भेदपना कहने पर भी वह दोनों वस्तु यथार्थ है। गुणी बिना गुण नहीं होता और गुण बिना गुणी नहीं होता। उसका यहाँ ज्ञान कराकर, आत्मा का ऐसा स्वरूप है, ऐसा निर्णय कर। वाणी में ऐसा कहना है, सर्वज्ञ ऐसे हैं और तू ऐसा है, अन्दर निर्णय कर। यह निर्णय कर तो तुझे आत्मा का पता लगेगा। इसके बिना आत्मा का पता लगेगा नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१५

श्री समयसार, गाथा - ८९ से ९१, प्रवचन - १६६  
दिनांक - १६-०६-१९६९

समयसार कर्ता-कर्म अधिकार। ८९ का भावार्थ है। क्या सिद्ध करते हैं? कर्ता-कर्म सिद्ध करते हैं। अनादि का आत्मा अपने निज स्वरूप के भान बिना अज्ञान से मिथ्यादर्शन, अज्ञान, और अविरत परिणाम का कर्ता होकर परिणमता है, यह सिद्ध करते हैं। यदि ऐसा निर्णय करे कि मैं ही मेरी भूल से, बेभानपने से मिथ्याश्रद्धा, ज्ञान और अविरतरूप से परिणमता हूँ, तो उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाकर उसे छोड़ने का प्रयास करे। विकार किसी से होता है, ऐसा माने तो विकार टालने की अपने हाथ में बात रही नहीं। यह बात सिद्ध करते हैं।

भावार्थ : आत्मा के उपयोग में यह तीन प्रकार का परिणामविकार अनादि कर्म के निमित्त से है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दघन होने पर भी अनादि से... कहा था न? मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति जिसका स्वभाव है, ऐसे अन्य-वस्तुभूत मोह.... ऐसा शब्द लिया था। मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति जिसका स्वभाव है, ऐसा अन्यवस्तुभूत मोह, ऐसा लिया था। मोहकर्म का ऐसा स्वभाव है, जीव का स्वभाव नहीं, ऐसा बताते हैं। जीव की पर्याय में योग्यता है, निमित्ताधीन होता है। समझ में आया? मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरत एक समय की पर्याय में योग्यता है। स्वभाव तो कर्म का है, ऐसा यहाँ बताते हैं। देखो! भगवान आत्मा का स्वभाव विकार होना, वह स्वभाव नहीं है।

इसलिए उसमें कहा था न? ८९ में। अज्ञान और अविरति जिसका स्वभाव है, ऐसे अन्य-वस्तुभूत मोह के संयोग होने से,... यह संयोग की व्याख्या यहाँ भावार्थ में निमित्त की। आत्मा के उपयोग में... जानन-देखन व्यापार में तीन प्रकार का परिणामविकार... तीन प्रकार की अवस्थारूप दोष अनादि कर्म के निमित्त से है। निमित्त से, इसका अर्थ? अपने स्वभाव से नहीं। स्वभाव की योग्यता, पर्याय में (स्वयं की) योग्यता से। निमित्त पर है। अपना स्वभाव नहीं, तथा अशुद्ध नहीं हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

अनादि कर्म के निमित्त से है। ऐसा नहीं है कि पहले यह शुद्ध ही था.... पर्याय में, हों! द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध ही है, परन्तु पर्याय में पहले यह शुद्ध ही था और अब इसमें नया परिणामविकार हो गया है। ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्यघन, ऐसा होने पर भी, अनादि से पर्याय में उपयोग में परिणाम विकार का तीन प्रकार का कर्तारूप परिणमन है। समझ में आया? कर्म से नहीं।

यदि ऐसा हो तो सिद्धों को भी नया परिणामविकार होना चाहिए। यदि पहले पर्याय में शुद्ध था और अशुद्ध नहीं था, ऐसा यदि हो तो सिद्धों को भी नया परिणामविकार होना चाहिए। समझ में आया? ऐसा है नहीं। अनादि से अशुद्ध है। भगवान अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर अज्ञानी अनादि से उसकी पर्याय में-हालत में मिथ्यादर्शन आदि से परिणामविकार अशुद्ध है, पर से नहीं। तथा अशुद्धता नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** अपना है और पर से नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर से नहीं और अशुद्धता नहीं, ऐसा भी नहीं।

किन्तु ऐसा तो नहीं होता। सिद्धों को भी नया परिणामविकार होना चाहिए। शुद्ध हो और अशुद्ध हो जाये, ऐसा नहीं है। पर्याय में अनादि से अशुद्ध है। दुःखी है, दूसरी भाषा लें तो। अहो! आनन्द भगवान अतीन्द्रिय रसस्वरूप, अपरिमित चैतन्य आनन्द धातु, उससे वह आत्मा है, तथापि पर्याय में मिथ्यादर्शन आदि दुःखरूप पर्याय से परिणमित है। समझ में आया? इसलिए ऐसा यह समझना चाहिए कि वह अनादि से है। अनादि से ही। विकारभाव पर्याय में मिथ्यादर्शन, अज्ञान अनादि से है। ऐसा यदि निर्णय करे तो विकार पर्याय का नाश करने का अधिकार भी मेरा है। जैसे विकार करने का अधिकार मेरा है, वैसे नाश करने का मेरा अधिकार है। मेरे स्वभाव में है नहीं। पर्याय में है, स्वभाव में नहीं। ऐसी स्वभावदृष्टि करने से विकार अनादि का अशुद्ध होने पर भी उसका नाश होता है।

अनादि है और कैसे नाश होगा?—और कोई ऐसा कहता है। वह तो पर्याय है। प्रवाह से पर्याय है। नयी-नयी पर्याय अनादि से होती है। भगवान आत्मा अपना आनन्द ध्रुव स्वभाव की सम्हाल करने से अनादि अज्ञान होने पर भी.... यह कर्तृत्व की व्याख्या न, मिथ्यादर्शन आदि कर्तृत्व अर्थात् परिणमन है, ऐसा कहना है। कर्ता-कर्म है न? मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र ऐसा कर्तृत्व अर्थात् परिणमन है। वह स्वयं से है, पर से नहीं।

ऐसा यदि निर्णय करे तो स्वभाव सन्मुख होकर उसे टाल सकता है। आहाहा! समझ में आया ?

**मुमुक्षु** : पर से नहीं, स्वभाव से नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री** : स्वभाव से नहीं, पर से नहीं। पर्याय में अशुद्धता पहले से नहीं थी, ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु** : द्रव्य-गुण में भी नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं। यह तो पहले कहा। द्रव्य-गुण तो शुद्ध ही है। यह तो चिदानन्दघन आनन्दकन्द अतीन्द्रिय आनन्दरस है। उस स्वभाव में नहीं, यह तो पहले आ गया। पर से नहीं, यह आया। और नया नहीं, अनादि से है। समझ में आया ?

इसने अपने स्वभाव की कभी दया नहीं की। अपनी। समझ में आया ? ....समझ में आता है ? आत्मा सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर ने जैसा अनन्त आनन्द और ज्ञान प्रगट किया, वह सब आनन्द और ज्ञान आत्मा में है ही। भगवान ने पर्याय में-अवस्था में प्रगट किया, वह कहीं बाहर से वस्तु आयी नहीं। अनन्त चतुष्टय जो प्रगट किये—अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य... समझ में आया ? अनन्त दर्शन, वह सर्व शक्ति परमात्मा ने प्रगट की, वह अन्दर में थी। अनादि से अनन्त चतुष्टय पड़ा ही है। आत्मा में अनन्त चतुष्टय तो अनादि से पड़ा ही है। ऐसा होने पर भी अशुद्धपने के कर्तृत्वरूप से अज्ञान से परिणमता है, यह उसका निज अपराध है। समझ में आया ?

अशुद्धता बिल्कुल नहीं थी और नयी हुई है, ऐसा भी नहीं है; पर से हुई है, ऐसा भी नहीं है; स्वभाव से हुई है, ऐसा भी नहीं है। स्वभाव में है ही नहीं। पुद्गल कर्म का स्वभाव ऐसा लिया। भाषा देखो, भाई! पुद्गल का स्वभाव ऐसा है। वह पुद्गल का स्वभाव है। यह अन्दर में। मिथ्यादर्शन पर में, हों! अनादि पर में मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अव्रत का स्वभाव है, वह इसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! अनन्त आनन्द सम्पन्न प्रभु आत्मा है। वह अपने को भूलकर अनादि से विकाररूप परिणमन करता है।

**अब आत्मा के तीन प्रकार के परिणामविकार का कर्तृत्व बतलाते हैं :-** परिणमन है न? इसका है न? तो इसका ही कर्तृत्व है, दूसरे किसी का नहीं। कर्म ने किया नहीं और

किये बिना रहा नहीं। विकार किये बिना रहा नहीं और कर्म ने कराया नहीं। कर्तृत्व सिद्ध करते हैं, देखो!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हालत का अर्थ क्या? यह तो छहों द्रव्य है, परन्तु वह निमित्त दूसरी चीज़ है। होवे, उसमें क्या है? यह तो कहा। यह भी यहाँ कहेंगे। ९० (गाथा)।

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।

जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥९० ॥

इससे हि है उपयोग त्रयविध, शुद्ध निर्मल भाव जो।

जो भाव कुछ भी वह करे, उस भाव का कर्ता बने ॥९० ॥

**टीका :-** इस प्रकार अनादि से अन्यवस्तुभूत मोह.... देखो! उसमें लिया था न पहले? अन्यवस्तुभूत मोह जिसका स्वभाव है। अनादि से अन्यवस्तुभूत मोह.... कर्म एक जड़ पदार्थ अनादि से है। उसके साथ संयुक्तता के कारण.... देखो! समझ में आया? वहाँ पहले लिया था कि अन्यवस्तुभूत मोह का संयोग होने से... ८९ (गाथा में)। तीसरी लाईन। यहाँ कहा... ओहोहो! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति है। अभी कहेंगे। ऐसा होने पर भी, अनादि से अन्यवस्तुभूत मोह.... जड़कर्म, मिट्टी-धूल वह कर्म है। उस मोह के साथ संयुक्तता.... संयुक्तता-सम्बन्ध किया। संयुक्तता के कारण.... सम्बन्ध के कारण। अपने में उत्पन्न होनेवाले.... भाषा देखो! मैं आनन्द हूँ, ऐसा नहीं। मैं राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, मैं कर्म के कारण भटकता हूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव अपने में उत्पन्न होनेवाले जो यह तीन मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरतिभावरूप....

मोह के साथ संयुक्तता के कारण अपने में उत्पन्न होनेवाले.... भाषा देखो! कोई कर्म में विकार उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! अपने (आत्मा) में उत्पन्न होनेवाले जो यह तीन मिथ्यादर्शन,.... मिथ्याश्रद्धा। अहो! अपना आनन्द भूलकर पर में आनन्द है। दया, दान, व्रत, परिणाम में आनन्द है, ऐसी मान्यता मिथ्यादर्शन है। समझ में आया? क्योंकि विकल्प-राग है। राग तो दुःख है। अपने अभिप्राय में मोह के संयुक्तपने के कारण अपने में मिथ्यादर्शन उत्पन्न करके कर्ता होकर परिणमता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ संयुक्त कहा। मोह के साथ संयुक्त। तो यहाँ संयुक्तपने के

कारण। मोह के साथ संयुक्त। संयुक्त। सम्यक् प्रकार से सम्बन्ध किया। जुड़ा। यह तो संयोग तो भाषा है।

**मुमुक्षु :** गुजराती में तो दोनों में अन्तर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, बराबर है। वहाँ शब्द में अन्तर है। 'अनादिस्त्वन्तरभूत-मोहयुक्तत्वा' लो! यह तो पहले में भी मोहयुक्त है। यह तो शब्द में अन्तर है। यहाँ भी 'मोहयुक्तत्वा' (कहा है)। मोहयुक्त-सहित हुआ, सहित। रहित है, उसे सहित माना। ....जुड़ा। भगवान यह देखे.... यह आयेगा, देखो!

ऐसा आत्मा तीन मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरतिभावरूप परिणामविकार.... है। भगवान आत्मा में परिणामरूपी विकार अर्थात् दोष है। वस्तु तो त्रिकाल आनन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु परमेश्वर सिद्ध भगवान ने जैसा प्रगट किया, वैसा ही प्रत्येक आत्मा है। खबर नहीं। खबर नहीं न।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह एक ही है। दोनों एक शब्द है। यह तो अर्थ में अन्तर है।

मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरतिभावरूप.... ऐसा कहा है। अपने में उत्पन्न होनेवाले जो यह तीन मिथ्यादर्शन, अज्ञान... स्वरूप का अज्ञान और स्वरूप में अस्थिरता-अविरतभाव। ऐसे परिणामविकार हैं उनके निमित्त से.... उनके निमित्त से। आगे कहेंगे। अशुद्ध, सांजन अनेकभावपने को प्राप्त करता हुआ.... यह बाद में कहेंगे। ऐसे निमित्त से। अब कैसा है भगवान ? आत्मा तो कैसा है, अनादि-अनन्त अन्दर परमात्मा शुद्ध चैतन्य सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा प्रगट किया, वैसा सर्व आत्मा शक्तिरूप ऐसे ही हैं। निगोद से लेकर (सभी आत्मा ऐसे हैं।)

कहते हैं कि यद्यपि परमार्थ से तो उपयोग शुद्ध,.... देखो! उपयोग शब्द से त्रिकाली। त्रिकाली द्रव्य, वही उसका उपयोग। ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि त्रिकाली वस्तु है न! ज्ञान-दर्शन उपयोग त्रिकाली की बात है। यहाँ पर्याय की बात नहीं। उपयोग अर्थात् त्रिकाली आत्मा। जानन-देखन ऐसा उपयोगरूपी ध्रुव उपयोग जो त्रिकाल। यद्यपि परमार्थ से तो उपयोग शुद्ध,.... है। यहाँ पर्याय की बात नहीं है। त्रिकाल वस्तु एक शुद्ध ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं। राग का प्रवेश तो कहाँ से हो! ऐसे भगवान आत्मा की चीज़ है। खबर नहीं होती कहाँ मैं कैसी वस्तु हूँ ?

भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने जैसा प्रगट किया, वह वाणी द्वारा जगत को फरमाया। भाई! प्रभु! तेरी चीज़ तो ऐसी है। परमार्थ से तो उपयोग शुद्ध,.... त्रिकाल वस्तु शुद्ध, मलिनतारहित, एक (बात)। निरंजन,.... अंजन नहीं, मैल नहीं। शुद्ध अस्ति से कहा, निरंजन-मैल नहीं (यह नास्ति से कहा)। अनादिनिधन.... अनादि-अनन्त वस्तु है प्रभु। अनादि—आदि नहीं। अ-निधन। अ-निधन—अन्त नहीं। आदि नहीं, अन्त नहीं। ऐसी वस्तु सर्वस्वभूत चैतन्यमात्रभावपने से एक प्रकार का है... लो! आहाहा! कैसी है आत्मा की चीज़-वस्तु? शुद्ध उपयोग और निरंजन। शुद्ध है, अंजनरहित चीज़ है। उसमें मैल-बैल बिल्कुल नहीं है।

**मुमुक्षु :** कब ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि से है। कब से क्या ? वस्तु में कब मैल था ? वस्तु तो वस्तु है। शुद्ध चिदानन्द घन है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** अनादि से अभी भी ऐसी है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी भी है। अनादि से है, फिर प्रश्न कैसा ? ऐसी अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त लिया न ? अण आदि और अनिधन, ऐसा लेना। आदि नहीं और निधन अर्थात् अन्त नहीं। निधन अर्थात् मृत्यु। शुरुआत नहीं, अन्त नहीं, ऐसी चीज़ भगवान आत्मा। आहाहा!

**अनादिनिधन वस्तु के...** वस्तु अर्थात् आत्मा। उसका सर्वस्वभूत... ऐसा। वस्तु के सर्वस्वभूत.... भाव लेना है न ? वस्तु के सर्वस्वभूत.... भगवान आत्मा वस्तु, उसका सर्वस्व। सर्वस्व। पूरा स्व-अपना घन, अपनी लक्ष्मी, अपनी पूँजी। वह त्रिकाल चैतन्यमात्रभावपने... अकेला चैतन्यमात्र स्वभावपने एक प्रकार का है.... भगवान। आहाहा! वस्तुपने के सर्वस्वभूत। वस्तु जो भगवान आत्मा वस्तु, उसके सर्वस्वभूत त्रिकाल अपना निज स्वरूप चैतन्यमात्र भाव। भाव लेना है न ? वस्तु है, वह भाववान है। वस्तु भाववान है, स्वभाववान है। स्वभाव वस्तु के सर्वस्वभूत। ओहोहो! चैतन्यमात्रभावपने... चैतन्य जानन-देखन स्वभाव त्रिकाल उसका भाव है। समझ में आया ?

**एक प्रकार का है....** भगवान। तथापि तीन प्रकार पर्याय में होते हैं, यह बतलाना है। समझ में आया ? ओहोहो! तथापि- अब ऊपर का लेना। परिणाम विकार के निमित्त से.... उसके निमित्त कारण से अशुद्ध,.... अशुद्ध। शुद्ध है उसके सामने अशुद्ध। पर्याय में, हों!

शुद्ध तो त्रिकाली ध्रुव उपयोग है। सर्वस्वभूत चैतन्यमात्रपना। तो कर्म के संयोग के निमित्त से, ऐसा। कर्म के संयुक्तपने के कारण अशुद्ध हुआ है। पर्याय में अशुद्ध है। त्रिकाली शुद्ध, पर्याय में अशुद्ध। आहाहा!

**सांजन,....** ऊपर निरंजन कहा था। त्रिकाल निरंजन भगवान है। पर्याय में सांजन हो गया। अंजनवाला हो गया, मैलवाला हो गया। आहाहा! समझ में आया? और अनादिनिधन वहाँ कहा था न? **अनेकभावता को प्राप्त होता हुआ....** पर्याय में। एकरूप नहीं। वहाँ कहा था न पहले? त्रिकाली एक प्रकार का है। अनादि-अनन्त एक प्रकार का है। यह **अनेकभावता को प्राप्त होता हुआ....** यह सामने लेना। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** किसी ने तो इसे मलिन किया ही होगा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करे? किसने किया है? आत्मा की पर्याय ने किया है। आत्मा ने किया है, ऐसा कहेंगे भी। उसकी पर्याय है न? पर्याय ने किया है, परन्तु पर्याय उसकी है तो आत्मा ने किया है, ऐसा अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से कहा जाता है। आहाहा!

तीन बोल लिये। भगवान आत्मा त्रिकाली तो शुद्ध है, निरंजन है और एक भावरूप है। अनादि-अनन्त एक भावरूप है। पर्याय में कर्म के संयुक्तपने के कारण सम्बन्ध करने से पर्याय में अशुद्ध है, मैलवाला है। **अनेकभावता को प्राप्त होता हुआ....** वह एक है, शुद्ध है, निरंजन है, एक भाव है। पर्याय में अशुद्ध, मलिन और अनेक भाव को प्राप्त हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

**अनेकभावता को प्राप्त होता हुआ तीन प्रकार का होकर,....** तीन प्रकार हो गये। **स्वयं अज्ञानी होता हुआ....** भाषा देखो! कर्ता है न? **स्वयं अज्ञानी होता हुआ....** अहो! निज भाव टंकोत्कीर्ण आनन्दकन्द प्रभु, ऐसा भान नहीं होने से अज्ञानी होता हुआ कर्तृत्व को प्राप्त,.... भाषा यह है। उसका परिणमन सिद्ध करना है न? वह परिणमता है तो उसका तत्त्व है, ऐसा सिद्ध करना है। कर्तृत्व सिद्ध करते हैं।

**स्वयं अज्ञानी होता हुआ....** कर्म के कारण अज्ञानी होता हुआ, ऐसा नहीं है। देखो, कि दर्शनमोह के कारण अज्ञानी होता हुआ, ज्ञानावरणीय के उदय के कारण अज्ञानी होता हुआ, अन्तरायकर्म के उदय से वीर्य की हीनता करता हुआ—ऐसा है नहीं। ओहोहो! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन प्रभु एकरूप शुद्ध निरंजन होने पर भी अनादि-अनन्त तो एक ही चीज़ है, परन्तु कर्म के संयुक्तपने के सम्बन्ध के कारण, अपने में अपने अज्ञान के



कारण से अनेक भाव को प्राप्त हुआ, स्वयं अज्ञानी होता हुआ तीन प्रकार के कर्तृत्व को प्राप्त है।

**विकाररूप परिणमित होकर....** देखो! विकाररूप परिणमकर अवस्था में तीनरूप हुआ, वह स्वयं से हुआ है, किसी दूसरी चीज़ से नहीं। समझ में आया? देखो! यहाँ तो अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। अनादि से अज्ञानी है, उसे तो बात करते हैं। समझ में आया? कितने ही कहते हैं कि समयसार निचले दर्जे में पढ़नेयोग्य नहीं है, सुननेयोग्य नहीं है। वह तो साधु को पढ़ना। द्रव्यलिंगी साधु हो बराबर, तत्पश्चात् भावलिंग करने को समयसार पढ़ना। ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** कोई भावलिंगी मुनि नहीं होगा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कि.... पण्डित जयचन्द्रजी ने उपोद्घात में लिखा है न? पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है न उपोद्घात। ऐसा हो, ऐसी क्रिया हो परन्तु वस्तु को समझता नहीं, इसलिए उसे यह समझना चाहिए। प्रस्तावना, पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। इसमें है? इसमें नहीं होगा। गुजराती में है। खबर है न, खबर है। आहाहा!

यह तो अनादि अप्रतिबुद्ध को कहते हैं। अनादि अज्ञानी है, उसे तो बात करते हैं, यह उसे समझाते हैं। आहाहा! भगवान! तू तो अनादि शुद्ध है न, निरंजन है न, और एकरूप तेरी चीज़ है। उसमें से सांजन, मैल और अशुद्धता, अनेकता तेरी पर्याय में हुई है। ऐसा कहते हैं, लो! तेरी पर्याय में करना, नहीं करना वहाँ ही तेरी समाप्ति है, पर में तो कोई सम्बन्ध है नहीं। पर से तुझमें नहीं और तुझसे पर में नहीं। तेरा अज्ञानरूप परिणमन तुझसे होता है।

**विकाररूप परिणमित होकर....** वापस भाषा आयी। जिस-जिस भाव को अपना करता है,... देखो! जो-जो भाव पुण्य-पाप विकल्प रागादि हैं। जिस-जिस भाव को अपना करता है,... यह मैं हूँ... मैं हूँ.... मैं हूँ.... उस-उस भाव का वह उपयोग कर्ता होता है। भाषा तो ऐसी है। पर्याय कर्ता होती है। समझ में आया? जिस-जिस भाव को अपना करता है,... विकल्प कोई भी शुभ-अशुभ आदि के असंख्य प्रकार। वह जिस-जिस भाव को अपना करता है मिथ्यादर्शन में, उस-उस भाव का वह उपयोग कर्ता होता है। उस समय की उपयोग अर्थात् पर्याय परिणमनेवाली कर्ता कहने में आती है। समझ में आया? गजब बात, भाई! यह सब समझने की अपेक्षा 'जीविया वहरोविया तत्समिच्छामिदुकडम'

जाओ। इच्छामिपडिकमणा, जाओ। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चोइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया....

**मुमुक्षु** : उपयोग पर्याय है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : पर्याय है। यहाँ पर्याय है। यहाँ उपयोग पर्याय है। पहले उपयोग जो कहा था, परमार्थ उपयोग, वह त्रिकाल है। तीसरी लाईन में। ओहो! कैसी भूल किस प्रकार हुई है, यह निर्णय का भी ठिकाना नहीं, तो भूल टालने का प्रयत्न तो कहाँ से करे? समझ में आया? जिस-जिस भाव को अपना करता है, उस-उस भाव का.... भाषा देखो! उस-उस भाव का वह उपयोग कर्ता होता है। उस उस भाव की मिथ्यादर्शन आदि की पर्याय कर्ता है। आहाहा!

**मुमुक्षु** : निश्चय से कर्ता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : निश्चय से है। पर्याय कर्ता है। कर्ता होती है। भाषा 'किलोपयोगः' शब्द है न। 'तस्य किलोपयोगः कर्तास्यात्' 'किल' का अर्थ ...उपयोग कर्ता है, ऐसा है। नहीं है, नहीं? 'किलोपयोगः कर्ता'। वास्तव में है। 'किल' अर्थात् वास्तव में है। वास्तव में है न, परन्तु वह कहीं अध्धर है? नहीं परिणमता, ऐसा है? परिणमता है। वास्तव में अज्ञान से रागादि मिथ्यादर्शनरूप जिस-जिस भाव को अपना बनाता है, उसरूप वह परिणम जाता है। परिणम जाता है। पर्याय में, हों! समझ में आया? आहाहा!

जिस-जिस भाव को अपना करता है,.... जिस-जिस भाव अर्थात् भाव शब्द से यहाँ विकारी पर्याय, हों! जिस-जिस भाव को अपनी विकारीदशा में अपने करता है, उस-उस भाव का.... उस-उस विकारी पर्याय का उपयोग कर्ता होता है। समझ में आया? इतनी स्पष्ट बात है। अन्तर में से इसे मेरा दोष है, मैं ही अशुद्धरूप परिणमा हूँ, ऐसा यदि निर्णय करे तो उसे टालने के लिये यह बात करते हैं, रखने के लिये बात नहीं करते। समझ में आया? भगवान! यह कृत्रिम पर्याय है न। कृत्रिम की हुई नयी है, वह वस्तु में है नहीं। भगवान आत्मा उपयोग अकृत्रिम अनादि-अनन्त शुद्ध निरंजन एक प्रकार का है। उसकी दृष्टि करने से उस विकारी पर्याय का व्यय हो जाता है, अज्ञान का नाश होता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया? भारी कठिन काम! जगत को समझना नहीं और बाहर से क्रियाकाण्ड अपवास-बपवास कर डाले और यह क्रिया करेंगे, इसमें से कल्याण हो जायेगा। अनादि मिथ्यादर्शन का पोषण (करता है) और मानता है कि कुछ धर्म करता हूँ। समझ में आया?

**भावार्थ :-** (गाथा) ९० का भावार्थ । पहले कहा था कि जो परिणमित होता है, सो कर्ता है। परिणमन करे, वह कर्ता। कर्ता की व्याख्या ही यह है। परिणमित होता है, सो कर्ता है। समझ में आया ? कर्ता का अर्थ परिणमन करे, वह कर्ता। बस, इतनी व्याख्या। यहाँ अज्ञानरूप होकर उपयोग परिणमित हुआ,.... देखो ! भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर कुछ भी उसे पर में उत्साहित वीर्य (हो), रागादि को अपना मानकर उत्साहित वीर्य से परिणमता है, वह कर्ता है। देखो !

पहले कहा था कि जो परिणमित होता है, सो कर्ता है। यहाँ अज्ञानरूप होकर उपयोग परिणमित हुआ,.... कोई कर्म परिणमा है, ऐसा नहीं है। इसलिए जिस भावरूप वह परिणमित हुआ.... जिस दशारूप। भाव अर्थात् दशा। जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरतरूप से वह परिणमित हुआ, उस भाव का उसे कर्ता कहा है। उस पर्याय को, उसकी पर्याय का करनेवाला है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? इस प्रकार उपयोग को कर्ता जानना चाहिए। यह पाठ में पर्याय है न ? इस प्रकार पर्याय का कर्ता। उपयोग शब्द से अपनी पर्याय है, वह विकाररूप परिणमती है तो उसका कर्ता जानना।

**यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनय से....** भगवान आत्मा की दृष्टि देखो, वस्तु देखो ! शुद्ध द्रव्यस्वरूप भगवान परमानन्दमूर्ति, परमेश्वर सर्वज्ञ का फरमान (है कि) ऐसी तेरी चीज़ जो शुद्ध परमात्मस्वरूप द्रव्य अन्दर है, उस दृष्टि से देखने पर तो आत्मा कर्ता नहीं है,.... वह वस्तु क्या करे ? वस्तु कहाँ परिणमती है ? समझ में आया ? शुद्ध द्रव्यस्वरूप जो है, वह कहाँ परिणमता है ? परिणमन करे, वह कर्ता, यहाँ तो ऐसा कहा न ? **यद्यपि शुद्धद्रव्य....** वस्तु। शुद्ध द्रव्य अर्थ अर्थात् प्रयोजन। जिस ज्ञान का शुद्ध द्रव्य को लक्ष्य में लेना प्रयोजन है, ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा, वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से अथवा शुद्ध द्रव्य से पवित्र भगवान आत्मा, इस दृष्टि से आत्मा कर्ता नहीं है,.... वस्तु तो विकार की कर्ता है नहीं। वस्तु विकार की कर्ता हो तो वस्तु विकारमय हो जाये। समझ में आया ? ऐसी चीज़ है नहीं।

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति शुद्ध चिद्घन है, वह तो विकार का कर्ता है नहीं। मिथ्यादर्शन, अज्ञान का कर्ता शुद्ध द्रव्य है ही नहीं। समझ में आया ? कर्ता का अर्थ परिणमन करनेवाला। शुद्ध द्रव्य मिथ्यादर्शनरूप परिणमता नहीं। वस्तु से परिणमन कैसे हो ? वस्तु तो त्रिकाल है। मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अचारित्ररूप वस्तु तो परिणमती नहीं। क्यों नहीं होता ? कि वस्तु किस प्रकार परिणमे ? समझ में आया ? वस्तु यदि परिणमे तो ध्रुव रहती नहीं और ध्रुव परिणमता नहीं। परिणमे तो पर्याय परिणमति है। समझ में आया ?

तथापि... ऐसा होने पर भी। भगवान आत्मा तो अपने शुद्ध स्वभाव की दृष्टि से देखो तो पर्याय में आता ही नहीं, तो पर्यायरूप-विकाररूप परिणमे, ऐसा तो कहाँ से आया? निर्विकाररूप परिणमना भी ध्रुव का स्वभाव नहीं, तो विकाररूप परिणमना, ऐसा द्रव्य का स्वभाव है ही नहीं। आहाहा! यह वस्तु-वस्तु भगवान आत्मा सत् शाश्वत् वस्तु—ध्रुव वस्तु, वह तो कभी विकाररूप होती नहीं। देखो! यहाँ कितने ही कहते हैं कि नहीं, विकार पर्याय में हुआ तो द्रव्य भी विकार हो गया।

**मुमुक्षु :** द्रव्य-पर्याय अभेद है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभेद है कहाँ? पर्यायदृष्टि से अभेद है। द्रव्यदृष्टि से तो भिन्न है। द्रव्य भिन्न है, पर्याय भिन्न है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बाप द्रव्य और बेटा पर्याय....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बेटा-वेटा है नहीं। यह व्यवहार से पर्याय है। परिणाम है, वह सब व्यवहार है। भगवान आत्मा अपरिणामी कूटस्थ त्रिकाली ध्रुव अपरिणामी नित्य है।

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी नहीं। उसकी कहना वह व्यवहार है। परमार्थ से उसकी नहीं। पर्याय पर्याय की है। यहाँ भी पुत्र कहना, ऐसा है कहाँ? पुत्र किसका? लड़का किसका और पुत्र किसका? सब स्वतन्त्र है। किसका पुत्र? और किसका पिता? ओहोहो! इसी प्रकार आत्मा भगवान प्रजा के पिता व्यवहार से कहा जाता है। वस्तु ऐसी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ध्रुव रहता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ध्रुव किस प्रकार रहे? ध्रुव तो ध्रुवरूप से है। कूटस्थ है, नित्य है, अपरिणामी है, अपरिणामी परिणाम स्वभाव है। सहज स्वभाव है। नहीं बदलने का अपरिणामी पारिणामिकभाव है। अपरिणामी पारिणामिकभाव है। समझ में आया?

ऐसा आत्मा मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अचारित्ररूप कभी परिणमता नहीं। तथापि उपयोग और आत्मा एक वस्तु होने से। एक अर्थात् व्यवहारनय से। अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से। अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहो या पर्यायार्थिकनय कहो या व्यवहारनय कहो। अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय, ऐसा क्यों लिया? वह द्रव्य स्वयं पर्यायरूप से उसकी पर्याय परिणमती है, ऐसा सम्बन्ध

लेने को कहा है। वास्तव में अशुद्धद्रव्यार्थिक अर्थात् व्यवहार। व्यवहार अर्थात् पर्यायार्थिकनय। पर्यायार्थिकनय से देखो तो आत्मा को भी कर्ता कहा जाता है। और अभेद पर्याय गिनने में आती है। पर्याय और आत्मा एक व्यवहार से है। व्यवहार से। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...नय के झगड़े में किसलिए पड़ें ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कुछ कहते नहीं। झगड़े का कौन कहे ? यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु है, वह रागरूप परिणमती नहीं। बस, इतनी बात है। रागरूप पर्याय परिणमती है, तो पर्याय उसकी जो गिनने में आवे तो कहते हैं कि आत्मा भी उसका कर्ता, ऐसा कहा जाता है। निश्चय से तो उसका कर्ता है नहीं। उसमें नय क्या ? यह तो सीधी बात है। नय का उसमें विशेष काम ही क्या है ? समझ में आया ? वस्तु जो भगवान आत्मा ध्रुव चिदानन्द आनन्दकन्द है, वह विकाररूप परिणमता नहीं। परिणमनेवाली तो पर्याय है। परन्तु पर्याय का सम्बन्ध प्रदेश से एक है, ऐसा गिनकर आत्मा भी उसका कर्ता व्यवहारनय से कहने में आता है, परमार्थ से कर्ता होता नहीं। लो ! समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है, परन्तु एक समय की अवस्था है और यह त्रिकाली है। बड़ा अन्तर है न। यह त्रिकाली ध्रुव है, यह एक समय की अवस्था है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अशुद्धता तो प्रदेश से अन्य गिनने में आयी है। एक समय की मिथ्यादर्शन की अशुद्ध पर्याय, उसके प्रदेश भी अन्य गिनने में आये हैं। भगवान आत्मा के प्रदेश शुद्ध, वे आत्मा के प्रदेश हैं। असंख्य प्रदेशी अनन्त आनन्द का पिण्ड वस्तु, वह द्रव्य है। समझ में आया ?

‘शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन’ श्रीमद् में आता है न ? ‘स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम।’ ‘शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन।’ चैतन्यघन में असंख्य प्रदेश लिये हैं। शुद्ध है, पवित्र है, बुद्ध है, ज्ञान का पिण्ड है। चैतन्यघन असंख्यप्रदेशी है, ऐसा डाला है। एक प्रदेशी नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** घन है। घन है तो असंख्य प्रदेश क्षेत्र बतलाना है। क्षेत्र से असंख्य

प्रदेश एकरूप घन है, ऐसा बतलाना है। अनन्त पिण्ड है, वह तो सब शुद्ध बुद्ध में आ गया। समझ में आया? क्षेत्र में असंख्य प्रदेश क्षेत्र पिण्ड एकरूप है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' स्वयं ज्योति भगवान आत्मा है, सुख का-आनन्द का धाम है। 'दूसरा कितना कहें कर विचार तो...' कुछ कर, अर्थात् क्रिया कर - ऐसा नहीं कहा। कर विचार अर्थात् ज्ञान, श्रद्धा कर तो प्राप्त कर। ऐसी बात है। समझ में आया? आत्मसिद्धि का श्लोक है। आत्मसिद्धि है न श्रीमद् की?

आत्मा और पर्याय उपयोग व्यवहार से एक वस्तु होने से अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से, अशुद्ध मलिन पर्याय की दृष्टि से आत्मा को भी कर्ता कहा जाता है। व्यवहार से पर्यायदृष्टि से आत्मा को कर्ता कहा जाता है। है तो वास्तव में पर्याय, द्रव्य उसका कर्ता नहीं। द्रव्य कहाँ परिणमता है? वह तो वस्तु है। महा भगवान चैतन्यस्तम्भ पड़ा है, स्तम्भ। खूँटा-खूँटा। यह सोगानी कहते हैं न? ध्रुव का खूँटा। कीला। खूँटा समझते हो न? कीला। कीला। ध्रुव कीला। ध्रुव खूँटा भगवान आत्मा है। खूँटे के साथ बछड़े को बाँधते हैं न, तो आगे-पीछे नहीं जा सकता। वह दूर नहीं जा सकता। बछड़ा। उसी प्रकार ध्रुव खूँटा है, उस पर दृष्टि लगायी तो परिणाम दूर नहीं जा सकते। समझ में आया? अपने द्रव्य की पर्याय को छोड़कर दूसरे को अपना माने, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! ९०वीं (गाथा) कही।

अब, यह कहते हैं कि जब आत्मा के तीन प्रकार के परिणामविकार का कर्तृत्व होता है,.... भगवान आत्मा में अज्ञानरूप से वस्तु के भान बिना तीन प्रकार का-मिथ्यादर्शन, अव्रत, अज्ञानरूप परिणमन होता है, तब पुद्गलद्रव्य अपने आप ही कर्मरूप परिणमित होता है :- यह सिद्ध करना है, लो! जीव अपने विकाररूप परिणमता है तो पुद्गल अपने कारण से अर्थात् कर्म के कारण से कर्मरूप होता है। यहाँ विकारी परिणाम किये तो कर्मरूप होना पड़ा, ऐसा नहीं है।

**मुमुक्षु :** यह हो गया न? यहाँ मिथ्यात्व किया, इसलिए उसे होना पड़ा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होना पड़े, ऐसा नहीं, उसकी पर्याय में वह होने की योग्यता से होता है। इसलिए यह सिद्ध करना है। मिथ्यादर्शन, अज्ञानरूप जब आत्मा पर्याय में परिणमा तो उसी समय पुद्गल अपनी पर्याय से स्वतन्त्ररूप से, पर की अपेक्षा रखे बिना निश्चय से अपनी कर्मरूपी पर्यायरूप परिणमता है। आहाहा! समझ में आया? ९१ (गाथा)।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।  
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं ॥९१ ॥

जो भाव जीव करे स्वयं, उस भाव का कर्ता बने ।  
उस ही समय पुद्गल स्वयं, कर्मत्वरूप हि परिणमे ॥९१ ॥

समय तो यही है न? समय दूसरा है कि इसने विकार किया और फिर दूसरे समय में कर्मरूप हुआ, ऐसा है? समय तो एक ही है। मिथ्या श्रद्धा से, पर में सुख है, पुण्य में धर्म है, राग में धर्म है, राग मेरी चीज़ है, ऐसा मिथ्यात्व किया, उसी समय दर्शनमोहनीय की पर्याय उसी समय होती है। समय दूसरा नहीं कि यह किया तो दूसरे समय में कर्मरूप परिणमन हुआ। ऐसा है? है यह, पंचास्तिकाय में आया है या नहीं? ऐई! निमित्त। पुण्य-पाप परिणमते हैं, नहीं? यह आता है या नहीं? क्या भाषा है? १३२-१३३। १३२-१३३ गाथा है न? ऊर्ध्व। ऐसा है न? यह पंचास्तिकाय में है। पहले निमित्त फिर ऊर्ध्व। ऊर्ध्व का अर्थ उस समय में है। दूसरा है क्या? पहले-बाद में समय है ही कहाँ? ओहोहो! गड़बड़, वह गड़बड़।

मुमुक्षु : उसका... दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिया है न, खबर है। आ गया? १३२।

मुमुक्षु : स्वामीजी ऐसा अर्थ करते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया अब? और हिम्मतभाई को भी दबाना पड़ा। क्या करे? महाराज ने ऐसा कहा तो हिम्मतभाई को करना पड़ा। अरे रे! लिखा है। सब खोटा है।

देखो! जीवरूप कर्ता के निश्चयकर्मभूत शुभपरिणाम द्रव्यपुण्य को निमित्तमात्ररूप से कारणभूत है.... नया पुण्य बँधता है न? उसमें जीव का शुभभाव निमित्तमात्र है। इसलिए द्रव्यपुण्यास्त्रव के प्रसंग का अनुसरण करके.... द्रव्यपुण्य-साता आदि बँधती है न? ( -अनुलक्ष करके ) वे शुभपरिणाम भावपुण्य हैं। ( सातावेदनीयादि द्रव्यपुण्यास्त्रव का जो प्रसंग बनता है, उसमें जीव के शुभपरिणाम निमित्तकारण हैं, इसलिए द्रव्यपुण्यास्त्रव प्रसंग के पीछे-पीछे उसके निमित्तभूत शुभपरिणाम को भी भावपुण्य ऐसा नाम है। )

मुमुक्षु : ....में आगे-पीछे जाये, उसके बदले पीछे-पीछे अटके हुए, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो शब्द वहाँ पड़ा है।

**मुमुक्षु :** आता है न सर्वत्र। अब फिर ऐसा कहेंगे। अब फिर ऐसा कहेंगे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ तो साथ का साथ है। जिस समय विकार हुआ, उसी समय कर्म परिणमता है और जिस समय कर्म का उदय कर्म में आया उसी समय अज्ञानी अपने रागरूप परिणमता है। उसमें समयभेद है ही कहाँ? ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, खबर है न।

**मुमुक्षु :** १२५ गाथा है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** १३२।

यहाँ तो कहते हैं, देखो! आत्मा जिस भाव को करता है, उस भाव का वह कर्ता होता है; उसके कर्ता होने पर पुद्गलद्रव्य अपने आप कर्मरूप परिणमित होता है।

**टीका :-** आत्मा स्वयं ही उस प्रकार ( उसरूप ).... मिथ्यादर्शन, अज्ञान और विकाररूप, अव्रतभावरूप से। आत्मा स्वयं ही उस प्रकार ( उसरूप ) परिणमित होने से जिस भाव को.... जिस पर्याय को वास्तव में करता है, उसका वह - साधक की ( मन्त्र साधनेवाले की ) भाँति.... साधक का दृष्टान्त देते हैं। साधक की भाँति-कर्ता होता है; वह ( आत्मा का भाव ) निमित्तभूत होने पर,.... आत्मा का भाव निमित्तभूत होने पर पुद्गलद्रव्य कर्मरूप स्वयमेव ( अपने आप ही ) परिणमित होता है। कर्म तो उसी समय में अज्ञानी ने जैसा यहाँ मिथ्यादर्शन किया, उसी समय दर्शनमोह की पर्याय उसी समय कर्मरूप परिणमती है। पहले यहाँ विकार किया और दूसरे समय में वहाँ विकार दर्शनमोहरूपी परिणमे, ऐसा है ?

खबर कैसे पड़ी कि ऐसा है और इसने किया ? खबर का क्या काम है ? खबर पड़े, ऐसा द्रव्य तो एक ही है। पाँच द्रव्य तो जड़ हैं। उसी समय वे ही परमाणु उस दर्शनमोहनीयरूप परिणमने के योग्य थे। ऐसा स्वयं से स्वयं पर की अपेक्षा बिना, पर की अपेक्षा कहना तो व्यवहार हुआ, अपने आप वे परमाणु स्वयं दर्शनमोहरूप परिणम जाते हैं। ओहोहो! समझ में आया ? पहले-बाद में नहीं। निमित्त पहले और फिर नैमित्तिक हुआ, ऐसा है ?

**मुमुक्षु :** पीछे-पीछे लिखते हैं न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पीछे-पीछे का अर्थ क्या साथ-साथ में। यहाँ हो तो वहाँ होता है,



ऐसे पीछे-पीछे। एक बड़ा व्यक्ति चलता हो तो पीछे-पीछे लड़का चलता है, परन्तु किसी गति में पहले पीछे कोई है नहीं। दोनों चलते हैं। दोनों का समय एक है। गजब, भाई! अभी तो यह स्थूल बात आयी।

यहाँ ( आत्मा का भाव ) निमित्तभूत होने पर,.... देखो! पुद्गलद्रव्य उस काल में कर्मरूप स्वयमेव ( अपने आप ही ) परिणामित होता है। समय दूसरा है? पाठ में तो लिया है। 'कम्मत्तं परिणामदे तम्हि स्वयं पोग्गलं' उस समय। आहाहा! स्वयं है न? स्वयं शब्द पड़ा है न? जैसे मन्त्र साधक उस प्रकार के ध्यानभाव से मन्त्र का साधनेवाला। उस भाव में मन्त्र का भाव साधनेवाले के पास भाव है। वह ध्यानभाव से स्वयं ही परिणामित होता हुआ ध्यान का कर्ता होता है.... उस पर्याय का कर्ता होता है। और वह ध्यानभाव समस्त साध्यभावों को अनुकूल होने से.... देखो! यह ध्यानभाव साध्य जो सामने चीज़ है, उसे अनुकूल होने से... सामने चीज़ अनुरूप है, वह अनुकूल होती है।

ध्यानभाव समस्त साध्यभावों को.... जो-जो कुछ ध्यान में लक्ष्य करना हो कि सर्प का जहर उतरे इत्यादि-इत्यादि.... यह तो तीन दृष्टान्त दिये हैं, परन्तु मन्त्र तो बहुत हैं। ध्यानभाव समस्त साध्यभावों को.... जो कुछ उसके लक्ष्य में है कि यह उसका जहर उतरे या पागल हो जाये इत्यादि.... ताला टूट जाये कि ऐसा। साध्यभावों को अनुकूल.... क्या कहते हैं? सामने पर्याय जो होती है, उसमें ध्यानभाव निमित्त है और ध्यानभाव का जो साध्य है, उस साध्य को ध्यानभाव अनुकूल है, निमित्त है। निमित्तमात्र होने पर, साधक के कर्ता हुए बिना.... ध्यान के साधक कर्ता हुए बिना। ध्यान को करनेवाला अपने ध्यान का कर्ता है। उस ध्यान का साधक ध्यान के कर्ता के अतिरिक्त पर का कर्ता नहीं होता।

( सर्पादिक का ) व्याप्त विष स्वयमेव उतर जाता है,.... लो! सर्प का, यह बिच्छू का होता है न? वह तो उसके कारण से उतरने की अपनी पर्याय से उतर जाता है। मन्त्र का साधक तो मन्त्र के भाव का ही कर्ता है, बिच्छू, सर्प आदि की पर्याय का कर्ता है नहीं, उतारने का वह कर्ता नहीं है। समझ में आया? एक समय में साथ में होता है। मन्त्र का लक्ष्य है तो यह साध्य, यह साध्य दशा होने की है, उसमें ज्ञान अनुकूल है, निमित्त है। निमित्त अपनी पर्याय को करता है और पर की पर्याय को किये बिना... ऐसा लिया है न? साधक के कर्ता हुए बिना.... साधक के कर्ता हुए बिना।

मुमुक्षु : ध्यान करनेवाले ने कुछ किया नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, ध्यान करनेवाले ने ध्यान के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं किया। देखो! ध्यान में ऐसे लक्ष्य में लिया तो जहर शीघ्र उतर जाता है न! जहर उतरने में निमित्त का प्रभाव है या नहीं? ऐई! उत्तमचन्दजी!

**मुमुक्षु :** उतरने का हो तो वह उतरता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लो, इसने बिच्छू का बहुत उतारा है। पहले बहुत बिच्छू थे। पुराना घर हो गया न। अब तो ३५ वर्ष हो गये। पहले बिच्छू बहुत निकलते थे। यह जंगल था न जंगल! बहुत बिच्छू निकलते थे। .....

यहाँ तो कहते हैं, साधक जीव का ध्यान साधक, हों! ध्यान करनेवाला है कि यहाँ सर्प का जहर उतरे, बिच्छू का उतरे, परन्तु वह सर्प के और बिच्छू के जहर उतारने का कर्ता हुए बिना, ध्यान के कर्तावाला पर की क्रिया का कर्ता हुए बिना **विष स्वयमेव उतर जाता है,...** लो! विष के उतरने का कर्ता ध्यान का करनेवाला नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई! लोग निमित्त को कर्ता बना देते हैं। देखो! मन्त्र बोले तो जहर उतर गया, इससे इनकार करते हैं, ऐसा है नहीं। वह उतरने की पर्याय उस समय होनेवाली थी, उसमें ध्यान को निमित्त-अनुकूल कहने में आया है, परन्तु समयभेद नहीं है। यहाँ आया और वहाँ उस समय तुरन्त उतरता है, वह उस समय में है। उसका कर्ता ध्यानी नहीं। विचार में लिया कि यहाँ बिच्छू का जहर ऐसे उतरे.... लो! विशेष बात है.....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )

१६

श्री समयसार, शक्ति - १ से ३, प्रवचन - ३४९  
दिनांक - २८-०८-१९६२

यह समयसार का सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। इसमें परिशिष्टरूप से जरा अनेकान्त को चर्चित करते हैं। यहाँ तक आया है। देखो! **आत्मा को ज्ञानमात्रपना है।** उत्तर की चौथी लाईन। है? यह आत्मा में शक्तिरूपी देवियाँ-कितनी शक्तियाँ हैं, उसका वर्णन है। लोग कहते हैं न कि यह शक्तिदेवी, नहीं कहते? अन्य में एक मोरबी के पास है न? कौन सा गाँव? सनाळा? सनाळा में गये थे तो वहाँ शक्तिदेवी का मन्दिर था। वे लोग, काठी लोग मानते हैं। शक्तिदेवी। कहा, यह कौन शक्तिदेवी? कहा, वह शक्तिदेवी इस आत्मा की यह जीवत्व आदि जो अनन्त शक्तियाँ, वे देवियाँ हैं। उन देवी का स्वामी आत्मदेव है। वह परमेश्वर आत्मा है। उसकी यह सब अनन्त शक्तियाँ और दैवी शक्ति, दैव शक्ति है उसकी, परन्तु लोग बाहर शक्ति खोजने जाते हैं। अपनी शक्ति अपने में कैसी है, उसकी खबर नहीं और बाहर में उसकी शक्तियों को खोजने जाते हैं। उस शक्ति की तो परमेश्वर को जरूर पड़ी थी, ऐसी बाबा बात करता था। वह शक्तियाँ ऐसी कि परमेश्वर को भी उस शक्ति की आवश्यकता पड़ी। परमेश्वर भी इस शक्ति के बिना काम नहीं कर सकता था। कहा, बात तो सच्ची है। यह परमेश्वर ऐसा आत्मा यह अनन्त शक्ति बिना काम नहीं कर सकता। क्योंकि अनन्त शक्ति का एकरूप यह आत्मद्रव्य है।

यहाँ अमृतचन्द्राचार्य महाराज अलौकिक रीति से शक्ति का वर्णन करके धर्मी का, धर्म का, धर्मी का जीवन कैसा होता है? और किस जीवन का उसे निषेध वर्तता है? उससे पहले शुरु किया है। समझ में आया? जीव है सही न? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' दूसरी गाथा में शुरुआत की थी न? तो जीव का जीवत्व क्या? आत्मा अर्थात् जीव, उसका जीवत्व क्या? उस शक्ति का स्वरूप क्या? और उस शक्ति से जीवे, उसका कार्य क्या है, इसका वर्णन किया जाता है।

**इसलिए उसके ज्ञानमात्र एकभाव की अन्तःपातिनी....** क्या कहते हैं? यह ज्ञानमात्र

आत्मा है। ज्ञानलक्षण से लक्षित। परन्तु यह ज्ञानमात्र से लक्षित होता जो भगवान अनन्त शक्ति का एकरूप, उस एकभाव के अन्दर, ज्ञान के एक स्वरूप के अन्दर, अन्तःपातिनी-अन्तर में ज्ञान के लक्षण से अन्तर लक्ष्य करने से सम्यक्ता उछले, उसके साथ दूसरी अनन्त शक्तियों का उत्पाद पर्याय में उछलता है। ऐसा भगवान आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप रहा हुआ तत्त्व है, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। **अन्तःपातिनी ( -ज्ञानमात्र एक भाव के भीतर आ जानेवाली- ) अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं।** ओहोहो! समझ में आया? फुब्बारे को ऐसे जब दबाते हैं न, एकदम अन्दर से पानी निकलता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा, उसके ज्ञान लक्षण द्वारा अन्तर के लक्ष्य में दबाव करता हुआ-एकाग्रता करता हुआ, उसकी पर्याय में अनन्त शक्ति फुब्बारे की भाँति सम्यक्पने को प्राप्त करती हुई, शान्ति को देती हुई उछलती है। समझ में आया?

आत्मा के जितने धर्म हैं.... सभी धर्मों का परिणामन रहता है। सभी धर्मों का परिणामन.... समझ में आया? जितने धर्म हैं उन सबको, लक्षणभेद से भेद होने पर भी, प्रदेशभेद नहीं है;.... क्या कहा यह? सब आत्मा के गुण और पर्याय अनेक होने पर भी, लक्षण भेद से भिन्न होने पर भी असंख्य प्रदेश में वस्तुरूप से भिन्न नहीं हैं, प्रदेशभेद नहीं है। **आत्मा के एक परिणाम में.... एक ज्ञान की पर्याय सम्यक् रूप से परिणामने पर सभी धर्मों का परिणामन रहता है।** अनन्त गुणों की पर्याय व्यक्तरूप से आंशिक परिणामन शुद्ध हो जाता है।

इसलिए आत्मा के एक ज्ञानमात्र भाव के भीतर अनन्त शक्तियाँ रहती हैं। ओहोहो! एक समय में आत्मा अन्तर लक्षण से लक्षित (होता हुआ), ज्ञान लक्षण से लक्षित ध्येय को पकड़ने पर उसके द्रव्य में जितनी शक्तियाँ अनन्त हैं, उतनी उनकी वर्तमान पर्याय में, पर्याय में प्रगटरूप, उत्पादरूप, परिणामरूप, व्यक्तरूप शक्ति में से आंशिक सभी पर्यायों का परिणामन उछलता है। उस पर्यायसहित के, गुणसहित के द्रव्य को आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? **इसलिए ज्ञानमात्र भाव में.... अर्थात् कि ज्ञानमात्र भावस्वरूप आत्मा में- अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं।** अनन्त शक्तियाँ उछलती अर्थात् परिणामती है अर्थात् आ पड़ती है। आती है। अब उनमें से कितनी ही शक्तियाँ निम्न प्रकार हैं— अनन्त शक्तियों का वर्णन तो हम कैसे करें? हमारे अधिकार में नहीं। छद्मस्थ हैं, ऐसा आचार्य कहते हैं। उसमें से कितनी ही शक्तियों का वर्णन करेंगे, वह निम्नानुसार है।

पहली शक्ति। जीवत्वशक्ति, जीव का जीवपना, जीव का जीवत्व धर्म, वह क्या है?

आत्मद्रव्य के कारणभूत... आत्मा वस्तु, उसके कारणरूप, कारण होनेरूप ऐसे चैतन्यमात्र भाव का.... चैतन्यमात्र भावप्राण, चैतन्यमात्र भावप्राण, उसका धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी जीवत्वशक्ति। क्या कहते हैं? यह पाँच इन्द्रिय, मन, वचन और काया, श्वास और आयुष्य, ये दस प्राण हैं। इन दस प्राण का जीवन, वह आत्मा का जीवन नहीं है। समझ में आया? पाँच इन्द्रियाँ, तीन योग, श्वास, आयुष्य—ये दस जड़ प्राण, इनके अवलम्बन से जीवे, वह जीव का जीवत्व नहीं है, वह जीव का स्वभाव नहीं है, वह जीव की शान्ति इसमें नहीं है। दस प्राण से जीवे और टिके, वह आत्मा का जीवन नहीं है।

दूसरी बात। इन दस प्राणी की जो पर्याय में योग्यता है... दस प्राण तो जड़ कहे। असद्भूत व्यवहारनय से जीवन। आहाहा! समझ में आया? यह तो शक्ति देवी को खोलने की बात है। जरा सूक्ष्म बात पड़े परन्तु समझनेयोग्य है। यह भगवान का खजाना खोलते हैं शक्तियों में से। भगवान आत्मा, वह दस प्राण द्वारा जीवे, वह जीवन उसका नहीं है। आहाहा! और उसमें दस प्राण जड़ जो निमित्तरूप है, उसमें आत्मा में अशुद्ध उपादान की योग्यता से, जो योग्यता से जीवन है, वह जीव का जीवन नहीं। वह जीव का जीवन अर्थात् ताकत और धर्म की जागृति का वह जीवन नहीं। समझ में आया?

अब रहा शक्ति का जीव स्वभाव। आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव (प्राण) का धारण जिसका लक्षण.... चैतन्य भावप्राण धारण टिकाना जिसका लक्षण—ऐसा स्वरूप, ऐसी जीवत्वशक्ति। सब गुणों को जीवरूप से रखनेवाला, जीवत्वरूप से रखनेवाला, सब गुणों की पर्याय का पूरा जीवत्वरूप से रहना, वह आधार, ऐसा जीवत्व नाम का जो स्वभाव, उसे सँभालते हुए वह जीवत्वशक्ति शक्तिवान द्रव्य की है। जीवत्वशक्ति शक्तिवान ऐसे आत्मद्रव्य की है। वह आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसी जीवत्वशक्ति है। ऐसी जीवत्वशक्ति को चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है... अर्थात्? कि जीवत्व नाम का जो स्वभाव-शक्ति-गुण, उसका जो आधार द्रव्य, उसका कारण जीवत्वशक्ति।

यहाँ तो जीवत्वशक्ति के कारणरूप द्रव्य को नहीं लेकर, आत्मद्रव्य के कारणभूत, भाई! ऐसा लिया। क्या कहा? जीवत्वशक्ति का कारण द्रव्य, ऐसा न लेकर, जीवत्वशक्ति आत्मद्रव्य का कारण है, (ऐसा लिया है)। आहाहा! आत्मवस्तु-भगवान आत्म, उसमें जीवत्वशक्ति, उसके भावप्राण, चैतन्यशक्ति के भावप्राण का धारण ऐसा जीवद्रव्य का

कारण। जीव के भाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता, सुख इत्यादि। ऐसे जो आत्मा के भावप्राण, भावप्राण-ताकत, वह आत्मद्रव्य को कारणभूत जीवत्वशक्ति है। उस आत्मद्रव्य पर दृष्टि पड़ने से उस जीवत्वशक्ति का परिणमन (होता है)। द्रव्य में जीवत्वशक्ति रही, गुण में रही और पर्याय में भी ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सुख इत्यादि उसका (परिणमन), जीवत्वशक्ति जो जीवद्रव्य का कारण है, उसका परिणमन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, सुख-शान्ति का जो पर्याय में परिणमन हो, वह जीवत्वशक्ति तीनों में व्याप गयी। क्या कहा ?

यह जीवत्वशक्तिवाला आत्मा। उस आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से उस जीवत्वशक्ति का परिणमन हुआ। वह भावप्राण को धारण करनेवाली जो जीवशक्ति, उसके प्राण ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति आदि के प्राण वहाँ खिले। उस पर्याय में ये प्राण खिले, ये पर्याय में प्राण प्रगट हुए, वह जीवत्व का, जीव का जीवत्वशक्ति का पर्याय में जीवन प्रगट हुआ, वह जीव का जीवन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ?

आता है न ? 'जीवी जाण्युं नेमनाथे जीवन।' स्तुति में आता है। समझ में आया ? 'जीवी जाण्युं नेमनाथे जीवन।' वह जीवी जाण्युं ज्ञानी ने जीव का जीवन। सम्यग्दृष्टि का जीवन दस प्राण के आधार से उसका जीवन नहीं। दस प्राण की योग्यता अपनी पर्याय में वर्तती है, अशुद्ध उपादान से। दस प्राण तो निमित्त जड़ है परन्तु अशुद्ध उपादान से पाँच इन्द्रिय की योग्यता, भाव इन्द्रिय की। भाव इन्द्रिय की, हों! मन, वचन, काया के प्राण की विकास की वीर्य की योग्यता और श्वास और आयुष्य जितना काल रहे, उतनी भी उसकी पर्याय में वहाँ निमित्त है तो यहाँ नैमित्तिक में योग्यता है। वह जीव का जीवन नहीं। वह जीव का टिकना नहीं। उसके कारण जीव टिकता है, यह सत्य नहीं है। समझ में आया ? वह जीव के जीवन के दीपक प्रगट हुए।

कहते हैं कि भगवान आत्मा... अहो! जीवद्रव्य को कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण.... अनादि से धारण, अशुद्ध योग्यता को धारता था और निमित्त की ओर के लक्ष्य में मानो निमित्त को धार रखता हूँ, ऐसी दृष्टि थी, वह दृष्टि जीवत्वशक्ति का धारक इस आत्मद्रव्य को कारण (भूत) भावप्राण, ऐसे द्रव्य पर दृष्टि पड़ने से (शक्ति का परिणमन होता है)। यह समयसार द्रव्यदृष्टि का विषय है। इसलिए भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने इसमें से शक्तियाँ अर्थात् द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य का स्वभाव, द्रव्य का गुण, द्रव्य के सामर्थ्य का वर्णन करके द्रव्यदृष्टि से वर्णन किया है। समझ में आया ?

प्रवचनसार में ४७ नय लिये हैं। वह ज्ञानप्रधान कथन से लिये हैं। क्योंकि उसमें ज्ञानप्रधान कथन प्रवचनसार में है। इसलिए उसमें सब नय ज्ञानप्रधान से बतलाये हैं। समझ में आया? उसके परिणमन में राग का परिणमन या मेरा कर्तृत्व धर्म है। वह रागरूप नहीं परिणमना, ऐसा भी अकर्तृत्व मेरा धर्म है। उसकी पर्याय में ज्ञान को ज्ञेय बनाकर अर्थात् ज्ञान में ज्ञेय बनाकर उसके ४७ धर्म वर्णन किये हैं। यहाँ तो द्रव्य को ज्ञेय बनाकर (शक्तियों का वर्णन करते हैं)। समझ में आया? वह तो पर्यायों को ज्ञेय बनाकर ज्ञानप्रधान से कथन है। यहाँ द्रव्य को ज्ञेय बनाकर, द्रव्य को ध्येय बनाकर, उसकी शक्तियों का वर्णन करते हुए कहते हैं, भगवान! अहो! तेरा जीवन... समझ में आया?

ज्ञान, आनन्द, सम्यग्ज्ञान अर्थात्? जो ज्ञान अपने को पकड़ सके, ऐसी सम्यग्ज्ञान पर्याय। जीवन की शक्ति की सम्हाल करते हुए जीवन के शक्ति का आधार द्रव्य और उसका कारण वह जीवत्वशक्ति। ऐसे आधारवन्त आत्मद्रव्य में दृष्टि, लक्ष्य, ध्येय करने से उस द्रव्य का परिणमन होने पर जीवत्वशक्ति पर्याय में परिणमी, पर्याय में वह जीवत्वशक्ति अनादि काल की परिणमी नहीं थी। क्या कहा, समझ में आया? वह जीवत्वशक्ति परिणमी नहीं थी। आहा! विकाररूप जो परिणमन दस प्राण का था, वह वास्तव में जीवत्वशक्ति का कार्य ही नहीं है। क्या कहते हैं? समझ में आया?

जीवत्वशक्ति शुद्ध स्वभाव भावप्राण है। उसकी शक्ति का परिणमन शान्ति, ज्ञान, आनन्द का अंश, ज्ञान की सम्यक्ता, दर्शन की सम्यक्ता, शान्ति की प्रगटता, ऐसे अनन्त गुणों का जीवन एक जीवनशक्ति के आधार से (प्रगट होता है)। अरे! एक जीवनशक्ति में अनन्त शक्तियाँ रही हुई है। व्यापकरूप से एक जीवनशक्ति है, वहाँ अनन्त गुण रहे हुए हैं। इसलिए एक जीवनशक्ति परिणमने पर उसमें कर्ता, जीवनशक्ति अपने गुण की पर्याय की कर्ता निर्मल ज्ञान, दर्शन और आनन्द के प्राणरूपी कर्म का कार्य, वह जीवनशक्ति के कारण से अपनी ज्ञान, दर्शन की, शान्ति की भावप्राण की धारण टिकनेरूप पर्याय का करण, उस जीवनशक्ति में है। समझ में आया? ऐसा उसके अवलम्बन से निर्मल पर्याय प्रगट होकर स्वयं अपने में रखे और जीवनशक्ति का कारण अथवा आधार द्रव्य, उसके आधार से जीवनशक्ति का कार्य जो आत्मा में हो, उसे पर का आधार है नहीं। समझ में आया? अशुद्ध भावप्राण के आधार से इस जीवत्वशक्ति का भावप्राण निभता है, टिकता है—ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म परन्तु भाई यह। समझ में आया?

यह अधिकार तो (संवत्) २०१६ के वर्ष में पढ़ा था। बड़े अक्षर में लिखकर। सोलहवें

पर्यूषण में धार्मिक दिनों में (पढ़ा था), परन्तु तब तो बड़े अक्षर में (पढ़ा था)। एक आँख का ऑपरेशन हुआ, परन्तु कच्चा था न! एक में था मोतिया। अब तो दोनों समान उघड़ गयी है, इसलिए अब बारीक अक्षर से पढ़ा जाता है। समझ में आया? देखो! क्या कहते हैं।

ओहोहो! यह जीवनशक्ति, इसका स्वभाव का भाव धारक द्रव्य और वह द्रव्य टिकता है जीवत्वशक्ति के कारण जीव का जीवन, लो। यह अशुद्ध भावप्राण से टिके, वह जीव का जीवन नहीं। उसकी रेलमछेल इस द्रव्य पर दृष्टि पड़ने से वह जीवत्वशक्ति जो सत्त्व सामर्थ्यरूप से पड़ी है... दैवी शक्ति। परमेश्वर आत्मा की दैवी शक्ति। परम ईश्वर ऐसा जो भगवान, उसकी दैवी शक्ति को देखने से, यह भेद न पाड़कर अभेद चैतन्य पर दृष्टि पड़ने से उस जीवनशक्ति के साथ सभी शक्तियाँ एकसाथ उछलती हैं। कहने में क्रम पड़ेगा, उछलने में क्रम नहीं। क्या कहा? कहने में क्रम पड़ेगा, प्रगट होने में क्रम नहीं। समझ में आया?

यह जीव का जीवन, कहते हैं कि ऐसी जीवत्वशक्ति। आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी.... अकेला चैतन्यमात्र भावप्राण। वह प्राण पोसना, ऐसा नहीं कहते? अभी एक ऐसा आया था। व्यवहारनय के प्राण को पोसना। अरे! भगवान! समझ में आया? अरे! प्रभु! परन्तु उन व्यवहारनय के प्राण में तू नहीं। व्यवहारनय के विषय में तू नहीं। बराबर होगा यह? यह व्यवहारनय के विषय में तेरे प्राण नहीं। किसे पोसना है? प्रभु! आहाहा! परन्तु उल्टा पड़े तब भी जबरो न! अनन्त तीर्थकर समझावे तो भी इसकी अशुद्धता बड़ी। इसे समझाने की ताकत कोई परमेश्वर नहीं रखता। इसका परमेश्वर इसकी ताकत रखता है। ओहोहो! क्या हो? कहो, समझ में आया?

व्यवहारनय के कारण निश्चय प्रगटे, ऐसा कहनेवाले व्यवहार के प्राण पोसनेवाले, वे जीवत्व की शक्ति के प्राण की पर्याय का नाश कर रहे हैं। समझ में आया? देवीलालजी! बराबर है? यह व्यवहारनय का तो यह... भगवान! यह व्यवहारनय के प्राण हैं न, ज्ञान उघाड़ जो भावेन्द्रिय, उसे तुझे पोसना है? वह व्यवहारनय का विषय है। अशुद्ध उपादान कहो या निश्चय की अपेक्षा से व्यवहारनय का विषय कहो। ज्ञान का उघाड़ पाँच इन्द्रिय का, भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड और मन, वचन और काया का वीर्य। मन-वचन तो जड़ है, उसमें वीर्य का उघाड़रूप निमित्त है, उसे पोसना है? उसे पोसना है? वह पोषण तो अनादि से कर रहा है। अब तेरा उसमें जीवन क्या आया? उसमें कुछ तेरा सकरवार-भला हुआ नहीं। सकरवार कहते हैं तुम्हारे हिन्दी में? यहाँ सुना? अच्छा! समझ में आया?



जो कोई प्राणी.... यह... ..यह मन, वचन और काया है तो यदि आत्मा में ज्ञान आदि शक्ति खिलती है। यह पाँच इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड हैं तो आत्मा का ज्ञान खिला हुआ है। अभी तो यह खिलने को द्रव्य इन्द्रिय हो तो खिले, ऐसा कहते हैं। भगवान! कहाँ गया तू? समझ में आया? यह पाँच इन्द्रियाँ जड़ और इसके प्राण, वे तो तुझमें तीन काल, तीन लोक में नहीं है। वह प्राण जीवन है, वह तो जीव का जीवन कहलाता नहीं। भावप्राण जो अशुद्ध है, उन्हें भी अभी स्वतन्त्र स्वीकार नहीं करते। समझ में आया? अभी तो यह ज्ञान का खण्ड-खण्ड उघाड़ ज्ञानावरणीय के कारण होता है और वीर्य का उघाड़ अन्तरायकर्म घटे तो होता है, (ऐसा मानते हैं)। उसकी तो यहाँ बात भी नहीं ली। भगवान! तेरी पर्याय में जितना जीवन ज्ञान के उघाड़ का और वीर्य का है, वह उघाड़ भी व्यवहारनय का विषय, वह तेरा निश्चय जीवन नहीं है; और निश्चय जीवन उसे सत्य जीवन, भ्रमणारहित जीवन कहा जाता है। व्यवहार जीवन, वह भ्रमसहित जीवन है। समझ में आया? वह व्यवहार जीवन में जरा रहा योग्यता, वह ज्ञानी के निश्चय जीवन के भावप्राण के विकास के भान में वह जरा योग्यता, वह ज्ञान का विषय जाननेयोग्य रह गया। समझ में आया? वह आदरणीय रहा नहीं। समझ में आया इसमें कुछ? जगुभाई! ऐसे धार्मिक बड़े दिनों में ऐसी बातें! ऐ... प्राणभाई! यह प्राण की बात चलती है। आहाहा!

अरे! तुझे मनवाला कहे और तू प्रसन्न हो, तुझे वाणीवाला कहे और तू प्रसन्न हो, वह तेरे प्राण नहीं, प्रभु! तुझे शरीरवाला कहे और तू प्रसन्न हो, तुझे भावेन्द्रिय के खण्ड-खण्डवाला कहे और तू वहाँ प्रसन्नता को प्राप्त हो! समझ में आया? आहाहा! वह तेरा जीवन नहीं, भाई! तुझे तेरे जीवन की, इस जीवन की पन्थ की रीति, इस जीवन के पन्थ में दृष्टि देने से कैसा जीवन उघड़े, ऐसी तुझे बापू! खबर नहीं है, भाई!

भगवान आत्मा ऐसे ज्ञानमूर्ति छलाछल भरा हुआ है न। इस वस्तु में ऐसे समुद्र में ज्वार आवे, वह पानी का ज्वार आवे, उछल जाये पानी अन्दर से, मध्यबिन्दु में से उछलता है। वैसे जीवत्वशक्ति जो आत्मा के भाव ज्ञान, आनन्द आदि प्राण का धारण करती ऐसी जीवत्वशक्ति का धारक भगवान परमेश्वर, उसके सामने टग-टग देखने से, उसके ऊपर नजर करने से... त्राटक समझते हो? लोलक चलता हो, उसमें त्राटक हो? स्थिर हो तो ऐसा हो। यह स्थिर द्रव्य ध्रुव है कि जिसमें दृष्टि दे तो दृष्टि स्थिर हो सकती है। क्योंकि द्रव्य परिणमनवाला या गमनवाला नहीं है। वह तो एकरूप सत्त्व परमात्मस्वभाव, उसमें वह जीवत्वशक्ति, उसकी खान में पड़ी है। सेठी! तुम नहीं थे पर्यूषण में उन दो वर्ष पहले?

२०१६ के वर्ष। गत वर्ष थे। गत वर्ष में श्रावक अधिकार चला था। यह पद्मनन्दि का। दोपहर में नहीं? सवेरे क्या था, खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जीवन का जीवन जीना तुझे आया, प्रभु! ऐसा कहते हैं। अहो! तेरी खान में जीवत्वशक्ति का कारण और आधार ऐसा दर्शन-ज्ञान-आनन्द आदि भावप्राण, प्राण... प्राण... प्राण... अन्दर पोषित होते हैं। उस प्राण का पोषण देनेवाली यह जीवत्वशक्ति है। उस जीवत्वशक्ति का आधार भगवान आत्मा है। उस भगवान आत्मा पर दृष्टि पड़ने से उसकी पर्याय में उन तीनों में जीवत्वशक्ति व्याप्त हो जाती है। वह जीवत्वशक्ति पर्याय में व्यापे तब, उस जीवत्वशक्ति का कार्य कहा जाता है। वह ज्ञान, दर्शन, प्राण जो आनन्द आदि प्रगट हुए, उसका कारण जीवनशक्ति और वास्तव में लो तो मूलकारण द्रव्य। उसे यह भावप्राण अशुद्धता या इतना लम्बा जीवन था, लम्बा आयुष्य था तो उसके कारण यह भावप्राण पोषित हुए, (ऐसा नहीं है)। लोग कहते हैं न कि लम्बा आयुष्य हो तो काम हो। कुछ अच्छी इन्द्रियाँ आदि हों तो काम हो। यहाँ इनकार करते हैं। आयुष्य प्राण से तेरा काम हो, यह बात नहीं है। समझ में आया? इस जीवत्वशक्ति के कारण तेरा काम हो, ऐसी यह शक्ति और स्वभाव है।

‘जीवी जाण्युं नेमनाथे जीवन।’ जीना जाना सम्यग्दृष्टि ने जीवन। समझ में आया? धर्म इसमें आता होगा या नहीं कुछ? धर्म कहाँ आता होगा इसमें? इसमें जीवत्वशक्ति आयी। उसके भावप्राण को धारण (करे)। परन्तु अब उसमें क्या? उसमें धर्म कहाँ आया? कहाँ गये माणेकलालभाई! इसमें धर्म कहाँ आया? वे पूछते हैं। इसे बराबर खबर नहीं पड़ती कि यह क्या महाराज कहते हैं? धर्म क्या कहते हैं यह? बात तो ऐसी करे और कहे, उसमें धर्म होता होगा। किस प्रकार धर्म होता होगा? भीखाभाई!

**मुमुक्षु :** इसमें करने का नहीं आता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह करने का नहीं यह? यह तो पहले छह कारक कहे। एक जीवनशक्ति में छह कारक पड़े हैं। एक जीवनशक्ति में षट्कारक के कार्य पड़े हैं। उस जीवनशक्ति का आधार भगवान ऐसे जीव का जीवत्वभाव, उसका भाववान प्रभु, उसमें दृष्टि देने से उसके ज्ञान की, दर्शन की, आनन्द की पर्याय प्रगटे, उसे धर्म कहा जाता है। यह उसने किया, यह उसने किया। यह मालिक होकर किया। माटी होकर अर्थात्? स्वामीपने किया। माटी अर्थात् स्वामी। हमारे कहते हैं न, धणी कहते हैं। मालिक होकर किया, पामर होकर नहीं। इस जीवत्वशक्ति का प्राण मैं हूँ। जीवत्वशक्ति का मैं ही कारण हूँ। मेरा आत्मा

है तो उसमें जीवत्वशक्ति रही हुई है। मालिकरूप से, स्वामीरूप से जीवत्वशक्ति को परिणामाता आत्मा, अपनी शान्ति, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता का अस्तित्व, ऐसे ज्ञान, दर्शन और आनन्द के साथ (परिणमता है)। अस्तित्व तो सदा है परन्तु ज्ञान-दर्शन-आनन्द के प्राण जहाँ प्रगट हुए, तब वास्तविक उसका अस्तित्व कहा गया है। समझ में आया? देवीलालजी! यह जरा वह हो, ऐसा है, हों! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। इसमें कोई ऐसी नहीं वह जरा... समझ में आया इसमें?

**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण....** भावप्राण-भावप्राण, शुद्ध भावप्राण, पवित्र भावप्राण। उसकी खान में पवित्र भावप्राण, यह उसका—जीवत्वशक्ति का परिणमन-कार्य होने पर आनन्द और शान्ति जीवन को मिले, उसे धर्म कहा जाता है। गजब भाई यह धर्म! कभी ऐसी जीवत्वशक्ति सुनी थी अन्यत्र कहीं? है? दूसरे सम्प्रदाय में है कहीं यह? ४७ शक्तियाँ लाओ दूसरी जगह हो तो। इसने तो वाँचन किया है या नहीं? श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़े हैं। है उसमें ऐसी ४७ शक्तियाँ? समझ में आया? आहाहा!

यह तो जिसके पास हो, वहाँ से आवे न? जिसमें न हो, वहाँ से नहीं आती। इन ४७ शक्तियों का वर्णन इस भरतक्षेत्र में इस शास्त्र के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। इस आत्मा के अतिरिक्त नहीं अर्थात् जहाँ आत्मा हो, वहाँ शक्ति का वर्णन होता है। समझ में आया? और यह अमृतचन्द्राचार्य उछल निकले थे। देखो न! ऐसा कहा न वह? उछलते हैं। उछलते हैं अर्थात् उछल निकला हूँ मैं। मेरी ज्ञानपर्याय सम्यक् चैतन्य के अवलम्बन से होने पर मेरी अनन्त शक्तियाँ अमृत के साथ, आत्मा के आनन्द के साथ उछल गयी है। समझ में आया? यह मेरी पर्याय में ज्वार आया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनादि का भाटा था। अनादि का भाटा। भाटा कहते हैं या नहीं? पानी वापस जाता है न? ज्वार-भाटा।

**मुमुक्षु :** ज्वार-ज्वार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्वार तो आवे वह या जाये वह? उतर जाये वह।

यहाँ तो कहते हैं आवे उसे यहाँ आवकार है। अन्तर में से आवे उसका आवकार है, जाये उसकी बात यहाँ नहीं है। कहो, समझ में आया? तुम्हारे विवाह में नहीं गाते? वे महिलायें-स्त्रियाँ जायें तब कहे। आवे उसे आवकार देना रे। महिलायें कुछ गाती हैं। अपने गाते हैं यह दशा-विशा में। वह बारात जाये न महिलायें-महिलायें? खाने जाये-जीमने। तब ऐसी सब भाषा बिना ठिकाने की थी। आवे उसे आवकार देना रे... मेरी वह... कहते हैं न वह इसकी समधि न? अमुक समधि न ऐसा। कुछ नहीं होता ठिकाने बिना का। ढोंग-ढोंग।

यहाँ कहते हैं कि अरे...! आत्मा एक समय की पर्याय में जीवन के जीवन यहाँ उछले उसका सत्कार... सत्कार... सत्कार... करना। आदर... आदर... आदर (करना) और पर्याय का राग और अशुद्धता का आदर छोड़ना। निषेध-निषेध। परन्तु यहाँ निषेध की बात की नहीं। यहाँ तो अस्ति से चला है न! क्योंकि नमः समयसाराय (कहकर) अस्ति से शुरु किया है या नहीं? ऐसी अस्ति से शक्ति का वर्णन करके समयसार पूरा करेंगे। समझ में आया? ऐसी जीवत्वशक्ति।

तब कोई कहे कि ऐसी अन्दर शक्ति है तो क्यों काम नहीं करती? उसमें जीवनशक्ति यदि पड़ी हो तो वह काम करती नहीं? यह प्रश्न करते थे। एक वकील थे वे। ऐसा धोया हुआ मूला जैसा हो तो काम क्यों नहीं दिखता? कहे। भाई! वह तू कारणरूप द्रव्य को बनाये, तब कार्य हो न? तूने अभी राग को, निमित्त को, संयोग को कारण बनाकर तेरा कार्य करने का तू प्रयास करता है। समझ में आया? इसलिए जब जीवत्वशक्ति का धारक भगवान आत्मा, उसे कारणरूप (बना)... है तो कारणपरमात्मा स्वयं, परन्तु कारण को कारणरूप बनाया कब जाये? कि उसके ऊपर वर्तमान दशा को उसमें अन्तर में झुकाये, तब उस कारण को कारण बनाया और उसकी पर्याय में आंशिक कार्य आया। समझ में आया? कितने ही कहते हैं न? कारण भी उसे कहा जाता है कि कार्य हो। ऐसी भाई दलील करते हैं। कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा (हो) तो कार्य होना चाहिए। सुन न! वह कारणपरमात्मा हो तो कार्य होगा ही, परन्तु तेरी दृष्टि में कारणपरमात्मा तू ले, तब कार्य हो या कारणपरमात्मा को दृष्टि में न ले और राग को, अल्पज्ञ को (दृष्टि में रखकर कार्य आवे)? समझ में आया? उसे मानता तो नहीं।

यह भगवान आत्मा एक समय में चैतन्य झपकता सूर्य, एक ज्ञान की पर्याय के साथ उछलती अनन्त-अनन्त शक्ति का ढाल ढलता ऐसा प्रवाह पड़ता पूरा एक समय में पर्याय उछलती है। परन्तु तू उसे मान और कारण बना तब न? दूसरे को कारणरूप माहात्म्य दे और इसे माहात्म्य न दे तो यह परिणमन होगा नहीं। धर्मचन्दजी! एक शक्ति हुई।

ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में-आत्मा में उछलती है। परिणमती है, उत्पाद, वह जीवत्वशक्ति का गुण का गुणी के आधार में लक्ष्य देने से उस गुण का परिणमन पर्याय में उछलता है। यह उसका जीवन अनन्त काल में जिया नहीं, ऐसा उसका जीवन हो गया। अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी जीवन जिया नहीं था, ऐसा जीवन हो गया। ऐसे जीवन में कदाचित् पुण्य भी बँध जाये कोई राग रहा हो, वह भी अनन्त काल में पुण्य नहीं

बँधा था, ऐसा पुण्य बँध जाये। समझ में आया ? तथापि उसका ज्ञाता-दृष्टा रहे, आदर नहीं।

दूसरी शक्ति। अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति। लो! अजड़त्व, जड़पना नहीं। जिसमें जड़पना नहीं। अजड़त्व। जड़त्वपना नहीं। वह जीवत्वपना, जीवत्वपना, तो जड़त्वपना नहीं, ऐसा। समझ में आया ? बिल्कुल जड़त्वपना उसमें नहीं। जीवत्वशक्ति पूर्ण जीवन्तशक्ति, उसका जीवन, तब जड़त्वपना एक अंश भी उसमें नहीं है। अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति। तब कोई कहता है कि चैतन्य भावप्राण में तो आया था यह। चैतन्य भावप्राण में चितिशक्ति आ गयी, परन्तु चितिशक्ति का माहात्म्य अनन्त... अनन्त... अनन्त दर्शन और ज्ञान जाने, ऐसी ताकत उसकी है। उसकी अनन्त महिमा बतलाने को चितिशक्ति को दूसरी शक्ति रूप से वर्णन किया है। है तो वह जीवत्वशक्ति का ही लक्षण। चितिशक्ति... समझ में आया ? वह जीवत्वशक्ति का ही लक्षण है, परन्तु उसकी शक्ति का माहात्म्य विशेष बतलाने के लिये चिति (शक्ति कही है)। चिति में दोनों आ गये, हों! दर्शन और ज्ञान।

अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति ( अजड़त्व अर्थात् चेतनत्व जिसका स्वरूप है... ) अर्थात् कि चेतनत्वपना जिसका स्वरूप। चेतनत्व जिसका स्वरूप है। ऐसी चितिशक्ति। अर्थात् कि उस चैतन्यशक्ति का आधार भगवान्, उसमें यह लक्ष्य देने से, उसकी रुचि करने से, अन्तर्मुखगत पर्याय को करने से और वीर्य को वर्तमान अन्तर्गत करने से उसमें प्राण पर्याय में चितिशक्ति की पर्याय प्रगट होती है। सम्यक् रूप से प्रगट होती है, वह जीव को पकड़ने की योग्यतावाली। अनादि से उघाड़ राग के ऊपर जाता था, समझ में आया ? जिसका लक्षण नहीं था उसमें जाता था। लो! कल बात की थी देवीलालजी ने।

चितिशक्ति वास्तव में तो उसका लक्षण है, परन्तु इस चितिशक्ति का स्वभाव अनन्त महिमा जानना और देखना है। ऐसा बताने को इस चितिशक्ति का धारक भगवान्, वह चितिशक्तिरूप से रहा हुआ है, ऐसी दृष्टि देने से वह चितिशक्ति द्रव्य में, गुण में तो थी, परन्तु पर्याय में ज्ञान और दर्शन की अनन्त महिमा प्रगट करती चितिशक्ति प्रगट होती है। वह द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों में व्याप जाती है। तीनों में व्यापे, तब उसे चितिशक्ति की प्रतीति की, ऐसा कहा जाता है, नहीं तो प्रतीति की नहीं। बहुत सूक्ष्म है इसमें, सेठी!

क्या यह कुछ करने का इसमें आता है या नहीं ? करने का आया ? बहिर्मुख दृष्टि में शक्ति देखने में नहीं आती। उसमें पर की शक्ति देखने में आती है कि इसकी शक्ति लगती है... इसकी शक्ति लगती है... इसकी ताकत लगती है... इसका सामर्थ्य लगता है। शरीर का सामर्थ्य है तो ज्ञान-दर्शन काम करे, इन्द्रिय का सामर्थ्य है तो ज्ञान-दर्शन काम करे,

अच्छे-अच्छे आहार खायें, बादाम और पिस्ता ( तो ज्ञान-दर्शन काम करे ) । ऐसा आता है, हों! शास्त्र में । गोम्मटसार में । नोकर्म लिया है । मतिज्ञान का नोकर्म लिया । बादाम, पिस्ता, चिरौंजी ऐसी होती है न । यह दूध... केसर का । यह नोकर्म है । उसके कारण मतिज्ञान-श्रुतज्ञान ( काम करे ) । एक व्यक्ति था । यहाँ आया था । वह खाकर फिर थोड़े बादाम और पिस्ता खाये । जैसे.... खाये न दूसरे ? वैसे खाने के बाद थोड़े बादाम और पिस्ता खाय । तो कहे यह ? यह नोकर्म है मतिज्ञान का । आहाहा !

**मुमुक्षु :** मलाई खाये ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, मलाई खाये । वह तो एक ब्राह्मी दवा आती है न ? क्या कहलाता है ? ब्राह्मी तेल । मस्तिष्क में बराबर ऐसे रखे ( तो ) मस्तिष्क तर हो जाये । मूढ़ है ? उसकी शक्ति को तूने देखा ! उसकी शक्ति में देखा और तेरा कार्य उसके कारण होता है । चितिशक्ति के कारण ज्ञान और दर्शन की पर्याय सम्यक् रूप से सामर्थ्य लेकर उघड़ती है । एकदम उघड़े । वह कितना सामर्थ्य ? कि अनन्त काल में वह सामर्थ्य इसे प्रगट हुआ नहीं । एक पूरा द्रव्य चैतन्यप्रभु, वह चितिशक्ति का धारक, ऐसे द्रव्य की दृष्टि करने से उस चिति की ज्ञान-दर्शन की पर्याय ऐसी प्रगटी, एकरूप चैतन्य के पूरे आत्मा को पकड़कर, उसमें उपयोग करके एकाकार हो, ऐसी उसमें ताकत है । ताकत पर्याय में प्रगटी । गुण में तो थी । समझ में आया ? लो !

यह चेतनत्व जिसका स्वरूप है.... चेतनत्व अकेला । अकेला चेतनत्व । जानना-देखना, ऐसा ही उसका स्वरूप है । दूसरा कोई उसका स्वरूप है नहीं । इस प्रकार अन्तर में द्रव्य वस्तु को अन्तर आदर करने से, अन्तर आदर करने से, बाहर का आदर छूटने से उस चेतनत्व शक्ति का परिणमन, द्रव्य में तो वह शक्ति थी, गुणरूप से थी, उसका पर्याय में व्यापकरूप से परिणमन वर्तमान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चैतन्य की पर्याय प्रगट हो कि जिसके कारण आत्मद्रव्य दृष्टि में और आत्मा के उपयोग में काम कर सके । ऐसी पर्यायवाले परिणमन को आत्मा कहा जाता है । समझ में आया ? उसे यहाँ आत्मा कहते हैं ।

बाहर का उघाड़ नौ पूर्व का हो । समझ में आया ? चितिशक्ति नहीं । वह चितिशक्ति का कार्य नहीं । राग मन्द करके नौ पूर्व का विकास-क्षयोपशम हुआ, वह चितिशक्ति का कार्य नहीं । परलक्ष्यी पर को लक्ष्य करनेवाला, लक्षण इसका और लक्ष्य करे पर का, यह कार्य चिति का नहीं । यह चितिशक्ति लक्षण जीवत्व का, उसका भी यह कार्य नहीं । ज्ञान वस्तु चिति चैतन्यस्वरूप भगवान अकेला चैतन्यस्वरूप, वह त्रिकाल चैतन्यस्वरूप, ऐसी

दृष्टि देने से उस चैतन्य का परिणमन पर्याय में उसकी परिणति हुई—चैतन्यशक्ति की, उस परिणति को आत्मा की कहा जाता है। वह नौ पूर्व के उघाड़ को आत्मा की परिणति नहीं कहा जाता।

**मुमुक्षु :** ....कुछ मदद करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ मदद करे, ऐसा है कहीं। वह पर को बतलाने में मदद करे, स्व को जरा भी मदद करे नहीं। समझ में आया इसमें? कुछ मन, कुछ उघाड़ परलक्षी काम करे या नहीं? इन दो दिशाओं में ही अन्तर है। जो ज्ञान पर का काम करे और वह ज्ञान स्व का काम करे, (ऐसा नहीं है), दोनों के कार्य ही भिन्न हैं। यह सूक्ष्म तो बहुत, भाई! समझ में आया?

यह ज्ञान और दर्शनरूप चिति अर्थात् चैतन्यपना। चैतन्य सामान्य बात ली है न? सामान्य शक्ति का विकास होने पर वह स्वभाव जो शुद्धरूप परिणमा, चैतन्यपना जो चैतन्यपनेरूप परिणमा, वह जीव का परिणमन है। इसके अतिरिक्त राग-द्वेष और संयोग का होना, वह जीव का परिणमन नहीं। परन्तु पर के लक्ष्य का (ज्ञान करके) नौवें ग्रैवेयक गया और जो ग्यारह अंग और नौ पूर्व का उघाड़ हुआ, कहते हैं कि वह चितिशक्ति का कार्य नहीं अथवा वह द्रव्य का परिणमन नहीं अथवा वह स्वभाव का कार्य नहीं। समझ में आया? चितिशक्ति का कारण तो द्रव्य है। उस द्रव्य के लक्ष्य से यह कार्य प्रगट होता है। पर के लक्ष्य से चितिशक्ति का कार्य पर्याय में व्यापता नहीं। ओहोहो! बहुत सूक्ष्म बातें। नहीं तो ऐसे बड़े दिनों में तो अपवास बहुत करावे लोगों को, लो! अपवास करो, आम्बेल करो, ओळी करो। इतने-इतने अपवास करे, अरे! भगवान! प्रभु! यह कहीं तेरे जीवन की हित दशा है? आहार नहीं आया और कदाचित् राग मन्दता के परिणाम हुए, राग मन्दता के परिणाम रहे, वह कोई जीव का जीवन है? वह कहीं धर्म का जीवन है?

यहाँ तो धन्य महाराज! ऐसा कहते हैं, लो। ४० अपवास किये, ६० अपवास किये तो आहाहा! यह महाराज का पारणा हो, तब मेरे घर में यदि आवे न, पहले यदि मेरे घर में इनको ग्रास पड़े और इनके पास, अपना तो कल्याण हो जाये, लो! भीखाभाई! ऐसी राह देखे। तपस्वी महाराज आज निकले, तपसी महाराज निकले। अरे! भगवान! देवीलालजी! परन्तु उसमें महिलाओं को बहुत होता ऐसा, हों! लो, यह वापस हाँ करते हैं। तुम्हारे घर की हाँ करते हो तुम? आहाहा! वापस कितने? ६०। एक पानी के आधार से, दूसरा कुछ नहीं। आहाहा! अरे! धन्य भाग्य! यह चौथे काल के महीने और पाँचवें काल का अठम दोनों

समान। उसमें ६० अपवास। धन्य महाराज! धन्य!! और उसे वह यदि दो ग्रास जाये तो हमारा जीवन सफल हो जाये। यह तेरा जीवन उसमें अफल जाता है, सुन, कहते हैं। माणेकलालभाई! आहाहा! अरे! तेरा जीवन तूने कहीं ऐसा? एक तो मानो वह अज्ञानी, मूढ़। जीवन के जीवन की श्रद्धा और ज्ञान की खबर नहीं होती। कटारियाजी! कठिन बातें बहुत यह। महिलाओं को बहुत लगता है, हों! जरा। उनका भोला हृदय न, जहाँ-तहाँ धर्म मानकर बैठे हों न। जिस कुल में जन्मे हों, जिनका संग बहुत काल रहा हो, उस बात की छाप अन्दर पड़ी हो और उस छाप में ही सब मौज मानते हों। हमने ऐसे धर्म किया है।

भगवान! धर्म का रजिस्टरपना कोई अलग है। यह भगवान के पास जाकर रजिस्टर कराना पड़ेगा। समझ में आया? अज्ञानी के पास जाकर रजिस्टर कर आवे कि हमने धर्म किया, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? कहते हैं... आहाहा! भगवान आत्मा उसमें वह शक्ति (रही हुई है) और शक्ति है, उसका सामर्थ्य क्या कहना? अपरिमित सामर्थ्य। अहद अर्थात् बेहद सामर्थ्य। वस्तु है, पदार्थ है और उसकी चितिशक्ति है। उस चितिशक्ति का परिणामन स्वयं से होता है। अभी तो यहाँ पर्याय में ज्ञान-दर्शन का... उसमें आता है न? भाई! चैतन्य उपयोग... क्या कहा? उपयोग अनुसार। 'चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग:' चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग। चैतन्य को अनुसरकर होते परिणाम को उपयोग कहते हैं। ऐसे अभी व्यवहार के अर्थ की खबर नहीं होती। वहाँ यह कहे, पाँच इन्द्रिय, मन, यह पुस्तक, यह पृष्ठ और इसे अनुसरकर उपयोग, वह चैतन्य का उपयोग। समझ में आया? चैतन्य को अनुविधायी परिणाम, वह उपयोग। यह बारह प्रकार के हैं और यह बात सामान्य व्याख्या यह है। यहाँ तो उसे दूसरी व्याख्या है। उसमें तो अज्ञान भी उसमें आ जाता है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम में। मात्र यह तो चैतन्य को अनुसरकर उसका परिणामन।

यहाँ तो चैतन्य अनुसरणम। भगवान द्रव्यस्वभाव चेतन, उसकी चैतन्यत्व शक्ति, उसकी दृष्टि देने से चैतन्य का परिणामन स्वयंसिद्ध पर के अवलम्बन बिना, पहले का जो उघाड़ था, उसकी सहायता बिना, पहले का जो उघाड़ था, उसकी सहायता बिना यह चैतन्य की शक्ति का चैतन्यपना उसकी पर्याय में व्याप जाता है और उसके छहों कारक स्वयं से होते हैं। समझ में आया? यह चैतन्यशक्ति का परिणामन, वह कर्ता चैतन्यशक्ति, कर्म भी कार्य उसका, कारण भी वह, सम्प्रदान स्वयं होकर स्वयं रखा, अपने ध्रुव में से निकाला और अपने आधार से निकला। कोई पूर्व के उघाड़ के आधार से निकला, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। कितने ही लोग कहते हैं न? कि भाई! ओहोहो! इनका बहुत उघाड़।



पूर्व का था न। सेठी! ऐसी यहाँ ना करते हैं। यहाँ तो वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... चितिशक्ति के धारक पर दृष्टि देने से वर्तमान प्रगट हुआ, उसका कारण द्रव्य है। पूर्व का उघाड़ भी उसका कारण नहीं। समझ में आया? ऐसा जो चैतन्यत्व।

**मुमुक्षु :** पूर्व का उघाड़....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उघाड़? हाँ, ठीक। ऐसा कहा कि पूर्व का जो उघाड़ ज्ञान का क्षयोपशम होता है न, उसके कारण यह संस्कार वर्तमान उघड़े, यह भी उपचार की बात है, वास्तविक नहीं। उस चितिशक्ति का धारक भगवान चैतन्यस्वरूप, उस चैतन्य की दृष्टि देने से वर्तमान चैतन्य की ज्ञान-दर्शन की पर्याय प्रगट होती है, पूर्व के कारण नहीं। वर्तमान उघाड़ है न उघाड़े अब? वर्तमान उघाड़ के कारण चैतन्य का परिणमन भी नहीं। धर्मचन्दजी! कहो, यह कहाँ होगा, ऐसी बात? जैन परमेश्वर के अतिरिक्त त्रिलोकनाथ देवाधिदेव और उनके भक्तों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं होती। यहाँ तो सौ में सौ बात अखण्ड है, उसमें खण्ड पड़ता ही नहीं। अखण्ड में खण्ड पड़ता नहीं। क्या कहा? सेठी! क्या बोले तुम?

**मुमुक्षु :** वर्तमान पर्याय परिणमन...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वर्तमान उघाड़ पर्याय-उघाड़ परलक्षी। चितिशक्ति के परिणमन में उसका कारण नहीं। आहाहा! ऐसा निरालम्बी प्रभु, कहा है न? नहीं? भाई ने नहीं लिखा? 'जैसा निरालम्बी आत्मद्रव्य वैसी निरालम्बी भगवान की देह।' ऐसे ऊपर रहती है, ऊँचा। समवसरण में सिंहासन में भगवान नहीं बैठते। आहाहा! चार घाति का नाश हुआ। पर्याय प्रगट हुई। इस प्रकार शरीर समवसरण में ऊँचा, निरालम्बन। भगवान भी शक्ति और शक्तिवान से परिणमता निरालम्बन भगवान है। उसे किसी का आलम्बन-बालम्बन है नहीं। समझ में आया?

( अजड़त्व अर्थात् चेतनत्व जिसका स्वरूप है, ऐसी चितिशक्ति। ) इसका ज्ञान और दर्शनरूप सामान्य चेतन-चेतनत्व का प्रगटपना तो उसके द्रव्य के आधार से ही प्रगट होता है। यह तो बात की है न? प्रवचनसार में नहीं कहा? गुण के परिणमन से परिणमन है या द्रव्य के परिणमन से? गुण के परिणमन से कहें, परन्तु मूल तो द्रव्य के परिणमन से है। वह द्रव्य वस्तु अखण्ड सामान्य ध्रुव चैतन्य को ध्येय करने से पूरा द्रव्य परिणमता है, उसमें गुण साथ में परिणमते हैं। धारा वहाँ से चलती है। द्रव्य में से प्रवाह आता है, अकेले गुण में से अलग नहीं आता। ऐसा चैतन्य गुण भगवान आत्मा का चेतता-जागता उठा, जागती परिणति उठी, उस चैतन्य की सम्हाल दृष्टि सावधान होकर ( करता है )।

‘समय वतते सावधान’ नहीं कहते ? समय अर्थात् आत्मा। समय अर्थात् आत्मा। उसमें वर्ते-सावधान हो। ऐसी चैतन्यशक्ति की व्यक्तता प्रगट करनी हो तो चैतन्य की प्रतीति कर और प्रतीति कर और आधार द्रव्य की प्रतीति कर तो पर्याय में भी उस चैतन्यशक्ति का अनन्त काल में जो उघाड़ नहीं हुआ, ऐसी जागृत दशा चैतन्य की, दर्शन-ज्ञान की होगी। सामान्यरूप से चैतन्य प्रगट होगा। उसे यहाँ तीनों में व्याप गयी शक्ति को चैतन्यशक्ति कहते हैं। अकेले द्रव्य-गुण में रहे, उसे चैतन्यशक्ति नहीं कहते। प्रतीति में आयी नहीं, ख्याल में आयी नहीं, कार्य नहीं हुआ तो कारण है, ऐसा माना किसने ? समझ में आया ? जिसका कार्य नहीं आया उसे कारण माना है, ऐसा नहीं कहा जाता। यह कारण माने उसे कार्य आये बिना रहता नहीं और उसे आत्मा कहा जाता है और उसने चितिशक्ति मानी और उसका परिणमन हुआ, ऐसा कहा जाता है। दो शक्तियाँ हुईं। ओहोहो !

तीसरी, अब इसके अन्तर्भेद करते हैं। यह शक्ति भिन्न वर्णन की है, हों ! चिति में, चैतन्य में दो प्रकार इकट्ठे सामान्यरूप से आ जाते हैं, परन्तु उसका विशिष्ट शक्ति, उसका माहात्म्य, दर्शन का माहात्म्य और ज्ञान का अपूर्व माहात्म्य भिन्न-भिन्न है, वह माहात्म्य वर्णन करने के लिये इस शक्ति का वर्णन भी अन्दर है। शक्ति भी ऐसी है। अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति। अब तीसरी शक्ति। अनाकार उपयोग। ( जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है.... ) ज्ञेय के विशेष का भेद जिसमें नहीं। ज्ञेय के विशेष का जिसमें भेद नहीं। अनाकार उपयोगमयी-दर्शनोपयोगमयी दृशिशक्ति। जिसमें ज्ञेयरूप विशेष, भेद नहीं है। दर्शनोपयोगी-सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होनेरूप.... है पदार्थ स्व-पर सब जैसे हैं वैसे। अस्तिमात्र के पदार्थ में उपयोग होनेमय दृशिशक्ति। उसे दर्शन क्रियारूप शक्ति कहा जाता है। दृशि कही है सही न ? दर्शनक्रिया। लो, यह दर्शनक्रिया हुई। दृशिशक्ति अन्दर में है, वह द्रव्य-गुण में, पर्याय में तीनों में व्यापती है। अन्तर्दृष्टि होने पर पर्याय में दृष्टिपना व्यापता है। वह दृशिशक्ति की क्रिया उसके परिणमन में निर्मल हो, उसे क्रिया कहा जाता है। समझ में आया ? ये तीनों शक्तियाँ क्रम से वर्णन की है, परन्तु द्रव्य पर दृष्टि देने से एक समय में तीनों का परिणमन एक साथ सबका होता है। उसकी जीव की अखण्डता और जीव की परिपूर्णता को आत्मा कहते हैं।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )

१७

श्री समयसार कलश टीका, कलश - २८-२९, प्रवचन - ३६  
दिनांक - ०९-१०-१९६७

यह कलश टीका २८वाँ कलश चलता है। जीव अधिकार। अन्तिम लाईन है यहाँ। थोड़ा आ गया। फिर से। है न? जिस प्रकार ढँकी निधि.... गुजराती ३० पृष्ठ। अन्तिम चार लाईन। जिस प्रकार ढँकी निधि को प्रगट करते हैं,.... जीव अधिकार है। दृष्टान्त देते हैं। जिस प्रकार ढँकी निधि को प्रगट करते हैं, उसी प्रकार जीव द्रव्य प्रगट ही है,.... वस्तु चैतन्यसत्ता अस्तिरूप वस्तु सत्ता प्रगट ही है। वस्तु है, वह प्रगट ही है। वस्तु है, ज्ञायक चैतन्यसत्ता स्वभावभाववाला पदार्थ ज्ञान प्रगट ही है। परन्तु कर्मसंयोग से ढँका हुआ होने से.... कर्म के निमित्त के संग में जुड़ने से अपना वास्तविक स्वरूप अनादि से ढँक गया है। मरण को प्राप्त हो रहा था.... अर्थात् कि चैतन्यसत्ता शुद्ध स्वभाव मानो है ही नहीं। यह राग और पुण्यादि भाव, वह मैं हूँ। ऐसा माननेवाले को जीवद्रव्य मरण प्राप्त हो रहा था। अर्थात् कि नहींवत् हो रहा था। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु तो वस्तुरूप से प्रगट ही है। तथापि वह कर्म के संग में विकल्प की जाल में ढँका हुआ मरण को प्राप्त हो रहा था। मरण को (प्राप्त अर्थात्) मानो कि नहीं है, ऐसा था। यह सिद्ध किया अनादि का।

वह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थकरदेव के उपदेश सुनने पर मिटती है,.... देखो! यहाँ यह वचन है। अन्यमती जितनी कल्पना से बातें करे सर्वज्ञ के अतिरिक्त, सर्वज्ञ परमेश्वर... ऊपर ऐसा आ गया था। 'परिचिततत्त्वैः' 'परिचिततत्त्वैः' सर्वज्ञों के द्वारा प्रत्यक्षरूप जाना है.... वे पदार्थ। उन्होंने कहा हुआ जो उपदेश। भगवान तीर्थकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में स्व और पर का पूर्ण ज्ञान विकास जैसा उसका स्वभाव था, वैसा विकास हो गया, उनकी वाणी में, इच्छा बिना जो वाणी आयी, उसमें जो द्रव्य का स्वरूप आया, उनका उपदेश सुनने से। वह भगवान की वाणी का उपदेश सुनने से। क्योंकि उसमें ही वास्तविक आत्मा का स्वरूप आता है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई कल्पना से बात करे, उसके अन्दर वह आत्मा के वास्तविक द्रव्य, गुण, पर्याय नहीं आते। कहो, समझ में आया? देखो!

इसलिए यह बात रखी। दूसरे घर की बातें बहुत करते हैं न अभी अब। निश्चय की बातें आकर बाहर।

इसलिए कहते हैं कि तीर्थकर परमगुरु केवलज्ञानी परमेश्वर। पहले उनकी वाणी होनी चाहिए। उन्होंने एक समय में पूर्ण स्वरूप प्रगट किया है। वस्तु में था, वह प्रगट किया है। प्रगट की हुई जो यहाँ वाणी है, वह द्रव्य क्या है? गुण क्या है? पर्याय क्या है? यह भगवान के ज्ञान में सर्वज्ञ ने देखा, उसमें वह बात होती है। अज्ञानी वैसी आत्मा की बात करे परन्तु उसमें यह बात होती नहीं। सेठी! कहो, इसलिए कहते हैं, सब धर्म समान है, ऐसा माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, उन्हें वस्तु की खबर नहीं है। इसलिए 'परिचिततत्त्वैः' में यह डाला है। एक समय में तीन काल—तीन लोक का जिसे ज्ञान था। इतना ही यह आत्मा है। इतना आत्मा ही ऐसा है कि जिसे एक समय में तीन काल ज्ञात हुए, ऐसी पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड और ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, वह आत्मा है। अकेला ज्ञान-ज्ञान करे, ऐसा नहीं चलता। सेठी! समझ में आया?

वास्तव में तो आत्मा की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य जानने की ताकत है, तो वह छह द्रव्य को माने, तब उसे एक समय की पर्याय अपनी उसने इतनी मानी। समझ में आया? सेठी! क्या कहा? अनन्त आत्मायें हैं, उससे अनन्तगुणे परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक आकाश, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति। सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह कहीं नहीं हो सकते और उन छह द्रव्यों का ज्ञान, एक आत्मा की एक पर्याय में जान सके, इतनी उसकी ताकत है। छह द्रव्य को स्वीकार करे, तब उसने आत्मा की एक समय की पर्याय स्वीकार की, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण और ऐसे-ऐसे अनन्त दूसरी पर्यायों के दूसरे अनन्त गुण, ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का एकरूप आत्मा, उसे भगवान ने कहा, उसे यह आत्मा कहने में आता है। समझ में आया? अभी तो सब बहुत खीचड़ा चलता है। यह निश्चय की बात बाहर आयी न अभी? दूसरे आत्मा की बात करते हैं। धूल भी नहीं, सुन न! सब यह धर्म समान, यह धर्म समान, मोहम्मद भी समान और महावीर भी समान, ईशु भी समान और महावीर भी समान।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य इतनी देखी है कि जो छह द्रव्यों को (स्वीकार करे), अनन्त-अनन्त आत्मायें, अनन्त-अनन्त अनन्तगुणे परमाणु, और अमाप ऐसा आकाश, उसे एक समय की पर्याय स्वीकार करे, इतनी तो एक

आत्मा की पर्याय है। इतना स्वीकार करे, तब उसने एक समय की एक गुण की पर्याय स्वीकार की है। आहाहा! फिर ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड है, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा भगवान की वाणी में आया है, इससे यहाँ कहा है। वह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थकरदेव के उपदेश सुनने पर मिटती है,.... ज्ञानी समकिति कोई भी कहे, वह सब तीर्थकर ने कहा हुआ कहते हैं। क्योंकि उसे प्रत्यक्ष पूरा नीचे तो होता नहीं। समझ में आया? वह भ्रान्ति (मिटाने का) एक ही उपाय है, वह भ्रान्ति। जो चैतन्य द्रव्य ज्ञायकमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। उसमें अनन्त गुण हैं। एक गुण ज्ञानादि नहीं। अनन्त-अनन्त गुण की एक राशि आत्मा ढेर / पुंज / पिण्ड। आकाश के प्रदेश अमाप हैं, इतनी जो संख्या आकाश के प्रदेश की, उससे अनन्त-अनन्त गुणे एक आत्मा में गुण हैं। ऐसे अनन्तानन्त गुणों का एकरूप वह आत्मा है। शोभालालजी! आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा आत्मा मानना चाहिए न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा आत्मा माने बिना यह आत्मा... आत्मा करे, ऐसा नहीं चलता, ऐसा कहते हैं। जुगराजजी! आहाहा! यह तो सब बहुत कहते हैं। अब तो यहाँ का चल है न ३२ वर्ष से (इसलिए) कितने ही आत्मा की बातें (करनेवाले हो गये हैं कि) आत्मा ऐसा है। बस, आत्मा ऐसा। धूल भी नहीं। खबर बिना कल्पना से सब बातें करते हैं। समझ में आया?

देखो! ऊपर कहा था न, वह ले लिया है। 'परिचिततत्त्वैः' इसका अर्थ ले लिया है कि आत्मा भगवान आत्मा एक-एक, हों! ऐसे अनन्त आत्मायें जगत में हैं, उससे अनन्त गुणे परमाणु जगत में हैं और एक-एक परमाणु में आत्मा के जितने अनन्त-अनन्त गुण हैं, उतने ही गुण एक परमाणु में हैं। एक पॉइन्ट।

**मुमुक्षु :** जड़ परमेश्वर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, जड़ परमेश्वर वह, स्वतन्त्र है। इन सबको जानने की सामर्थ्य आत्मा एक समय की पर्याय में रखता है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो भगवान ने कहा...

**परमगुरु श्री तीर्थकरदेव के उपदेश सुनने पर मिटती है,....** सन्त, मुनि समकिति कहते हैं, वह अपने अनुभव से कहते हैं, तथापि पूर्ण स्वरूप उन्हें प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिए सर्वज्ञ का उपदेश केवलज्ञानी परमात्मा (का उपदेश सुनने से मिटता है)। इससे अनन्त

आत्मायें, अनन्त परमाणु, एक-एक आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण, एक-एक परमाणु में अनन्त-अनन्त गुण, यह भगवान ने कहे, उनका उपदेश सुनने पर... सुनने का अर्थ? उसे सुनने को ऐसा मिले, ऐसा कहते हैं। पश्चात् समझने पर, ऐसा। भाषा तो ऐसी है, देखो! **सुनने पर मिटती है,....** यह उसका अर्थ ही हुआ कि सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी, जिसने एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, ऐसी जो वाणी आयी उसे सुनने से मिटता है। अर्थात् वह सुने उसे मिटे ही, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वास्तव में सुने यह बात, उसके भाव में यह बात बैठे और उसे मिथ्यात्व भ्रान्ति टल ही जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब सुना कहलाये न? श्रुत, परिचित नहीं आता? आता है न (समयसार की) चौथी गाथा? श्रुत, परिचित अनुभूता। तब उसने सुना कहलाये।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने कहा आत्मा दिव्यध्वनि द्वारा। समवसरण में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में। समझ में आया? जो आत्मा के द्रव्य, गुण और पर्याय (कहे), वह बात अन्यत्र हो नहीं सकती। द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् अवस्था। भगवान ने जैसा कहा, उसे सुनने से भ्रान्ति मिटती है। यहाँ तो एक ही बात, सुनने से मिटती है, भाई ने ऐसा यहाँ कहा। आहाहा! ऐसा कहते हैं, देखो न! ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर, उन्होंने कहा कि तू सर्वज्ञ प्रभु है। तू स्वयं सर्वज्ञ प्रभु है। तेरा स्वभाव सर्वज्ञ गुण है अन्दर। सर्वज्ञ गुण है। उसकी वर्तमान पर्याय हल्की है और थोड़ी है, परन्तु तेरा स्वरूप सर्वज्ञ है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण तुझमें पूरे पड़े हैं। ऐसा भगवान की वाणी पूरी पूरे का स्वरूप जो कहे और उसे सुना और उसे पूरा जैसा है, उसे भ्रान्ति टलकर प्राप्त हुए बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, सोभागचन्द्रभाई! यह तो वीतराग केवली तीर्थकर। अब यहाँ तो तीर्थकर का क्या कहना है, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? और हो जाये इसे आत्मा समझने में आ जाये। धूल में भी नहीं आता। कुछ का कुछ करके बिक जायेगा। समझ में आया?

देखो! वह भ्रान्ति परमगुरु श्री तीर्थकरदेव के उपदेश सुनने पर मिटती है,.... समकित्ती ज्ञानी भी ऐसा ही उपदेश करता है और उसे सुनते हुए भ्रान्ति मिटती है, उसका अर्थ यह भी आ गया। समझ में आया? **कर्मसंयोग से भिन्न शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव होता है,....** भगवान आत्मा अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मायें उनसे भिन्न मैं हूँ और पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उनसे भिन्न हूँ और अनन्त गुणों का स्वभाव, उससे मैं अभिन्न हूँ। ऐसा जीव स्वरूप का, ऐसा जो उसका स्वरूप, उसका अनुभव होता है। उसके ज्ञान में प्रत्यक्षरूप से, श्रुतज्ञान

में प्रत्यक्षरूप से यह आत्मा है, ऐसा अनुभव होता है। आहाहा! समझ में आया ?

**ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** ऐसे अनुभव को समकित कहा जाता है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव की वाणी में यह पूर्ण स्वरूप एक-एक आत्मा का जैसा आया, उसकी पर्याय का पूर्ण, गुण का पूर्ण और द्रव्य का (पूर्ण स्वरूप) आया, वैसा उसे सुनने से, उसकी भ्रान्ति टलने से उसे आत्मा क्या है, इसका अनुभव होता है। जैसा उसका स्वरूप है, वैसा अन्तर ज्ञान में भासित होता है। ज्ञान में भासित होकर प्रतीति होकर उसे समकित कहते हैं, ऐसा कहते हैं। इसलिए जीव स्वरूप का अनुभव होता है, ऐसा लिया है। **ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** उसमें जो प्रतीति हुई कि ऐसा आत्मा शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण का (पिण्ड है)। यह प्रतीति है, वह पर्याय है। समकित और अनुभव, यह पर्याय है। समझ में आया ? परन्तु जीव स्वरूप है, वह त्रिकाली आनन्दकन्द अनन्त गुण का पिण्ड है। उसका अनुभव है, वह अनुभव समकित अर्थात् दोनों पर्याय है। श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हो, वह श्रुतज्ञान भी पर्याय है और उसकी प्रतीति हो कि यह आत्मा शुद्ध अखण्ड है, ऐसी प्रतीति भी पर्याय है। द्रव्य नहीं, गुण नहीं। क्या हुआ ?

**मुमुक्षु :** श्रुतज्ञान द्वारा जो प्रतीति हुई...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रतीति क्या ? श्रुतज्ञान स्वरूप आया, वह तो ज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान में भावश्रुतज्ञान से ज्ञान में आया, यह ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ। यह आत्मा ऐसी प्रतीति हुई, वह श्रद्धा हुई और स्थिरता को शान्ति कहते हैं, चारित्र कहते हैं। स्वरूप में स्थिरता। समझ में आया ?

यहाँ तो जीव की बात है न! अधिकार चलता है न! जीव अधिकार अर्थात् कैसा जीव है?—कि भगवान तीर्थकरदेव ने केवलज्ञान में देखा, वैसा कहा, वैसा उसने सुना, उसे भ्रान्ति टलकर ऐसा आत्मा का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** इसका नाम अभी चौथा गुणस्थान है। यह चौथा गुणस्थान हो गया, इसलिए केवली हो गया और पूर्ण हो गया, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** श्रद्धा अपेक्षा से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यक् अनुभव की अपेक्षा से। अनुभव की अपेक्षा से प्रतीति हुई इतना चौथा गुणस्थान, परन्तु इससे मुनि हो गया और चारित्रवन्त हो गया और केवली, वह अनन्तगुणा बाकी है। इसलिए यहाँ अनुभव और समकित पर्याय का वर्णन करके कहा है

कि वह भी अभी पर्याय पूर्ण नहीं। केवलज्ञान की पर्याय और चारित्र की पर्याय जहाँ प्रगट होती है, तब तो समकितसहित स्वरूप में स्थिर होने से, चारित्र प्रगट होने पर फिर उसे वस्त्र, पात्र शरीर में नहीं रहते। नग्न शरीर सहज हो जाता है। तब उसे अन्दर चारित्र पर्याय होती है। समझ में आया? और आगे बढ़ने पर जो श्रेणी स्थिर होकर केवलज्ञान होता है, उसे आहार और पानी की भी इच्छा और आहारादि नहीं होते। ऐसी दशावन्त पूर्ण को केवलज्ञानी परमात्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

**कैसा है बोध?** अब वह बोध कैसा है? अपना स्वरूप, हों! **‘स्वरसरभसकृष्टः’** ज्ञानस्वभाव का उत्कर्ष-अति ही समर्थपना.... ज्ञानस्वभाव का **‘रभस’** अति ही समर्थपना.... ज्ञान-आनन्द आदि स्वभाव का अतिशयपना है। **‘स्वरसरभसकृष्टः’** और पूज्य है। भगवान आत्मा अकेले ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुणों का रस जो है, वह उत्कृष्ट है और वह पूज्य है। समझ में आया? **और कैसा है? प्रगटरूप है।** वस्तु है शुद्ध चैतन्य भगवान (वह) ज्ञान में प्रगट है। पूर्ण हो, इसलिए पूर्ण प्रगट है। **और कैसा है? ‘एकः एव’ ‘एकः एव’** की व्याख्या की। **निश्चय से चैतन्यरूप है।** वास्तव में तो **‘एकः एव’** ऐसा। स्वरूप अभेद एकरूप है। उसमें भेद नहीं। गुण अनन्त होने पर भी दृष्टि में अभेद है अकेला। **‘एकः एव’** का अर्थ किया। निश्चय से प्रभु अनन्त गुण का एकरूप चैतन्यरूप है, उसे आत्मा कहा जाता है। उसके अनुभव को समकित कहा जाता है। उसकी स्थिरता को अन्तर रमणता करने से चारित्र होने पर नग्न दिगम्बरदशा हो जाती है, तब वह साधु जंगल में बसता है।

क्योंकि वह स्वरूप द्रव्य है। कहो, समझ में आया? अनन्त गुण तो भेदरूप हुए। वस्तु है द्रव्य, वह अनन्त गुण का एकरूप, एक स्वरूप। **‘एकः एव’** ऐसा वजन दिया है। **निश्चय से....** वास्तव में। **‘एव’** इतना निश्चय किया है। **‘एकः’** का अर्थ निश्चय चेतनरूप। **‘एव’** का अर्थ निश्चय किया। **‘एकः’** का अर्थ चैतन्यरूप। भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप। सम्यग्दर्शन में चैतन्य भासित हुआ और पूर्ण होने पर केवलज्ञान में भी पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, तब तीन काल, तीन लोक भगवान के ज्ञान में ज्ञात होते हैं। उसे चैतन्य का पूर्णरूप कहा गया है। कहो, समझ में आया? यह २८वाँ श्लोक पूरा हुआ। २९।

**अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यन्तवेगा-**

**दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ।**

**झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता**

**स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९ ॥**



**खण्डान्वय सहित अर्थ :-** 'इयं अनुभूतिः तावत् झटिति स्वयं आविर्बभूव' यह विद्यमान शुद्धचैतन्यवस्तु का प्रत्यक्ष जानपना.... इसका नाम अनुभूति। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप, उसका ज्ञान से प्रत्यक्षपना होकर प्रत्यक्षरूप से श्रुतज्ञान का प्रत्यक्षपने होकर.... केवलज्ञान की बात अभी नहीं है। केवलज्ञान पूर्ण दशा है। यहाँ तो अनुभूति अर्थात् शुद्धचैतन्यवस्तु का प्रत्यक्ष जानपना.... अन्तर में वस्तु है, उसे राग और मन की अपेक्षा बिना अकेले आत्मा के आश्रय से श्रुतज्ञान की अनुभूति (हो), उसे यहाँ, उसे अनुभूति कहने में आता है, ऐसे जानपने को अनुभूति कहने में आता है। शास्त्र का अकेला ज्ञान, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

**शुद्धचैतन्यवस्तु....** चैतन्य वस्तु जो अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसी जो वस्तु, उसका प्रत्यक्षरूप से सम्यग्ज्ञान, श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्षरूप से जानपना (होना), उसका नाम अनुभूति कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ तो अस्ति से सिद्ध करते हैं। विकल्प तोड़ना और विकल्प का नाश करना, वह तो नास्ति से बात है। परन्तु वस्तु क्या ? वस्तु का अस्तित्व कितना कि जिसके लक्ष्य से विकल्प टूट जाये! ऐसे विकल्प टूटे-टूटे कहे, वह तो नास्ति हो जायेगी, अन्ध। समझ में आया ? उसका अस्तित्व कितना! ऐसा इसे कहा। देखो! शुद्ध चैतन्यवस्तु अस्तित्व जो पूर्णानन्द प्रभु। उसका प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा जानना (हो) उसे अनुभूति कहते हैं। वह पर्याय है। पूर्ण स्वरूप, वह द्रव्य है, वह अस्ति है। ऐसे अस्ति की प्रतीति अनुभूति वह पर्याय है। वह प्रत्यक्ष अनुभव, उसे अनुभूति कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

वह यह विद्यमान अनुभूति। शुद्ध चैतन्य वस्तु का जानपना विद्यमान है, ऐसा कहते हैं। वह पर्याय भी विद्यमान है, ऐसा कहते हैं। कितने ही कहे कि द्रव्य ही विद्यमान है। द्रव्य वस्तु, बस। पर्याय... पर्याय (नहीं)—वह वस्तु को-तत्त्व को समझता ही नहीं। यह तो अनुभूति भी विद्यमान पर्याय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वस्तु जैसे प्रगट द्रव्य स्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, वैसे उसकी अनुभूति भी विद्यमान, विद्यमान अस्ति धराती है। पर्याय भी विद्यमान है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** विद्यमान अर्थात् पर्याय है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वेदान्त कहता है न, पर्याय... पर्याय क्या ? एक समय की पर्याय नहीं, वह तो बस, वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु है। सब झूठ है। सब भ्रान्ति में पड़े हैं।

समझ में आया ? भगवान आत्मा जैसी विद्यमान वस्तु है, ऐसी उसकी अनुभूति भी विद्यमान पर्याय की अस्ति सत्ता का अस्तित्व है। समझ में आया ? ऐसा सम्यक्त्व हो अथवा अनुभूति प्रतीति अपेक्षा से समकित है। अनुभव अपेक्षा से ज्ञान है, परन्तु है पर्याय, वह विद्यमान पर्याय है, ऐसा कहते हैं। धर्म की अनुभूति पर्याय पर्यायरूप से विद्यमान है। द्रव्य ही विद्यमान है और अनुभव वह कोई पर्याय नहीं और कुछ नहीं, बस, हो गया। द्रव्य अकेला (ही है) ऐसा नहीं। समझ में आया ?

जैसी अज्ञानदशा विद्यमान थी, वस्तु के स्वरूप के भान बिना, उसी प्रकार अनुभूति की पर्याय भी विद्यमान है, ऐसा कहते हैं। जैसे अज्ञान भी विद्यमान था, वस्तु का भान नहीं और अज्ञान-वास्तविक स्वरूप की विपरीत दृष्टि, वह भी एक विद्यमान अज्ञान था। अज्ञान नहीं, ऐसा नहीं। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? भगवान आत्मा अपनी वस्तु को भूलकर पर्याय में जो भ्रान्ति थी, वह थी। वह विद्यमान थी, अस्तिरूप थी। अनुभूति होने पर उस अस्ति का व्यय होकर, अनुभूति की पर्याय की अस्ति हुई, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

देखो ! उत्पाद, व्यय और ध्रुव। ओहोहो ! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। एक-एक आत्मा में उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। भ्रान्ति की उत्पत्ति में, वस्तु तो वस्तु थी परन्तु भ्रान्ति की उत्पत्ति में नयी भ्रान्ति की उत्पत्ति (होती थी और) पूर्व की भ्रान्ति का व्यय (होता था), वह था। उत्पाद-व्यय.... उत्पाद-व्यय भ्रान्ति का था, वस्तु के भान बिना अज्ञान में। भ्रान्ति टलने से भ्रान्ति का व्यय हुआ। वह थी, उसका व्यय हुआ। शुद्ध स्वरूप की प्रत्यक्ष अनुभूति हुई, वह पर्याय विद्यमान उत्पाद है। वस्तु ध्रुव है, भ्रान्ति का व्यय है, अनुभूति की विद्यमानता उत्पाद है। समझ में आया ? ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं आत्मा का हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया ?

उतने काल तक उसी समय सहज ही अपने ही परिणमनरूप प्रगट हुआ। लो ! अनुभूति स्वरूप की अनुभूति की पर्याय उसी समय में उतने काल तक उसी समय में, उस क्षण में भान होने पर सहज ही अपने ही परिणमनरूप.... शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसका परिणमनरूप, पर्यायरूप अवस्थारूप प्रगट हुई। शुद्ध परिणमन प्रगट हुआ। भ्रान्ति जो थी वह अशुद्ध परिणमन था। वह अनुभूति होने पर प्रगट उतना काल अनुभव में उतनी पर्याय प्रगट अनुभूतिरूप हुई। परिणमन प्रगट हो गया। देखो ! 'आविर्भव' वस्तु तो वस्तु है,

परन्तु अनुभूति पर्याय नयी प्रगट हुई। समझ में आया? बहुत श्लोकों में गम्भीरपना बहुत भरा है।

‘झटिति तावत्’ झट-तुरन्त ही वह उतने काल में। तुरन्त ही वह स्वाभाविक अपने ही परिणमनरूप.... ज्ञानानन्द प्रभु भगवान का परिणमन-वर्तमान में परिणमना, पर्याय में होना, शुद्ध रूप अवस्था का होना, दशा का होना, वह प्रगट हुई। अनुभूति पहले पर्याय में नहीं थी। शक्तिरूप अनुभूति का सत्त्व द्रव्य में था। समझ में आया? वह अनुभूति पर्याय, सम्यक् आदि प्रगटी वह शक्तिरूप से तो द्रव्य में थी, वस्तु में थी, परन्तु भ्रान्ति के कारण प्रगट नहीं थी। भ्रान्ति की प्रगटता, अनुभूति की अप्रगटता तो शक्ति में रही। उस भ्रान्ति का, स्वरूप अनुभव होने पर भ्रान्ति का व्यय और अनुभूति की शक्ति थी, वह प्रगटरूप पर्याय में प्रगट हुई। समझ में आया? ऐसा ही द्रव्य का उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् (स्वरूप है)। यह भगवान का परमेश्वर का वाक्य है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। प्रत्येक पदार्थ नयी अवस्था से उपजता है, पुरानी अवस्था से उस क्षण में नाश होता है, वस्तुरूप से सजातिरूप से टिका रहता है। सजातिरूप से वह जाति टिकी रहती है। समझ में आया? यह गुजराती बहुत समझते हैं।....

टिकना, वह ठीक, अकेले शब्द काम नहीं आते। यह टिकना ठीक है, परन्तु यह टिकना क्या चीज है? कि शुद्ध स्वरूप जो ध्रुव है, उसका परिणमन पर्याय में होना, वह टिकना है। वही वस्तु, ऐसा। बिना भान के शब्द काम नहीं आते। ओघे समझते हो? ओघे को क्या कहते हैं? उसके भाव को समझना चाहिए। भाई! तू भगवान है न, प्रभु! ऐसे अनन्त भगवान हैं। अनन्त भगवान हैं। एक नहीं परन्तु अनन्त भगवान आत्मायें जगत के हैं और उससे अनन्तगुणे जड़ेश्वर भगवान हैं। वह भी महिमावन्त पदार्थ परमाणु है। भगवान है जड़ेश्वर। अपनी पर्याय पर से होती नहीं, ऐसा स्वतन्त्रपना प्रसिद्ध जड़ भी रखता है। स्वतन्त्र पदार्थ है। उस सबका ज्ञान करनेवाला आत्मा, अपना माननेवाला नहीं। ऐसी अनुभूति परिणमनरूप प्रगट है, लो!

कैसी है वह अनुभूति? ‘अन्यदीयैः सकलभावैः विमुक्ता’ शुद्धचैतन्यस्वरूप से अत्यन्त भिन्न..... भगवान आत्मा अनन्त शुद्ध स्वरूपी प्रभु, उसकी जो जाति-स्वरूप, उससे अत्यन्त भिन्न। कौन? ‘द्रव्यकर्म’,.... देखो! वापस यह वस्तु है, ऐसा सिद्ध करते हैं। एक आठ कर्म है। वापस ऐसे का ऐसा कह दे, ऐसे का ऐसा कुछ नहीं, ऐसा नहीं। आठ कर्म

है, आठ कर्म है। एक-एक कर्म की प्रकृतियाँ भी भिन्न-भिन्न है। १४८ प्रकृतियाँ हैं, वह वस्तु है। आठ कर्म है। **भावकर्म....** पुण्य-पाप की वृत्ति उठती है—विकल्प, वह भावकर्म है। ऐसा सिद्ध करते हैं। नहीं ही कुछ, उसे यह वस्तु (ही है), तो नाश किसका किया और उत्पत्ति क्या हुई? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसमें मस्तिष्क को बहुत फैलाना पड़ता है। बात ऐसी है।

**द्रव्यकर्म, भावकर्म,...** भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प, वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप में नहीं है, परन्तु उसकी पर्याय में है। समझ में आया? और **नोकर्म....** शरीर, वाणी, इन्द्रियाँ आदि। भाषा पर्यायि आदि... उस सम्बन्धी 'सकल' अर्थात् जितने हैं **गुणस्थान,....** देखो! चौदह गुणस्थान हैं। पर्याय में चौदह गुणस्थान होते हैं। यह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसा आत्मा कहीं हो नहीं सकता। समझ में आया? चौदह गुणस्थान हैं। पर्याय में चौदह गुणस्थान हैं। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा—समकित, पाँचवाँ, छठवाँ... ऐसे चौदह (गुणस्थान) पर्याय में है, वस्तु में नहीं। समझ में आया? व्यवहारनय का विषय चौदह गुणस्थान, द्रव्यकर्म सब है, वस्तु के स्वरूप में नहीं। अन्तर्दृष्टि देने से उसमें यह इकट्ठे नहीं आते। भेगा समझते हो? इकट्ठे-साथ में।

**मार्गणास्थानरूप....** देखो! चौदह मार्गणा है। चार गति, पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, समकित के बोल, भव्य-अभव्य। भव्य-अभव्य है। समझ में आया? चारित्र के भेद, समकित के भेद, ज्ञान के भेद, कषाय के भेद, लेश्या के भेद, गति के भेद सब हैं, नहीं हैं—ऐसा नहीं है। पर्यायदृष्टि से व्यवहारनय से हैं। समझ में आया? चौदह मार्गणा है। एक-एक मार्गणा के बहुत बोल हैं। शास्त्र में बड़ा विस्तार है। यह सब पर्यायदृष्टि से है, वस्तु में नहीं। चैतन्य शुद्ध स्वरूप में यह है नहीं। राग, द्वेष, मोह, दया, दान, पुण्यभाव यह राग है। द्वेष, जरा अंश में अरूचि अन्दर हो जाना, वह द्वेष है। मोह—स्वरूप की असावधानी का भाव, वह मोह है।

**इत्यादि अतिबहुत विकल्प....** देखो! भेद। ऐसे जो 'भाव' अर्थात् विभावरूप परिणाम.... यह विभाव परिणाम, विशेषरूप दशा, विभाव अर्थात् चौदह गुणस्थान आदि विशेषरूप दशा। विभावरूप कहा। चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान, विभाव-विशेष अवस्था सब भेद है न। देखो! ऐसा कहा। वस्तु स्वरूप की दृष्टि में (नहीं है)। पर्याय में सब है। है, उसके स्वरूप में आदर नहीं होने से वह वस्तु में है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह **विभावरूप**

परिणाम उनसे ( विमुक्ता ) सर्वथा रहित है। शुद्ध चैतन्य वस्तु की अनुभूति होने पर यह वस्तु अन्तर में आती नहीं। वह तो भिन्न रह जाती है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

सर्वथा रहित है। देखो! 'विमुक्ता' शब्द है न? 'विमुक्ता' विशेष मुक्त। भगवान् चैतन्य वस्तु, पर्यायों में ऐसे भेद विशेष होने पर भी वस्तु में यह सर्वथा नहीं है। पर्याय में है, और वस्तु में सर्वथा नहीं। सर्वथा का अर्थ किसका किया ? सेठी! नहीं, नहीं, अध्धर से नहीं चलता। 'विमुक्ता' शब्द पड़ा है अन्दर, देखो! 'विमुक्त' 'विमुक्त' विशेष मुक्त अर्थात् सर्वथा मुक्त, ऐसा अर्थ किया। अर्थ करने की भी इनकी बहुत खूबी है। भगवान्! पर्याय में है, वस्तु की दृष्टि में नहीं। अनेकान्त है। ऐसा अनेकान्त समझे बिना आत्मा... आत्मा करे, वह आत्मा इसे दृष्टि में आता नहीं। अनुभव में आवे ही नहीं, उसे मिथ्यात्व अनुभव में आता है। समझ में आया ?

भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणामस्वरूप विकल्प हैं,.... भेद। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, यह गुणस्थान, मार्गणास्थान, राग-द्वेष इत्यादि-इत्यादि। कचरा है न सब ? २९ बोल का कचरा। २९ बोल है। उकरडा समझते हो ? कचरा। कचरे का ढेर होता है न ? वे विकल्प हैं। भावार्थ इस प्रकार है कि जितने भी विभाव परिणामस्वरूप विकल्प हैं,.... ऐसा लिया है न ? भाई! ऐसा नहीं कि कुछ नहीं, एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं है। न हो तो निषेध किसका करना ? होवे, उसका निषेध होगा या नहीं हो उसका ? खरगोश के सींग का निषेध करो कि यह है। परन्तु कहाँ थे, उसका निषेध करे ? समझ में आया ? पर्याय में भाई! आत्मा और आत्मा अर्थात् क्या, यह सर्वज्ञ की दृष्टि प्रमाण जानना बहुत दुर्लभ है। अनन्त काल से इसने तत्प्रमाण जाना नहीं। अभिमान में इसने माना है। समझ में आया ? अन्यमती के बाबा आदि बहुत ऐसा कहते हैं, हमको तो आत्मा का साक्षात्कार हो गया है, हमको ऐसा है, बहुत गप्प मारते हैं। हमारे पालेज में गुजरात में तो ऐसे बहुत हैं। आत्मा का अनुभव है। धूल भी नहीं। अनुभव खरगोश के सींग जैसा है। ससलाना समझे ? खरगोश। सींग नहीं होते ? भगवान् आत्मा वस्तु की पर्याय में उसकी अवस्था में इतने भेद हैं। वस्तु की दृष्टि अनुभूति करने से उसमें वे नहीं। है और नहीं, है और नहीं। अब तीसरी बात ली।

मन-वचन से उपचार कर द्रव्य-गुण-पर्याय भेदरूप.... है। भाषा देखो! अब आया। भगवान् आत्मा द्रव्य है, अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें गुण-शक्तियाँ हैं, वे अनन्त गुण

कहलाते हैं। और उसकी पर्याय अर्थात् अवस्था अर्थात् हालत है। वह द्रव्य-गुण-पर्याय तीन है। समझ में आया? उसे मन-वचन से उपचार कर.... ऐसा कहते हैं। विकल्प उठाते हैं, तब यह द्रव्य है, यह गुण है। है अवश्य, परन्तु यह भेद का विकल्प उठे, तब तीन का भेद विचार में रहता है, ऐसा कहते हैं। मन और वचन से उपचार करके। वस्तु तो है, हों! परन्तु अभेद में यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय—ऐसे तीन विकल्प उठते हैं, वह मन का विकल्प है। वाणी द्वारा भेद करना, वह वाणी का विकल्प है। आहाहा! गजब बात! कहो, समझ में आया?

यह एक आत्मा—भगवान आत्मा, वह द्रव्य। द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का एकरूप। गुण अर्थात् अनन्त शक्तियाँ गुण, और पर्याय अर्थात् हालत / अवस्था / दशा। भेदरूप है। परन्तु वह है, उसमें तीन के भेद का विचार करे, तब मन का विकल्प उठता है। तीन के भेद का विचार करने से विकल्प उठता है और वाणी में भी तीन को भेद द्वारा कहने से अभेदपना उसका वाणी में आता नहीं।

**मुमुक्षु :** अभेदपना वाणी में नहीं आता?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वाणी में कहाँ? वाणी अभेद। यह लो! एक अभेद कहे तो एक अंश रहा वापस उसमें। वस्तु है, वह अन्दर द्रव्य, गुण और पर्याय का पूरा एकरूप है। है अवश्य। गुण नहीं है, ऐसा नहीं है। द्रव्य है, वह अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य। उसकी शक्तियाँ जो भाव, सहवर्ती शक्तियाँ, वह गुण और क्रमवर्ती दशा, वह पर्याय, परन्तु उस एकरूप में तीन का विचार करे, तब मन का विकल्प उठता है। आहाहा! यह तो तीन है, तथापि तीन प्रकार का विचार करने से विकल्प उठता है। आहाहा! सेठ! यह काम कठिन है।

**उपचार कर....** देखा! वस्तु में तो अभेदपना है। पर्याय, गुण और द्रव्य एकरूप है, ऐसा सब, परन्तु वस्तु में तीन प्रकार का विचार करने से मन से विकल्प उठता है। एक बात। **या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भेदरूप विकल्प हैं,....** भाषा देखो! यह अनन्त गुण की एक समय की पर्याय अनन्त उपजती है। है, हों! परन्तु यह भेद तीन के—उत्पाद-व्यय-ध्रुव, यह तीन भेद के लक्ष्य से विकल्प उठता है। आहाहा! राग उत्पन्न होता है। समझ में आया? भगवान आत्मा द्रव्य से-वस्तु से, गुण से और पर्याय से—इन तीन रूप में पूरा उसका (अस्तित्व) समाप्त होता है, परन्तु इन तीन के भेद, एक वस्तु के तीन भेद का विचार करने से रागमिश्रित विचार खड़ा होता है। अभेद वस्तु की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि ऐसे भेद के

विकल्प से नहीं होती। तथापि वह भेद है ही नहीं, ऐसा नहीं है, हों! है, परन्तु रागी प्राणी तीन का-भेद का विचार करे तो उस रागी को (इस) कारण से राग उत्पन्न होता है।

सर्वज्ञ तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सब प्रत्यक्ष जानते हैं। सर्वज्ञ भगवान एक आत्मा का द्रव्यपना, उसका गुणपना, उसकी अनन्त पर्यायें ऐसे अनन्त आत्मायें वे भगवान तो प्रत्यक्ष जानते हैं, उन्हें कोई राग होता नहीं, परन्तु यहाँ रागी प्राणी है, पूर्ण दशा नहीं, मोह में पड़ा है। वस्तु तीन होने पर भी तीन का विकल्प-विचार करे, तब रागी है, इसलिए राग उत्पन्न होता है। अभेद में जाने से राग छूट जाता है। कहो, सोभागभाई! समझ में आया? आहाहा! भारी बात! अब यहाँ तो दया, दान, भक्ति, पूजा और धर्म कहाँ गया। यहाँ तो कहते हैं, उसका द्रव्य-गुण-पर्याय से विचार करे तो वह विकल्प पुण्य है, वह धर्म नहीं। और एक आत्मा में उत्पाद-व्यय और ध्रुव अनादि-अनन्त है। नयी पर्याय उपजे, पुरानी पर्याय व्यय हो, एक ही समय में। परन्तु उन तीन का विचार करने से रागी है, इसलिए भेद के लक्ष्य से राग उत्पन्न होता है। उसमें अभेदपना दृष्टि में नहीं आता। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** सिद्धान्त से तो कठिन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कठिन... वस्तु तो ऐसी है न। वस्तु ऐसी है, भाई! एकदम सीधी है।

यह वस्तु है भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप है। अनन्त गुण। एक ज्ञान नहीं, ऐसे अनन्त-अनन्त गुण, उनका एकरूप, वह द्रव्य है। उसकी शक्ति की संख्या से अनन्त गुणे गुण संख्या से अनन्त गुण हैं। उसकी पर्याय संख्या से अनन्त है। परन्तु रागी प्राणी है, (इसलिए भेद के लक्ष्य से विकल्प की उत्पत्ति होती है)। केवली तो सब जानते हैं। अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय प्रत्यक्ष। उन्हें कुछ राग है नहीं। भगवान के ज्ञान में तो तीन काल-तीन लोक द्रव्य-गुण-पर्याय सब जानने में आया है। अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, एक-एक पर्याय, एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद, एक पर्याय का सामर्थ्य सब भगवान के ज्ञान में आ जाता है। ज्ञेय अर्थात् कि यह ज्ञान की पूर्ण पर्याय में सब आ जाता है, परन्तु अपूर्ण पर्याय है, राग में रहा है, वस्तु तीनरूप होने पर भी तीन का विचार करे, तब विकल्प, रागी है, इसलिए उठता है, उसे अभेद में दृष्टि नहीं जाती। आहाहा! कहो, सोभागभाई! ऐसा अन्यत्र कहीं सुनने को मिलता नहीं। अन्यत्र तो यह करो और यह करो। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! अथवा ऐसे बैठ जाओ, शून्य हो जाओ। क्या शून्य हो? धूल? शून्य हो जायेगा, परन्तु जड़ हो जायेगा।

भगवान सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय और ध्रुव । आहाहा! अस्ति है, हों! ये तीनों । देखो! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भेदरूप विकल्प हैं,... यह भेद का विचार होता है । यह... यह... यह... यह विकल्प उठता है । रागी है इसलिए, हों! वस्तु को जानने से कुछ होता है, ऐसा नहीं है । जानना अनन्त होता है और अनेक होता है, इसलिए विकल्प उठता है, ऐसा नहीं है । यदि ऐसा हो तो केवली को भी राग होना चाहिए । सेठी! परन्तु यह रागी प्राणी है, इसे अभी अपूर्ण दशा है । वीतरागता—विज्ञान दशा पूर्ण केवलज्ञान हुआ नहीं और अभी इसे पूरी चीज को साधना है, तब यह तीन प्रकार के विचार में रूकेगा तो इसे राग का विकल्प उठेगा, पुण्य होगा । समझ में आया? ऐसे विकल्प हैं । इसलिए भाषा ऐसी ली है, हों! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भेद है, खरगोश के सींग की भाँति नहीं है । खरगोश की तरह नहीं है । उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो कहनेमात्र हैं, कुछ है नहीं – ऐसा नहीं है । है ।

अनन्त गुणों की, अनन्त आत्मा के एक-एक पर्याय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय उत्पन्न होती है । प्रत्येक समय । 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं । एक समय में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय प्रत्येक को उत्पन्न होती है । केवली को भी अनन्त गुण की अनन्त पर्याय उत्पन्न होती है, परन्तु उन्हें राग नहीं है । वीतरागविज्ञानरूप से पूर्ण हो गये हैं । यह प्राणी रागी है और स्वरूप का साधन करना है तो कहते हैं कि यह है । समझ में आया ?

परन्तु उनसे रहित शुद्ध चेतनामात्र का आस्वादरूप ज्ञान उसका नाम अनुभव कहा जाता है । समझ में आया ? यह भेद हैं, उनका ज्ञान करके (अनुभव करे) । पहले अपने कुछ न जाने तो ? खाये बिना हाथ धो डालें तो ? धोना तो पड़ेंगे न हाथ ? खाये बिना धो डालें तो ? चळु कहते हैं न ? हमारे चळु कहते हैं । चळु करो, चळु । परन्तु खाये बिना ? अपने को क्या जानना है कुछ ? परन्तु जाने बिना कब तू अन्दर जायेगा ? यह भेद है, ऐसी अस्ति है । उसे जाने बिना हाथ धो डालना है, खाये बिना ? सेठी ! हाथ धोना समझते हो या नहीं ? खाये के बाद धोना है या नहीं ? पहले धोकर बैठ जाये तो ? उसी प्रकार यह सब छोड़ना तो है, फिर जानने का क्या काम है ? परन्तु यह है, ऐसा ज्ञान हुए बिना तेरा ज्ञान व्यवहार से सच्चा होगा नहीं । यह हैं ऐसे प्रकार । यह हेयरूप से, भेदरूप से है, उनसे रहित मात्र भगवान को दृष्टि देने से, शुद्ध चेतनामात्र का (अनुभव), अकेला शुद्ध चेतना । चेतना शब्द से अनन्त गुण हैं, हों, साथ में ! अकेला ज्ञान, ऐसा नहीं । मात्र अनन्त गुण का चेतना-अनुभव अकेला । चेतनामात्र के आस्वादरूप । उसके आनन्द के स्वादरूप ज्ञान, उसके आनन्द



के स्वादरूप ज्ञान, उसका नाम अनुभव कहा जाता है। वह अनुभव है पर्याय, परन्तु अभेद का अनुभव है, इसलिए उसे अनुभव कहा जाता है। निर्विकल्प अनुभव है। समझ में आया ?

**शुद्ध चेतनामात्र का आस्वादरूप....** वह अशुद्धपने का आस्वाद तो कहते हैं कि अनादि का है, ऐसा कहते हैं। भेद का, गुणस्थान का, उत्पाद-व्यय-ध्रुव आदि का विकल्प का ऐसा स्वाद तो अनादि का है, वह कहीं नया नहीं है। अब तुझे आत्मा का अनुभव करना है या नहीं? तब कहते हैं कि भेद का लक्ष्य छोड़। अभेद चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण, हों! उसमें। ऐसा एकरूप चेतनामात्र। उसमें राग नहीं, भेद नहीं—ऐसा आत्मा का आस्वाद, आनन्द का स्वाद (आवे), वह पर्याय है। ऐसे आस्वादरूप ज्ञान, वह आनन्द के स्वादरूपी जो ज्ञान, उसका नाम अनुभव कहा जाता है। समझ में आया ?

अनुभव क्या? अनुभव और क्या? ऐसा कहे। यह तो वे लोग कहते हैं न वेदान्त। अनुभव और क्या? अनुभव करनेवाला और अनुभव दो कैसे? ऐसा। यह कहते हैं। स्थानकवासी में तो हमारे... कहो, समझ में आया इसमें? अनुभव अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण का रूप, स्वरूप, उसे अनुसरकर होना, उसका नाम अनुभव। जो पर्याय भेद को अनुसरकर राग का अनुभव करती थी, वह शुद्ध चैत्यस्वरूप में; यह (भेद का) लक्ष्य छोड़कर शुद्ध चैतन्यस्वरूप को अनुसरकर होना, अनु-भव, शुद्ध चैतन्य को अनुसरकर होना—पर्यायरूप से निर्मलरूप से होना, इसका नाम आत्मा के आनन्द के आस्वाद का ज्ञान कहलाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? कहो, जेठालालभाई! यह तो बहुत आगे गया। और कुछ निपटे ऐसा नहीं इसमें? अरे झूठ-मूठ में बात चले। यह वह जैसा है वैसा रहेगा? कहो, मालचन्दजी!

वह अनुभव जिस प्रकार होता है उसी को बतलाते हैं— फिर जरा उसकी पद्धति कहते हैं। आहाहा! 'यावत् अपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः अत्यन्तवेगात् वृत्तिम् न अवतरति' जितने काल तक, जिस काल में 'अपरभाव' शुद्धचैतन्यमात्र से भिन्न.... अन्य भाव। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप जो समस्त भाव... 'त्याग' उनका त्याग। अर्थात् क्या? त्याग की व्याख्या देखो! ये भाव समस्त झूठे हैं,.... झूठे का अर्थ स्वरूप में नहीं, ऐसा, हों! वे झूठे हैं (अर्थात्) वापस ऐसा कहते हैं कि नहीं, नहीं - ऐसा नहीं है। जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं है। ...पर्याय है, रागादि है, भेद आदि है, गुणस्थान है, अनादि के हैं।

समस्त यह भाव। अभी तो फिर त्याग की व्याख्या करते हैं। ये भाव समस्त झूठे हैं,

जीव के स्वरूप नहीं हैं, ऐसे प्रत्यक्ष आस्वादरूप ज्ञान के सूचक.... यह प्रत्यक्षरूप से आनन्द का अनुभव, उसका सूचक दृष्टान्त। उदाहरण की भाँति। जैसे किसी पुरुष ने धोबी के घर से अपने वस्त्र के धोखे से दूसरे का वस्त्र आने पर पहिचाने.... लो! वस्त्र आने पर बिना पहिचान के उसे पहिनकर.... देखो! दृष्टान्त। जैसे किसी पुरुष ने धोबी.... धोबी समझते हो न? धोबी के घर से अपने वस्त्र के धोखे से.... दिया हो धोने स्वयं ने, परन्तु दूसरे का भी साथ में वहाँ था, वह मेरा है, ऐसा विचारकर दूसरे का वस्त्र आने पर.... अपने बदले दूसरे का आया। बिना पहिचान के.... यह दूसरे का वस्त्र है, ऐसा पहिचाना नहीं। यह मेरा नहीं, ऐसा पहिचाना नहीं। उसे पहिनकर अपना जाना। पहनकर सो रहा है।

बाद में उस वस्त्र का धनी.... धोबी के यहाँ गया। ऐ! मेरा वस्त्र? कि भाई! इसमें खोज ले। इनमें मेरा नहीं। अभी एक आया था, वह ले गया लगता है। वह वहाँ गया। जो कोई था, उसने अंचल पकड़कर कहा कि 'यह वस्त्र तो मेरा है, पुनः कहा कि मेरा ही है' ऐसा सुनने पर उस पुरुष ने चिह्न देखा, जाना.... यह वस्त्र मेरा नहीं है। यह पछेड़ी मेरी नहीं है। मेरी पछेड़ी के ऊपर मेरा नम्बर है। आता है न? अभी लिखते हैं न? कोट पर पीछे (निशान) करते हैं, नहीं? पीछे अन्दर की ओर रखते हैं। कोट के अन्दर कुछ लिखते हैं। उसका नाम हो न थोड़ा ऐसा। ए.जी. पीछे (लिखते हैं)। नहीं? ऐई! तुम्हारा देखा हो न। कभी कहीं कोट-बोट किसी के देखे हों न, उसमें अन्दर होता है। अन्दर (लिखते हैं) अर्थात् क्या कि बाहर खबर न पड़े। उसने देखा कि बात सच्ची है, यह वस्त्र मेरा नहीं है। यह चिह्न मेरा नहीं है। मेरा चिह्न तो मिलता नहीं, भाई!

ऐसा सुनने पर उस पुरुष ने चिह्न देखा, जाना कि मेरा चिह्न तो मिलता नहीं इससे निश्चय से यह वस्त्र मेरा नहीं है, दूसरे का है। उसके ऐसी प्रतीति होने पर त्याग हुआ घटित होता है। यह ओढ़े हुए पड़ा होने पर भी उसे अपना नहीं है, ऐसा त्याग होना घटित होता है। सामने हो गया त्याग और स्वामीपना मिट गया। ओढ़े होने पर भी स्वामीपना (छूट गया)। वस्तु है, हों! परन्तु किसी की थी, उसका स्वामीपना, जहाँ यह नहीं (ऐसा हुआ वहाँ) स्वामीपना छूट गया। वह त्याग हो गया, ऐसा कहते हैं। यह त्याग की व्याख्या की। वह त्याग शब्द पड़ा है न? त्याग की यह व्याख्या की। उसने जहाँ लक्षण देखा कि यह मेरा नहीं है, वहाँ उसे त्याग हो गया। इस प्रकार अब आत्मा में घटित करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१८

श्री समयसार, गाथा-३०६-३०७, प्रवचन - २७६

दिनांक - १५-०६-१९६२

आत्मा का जो स्वभाव, शुद्ध परमात्मस्वभाव आत्मा का है। वह राग और द्वेष से बँधा हुआ पर्याय में तत्त्व है, उससे पृथक् पड़कर पूर्णानन्द की प्राप्ति करना, इसका नाम मोक्ष है। इस मोक्ष का उपाय क्या? यह बात चलती है। निरअपराध और सापराध की बात हो गयी न? भगवान आत्मा जो पुण्य-(पाप) आदि के परिणाम अन्दर हुए—दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, शुभाशुभभाव, वे सब अपराध हैं। क्योंकि वे सब विकल्प और विकार हैं। उन विकाररहित आत्मा की शुद्ध शक्ति-स्वभाव पवित्र है, उसकी दृष्टि करके, उसका आचरण अन्तर में शुद्ध का करना, उसे निरपराधी कहा जाता है और निरपराधी दशा मोक्ष का कारण है। सापराधदशा, वह मोक्ष का कारण नहीं, परन्तु वह बन्ध का कारण है। तब शिष्य को प्रश्न उठा।

( यहाँ व्यवहारनयावलम्बी अर्थात् व्यवहारनय को अवलम्बन करनेवाला तर्क करता है कि- ) इतना तो अध्धर से है। अब यहाँ से टीका है। शिष्य को शंका उठी, प्रश्न उठा—महाराज! तुम यह आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति, इसे पहले से शुद्ध की सेवना, शुद्ध की सेवना (करना), यह बात बारम्बार करते हो, परन्तु इतना सब प्रयास करने का पहले क्या काम है? समझ में आया? शुद्ध आत्मा की उपासना का प्रयास करने का क्या काम है? लो! यहाँ तो पहले से शुद्ध... शुद्ध (है, ऐसा कहते हो)। यह पुण्य और पाप के रागरहित सच्चिदानन्द निर्मलानन्द पूर्ण प्रभु की अन्तर की श्रद्धा, ज्ञान और एकाकार करना, वही मोक्ष का उपाय, दूसरा कोई है नहीं। परन्तु पहले से यह? लोग कहते हैं न कि परन्तु पहले से यह? अभी ही एक व्यक्ति कहता था। परन्तु दूसरों को कुछ बालकों को दूसरा रास्ता होगा? जिसे धर्म करना हो, उसे रास्ता यह है, दूसरा रास्ता नहीं। उसे ऐसा कहते हैं, यहाँ शिष्य का प्रश्न है व्यवहारवाले का, कि शुद्ध आत्मा, जो वृत्ति उठती है, शुभभाव की, उसे भी नहीं सेवन करना, उसे (शुभ को) अपराध कहते हो। और उससे रहित चिदानन्द, ज्ञानानन्द की मूर्ति का अन्तर ज्ञान करके अन्तर में स्थिर होना वह निरपराध, आराधक और मोक्ष का

मार्ग उसे तुम कहते हो, तो पहले से इतना अधिक प्रयास करने का क्या काम है ?

**क्योंकि प्रतिक्रमण आदि से ही आत्मा निरपराध होता है;....** व्यवहार प्रतिक्रमण करें। पाप के भाव हो अशुभ, उनसे विमुख होकर शुभभाव करें, पाप लगा हो, उसका प्रायश्चित्त करें। **प्रतिक्रमण आदि से ही आत्मा....** यह आठ बोल हैं। फिर नीचे आयेंगे, अर्थ होंगे। शिष्य का प्रश्न है कि पाप के भाव जो अशुभ हैं, उनसे हटकर जो पुण्य का भाव शुभ है, जो मिच्छामी दुक्कडम्, प्रतिक्रमण करे, विमुख हों, विषय कषाय की इच्छा से विमुख हों, भगवान की मूर्ति आदि की आसातना करते हों तो उससे विमुख हों और शुभभाव में आयें तो यह **निरपराध होता है;....** उससे आत्मा निरपराध होता है। पाप के अपराध छूटते हैं, इस अपेक्षा से निरपराधी (कहा है)। ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

**क्योंकि सापराध के,....** जो अपराधी जीव है, वह **अप्रतिक्रमण आदि हैं वे, अपराध को दूर करनेवाले न होने से....** अज्ञानी जो अपराधी है, जो पाप के भाव करते हैं, विपरीत श्रद्धा (करते हैं), वे पुण्य में सुखबुद्धि, वे ऐसी विपरीत मान्यता, ऐसे अशुभभाव को छेदने के लिये **अप्रतिक्रमण आदि हैं वे, अपराध को दूर करनेवाले न होने से,....** पाप है, उस पाप को दूर नहीं करे। जो पाप के भाव हैं, उस कोई पाप को दूर नहीं करे, इसलिए तो उस पाप के भाव को जहर कहना। क्या कहा, समझ में आया ? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, अप्रतिक्रमण अर्थात् कि पाप से विमुख नहीं होना और पाप में रहना, ऐसे भाव को तो जहर का घड़ा कहो, वह तो हमको ठीक लगता है।

**इसलिए जो प्रतिक्रमणादि हैं वे; अपराध को दूर करनेवाले होने से अमृतकुम्भ हैं।** परन्तु ऐसे पाप के भाव को जो पुण्य के शुभभाव हैं, पाप से हटना, मिच्छामि दुक्कडम्, यह खोटा किया, यह नहीं, ऐसे शुभभाव होते हैं, उन्हें तो शास्त्र में पाप के अपराध को दूर करनेवाले कहने से उन्हें अमृत का घड़ा कहा है। व्यवहारनय का अवलम्बन करनेवाले शिष्य का प्रश्न है। व्यवहारनय के शास्त्र में ऐसे शुभभाव को तो अमृत का घड़ा कहा है। समझ में आया ? व्यवहार आचारसूत्र में हमारे भी साक्षी है। हमारे शास्त्र का आधार है, कहीं अध्धर से नहीं कहते। समझ में आया ?

शास्त्र में दो प्रकार के कथन हैं। एक निश्चय अर्थात् यथार्थ और एक उपचारिक अर्थात् व्यवहार। तब व्यवहार शास्त्र में जो पाप के भाव छेदकर पुण्य के भाव करे, उसे निश्चयस्वरूप का भान और दृष्टि स्थिरता हो तो उसे उस व्यवहारभाव को अमृत का घड़ा, ऐसा कहा जाता है। इसलिए वह पवित्र है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? पाप के

भाव हों, वे तो अपवित्र हैं, जहर हैं, वे आत्मा को नुकसान करनेवाले हैं, परन्तु व्यवहारशास्त्र में तो ऐसा आता है कि यह पाप लगा हो तो प्रायश्चित्त लेना, भगवान की सेवा करना, दर्शन करना, पूजा करना और किसी ने विरोध किया हो, उसके पाप को छेदना। ऐसे शुभभाव की क्रिया को (अमृत कहा है)। भगवान का स्मरण करना, वह शुभभाव, वह शुभभाव है। वह पाप के अपराध को दूर करनेवाला है; इसलिए शुभभाव को व्यवहार से, वह तो व्यवहार अर्थात् उसे अमृत कहा है। उसे तो अमृत ही है न।

व्यवहार का कथन करनेवाले आचारसूत्र में भी कहा है कि—

अप्पडिकमणमपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चव ।

अणियत्ती य अणिंदागरहासोही य विसकुम्भो ॥१॥

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।

णिंदा गरहा सोही अडुविहो अमयकुम्भो दु ॥२॥

अर्थ :- अप्रतिक्रमण... अर्थात् पाप के भाव, पाप के भाव। पाप से वापस नहीं हटना और पाप में रहना। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध से वापस नहीं हटता, ऐसे भाव को अप्रतिक्रमण कहते हैं। अप्रतिसरण,.... मिथ्यात्व आदि के भाव से, तीव्र मिथ्यात्व, उससे विमुख न होना, उसे अप्रतिसरण कहते हैं। अपरिहार,.... मिथ्यात्व आदि राग से, विमुख न होना, अशुभभाव से निवारण न करना, उसे यहाँ आगे पाप कहा जाता है। अधारणा,.... भगवान को लक्ष्य में न लेना, चिन्तवन न करना, चिन्तवन न करना परन्तु उससे विरुद्धता में रहना, उन परमात्मा आदि को स्मरण में न रखना, उसे अधारणा कहते हैं। वह तो पाप है। अनिवृत्ति,.... अर्थात् पाप से विमुख न हटना और पाप में रहना, वह अनिवृत्ति। अनिन्दा,.... पाप किये हों, उनकी निन्दा न करना, इसका नाम अनिन्दा, पाप किये, उनकी गर्हा न करना गुरु के निकट और अशुद्धि... पाप के भाव को अशुद्धि कहा जाता है। यह ( आठ प्रकार का ).... लगे हुए दोष प्रायश्चित्त न करना, वह तो जहर का घड़ा है। समझ में आया इसमें ?

वह शास्त्र का आधार तो लेता है न। व्यवहारनय के शास्त्र में (कथन आया हो)। निश्चय का आत्मा अमृतस्वरूप, पवित्र आनन्दघन आत्मा है। उसकी दृष्टि और उसकी रमणता हुई है, वह तो निश्चय अमृत है, परन्तु व्यवहार-शास्त्र में उसके काल में शुभभाव के विकल्प हों, उन्हें भी निमित्त देखकर व्यवहार से अमृत कहा गया है। उसका आश्रय

लेकर शिष्य बात करता है। यह रहे व्यवहारशास्त्र में। चारित्रसार, आराधनासार। इस जगह इन सबको अमृत कहा है अर्थात् पवित्र कहा है। यह अमृत कहा, उसे पवित्र कहा। तुम कहते हो कि जहर है। समझ में आया ?

यह प्रतिक्रमण,.... अर्थात् पाप से विमुख होना, प्रतिसरण,.... सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा.... सच्ची श्रद्धा आदि का शुभविकल्प। परिहार.... मिथ्यात्वादि ( रागादि ) दोषों का निवारण.... करना। धारणा,.... पंच नमस्कारादि मन्त्रद्व प्रतिमा इत्यादि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना.... यह सब शुभभाव शास्त्र में वर्णन किया है और उसे शास्त्रकार अमृत कहते हैं। अमृत का घड़ा कहते हैं। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। निवृत्ति.... बाह्य विषयकषायादि इच्छा में प्रवर्तमान चित्त को हटा लेना.... आत्मा विषयकषाय में वर्तता हो, तो उसे विमुख करना, इसका नाम निवृत्ति। उसे शास्त्रकार अमृतकुम्भ कहते हैं। और निन्दा,.... दोष लगे हों। आत्मसाक्षीपूर्वक दोषों का प्रगट करना। अरे! आत्मा! यह भाव नहीं। यह खराब ( भाव है), इस प्रकार उसकी निन्दा करना, वह शुभभाव है। गर्हा.... गुरुसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। यह भी एक शुभभाव है। और शुद्धि.... दोष होने पर प्रायश्चित लेकर विशुद्धि करना। यह दोष लगा हो, उसका प्रायश्चित लेना, विशुद्धि करना, वह भी एक शुभभाव है। ऐसे आठ प्रकार के शुभभाव को, आठ प्रकार से लगे हुए दोष का प्रायश्चित करना। उन आठ का प्रायश्चित न करना, वह जहर है और ऐसे आठ प्रकार के पाप लगे हों, उनका प्रायश्चित करना, वह अमृत है। समझ में आया ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

पहले से अशुभ छोड़कर शुभ में आवे, फिर शुद्ध होकर रहेगा। शुभ करते-करते शुद्ध आत्मा का भान होगा। सीधे एकदम लगाओ और करो शुद्ध, करो शुद्ध, करो शुद्ध... ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया ? कटारियाजी! पहले कहे शुभ करने दो। तो हम अशुभ से दूर होंगे तो इतना तो अमृत होगा या नहीं ? ऐसा प्रश्न करता है। ऐसा है नहीं, यह बात मिथ्या है। सुन तो सही। समझ में आया ?

व्यवहारनय के शास्त्र में जो कहा है, उसका अर्थ तू नहीं समझता। वह तो निश्चय आत्मा का पुण्य-पाप से रहित अपना स्वरूप चिदानन्दमूर्ति, उसकी अन्तर्दृष्टि और अनुभव हुआ और साथ में फिर शुभभाव प्रतिक्रमण आदि का हो तो उसे व्यवहार शास्त्र में व्यवहारनय से अमृत का घड़ा कहा जाता है। निश्चय बिना का व्यवहार तो अमृतकुम्भ

व्यवहार से भी नहीं कहते। समझ में आया ? यह शिष्य का प्रश्न है। दुर्गादासजी ! पहले यह करो, यह करने दो, प्रतिक्रमण करें, पाप कम करें, हिंसा छोड़ें, दया पालन करें, यह असत्य छोड़ें, सत्य बोलें, ब्रह्मचर्य पालन करें, अब्रह्म छोड़ें, परिग्रह रखते हैं उसे छोड़कर निष्परिग्रह का शुभराग करें, भगवान की पूजा करे, उनका स्मरण करें.... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... ऐसे भाव क्या खोटे हैं ? उनसे तो पाप छिदता है न ? और शास्त्र में कहा है कि उस भाव को अमृत कहा है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

उपरोक्त तर्क का समाधान करते हुए आचार्यदेव ( निश्चयनय की प्रधानता से ) गाथा द्वारा करते हैं- तेरी बात सत्य नहीं है। निश्चय के भान बिना उस व्यवहार को व्यवहार अमृत भी नहीं कहा जाता। तू तो कहे, सीधे शुद्धनय... सीधे यह करना... यह करना... पाप छेदना और पुण्य करना, पाप छेदना और पुण्य करना, अशुभ टालना और शुभ करना, उसे अमृत कहा नहीं। समझ में आया ? यह शास्त्र में व्यवहारनय, निश्चयनयवाला है। तीन परन्तु निश्चयनयवाली जिसकी दृष्टि हुई है, उसे व्यवहारनय का विषय अमृत निमित्त गिनकर कहा है।

**मुमुक्षु :** निमित्त नहीं परन्तु उपादान....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उपादान कैसा था अन्दर ? समझ में आया ?

व्यवहारनय में कहा है, वह तो निश्चयस्वरूप का (जिसे भान हुआ है), आत्मा सच्चिदानन्द सत् अनादि-अनन्त ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, ऐसे आनन्द का अनुभव दृष्टि में हुआ और स्थिर नहीं रह सकता, तब उस भूमिका के प्रमाण में पाप से बचने के जो शुभभाव पूजा, भक्ति आवे, प्रतिक्रमण आदि हो, उसे उपचार से, आरोप से, व्यवहार से, सच्चा अमृतपना उघड़ा है, उसे ऐसे कषाय की मन्दता का निमित्त गिनकर व्यवहारनय के शास्त्र में व्यवहार से उसे अमृत कहा है।

**मुमुक्षु :** व्यवहार को आरोप कहा नहीं जाता न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब समझे बिना। व्यवहार से आरोप नहीं कहा जाता, व्यवहारनय वह आरोप नहीं है। व्यवहार धर्म है। निश्चय भी धर्म है और व्यवहार भी धर्म है। धूल में भी नहीं, सुन न ! कौन जाने पढ़-पढ़कर क्या निकाला शास्त्र में से ?

यह वीतरागस्वरूप चैतन्य है। राग और पुण्य के विकल्परहित निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व है। ऐसे तत्त्व की दृष्टि और ज्ञान का भान नहीं और ऐसे मात्र स्मरण भगवान के जाप-जाप

करें और ऐसा करके हमारा कल्याण होगा। मर जायेगा तो नहीं होगा, कहते हैं। सूख जाए ऐसे अपवास करे, स्मरण करके। वह तो शुभराग का विकल्प का उत्थान है, वृत्ति होती अवश्य है। किसे? वस्तु का जो भान हुआ और स्थिर नहीं हो सकता, उसे ऐसे काल में ऐसे भाव होते हैं। इससे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव के भान की भूमिका में ऐसे शुभभाव को उपचार से, आरोप से अमृत कहा जाता है। इस निश्चय से तो वह जहर है। समझ में आया? अन्यथा, व्यवहार से अन्यथा कहते हैं। है जहर परन्तु अमृतस्वरूप चिदानन्द आत्मा अतीन्द्रिय, उसकी श्रद्धा-ज्ञान में रमता-स्थिर न हो सकता हो, उस समय उसे ऐसे भाव-विकल्पवाले शुभभाव आते हैं। इससे उसे अमृत की भूमिका के सम्बन्ध में निमित्त है, इसलिए उसे निमित्त का आरोप दिया कि वह भी एक अमृत है। व्यवहार से। परमार्थ से तो वह राग उठे प्रतिक्रमण का, भगवान के स्मरण का, जाप का, प्रतिमा के दर्शन का, सम्मेदशिखर की यात्रा का, वह राग भी है तो आत्मा के अमृत का लूटनेवाला जहर है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा जिन्होंने एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक देखे और उस तीन काल—तीन लोक में जो चीजें हैं—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, मोक्षमार्ग, बन्धमार्ग जानकर वाणी द्वारा... इच्छा बिना (वाणी) निकली। उस वाणी द्वारा निकला हुआ, उसमें कहा है कि हमारे स्मरण में यदि जाये, उसे तो हम शुभराग कहते हैं और वास्तव में तो उसे अशुभ से बचने की अपेक्षा से, निश्चय के भान की भूमिका में ऐसे शुभ को व्यवहार से अमृत कहा, परमार्थ से तो वह भी जहर है। कठिन (पड़ता है)। बन्धमार्ग जो जहर है न, जहर है न! व्यवहारनय अर्थात् अन्यथा कहनेवाला। नहीं है, वैसा कहनेवाला, उसका नाम व्यवहारनय है। समझ में आया? शास्त्र में ऐसा कथन आता है। शास्त्र का आधार लिया है। उसका उत्तर कहते हैं। ३०६-३०७ (गाथा)।

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य।

णिंदा गरहा सोही अडुविहो होदि विसकुंभो ॥३०६ ॥

अप्पडिकमणमप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव।

अणियत्ती य अणिंदागरहासोही अमयकुंभो ॥३०७ ॥

नीचे हरिगीत -

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण त्यों परिहरण, निवृत्ति धारणा।

अरु शुद्धि, निंदा, गर्हणा, ये अष्टविध विषकुम्भ है ॥३०६ ॥



अनप्रतिक्रमण अनप्रतिसरण, अनपरिहरण अनधारणा।

अनिवृत्ति, अनगर्हा, अनिन्द, अशुद्धि अमृतकुम्भ है ॥३०७॥

शोर मचा जाए न! अशुद्धि, वह अमृतकुम्भ है। अर्थात् कि शुद्ध करने का जहाँ रहता नहीं, उसका नाम अमृतकुम्भ है। कुछ शुद्ध करना, ऐसा विकल्प उठे, वह तो जहर है। समझे? स्वयं मुनि है, भावलिङ्गी सन्त हैं, जंगल में विचरनेवाले दिगम्बर मुनि, यह उनकी दशा में कहते हैं कि यह तू जिसे व्यवहार को अमृत कहता है, उसे हम निश्चय से जहर कहते हैं। विकल्प तो उठा है न? यह शास्त्र लिखते समय (विकल्प) नहीं? विकल्प उठा है, शुभराग है, भगवान की यात्रा भी आता है। शुभभाव की वृत्ति उठती है, होता है। पूर्ण वीतराग पूर्ण निर्दोषदशा न हो तो उसमें ऐसी सदोष की दशा (होती है)। तीव्र सदोष की नहीं, मन्द सदोष की दशा आती। उस मन्द सदोष को निश्चय की अपेक्षा रखी हावे तो व्यवहार से उसे शास्त्र में अमृत कहा था। हम कहते हैं कि निश्चय से वह जहर है। समझ में आया? उसने कहा व्यवहार से, इसने कहा निश्चय से। आहाहा!

पहली बात यह है कि वस्तु स्वयं उसका—आत्मा का स्वभाव अत्यन्त निर्दोष है। वस्तु स्वयं सदोष होगी? उसकी दशा में, हालत में शुभ और अशुभभाव उठे, वह सब दोष है। अब जिसे दोष को छेदना है, उसे तो पुण्य-पाप के दोषरहित चिदानन्दमूर्ति प्रभु, की अन्तर की दृष्टि और निर्विकल्प अनुभव करे तो दोष छिदता है, नहीं तो दोष छिदता नहीं। समझ में आया? यह तो बाहर में ही मनवा कर यह... गाड़ी हाँकी। जाओ हो गया तुम्हारे धर्म। सोओ, बैठो निश्चिन्त, यह भगवान के दर्शन किये। जाप ऐसे-ऐसे कुछ किये, सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किया, हो गया। यात्रा की एक बार, हो गया कल्याण। धूल में भी कल्याण नहीं तेरा, सुन न! ऐसा तो अनन्त बार कर चुका, ऐसे शुभभाव को। अनन्त काल का भटकता आत्मा, क्या नया है? अनादि काल का है। अनादि काल में ऐसे शुभराग के भक्ति, पूजा, दान और दया, वह तो अनन्त बार कर चुका है। वह तो राग की क्रिया है, कोई आत्मा की क्रिया नहीं। धर्म की क्रिया नहीं, भारी कठिन, भाई! समझ में आया?

इसलिए उसने जब व्यवहार शास्त्र के, व्यवहार के कथन सामने रखे (तब यहाँ निश्चय का कथन करते हैं)। वह यही रखते हैं न? कि विकार अपने से होता है। तब वे कहें, देखो! यह लिखा है कर्म से विकार होता है। निकाला शास्त्र। परन्तु वह तो पर से होता है, वह तो पर आश्रित कथन व्यवहार का हुआ। स्व से होता है, उसका क्या अब?

तब उपादान है उसका क्या ? कहो ! सम्यग्दर्शन हो । लो, भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, लिखा है शास्त्र में । जातिस्मरण से सम्यग्दर्शन होता है, वेदना से होता है । परन्तु वह तो सब निमित्त की बात है, परन्तु उपादान से क्या ? अन्तर से क्या ? समझ में आया ? शास्त्र के व्यवहारनय के कथन सामने रखे । इसने भी सामने रखा । यह रीति है ? शास्त्र में व्यवहार के कथन बहुत आते हैं । क्योंकि अशुभ से वंचनार्थ, ऐसा बोला जाता है । ऐसा शास्त्र स्वयं कहते हैं । आचार्य अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, अशुभ से वंचनार्थ । ज्ञानी को भी भगवान की भक्ति-पूजा होती है । वह करे, ऐसा कहते हैं । व्यवहारनय से तो ज्ञानी भक्ति करे, पूजा करे, यात्रा करे । इसका अर्थ कि उसका वह शुभभाव होता है और वह शुभभाव पुण्यबन्धन का कारण है, धर्म नहीं । समझ में आया ? वह जितने व्यवहार के कथन शास्त्र में ( आवें ), उन्हें सामने रखे, जहाँ बात निश्चय की करे कि विकार जीव से होता है । तो कहे, नहीं । विकार कर्म से होता है । यह शास्त्र में लिखा है । धर्म सम्यग्दर्शन आत्मा से होता है । तब कहे, यह लिखा वेदना से होता है, जातिस्मरण से होता है, सुनने से होता है । अब यह तो सब निमित्त के, व्यवहार के कथन है । समझ में आया ? परमार्थ से क्या ? यह पहले कह न, फिर यह व्यवहार । वह कहे कि पहले व्यवहार हो तो शुद्धि होती है । यहाँ कहते हैं कि यह निश्चय शुद्धि हो तो उसके व्यवहार के भाग को अमृत कहो, धर्म कहो, व्यवहार धर्म कहो, व्यवहार धर्म, उपचारिक धर्म; वास्तविक धर्म नहीं । वह कहे, नहीं, आरोप-बारोप नहीं । दोनों मोक्षमार्ग सच्चे हैं । निश्चयमोक्षमार्ग सच्चा है और व्यवहार भी सच्चा है । समझ में आया ?

प्रवचनसार में लिया नहीं ? भाई ! अणास्रवी । अन्तिम नहीं ? अणास्रवी है । वह सास्रवी है । हाँ, सआस्रव अर्थात् वह विकल्प उठता है, उसे हम पीछे लेंगे । पीछे-पीछे साधु कहेंगे । मूल तो वह साधु है । अप्रमत्तदशा में रमता अणास्रवी आनन्दकन्द में झूलता जो साधु है, उसे हम मोक्षमार्गी कहते हैं । साधु कहो मोक्षमार्गी ( कहो ), परन्तु मुख्य मोक्षमार्ग उसे कहते हैं और पीछे से छठवें गुणस्थान को भी तीन कषाय का अभाव है और वह विकल्प है, परन्तु पीछे से उसे हम साधु या मोक्षमार्गी कहते हैं । पीछे से कहते हैं, परन्तु उसे अभी आस्रवभाव आता है । कहो, समझ में आया ? इस प्रकार यहाँ निश्चय चिदानन्दमूर्ति का भान यथार्थ वस्तु जैसी है, जैसा पवित्र और निर्दोष आत्मा है, वैसी निर्दोष दृष्टि और ज्ञान हुआ और उसमें अन्तर्मुख होकर कुछ रमना-स्थिर ( होना ), ऐसे जीव को धर्म और धर्म की क्रिया कहने में आती है । उसे भी जब शुभभाव भक्ति, पूजा, दान का भाव

होता है तो उसे व्यवहार से धर्म कहो, व्यवहार से अमृत कहो, व्यवहार से पवित्र कहो। व्यवहार से पवित्रता उसे कहा जाता है। अर्थात् पवित्र नहीं, उसे पवित्र कहना, इसका नाम व्यवहारनय है। समझ में आया ?

**टीका :-** पहली बात तो यह है कि, प्रथम शब्द है न? प्रथम तो जो अज्ञानी जनसाधारण ( अज्ञानी लोगों को... ) अनादि का है और उसे जो अप्रतिक्रमणादि हैं.... पाप के भाव मिथ्यात्व के, अज्ञान के, अशुभ राग-द्वेष के भाव, ये आठ बोल जो पाप के सब कहे, वे तो शुद्ध आत्मा की सिद्धि के अभावरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए स्वयमेव अपराधरूप होने से विषकुम्भ ही है;.... क्या कहते हैं? अज्ञानी साधारण जिसे आत्मा की खबर ही नहीं कि आत्मा क्या वस्तु है। पवित्र आत्मा आनन्दकन्द, ज्ञान का समुद्र, दृष्टा का स्वभाव, उस चैतन्य की जाति की खबर नहीं और जो राग और पुण्य और निमित्त को धर्म मान रहे हैं, ऐसे अज्ञानी जन साधारण, ऐसे साधारण के अप्रतिक्रमण है। अप्रतिक्रमण अर्थात् पाप से हटा नहीं, पाप में पड़ा है, अशुभभाव में पड़ा है, मिथ्यात्व में अशुभभाव में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग के पाप में ( पड़ा है )। वह भगवान को मानता नहीं, भगवान का स्मरण नहीं, भगवान की भक्ति नहीं, भगवान की पूजा नहीं। समझ में आया ? देव-गुरु का आदर नहीं, देव-गुरु का विनय नहीं, देव-गुरु का अनादर ( करे ), ऐसे जो भाव हैं, वे तो शुद्धात्मा की प्राप्ति के अभावरूप हैं। उसके कारण तो आत्मा को कहीं शुद्धि होती नहीं।

वह तो शुद्ध आत्मा की सिद्धि के अभावरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए.... उस पाप का स्वभाव ही ऐसा है कि शुद्धि का कारण नहीं हो सकता। स्वयमेव अपराधरूप होने से.... पाप के भाव, वे तो स्वयमेव-अपने आप अपराध / गुनाह है। वह जहर का ही घड़ा है। उनका विचार करने का क्या प्रयोजन है? हम उसका कुछ विचार करते नहीं। वह तो अनादि के अज्ञानी मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्या राग-द्वेष के भाव अशुभ में पड़े हैं, उनकी तो बात करते नहीं। समझ में आया ? उनका विचार करने का क्या प्रयोजन है ? ( क्योंकि वे तो प्रथम ही त्यागनेयोग्य हैं । ) वे पाप के परिणाम और तीव्र मिथ्यात्व आदि के तो पहले से छोड़नेयोग्य हैं।

और जो द्रव्यरूप प्रतिक्रमणादि हैं,.... जिसमें उपयोग नहीं परन्तु विकल्प है। चैतन्य का आनन्द और ज्ञान का जिसमें व्यापार नहीं परन्तु जिसमें शुभराग द्रव्य प्रतिक्रमण है। वह पाप लगा था। ....ऐसा द्रव्य प्रतिक्रमण। समझ में आया ? और वह द्रव्य प्रतिसरण। वे आठों बोल लेना। समकित गुणों में प्रेरणा। सच्ची श्रद्धा क्या, उसका विकल्प उठा है—

शुभराग, और मिथ्यात्व आदि दोष टालूँ... टालूँ... टालूँ... ऐसा शुभराग है, भगवान आदि का स्मरण करता है, चित्त को स्थिर करता है, विषय-कषाय से विमुक्त होता है और पाप की आत्मसाक्षी से निन्दा करे, ऐसा विकल्प है राग और गुरु के पास निन्दा करता है और अशुद्धि तीव्र है, उसे टालकर शुभभाव में आया है।

**और जो द्रव्यरूप प्रतिक्रमणादि हैं, वे सब अपराधरूपी विष के दोष को ( क्रमशः ) कम करने में....** निश्चय स्वभाव का भान और निश्चय की दृष्टि और स्थिर है तो उसके शुभभाव का यह प्रतिक्रमण अशुभराग घटे, इतना घटना में कारण है। समझ में आया ? **सब अपराधरूपी विष के दोष को ( क्रमशः ) कम करने में समर्थ होने से....** अर्थात् अशुभ टला है और शुभ में आया, इतना वहाँ टला है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? वापस वह भी दृष्टि हो, उसके लिये बात है। यह कहेंगे। ऐसा नहीं कि आत्मा का भान नहीं प्रतिक्रमण और यह क्रियायें कीं तो उसे अशुभ क्रम-क्रम से टला और क्रम-क्रम से शुद्धि होगी, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

जो द्रव्य प्रतिक्रमण.... यह आठों ही बोल में जितना व्यवहारनय का शास्त्र में अधिकार है, महाव्रत, समिति, गुप्ति और प्रतिक्रमण इत्यादि-इत्यादि जितनी क्रियायें व्यवहारनय से कहने में आयी है, बारह प्रकार के तप और अनशन, ऊनोदरी, उपवास और सब क्रियाओं में जितना शुभराग होता है, वह शुभराग स्वभाव-रागरहित चैतन्य के स्वभाव का भान है, उसे यह शुभराग, अशुभराग टला, इतना घटाने में निमित्त कहने में आता है। है तो जोर स्वरूप का। समझ में आया ? है तो जोर शुद्धस्वरूप की दृष्टि और अनुभव का, परन्तु यहाँ शुभ में जोर है अशुभ टालने का, घटाने का, ऐसा व्यवहार कहकर उसे अमृत कहा है। समझ में आया ? अटपटा। बात बहुत अटपटी।

कहते हैं कि **द्रव्यरूप प्रतिक्रमणादि हैं, वे सब अपराधरूपी विष के दोष को....** तब सर्व अपराधरहित आत्मा निरपराध है, ऐसा दृष्टि और भान हुआ है। समझ में आया ? सर्व अपराध है, यह शुभ-अशुभभाव सर्व अपराध है और आत्मा इस राग से अत्यन्त निरपराधी वस्तु है, ऐसा जहाँ अन्तर्दृष्टि और अनुभव हुआ, उसे **सब अपराधरूपी विष के दोष को ( क्रमशः ) कम करने में....** व्यवहार से शुभभाव में सामर्थ्य होने से उसे व्यवहार से अमृतकुम्भ कहा जाता है, उपचार से अमृतकुम्भ कहा है। ( **ऐसा व्यवहार आचारसूत्र में कहा है** ).... देखो ! तू कहता है कि अकेला शुभ-शुभ अमृत, ऐसा नहीं। जिसकी दृष्टि में शुभाशुभभाव दोनों अपराध है, सर्व अपराध है, ऐसे अपराध का भान होकर निरपराधी दृष्टि

हुई। समझ में आया? वह सर्व अपराध को टालने को तो शुद्ध स्वभाव का आश्रय-अवलम्बन एक ही कारण है, परन्तु उसे जब शुभभाव होता है, तब अशुभ घटा, पाप छोड़ा, अशुभ छूटा, ऐसी अपेक्षा लेकर शुभभाव को (अमृत कहा है)। जोर तो निश्चय का है, परन्तु उसका आरोप यहाँ व्यवहार में आया कि व्यवहार, वह घटाने का कारण है। वह शुभभाव अशुभ को घटाने का कारण है। समझ में आया?

वास्तव में हो, तब तो अज्ञानी को शुभभाव आवे, वह अशुभ घटाने का कारण हो। ऐसा तो होता नहीं। समझ में आया? सर्व अपराधरहित निरपराधिस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति पूर्णानन्द, जिसमें सर्वज्ञपना प्रगट हो, ऐसी ताकत मेरी है। मैं सर्वज्ञ तीन काल, तीन लोक को विकल्प के राग बिना जानूँ, ऐसी मेरी वीतराग विज्ञान शक्ति का दल मेरा है। ऐसी रागरहित दृष्टि हुई, यहाँ तो मुनि हैं, इसलिए चारित्र भी साथ में हुआ, वह निश्चय से मोक्ष का मार्ग और अमृत है। उसके साथ ऐसे शुभभाव के कथन जितने आये, वे अशुभभाव को सर्व अपराध को धीरे-धीरे घटाये, वह अशुभ घटा और शुभ रहा, इतना आरोप शुभभाव में आता है। वह वास्तव में आरोप आता है। समझ में आया? भारी दिक्कत जगत को।

(**ऐसा व्यवहार आचारसूत्र में कहा है**).... कहो, समझ में आया? वह बात की थी न? एक बार, नहीं? वह तोरी की। दो वर्ष पहले गये वहाँ स्वामी नारायण किसान हैं। स्वामी नारायण किसान। फिर सब व्याख्यान में आये। व्याख्यान में सवेरे नहीं आ सके, शाम को आये। फिर एक पुस्तक लेकर आये। वह अगाधगति। अगाधगति। किसान कहते हैं कि महाराज! हमारा दोपहर का व्याख्यान रह गया। बहुत सब वाँचन हो गया। हम तो बाहर थे। कहाँ? खेत में। इसलिए बेचारे सब रात्रि में आये। उनके पास 'अगाधगति' नाम की पुस्तक। हम पढ़ते हैं परन्तु इसमें कुछ समझ में नहीं आता। मैंने कहा, भाई! पढ़ो तो खबर पड़े। सब आये। रात्रि में लोग बहुत भर गये थे। उसमें ऐसा निकला कि यह जितनी भगवान की भक्ति, स्मरण, जाप, तप, दया, दान, व्रत, संयम यह जो भाव किये जाते हैं, उनका फल संसार है। यह ग्रन्थ था। यहाँ से गये थे (संवत्) २०१६ के वर्ष में। वडिया (में) वेदी प्रतिष्ठा थी न भगवान की, तब पहले 'तोरी' आया था। दोपहर में व्याख्यान था। लोग समावे नहीं वहाँ। प्रसिद्ध नाम इसलिए लोग तो सब आवे। उन सबने सुना कि महाराज अध्यात्म की बात करते हैं, आत्मा की। हमारे पास अगाधगति पुस्तक है, परन्तु हल नहीं होता। फिर रात्रि में एक जवान लड़का पढ़े। बहुत सब इकट्ठे हों। कितनी बार उसमें आया कि यह जितना भगवान का नाम जप करो, तप करो, व्रत करो, नियम करो....

समझे न ? दया पालो, यह करो, वह करो, दान करो, यह मन्दिर बनाओ, जो कुछ करो वह भाव संसार फलेगा। यहाँ गति मिलेगी। उसमें धर्म-बर्म और मोक्ष होगा नहीं। आहाहा!

मैंने कहा, यह बात दोपहर में कही जा चुकी है। तुम नहीं थे। समझ में आया ? यह सब उसे मुक्ति और धर्म मनवा देते हैं। भगवान की भक्ति करो, पूजा करो, स्मरण करो, होगा तुम्हारे, कल्याण होगा। उन्होंने तो ऐसा लिखा हुआ, सबका फल पुण्यबन्ध और संसार है। उसे तो पुण्य भी नहीं था। वह तो यहाँ है, ऐसा लिखा है। उसका फल यहाँ है। धर्म में मोक्ष-बोक्ष का फल उसमें नहीं। यह सब राग की क्रियायें, विकार की क्रियायें। अन्यमत का ग्रन्थ अगाधगति नामक पुस्तक। वडिया है। तीन जगह वेदी प्रतिष्ठा हुई थी, तब (संवत्) २०१६ के वर्ष में। वडिया, गोण्डल और जैतपुर। तब लोग... बात तो यह है परन्तु तुम पहले समझो तब न ? ऐसे के ऐसे यह करने लगे। भगवान ने कहा यह, अमुक ने कहा यह। परन्तु भगवान अभी कौन है ? उनका कथन क्या है ? उसका न्याय क्या ? समझे बिना ? कटारियाजी ! अन्यमती का ग्रन्थ था। वेदान्त का होगा। उनके पास बहुत वर्ष से रखा हुआ, किसान के पास। परन्तु सूझ पड़े नहीं। पढ़कर... पढ़कर... पढ़कर... यहाँ फल... यहाँ फल... यहाँ फल... क्या है यह ? कहा कि यहाँ फल अर्थात् जैसे अवतार किये, यह वैसे के वैसे अवतार मिलेंगे। उसमें कहीं जन्म-मरण टले, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ आचार्य यह कहते हैं कि तू जो व्यवहार शास्त्र का दृष्टान्त हमारे पास रखता है और तू उसे अमृत कहता है तो हम भी उसे अमृत एक अपेक्षा से कहते हैं। किस अपेक्षा से ?—कि आत्मा शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के भावरहित का भान हुआ हो, उसे वह शुभभाव आवे। है तो जहर, परन्तु अशुभ घटने की अपेक्षा से पाप के भाव शुद्ध की दृष्टि की भूमिकावाले को... अकेले अज्ञानी को तो नहीं ही वह। समझ में आया ? जो पुण्य में और शुभ में धर्म मानकर बैठा है, उसे तो उसका शुभभाव व्यवहार से भी अमृत नहीं है। वह तो अकेला जहर ही है। समझ में आया ? जो चैतन्य में अपराध है और भान है कि निरपराधी आत्मा, उसे सर्व अपराध छेदने में, घटाने में, शिथिल करने में, धीरे-धीरे वह शुभ में आया, वह अशुभ घटा, ऐसा आरोप उस शुभभाव में इस निश्चय के भान की भूमिकावाले को घटाने का वास्तविक साधन तो निश्चय का आश्रय, वह है, परन्तु उसका आश्रय इस व्यवहार को डाला कि तुझसे अशुभ घटा, इसलिए तुझे व्यवहार से अमृत कहते हैं। समझ में आया ? भारी अटपटी बात।

अभी पहली चीज़ क्या है, उसे यह ख्याल में न ले, उसे कैसे प्रयोग में लाना, इसकी खबर न हो, उसे यह बात किसी प्रकार अन्दर गले उतरती ही नहीं। ऐसे का ऐसे मान बैठा कि चलो, अपने शास्त्र में है न? शास्त्र का यह वीतराग का वचन है या किसका? और ऐसा पूछे। यह मान्य है या नहीं तुम्हारे? परन्तु सुन न! और ऐसा कहे, यह वीतराग केवली का वचन है या नहीं? यह आचार्य का है या नहीं? आचार्य का है परन्तु व्यवहार का या निश्चय का? यह तो कह पहले! उसने कहा कि देखो! आचार शास्त्र में सन्तों ने, मुनियों ने उसे अमृत कहा है। सुन न! हम कहाँ इनकार करते हैं उसे? किसे?—कि जिसे राग और पुण्य के विकल्परहित वस्तु की पहिचान हो गयी है, अखण्ड आनन्द का साक्षात्कार हो गया है, अखण्ड आनन्दमूर्ति का भान हो गया है। ऐसे जीव को वह भाव सर्व अपराध को टालने में समर्थ है। ऐसी भूमिकावाले के शुभभाव अशुभ, घटाने में शुभभाव समर्थ है, ऐसा गिनकर उसे व्यवहार अमृत कहते हैं। समझ में आया?

तथापि.... भले ही कहते हैं कि यह हो, परन्तु उसमें हमारे यह कहना है। यह **प्रतिक्रमण-अप्रतिक्रमणादि से विलक्षण ऐसी....** प्रतिक्रमण अर्थात् शुभभाव। अप्रतिक्रमण अर्थात् अशुभभाव। इसलिए दो शब्द पहले है। शुभ-भक्ति, पूजा, आदि दान, दया इत्यादि या व्यवहार श्रद्धा इत्यादि, ऐसे प्रतिक्रमण, वह शुभभाव, अप्रतिक्रमणादि अशुभभाव। आठ बोल अशुभ के और आठ बोल शुभ के। उनसे **विलक्षण ऐसी....** दो से विलक्षण तीसरी। तीसरी भूमिका। समझ में आया? **ऐसी अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमिका को....** लो, यह अप्रतिक्रमण तो उसको कहा और अप्रतिक्रमण इसे भी कहा। एक अप्रतिक्रमण अशुभ को कहा, एक अप्रतिक्रमण शुद्ध को कहा। समझ में आया? ऐसा है व्यवहार से, तथापि प्रतिक्रमण के भाव शुभ और अप्रतिक्रमण के अशुभ, इन दोनों से विलक्षण तीसरी चीज़ अन्दर है।

**ऐसी अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमिका को...** जो विकल्प के, राग के, पुण्य के भाव से रहित, पाप के भाव से रहित अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति का जो आश्रय और उसकी जो अनुभवदृष्टि ऐसी **तीसरी भूमिका को न देखनेवाले....** यह शुभ और अशुभभाव रहित तीसरी दशा को नहीं देखनेवाले, उसे नहीं माननेवाले, उसे नहीं जाननेवाले, उसे नहीं अनुभव करनेवाले। ऐसे **पुरुष को वे द्रव्यप्रतिक्रमणादि ( अपराध काटनेरूप ) अपना कार्य करने को असमर्थ होने से....** देखो! वह समर्थ कहा था, निश्चय के भान की भूमिका में व्यवहार का आरोप था और यहाँ निश्चय का भान ही नहीं है। ज्ञान चिदानन्दमूर्ति किस

प्रकार प्राप्त हो और कैसे उसका उपाय है, इसकी खबर ही नहीं। उसके भान बिना यह अपना कार्य करने को... अपना अर्थात्? यह शुभभाव, द्रव्यप्रतिक्रमण, भगवान की पूजा-भक्ति इत्यादि। जो द्रव्यभाव शुभभाव, वह अपना कार्य करने को असमर्थ होने से.... अपना कार्य अर्थात्? वह घटाने का व्यवहार से है, वह कार्य भी इसमें नहीं है। समझ में आया?

ऊपर यह कहा था न? असमर्थ होने से घटाने में। यह कहते हैं कि जब अकेला शुभराग हो और शुद्ध का जहाँ तीसरी भूमिका का भान नहीं, जहाँ वे द्रव्य प्रतिक्रमणादि अपना कार्य अर्थात् कि अशुभ को घटाकर और अपराध में से घटाकर शुभ में आया ऐसा जो काय, (उसमें) असमर्थ होने से। निश्चय के भान बिना के जीव को अनुभव की दृष्टि आत्मा की हुए बिना ऐसे शुभभाव, वह अशुभ को घटाने का जो उसका कार्य है, वह भी समर्थ नहीं है। ऐसा निमित्तपना उसमें नहीं है। इस शुभ ने अशुभ घटाया, इसलिए निमित्त अमृत है, ऐसा नहीं। तीसरी दृष्टि प्रगटे (बिना), शुभाशुभ के भान बिना के जीव को वह कार्य भी नहीं होता। समझ में आया? अरे! कितने बोल और क्या अपेक्षा इसमें! समझ में आया या नहीं इसमें? मूलचन्दभाई! समझ में आया इसमें? है न पुस्तक? यह तो पुस्तक में हो, उसकी बात चलती है। लिखा है, उसकी तो बात चलती है यहाँ। घटाने का कहा, अर्थात् क्या? वह तो व्यवहार से घटाने का कहा अशुभ को।

यहाँ कहते हैं, जिसने आत्मदृष्टि निर्दोष पवित्र आत्मा, उसकी दृष्टि की नहीं, करता नहीं, हुई नहीं, उसे ऐसे शुभभाव की क्रियायें जितनी व्यवहारनय के शास्त्र में आयी हो, वे तो निश्चयवाले के व्यवहारनय की बात शास्त्र में है। और तू अकेले व्यवहारनय की बातें करता है, झूठी बात है, कहते हैं। वह अपना कार्य करने में तो असमर्थ है, अर्थात् अपराध को घटाने की योग्यता भी उसमें नहीं है, परन्तु विपक्ष कार्यकर्ता होने से अमुक का उससे तो उल्टे का कार्य करता है, पाप को बाँधता है। समझ में आया? उसकी दृष्टि ही विकार पर है। पुण्य की क्रिया... पुण्य की क्रिया... पुण्य की क्रिया... पुण्य की क्रिया... ऐसी दृष्टि है, इसलिए उसके शुभभाव में (अशुभ) घटाने की ताकत नहीं है, परन्तु विपक्ष कार्य—बन्ध का (कार्य) करने की ताकत है। अभाव करने की ताकत तो उसमें नहीं है। समझ में आया? निश्चयवाले को अभाव करने की ताकत नहीं। मात्र घटाने की ताकत निश्चय के कारण कहने में आयी है। इसे तो घटाने की ताकत तो है नहीं परन्तु विपक्ष कार्य करते होने से.... कौन? यह शुभ विकल्प जो शुभराग पुण्य का भाव, शुभ उपयोग प्रतिक्रमण और दया, दान और यह और वह, पंच महाव्रत और बारह व्रत को, समिति और गुप्ति, अनशन,



ऊनोदर, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिसरण, इतने रस छोड़े, इतना त्याग किया, इतना नौ वाड़ से (ब्रह्मचर्य पालन किया), स्त्री हो वहाँ बैठते नहीं, ऐसे सब भाव। समझ में आया? ऐसा जो शुभभाव, वह अपना कार्य करने में असमर्थ है, वस्तु दृष्टि नहीं इसलिए, परन्तु उल्टा विपक्ष—बन्ध का कार्य करता होने से। निश्चयवाले के शुभ को व्यवहार से घटाने का निमित्त कहा था। समझ में आया? यह तो कहे, निश्चय बिना के शुभभाववाले को विपक्ष इतना मिथ्यात्वसहित का बन्ध होता है। उसे तो बन्धन ही है। जरा भी अभाव तो नहीं परन्तु घटाने का उसमें है नहीं। मिथ्यात्व पुष्ट होता जाता है। कषाय अनन्त संसार का कारण, वह भी उसमें बढ़ती ही जाती है। इसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया?

अपना कार्य करने को असमर्थ होने से विपक्ष ( अर्थात् बन्ध का ) कार्य करते होने से विषकुम्भ ही है। जहर ही है। वह सब उसके कार्य अकेले मिथ्यात्व के पोषक हैं। समझ में आया? जो अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमि है.... अब यह शुभ और अशुभ बिना की तीसरी आनन्द की भूमि है। जो शुद्धता की पर्याय प्रगट हुई है ऐसा वह, स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धिरूप होने के कारण.... स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धि। वह व्यवहार के अवलम्बन बिना। वह व्यवहार था शुभराग का, इसलिए यहाँ शुद्ध आत्मा की सिद्धि होने का कुछ कारण हुआ, ऐसा नहीं है।

तीसरी भूमि है वह, स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धिरूप होने के कारण समस्त अपराधरूपी विष के दोषों को.... देखा! सर्व अपराधरूपी विष के। उसमें निश्चयसहित में घटाने का था परन्तु इसे सर्वथा नष्ट करनेवाली.... समझ में आया? भारी सूक्ष्म बातें। टीका भी जंगल में की और यह गाँव में रहे, उसे समझ में नहीं आये। वे जंगल में—जंगल में (रहते थे)। आहाहा! कहते हैं कि भाई! जिस जाति का विकल्प और शुभराग हो, उस जाति के शुभराग में तो दृष्टि ही जहाँ राग के ऊपर है और अभी सत्य क्या है, उसका भान नहीं, इसलिए उसमें व्यवहार से मिटाने का तो नहीं, उसका कार्य नहीं, परन्तु उल्टा बन्ध करे कि इसे अप्रतिक्रमण आदि दशा वह व्यवहार के शुभभाव के अवलम्बन बिना, सहायक बिना, निमित्त की सहायकता, व्यवहार की सहायकता निश्चय को है? कि नहीं। समझ में आया? उसका अभाव हुआ।

स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धिरूप.... शुद्ध पवित्र प्रभु आत्मा, उसकी अन्तर की प्राप्ति ऐसा भाव सर्व अपराधरूपी जहर के दोष को अर्थात् शुभाशुभभाव सब अपराध, उसके जहर के दोष को। आहाहा! जगत को तो ऐसा लगे। ऐ... परन्तु अनन्त काल से भटका है,

कुछ रह जाता है, इसकी खबर नहीं। 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान। सेये नहीं गुरु सन्त को, छोड़ा नहीं अभिमान।' उसकी पकड़ में अज्ञान की पकड़ छोड़ी नहीं। क्या है वह लक्ष्य में भी बात लेता नहीं और उल्टी दौड़ से मुट्टी बाँधकर चला जाता है। हम कुछ मार्ग में हैं। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** मुट्टी बाँधकर अर्थात् क्या ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुट्टी बाँधकर नहीं समझते ? वह हाथ ऐसे-ऐसे होते हैं न ? ऐसा करने से ऐसी ( मुट्टी बाँधे )। मुट्टी बाँधकर बहुत दौड़े। हाथ जरा वह होता जाये, उसमें वह हो। समझ में आया ?

कहते हैं, जो अप्रतिक्रमणादिरूप तीसरी भूमि.... निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और रमणता जहाँ अन्तर की दृष्टि का वास्तविक उघाड़ हो गया है, उसे विष के दोषों को सर्वथा नष्ट करनेवाली होने से, साक्षात् स्वयं अमृतकुम्भ है.... लो! कितने शब्द रखे! देखा! कि तीसरी भूमि है वह, स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धिरूप होने के कारण.... एक। समस्त अपराधरूपी विष के दोषों को सर्वथा नष्ट करनेवाली होने से, साक्षात् स्वयं अमृतकुम्भ है.... उसके व्यवहार से कहने में आता है, परम्परा कहने में आता है, लो! उसे साक्षात् के सामने। वह तो परम्परा कहो या व्यवहार कहो या उपचार कहो। यह लोग चिपटते हैं, लो, परम्परा कहा। परन्तु परम्परा का अर्थ क्या ? सुन न! नहीं, वह कारण नहीं, उसे यहाँ कारण का आरोप परम्परा में दिया जाता है। वह क्या ? उसके साथ कौन था, ऐसा भाव। वह छोड़कर होगा तब होगा, कहीं उससे हो, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

चैतन्य ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसका जहाँ अन्तर अनुभव हुआ और दृष्टि हुई, स्थिरता हुई। कहते हैं कि वह तो पुण्य और पाप के सर्व अपराध के जहर को सर्वथा नष्ट करनेवाली भूमि साक्षात् स्वयं अमृतकुम्भ है.... उसे अमृत कहते हैं और उसे पवित्रता कहते हैं और उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया ? उस तीसरी भूमि से ही आत्मा निरपराध होता है। लो! उस तीसरी भूमि से ही.... शुद्ध चैतन्य के आश्रय से हुई सम्यग्दर्शन, ज्ञान, रमणता, शुद्धता उससे ही आत्मा निरपराध होता है। इसके बिना निरपराधी नहीं होता। समझ में आया ? उस दूसरी भूमि से नहीं। पहली भूमि तो पाप की, दूसरी भूमि पुण्य की, तीसरी भूमि शुद्ध की। उस तीसरी भूमि से ही आत्मा निरपराध होता है। तीसरे का भान, शुद्धता का पवित्रता का भान, जो है उसका भान, उससे आत्मा निरपराध (होता है)।

उसके अभाव में.... कितनी टीका को स्पष्ट किया है! शुद्ध चैतन्यस्वभाव इन विकल्पों से पार, उसके भान के अभाव में द्रव्यप्रतिक्रमणादि भी अपराध ही है। यह द्रव्य प्रतिक्रमण, यह सब विकल्प उठे कि यह और वह, ऐसे शुभभाव, वह सब द्रव्य प्रतिक्रमणादि, भगवान का भजन, कहो प्रतिमा का स्मरण, पंच परमेष्ठी का जाप इत्यादि इस शुद्ध की दृष्टि के भान बिना द्रव्यप्रतिक्रमणादि भी अपराध ही है। गुनाह ही है। समझ में आया ? तो फिर यह मन्दिर और यह क्या ? बैठ जाओ एक ओर। सुन न! एक ओर ही बैठा है। वहाँ कहाँ अन्दर घुस गया था ? यह वहाँ होने के काल में होता है और वहाँ आगे शुभभाव का निमित्त कौन है, उसे देखने में-जानने में आवे। बाकी करे कौन और रखे कौन और छोड़े कौन ? आहाहा! इतना सब हो तो फिर इसे कुछ करना नहीं। बस, मौन होकर बैठ जाना। परन्तु आत्मा मौन ही है। कौन बोलता है और कौन मौन रहता है आत्मा ? आत्मा बोलता भी नहीं और आत्मा मौन भी नहीं। वह तो है, वह है। बोलने की क्रिया जड़ की और (बोलना) रुके तो भी जड़ का। समझ में आया ? वाणी रुके तो जड़ की, यह बोला जाये तो जड़ का। आत्मा उसमें कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसा होगा ? मन्दिर-बन्दिर बड़े बनावे और चार-चार लाख के मन्दिर। आज कोई कहता था। मन्दिर बहुत अच्छा है, हों! मुम्बई में। हम जाते हैं किसी दिन। परन्तु भाई! जिसकी जो वस्तु जाये-आये, उसका शुभभाव होता है। वह कहाँ बात है ? परन्तु उसकी दृष्टि वापस राग और शुभ और उसके ऊपर पड़ी है, तो कहते हैं कि वह शुभभाव अपराध टालने को समर्थ नहीं। भगवान की भेंट करने की उसमें ताकत नहीं। शुभभाव में नहीं। कहो, समझ में आया ?

उसके अभाव में द्रव्यप्रतिक्रमणादि.... आठ बोल लिये न वे सब ? वह भी अपराध ही है। इसलिए तीसरी भूमि से ही निरपराधत्व है, ऐसा सिद्ध होता है। लो! निश्चित सिद्धान्त सिद्ध कर डाला। इसलिए तीसरी भूमि अप्रतिक्रमण, वह पाप, व्यवहार प्रतिक्रमण वह पुण्य, तीसरा अप्रतिक्रमण अर्थात् पुण्य-पापरहित अर्थात् वास्तविक प्रतिक्रमण। पुण्य-पाप से हटना, वह वास्तविक प्रतिक्रमण। उसे यहाँ अप्रतिक्रमण शब्द से प्रतिक्रमण विलक्षण कहा। इसलिए तीसरी भूमि से ही निरपराधत्व है, ऐसा सिद्ध होता है। ऐसा सिद्धान्त निश्चित होता है। अब बाद की बात कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१९

श्री नियमसार, श्लोक-२०२, गाथा-१२४, प्रवचन - १४२

दिनांक - ०२-०६-१९८०

गाथा १२४, फिर से।

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को... अर्थात् कि बाह्य की क्रिया करे, स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़े और नग्नपना धारण करे, बाईस परीषह सहन करे, पाँच महाव्रत पालन करे, तथापि वह द्रव्यलिंगी है। जिसे अन्तर भगवान आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई... आहाहा! कहा है न यह? अन्दर वस्तु जो चैतन्यस्वरूप, ज्ञान और आनन्द से भरपूर प्रभु, उसकी प्राप्ति नहीं, उसे इससे कुछ भी फल नहीं। है इसका फल संसार में भटकना। भटकने का फल है। आहाहा! केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत... ऐसी परमसमताभाव बिना,... ऐसी समता चाहिए। समता की व्याख्या की है कि कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त... पर से नास्ति ली। अब अस्ति।

महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव... आहाहा! उसे समताभाव कहा। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, वह समताभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का स्वाद आना, उसका अनुभव होना, इसका नाम समता कहते हैं। यह समता की व्याख्या है। इसे सामायिक कहते हैं। इस परमसमताभाव बिना, ( १ ) वनवास में बसकर... भले वन में-जंगल में बसे। वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे स्थिति करने से,... आत्मा के अनुभव बिना, आत्मा के आनन्द के स्वाद बिना वन में रहे या चातुर्मास में वृक्ष के नीचे रहे या ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला... धकधकती। उस पर ऊपर बैठने से... यह क्या है? यह क्रियाकाण्ड है। आहाहा! और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,... हेमन्त अर्थात् सर्दी। सर्दी में रात्रि में दिगम्बरदशा से रहे।

( २ ) त्वचा और अस्थिरूप ( मात्र हाड़-चामरूप ) हो गये... ऐसी तपस्या ( की ) कि मुश्किल से चमड़ी और हड्डियाँ दो रहे। ऐसी तपस्या भी निरर्थक है। आहाहा! स्व-

आश्रय बिना... प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दमय यह आत्मा, इसकी सन्मुखता, इसका आश्रय, इसका अवलम्बन वर्तमान में आनन्द के अनुभव बिना ये सब क्रियाएँ निष्फल है। उससे कोई आत्मा का कल्याण नहीं है। आहाहा! सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,... उपवास करे। कैसे? - कि क्लेशदायक उपवास वापस। आनन्द तो नहीं। आत्मा का आनन्द तो नहीं, इसलिए क्लेश है, कहते हैं। आहाहा! समकित बिना के उपवास क्लेश है। आहाहा! क्लेशदायक महा उपवास से,... महा अर्थात् बहुत उपवास। आहाहा! ( ३ ) सदा अध्ययनपटुता से... शास्त्र वाचन में भी पटु अर्थात् चतुर। शास्त्र पढ़े, बहुत अध्ययन करे - उससे क्या? आहाहा! कहा, शास्त्र अध्ययन में पटुता। शास्त्र अध्ययन सदा पठन-पाठन। शास्त्र पठन करे रात-दिन। आहाहा! यहाँ अपने आता है न? पहले पहर में मुनि स्वाध्याय करे, फिर ध्यान करे, फिर पिछली पहर में सहज शयन करे। रात्रि के पिछले भाग में। छहढाला में आता है न? छहढाला में आता है। पिछली रात्रि में। इससे क्या? कहते हैं। आत्मज्ञान बिना यह सब क्रिया निष्फल है, फलवाली है परन्तु संसार के। आहाहा! यह वस्तु लोगों को कठिन लगती है।

( अर्थात् सदा शास्त्रपठन करने से ),... आहाहा! एक ओर कहा कि शास्त्र का अध्ययन करना, शास्त्र का अभ्यास करना। प्रवचनसार में आया न? परन्तु यह तो स्वलक्ष्य से। अपने आत्मा के ज्ञान के लक्ष्य से स्वाध्याय (करना)। यह तो अकेली आत्मा के ज्ञान बिना अकेली स्वाध्याय किया करे और माने कि इसमें से कुछ हो जाएगा। शास्त्र, वापस महा शास्त्र। सदा शास्त्रपठन... सदा करे। रात और दिन शास्त्र... शास्त्र। आहाहा!

( ४ ) वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति... मौन धारण करे। बोलना बन्द करे। सतत मौनव्रत से... निरन्तर मौनव्रत धारण करे। क्या किञ्चित् भी उपादेय फल है? उससे क्या किञ्चित् भी फल उपादेय है? है नहीं। आहाहा! श्लोक कठिन आया। इतने उपवास करे, मौन रहे, शास्त्र पठन करे, रात-दिन शास्त्र वाँचन करे परन्तु वह तो सब परलक्ष्यी है। आहाहा! अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय शान्तस्वरूप, वह दृष्टि में, अनुभव में आये बिना यह सब क्रियाएँ संसार खाते हैं। इन क्रियाओं से आत्मा को कुछ लाभ हो, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! यहाँ तो ऐसी स्पष्ट बात है। दुनिया को कठिन लगता है।

**मुमुक्षु :** संसारी की अपेक्षा अच्छे न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल जरा भी अच्छे नहीं। यहाँ तो कहते हैं जैसे अनादि संसारी प्राणी है, वैसा यह है। आहाहा!

क्या किंचित् भी उपादेय फल है ? ( अर्थात् मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है । ) जरा भी-किंचित् कहा न ? किंचित् कहा है न ? जरा भी आत्मा में लाभ नहीं है । यह कहीं अच्छे हैं ही नहीं । सम्यग्दर्शन के बिना वह सब क्रिया संसार खाते भटकने की है । आत्मा के लिये कुछ फल नहीं है । आहाहा ! ( मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है । ) साधनरूप किंचित् साधन नहीं है । जिसे लोग साधन कहते हैं । व्रत करना, तप करना, तपस्या करना, भगवान की भक्ति करना, यह साधन और सम्यग्दर्शन साध्य । यहाँ कहते हैं, तेरे साधन का किंचित् फल नहीं है । आहाहा ! सम्यग्दर्शन तो पर की अपेक्षा बिना निरपेक्ष भगवान आत्मा का अवलम्बन करने पर अनुभव हो, वह सम्यग्दर्शन है । वह सम्यग्दर्शन है । पर के कारण कुछ नहीं कि पर की क्रिया इतनी की तो कुछ मदद मिली । बहुत तपस्या की, शास्त्र अध्ययन बहुत किया तो समकित प्राप्त होने में मदद मिली, ऐसा नहीं । आहाहा !

**मुमुक्षु :** सम्यग्दर्शन के हेतु से क्रिया की ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जरा भी नहीं । सम्यग्दर्शन के हेतु से क्रिया करे तो भी सम्यग्दर्शन नहीं है । वह तो राग है । राग है, वह सम्यग्दर्शन-वीतरागता का हेतु होगा ? कठिन बात है, बापू ! सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है । क्या हो ? किसे कहना ? अभी सब फेरफार हो गया । आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्दरस सागर को कोई इस क्रियाकाण्ड के कारण से कुछ भी लाभ नहीं है । यह क्रियाकाण्ड तो अनन्त बार किया है । आहाहा !

**मुमुक्षु :** द्रव्य क्रिया करते-करते भाव आवे, ऐसा नहीं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्रिया करते-करते भटकेगा । पुण्य बाँधेगा । मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधेगा । चार गति में भटकेगा । आहाहा ! इसमें 'छहढाला' में नहीं आया ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो ।' मुनिव्रत धारण (करके) दिगम्बर मुनि (हुआ), हों ! यह 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो ।' यह पंच महाव्रत पाले, अट्टाईस मूलगुण पाले परन्तु वह सब दुःख है, राग है, दुःख है । 'आतमज्ञान बिना सुख (लेश) न पायो ।' पंच महाव्रत के परिणाम, अट्टाईस मूलगुण के परिणाम, वह आस्रव और दुःख है । दुःख से आत्मा की मुक्ति होगी ? सम्यक्त्व होगा ? सम्यग्दर्शन तो आनन्दस्वरूप है । आहाहा ! बहुत अन्तर ।

**मुमुक्षु :** करते-करते होगा न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करते-करते जहर होगा । यह करते-करते राग का जहर होगा ।

उससे अमृत सागर भगवान (प्राप्त नहीं होगा)। आहाहा! बहुत कठिन बात, भाई! मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

**मुमुक्षु** : उसका फल भी अपूर्व है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : अपूर्व फल है, यह अलौकिक है। इससे रहित होकर अन्तर चैतन्यस्वरूप को (अवलम्ब कर)... आहाहा! विकल्प को भी छोड़ देना। मैं आत्मा हूँ, ऐसा जो विकल्प है, उसे भी छोड़ देना और स्वरूप में रहना, तब उसे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना... कहा न ? ऐसी-ऐसी क्रिया करे। चमड़ी रहे और दूसरे हड्डियाँ रहे, इतनी तपस्या और अपवास करे तो भी उसका फल संसार है। एक भी भव घटे या इस क्रियाकाण्ड के कारण सम्यक्त्व के सन्मुख हो, (ऐसा तीन काल में नहीं है)। आहाहा!

**मुमुक्षु** : कठिन बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : कठिन बात है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

इसी प्रकार ( श्री योगीन्द्रदेवकृत ) अमृताशीति में ( ५९वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि:—

गिरिगहनगुहाद्वारण्यशून्यप्रदेश-

स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा ।

प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः,

मृगय तदपरं त्वं भोः प्रकारं गुरुभ्यः ॥

आहाहा! दिगम्बर मुनि योगीन्द्रदेव, जिन्होंने दोहा बनाये हैं। योगीन्द्रदेव ने, उसमें ऐसा कहा कि 'पाप को पाप तो सब कहे...' हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना। परन्तु 'अनुभवी जन तो पुण्य को पाप कहे।' धर्मी जीव तो पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति को पाप कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है। अभी तो पोलमपोल यह सब चला है। कोई ठिकाना नहीं होता। पंच महाव्रत का भी ठिकाना नहीं होता। उनके लिये आहार बनाकर ले, पानी (प्रासुक) करके ले, उनके लिये वस्त्र बिकते हुए ले, वह तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। धर्म तो है ही कहाँ? आहाहा! कठिन बात है, भाई!

पर्वत की गहन गुफा आदि में... कहते हैं, भले कोई पर्वत की गुफा में रहे। आहाहा! वन के शून्य प्रदेश में रहने से, वन के किसी शून्य प्रदेश में अकेला रहे! इन्द्रियनिरोध... करे। आहाहा! पाँच इन्द्रिय का निरोध करे, वह तो शुभभाव है। धर्म नहीं, भाई! आहाहा!

ध्यान से,... यहाँ तो ध्यान भी कहा। वह राग का शुभध्यान। मैं ध्यान करता हूँ... ध्यान करता हूँ... ऐसा विकल्प। विकल्प है। उस ध्यान से भी मुक्ति नहीं है। वह विकल्परूपी ध्यान, हों! और तीर्थ सेवा... तीर्थ की सेवा करना। शत्रुंजय की, गिरनार की, सम्मेदशिखर की यात्रा करना और सेवा करना, उससे कहीं मुक्ति-बुक्ति है नहीं, धर्म है नहीं। आहाहा! उससे कुछ धर्म नहीं होता।

ज्ञानी को भी अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आते हैं, परन्तु धर्म नहीं मानते; बन्ध मानते हैं, हेय मानते हैं। आहाहा! धर्मी को भी शुभभाव तो आता है परन्तु उसे हेय जानकर उसका फल नहीं चाहते। मैं तो आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ। राग तो बन्ध का कारण जहर है। शुभराग ज्ञानी को होता है तो भी ज्ञानी तो ऐसा मानते हैं कि यह तो काला नाग है। आया है न? आहाहा!

**मुमुक्षु :** वचनामृत में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** काला नाग। जैसे काला नाग ऐसे जहर दिखता है, वैसे धर्मी को शुभभाव आवे, वह काला नाग जैसा दिखता है। आहाहा! बहुत कठिन बातें। यहाँ तो अभी धन्धा-पानी के कारण शुभ का ठिकाना नहीं होता। नौकरी करना या जजपना करना, वहाँ रुकना। अब उसमें निर्णय करने को निवृत्त कब हो? ऐसा आत्मा... ऐसा आत्मा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! यह सब... रामजीभाई के पास सलाह लेने आते थे। सब सलाह लेने आते थे। सलाह देते थे। एक महीने कैद में गये थे। लौकिक में भी एक जाति की विरुद्धता है। सलाह देना, संसार की सलाह, वह तो पाप है। किसकी सलाह देना। आहाहा! ढेबरभाई और आवे न? ढेबरभाई रामजीभाई के पास सलाह लेने जाते थे। सलाह लेने जाते थे। सलाह देते, उसके फल में एक महीने जेल में जाना पड़ा। आहाहा! यह संसार ऐसा है, भाई!

यहाँ तो निर्विकल्प आनन्द का नाथ, प्रभु! जिसमें शुभराग की गन्ध नहीं, ऐसे अखण्डानन्द की ओर दृष्टि दिये बिना, उसके अनुभव बिना जितना क्रियाकाण्ड है, वह सब संसार है। चार गति में भटकने की बात है। आहाहा! तीर्थ सेवा... आहाहा! ( तीर्थस्थान में वास करने से ),... कोई कहे कि अपने बस! शत्रुंजय बड़ा तीर्थ कहलाता है, सम्मेदशिखर महातीर्थ कहलाता है, वहाँ अपन रहें तो वहाँ से मुक्ति होगी। यह लोग कहते हैं न?—कि



सम्मदशिखर में तो जो वनस्पति उगी है, वह तो मोक्षगामी है, ऐसा कहते हैं। यहाँ एक महावीरकीर्ति थे न? दिगम्बर के (साधु) यहाँ आये थे। महावीरकीर्ति, उनके साथ बात हुई। जैसे श्वेताम्बर में यह शत्रुंजय तीर्थ है न उनका?

**मुमुक्षु :** माहात्म्य।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** माहात्म्य। शत्रुंजय माहात्म्य एक (पुस्तक) है। है, सब पुस्तकें देखी है। ऐसा एक सम्मदशिखर के माहात्म्य का पुस्तक है। तो उन्होंने कहा। यहाँ आये थे। यहाँ कमरा था, वहाँ उतरे थे। सम्मदशिखर की यात्रा करे तो अढ़तालीस भव में मोक्ष में जाए। कहा, यह वचन वीतराग का नहीं है, अज्ञानी का है। क्योंकि पर के आश्रय से भव का अभाव हो, यह तीन काल, तीन लोक में नहीं है। अढ़तालीस भव में मोक्ष जाए। फिर बदल गये। कहा फिर वह बिल्कुल झूठी बात है। यह माहात्म्य किया होगा, यह माहात्म्य झूठा है। सम्मदशिखर का ऐसा माहात्म्य, वह तो पत्थर है। पत्थर के पास ऐसे अनन्त समवसरण में जा आया। भगवान महाविदेह में तीर्थ का विरह तो कभी नहीं। शाश्वत् तीर्थकर होते हैं। समवसरण में अनन्त बार गया है, शास्त्र पढ़ा है परन्तु आत्मज्ञान नहीं किया और सम्यग्दर्शन क्या, उसकी कीमत ही नहीं की। चौरासी के अवतार में भटक मरता है। आहाहा! ध्यान करने लगे तो बाहर के ध्यान करने लगे। यह करना... यह करना... अपवास करना, वाँचन करना, ध्यान करना, णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... यह ध्यान किया। ध्यान कहा है न? ध्यान। पाँच नवकार का ध्यान, वह राग है। वह धर्म का कारण नहीं। ऐसी बात! अपने तो यहाँ यह पैतालीस वर्ष से चलता है। यह कहीं गुप्त नहीं है। आहाहा!

( तीर्थस्थान में वास करने से )... अरे! पठन से,... शास्त्र पढ़ा करे, पढ़ा करे, रटा करे, वह सब विकल्प-राग है। आहाहा! पठन से, जप से... जप किया करे। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... आनुपूर्वी गिने। आनुपूर्वी—णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं... णमो उवज्झायाणं... णमो सिद्धाणं, णमो अरिहन्ताणं, णमो उवज्झायाणं... आनुपूर्वी आता है न? आडा-सीधा।

**मुमुक्षु :** अशुभ में से शुभ में तो आवे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह शुभ भी संसार भटकने का। भटकने का संसार। अज्ञानी को अशुभ में से शुभ, वह संसार का भटकने का (भाव है)। ज्ञानी को अशुभ टालने के लिये शुभ आता है, सम्यग्दृष्टि को अशुभ टालने के लिये शुभ आता है। अज्ञानी को, मिथ्यादृष्टि

को वह शुभ, शुभ नहीं है। वह अशुभ ही है। आहाहा! आत्मा का जरा भी लाभ नहीं है। सम्यग्दृष्टि को हेयबुद्धि है। इसलिए अशुभ से बचने के लिये शुभ आवे, तो भी वह पुण्य बाँधता है, उसे भी धर्म नहीं होता, निर्जरा नहीं होती, संवर नहीं होता। समकित्ती को भी भगवान की सेवा और तीर्थसेवा, पूजा और यात्रा ( करने से ) धर्म नहीं होता। आहाहा! कठिन काम है।

**मुमुक्षु :** शत्रुंजय तो नजदीक है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शत्रुंजय नजदीक है। बहुत आते हैं न! शत्रुंजय के माहात्म्य में लिखा है। शत्रुंजय की यात्रा करे, फिर चाहे जिस साधु को जिमावें, तो भी उसे धर्म लाभ हो, यह सब खोटा, सब मिथ्या बात है। यहाँ तो यह भगवान तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति और चैतन्य के अनन्त रत्नाकर से भरपूर प्रभु की अन्तर्दृष्टि, अनुभव बिना सब व्यर्थ है। इसके बिना संसार का एक भी भव नहीं घटता। आहाहा! यह बात है। लोगों को कहाँ निवृत्ति है? आहाहा!

**पठन से, जप से...** चौबीस घण्टे णमो अरिहन्ताणं के जप किया करे, माला गिना करे, भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह संसार है, मिथ्यात्वसहित शुभराग है। उससे धर्म मानता है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** नौ लाख नवकार मन्त्र गिने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नौ लाख गिने, वह मिथ्यात्व है। लाख, करोड़ गिने नहीं। करोड़पूर्व का आयुष्य हो, तो प्रतिदिन गिने तो अरबों बार हो जाए। आहाहा! एक दिन में एक बार नवकार गिने तो कितने अरबों ( हों )। उसमें क्या हुआ? भगवान आत्मा अन्दर विकल्परहित, रागरहित पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है। उसके स्पर्श बिना, उसके अनुभव बिना सब बिना इकाई के शून्य हैं। यहाँ तो स्पष्ट बात है। यह कहाँ गुप्त है? पुस्तकें भी तीस लाख बाहर प्रकाशित हुई हैं और अभी पुस्तकें मुम्बई से प्रकाशित होती हैं न? सात लाख की प्रकाशित करनेवाले हैं। तीस लाख तो प्रसिद्ध हो गयी है। बाईस लाख यहाँ से, आठ लाख जयपुर से और सात लाख अब मुम्बई से नयी बाहर प्रकाशित होनेवाली है। पहला एक आ गया है। दूसरे सात लाख बाहर प्रसिद्ध होनेवाले हैं। लोग तो बहुत पैसे का ढेर करते हैं, जहाँ हो वहाँ। अपने आप बिना कहे और बिना बोले। आहाहा!

यह देखो न! अफ्रीका में गये, वहाँ छब्बीस दिन में तीन लाख। तीन लाख दिये।

एक लाख ज्ञान खाते, और दो लाख चरण किये उसके। सोनगढ़ को तीन लाख दिये। और ९१वाँ वर्ष लगा और उसमें मुम्बई से दो लाख आये। डेढ़ महीने में पाँच लाख आये। शास्त्र की कीमत घटाने के लिये। दूसरा कुछ नहीं। दस रुपये की लागत हो तो आठ रुपये में देना, सात में देना। यह शास्त्र की कीमत घटाने के लिये सब लक्ष्मी आती है क्योंकि शास्त्र का प्रचार कैसे हो? ईसाई लोग तो एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं। ऐसा तो सब देखा है न? ईसाई के जो लोग आवे न, वे एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं। किसी प्रकार से प्रकार होवे न! हिन्दुस्तान में कितनों को ईसाई कर दिया है। खबर है न? आहाहा! यह शास्त्र का प्रचार करे, सुने-पढ़े तो उसे खबर तो पड़े कि सत्य क्या है?

यहाँ यह कहते हैं। **जप से तथा होम से...** भगवान को होम करे। स्वाहा.. स्वाहा.. भगवान की भक्ति करते हुए स्वाहा (करे) वह शुभभाव है। धर्म किंचित् नहीं है। उससे किंचित् धर्म नहीं होता। ऐसी स्वाहा अनन्त बार की है। आहाहा! **ब्रह्म की (आत्मा की) सिद्धि नहीं है;**... ब्रह्म की उपासना सिद्धि नहीं है। यह सब करने से ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा... आहाहा! उसकी उपासना, फल नहीं है। आहाहा!

**इसलिए, हे भाई!...** आहाहा! मुनिराज करुणा करके कहते हैं। **हे भाई! तू गुरुओं द्वारा...** जो गुरु राग से धर्म न मनावे, क्रियाकाण्ड से धर्म न मनावे, ऐसे गुरु के पास तू जा और मार्ग ग्रहण कर। यह तो सब गुरु बहुत घूमते हैं। **तू गुरुओं द्वारा...** देखो! भाषा है न? **उससे अन्य प्रकार को...** जो यह सब क्रियाएँ हैं, उनसे अन्य प्रकार से गुरु कहेंगे। वे गुरु कहलाते हैं। जो इनसे धर्म मनावे, माने, वे गुरु नहीं हैं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जैनधर्म का शत्रु है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! आहाहा! नये हों, उन्हें कठोर लगेगा।

**मुमुक्षु :** भगवान होना, वह कहीं खेल की बात है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे! बापू! स्वयं भगवान ही है परन्तु उसकी इसे प्रतीति कहाँ है ? प्रतीति तो उसके सन्मुख होती है, इस क्रियाकाण्ड में धर्म कहीं नहीं है, ऐसा वहाँ से निवृत्त हो, तब आत्मा में जा सकेगा। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति में कुछ नहीं है। यह तीर्थ की शत्रुंजय की, सम्मेदशिखर की यात्रा लाख बार करे (तो भी धर्म नहीं होता)। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सोनगढ़ की करे, तब तो होता है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ सोनगढ़ की यात्रा कहाँ है ? यहाँ सुनकर अन्दर समझे तो होता है। यहाँ आवे और पठन करे तथा सुने तो भी क्या हो गया ? सोनगढ़ आवे, इसलिए

उसे समकित हो जाए, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! कहा नहीं था? निमित्त से कुछ नहीं होता। पर में निमित्त से कुछ नहीं होता। केशवलाल। वढवाण में केशवभाई हैं। उनसे एक व्यक्ति ने कहा कि निमित्त से कुछ नहीं होता, तो तुम सोनगढ़ किसलिए जाते हो? सोनगढ़, वह निमित्त है। प्रश्न उठे न! तब उसने जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता, इसकी विशेष दृढ़ता के लिये हम जाते हैं। हमारी दृढ़ता करने के लिये जाते हैं। निमित्त से नहीं होता। आहाहा! निमित्त से पर में कुछ नहीं होता, क्योंकि निमित्त की पर्याय और उपादान की पर्याय के बीच अन्योन्य अभाव है। आहाहा!

यह समयसार की तीसरी गाथा में कहा है। प्रत्येक द्रव्य—परमाणु हो या आत्मा या धर्मास्तिकाय, उसमें रहे हुए गुण और पर्यायरूपी धर्म; धर्म अर्थात् धारण कर रखा हुआ। धारण कर रखे हुए गुण और पर्याय, उसे वह द्रव्य स्पर्श करता है - चुम्बन करता है, परन्तु परद्रव्य की पर्याय को वह कभी चुम्बन नहीं करता। आहाहा! आत्मा भी कर्म को कभी स्पर्शा ही नहीं और कर्म आत्मा को कभी स्पर्श नहीं। भिन्न-भिन्न द्रव्य है। आहाहा! यह गले उतरना... बहुत फेरफार। अभी तो पूरब-पश्चिम का फेरफार हो गया है। आहाहा!

सम्प्रदाय में अब यह गड़बड़ उठी न! सब कहे, व्यवहार व्रत करने से होता है। कहा, व्रत करने से बिल्कुल नहीं होता। सम्प्रदाय में गुरु कहते थे। कहा, अनुभव समझते हो तुम? तब वे कहें कि फिर अनुभव क्या? अर्थात् उसकी खबर नहीं होती। यह शाम को प्रतिक्रमण करना, सामायिक करना - हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। आहाहा! आत्मा का अनुभव क्या चीज़ है... आहाहा! उस राग के किसी भी प्रकार के क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित ऐसा जो भगवान अन्दर विराजमान है, उसकी अन्दर में भेंट होना, उसका वेदन होना, उसका स्वाद आना, उसकी दशा निर्मल परिणति से जानने में आवे, तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! कठिन बातें हैं।

यहाँ आचार्य ने कहा न? गुरु के पास अन्य प्रकार से शोध। इन सब प्रकारों के बिना। जो ऊपर यह सब प्रकार कहे, उनके बिना **अन्य प्रकार को ढूँढ़**। दो बातें की हैं। गुरु ऐसे होते हैं कि इस क्रिया से धर्म मनाते नहीं। ऐसे गुरु के पास जा तो वे तुझे कहेंगे कि इस क्रिया से रहित आत्मा अन्दर है, उसकी दृष्टि कर। ऐसी भाषा की है, देखा? आहाहा! **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** ऐसी जो क्रिया कही ध्यान की, तीर्थ सेवा की, पठन की, इन्द्रिय निरोध की, उनसे भिन्न प्रकार का गुरु तुझे कहेंगे और भिन्न प्रकार का न

कहे तो वह गुरु ही नहीं है। वह तो कुगुरु है। अनादि काल के जो हैं, वे हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु** : धर्म न मनावे परन्तु धर्म का कारण मनावे।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : जरा भी कारण नहीं। राग-दुःख; दुःख, आनन्द का कारण? राग तो दुःख है और आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह सुख है। राग कारण, दुःख कारण और सुख, वह कार्य - एकदम मिथ्या बात है। यह तो हमारे तो बहुत वर्षों से चलता है। पुस्तकें भी प्रकाशित हो गयीं। व्यवहार अर्थात् राग। राग अर्थात् दुःख। यह कहा न अभी 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ। 'ग्रीवक उपजायो...' चमड़ी उतारकर नमक छिड़क दे तो क्रोध न करे। परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना अकेली क्रिया। 'आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ऐसे पंच महाव्रत पालन किये, अट्टाईस मूलगुण पालन किये परन्तु वह दुःख है, आस्रव है, दुःख है। इसलिए कहा कि 'आतम ज्ञान बिन...' आतम ज्ञान के बिना लेश सुख न पायो। तब वह दुःख है। दुःख से सुख मिलेगा? शुभ करते-करते शुद्ध होगा? आहाहा! शुभ तो मैल है, जहर है। शुभ तो काला नाग जहर है। भगवान आत्मा अमृत जीवन है तो शुभराग तो जहर का जीवन है। समयसार के मोक्ष अधिकार में लिया है कि शुभभाव विषकुम्भ है, जहर का घड़ा। आहाहा! ऐसी बात।

**मुमुक्षु** : लोभियों के लोभ का मूल है, ऐसा कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : विष का घड़ा कहा है न? विष का घड़ा कहा है न? आहाहा! शुभभाव-दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि शुभभाव, वह जहर का घड़ा है। कठिन बात है, भाई! यह तो वाड़ा में नहीं मिलती। वाड़ा में होवे तो कठिनाई पड़ जाए। आहाहा!

**मुमुक्षु** : ..... उसे आप जहर का घड़ा कहते हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : जहर का घड़ा ही है। आत्मा अमृत का पिण्ड है। आत्मा / जीव का जीवन, अमृत का जीवन, वह जीव का जीवन है। राग का जीवन, वह जहर का जीवन है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! सब आ गया है। पुस्तक में प्रकाशित हो गया है। बहुत ठेठ से - पहले से...

**मुमुक्षु** : कठोर रेच (विरेचन) की आवश्यकता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : कठोर रेच यह है। कठोर यह रेच है। परन्तु लोगों को बाहर से रुचि हटती नहीं और इस प्रकार का पोषण ही पूरे दिन दिया हो और उस प्रकार का पोषण देकर... तुम दीक्षा लो, तुम्हारा कल्याण होगा। दीक्षा में पंच महाव्रत है। पंच महाव्रत से

ऐसा होगा। आहाहा! वापस उसके लिये बनाया हुआ आहार ले या उसके लिये पानी (प्रासुक) किया हो, वह ले तो एक पानी की बूँद में असंख्य जीव। वह पानी ले, उसे व्यवहार व्रत भी कहाँ है? आहाहा! धर्म तो कहाँ है? परन्तु व्यवहार जो अज्ञान का व्यवहार (भी नहीं है)। उसके लिये बनाया हुआ आहार-पानी ले। दिगम्बर साधु भी उनके लिये बनाया हुआ चौका करके ले।

**मुमुक्षु :** मन्दिर में जाकर चौका करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खबर है या नहीं? दिगम्बर साधु को भी उसके लिये चौका, उसके लिये सब बनावे। यहाँ किसी की दरकार नहीं है। यहाँ तो सत्य है, वह सत्य है। तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी का फरमान है, वह यह फरमान है। उसमें दुनिया को ठीक लगे, न लगे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। संख्या के साथ सम्बन्ध नहीं कि इसमें संख्या अधिक होगी या कम होगी। आहाहा!

यहाँ बहुत सरस कहा है कि ऐसा जो करे, उससे तुझे आत्मा का कुछ फल नहीं है। (आत्मा की) सिद्धि नहीं है; इसलिए, हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़। जो गुरु यह न कहे और इससे अन्य कहे, उसके पास जा। जो गुरु तुझे व्रत और नियम और तप से कल्याण मनावे, उनके पास मत जा। आहाहा! है इसमें? तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य... ऊपर जितने क्रियाकाण्ड कहे, उससे अन्य प्रकार से खोज। गुरु तुझे अन्य प्रकार की बात करेंगे। वे गुरु।

आत्मावलोकन पुस्तक है, उसमें तो यहाँ तक कहा है कि मुनि है, वह वीतरागता का ही उपदेश करे। मुहु.. मुहु.. ऐसा शब्द है। बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतराग... राग से बिल्कुल लाभ नहीं। वीतराग आत्मा वीतराग है, उसके आश्रय से वीतरागता होगी और वीतरागता के आश्रय से वीतरागता प्राप्त होगी। जैनधर्म वीतरागभाव है। जैनधर्म कोई पक्ष / पन्थ नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन लगे। मूल यह प्रथा ही पूरी छूट गयी है।

यह बात तो कही नहीं थी? १९६९ के वर्ष में संवत् १९६९ दीक्षा लेने से पहले। हमने अभी दुकान छोड़ी और मैं तो दीक्षा लेने आया। मुझे कोई बहुत लम्बी खबर नहीं। थोड़ा अभ्यास किया। यह दशवैकालिक के आठ अध्ययन मुखाग्र किये। फिर एक दूसरे गुरु मिले गुलाबचन्दजी गाँधी। बोटद में। उन्होंने ऐसा कहा कि साधु के लिये उपाश्रय बनावे तो उसे प्रयोग करे तो साधु नहीं। अरे! यह क्या? ऐसी बात तो हमने कभी सुनी

नहीं। साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, मकान (बनाया हो उसे) प्रयोग करे, वह साधु नहीं। यह प्रश्न मैंने मेरे गुरु को किया। सम्प्रदाय के गुरु को। दीक्षा से पहले, हों! अभी।

प्रश्न किया कि महाराज! मकान साधु के लिये प्रयोग करे तो वह साधु है? या साधु को दोष लगता है? तब उन्होंने (जवाब) जरा ढीला दिया। तुम्हारा भाई खुशालभाई है। उन्होंने तुम्हारे लिये मकान बनाया और तुम प्रयोग करो तो उसमें क्या? परन्तु वह प्रयोग करे, वहाँ अनुमोदन है। नौकोटि में करना, कराना, अनुमोदन, मन, वचन और काया। नौ कोटि में यह एक कोटि टूटी तो नौ टूट गयी। एक भी कोटि का प्रत्याख्यान नहीं रहा। यह तो १९६९ के वर्ष। दीक्षा लेने से पहले प्रश्न किया था। ऐसा का ऐसा कहा, दीक्षा ले ले। क्या है यह? ऐसा जवाब दिया। वे मानो कि मैं ऐसा कहूँगा तो फिर दीक्षा नहीं लेगा। और मैंने कहा, यह भद्रिक है। अभी तो इसमें अब दीक्षा लो। फिर और बात। छोड़ देने की बात बाद में। आहाहा! उपाश्रय-मकान उनके लिये बनाया हो और प्रयोग करे तो भी हिंसा का भागी हिंसा करनेवाला वह है। वह साधु हिंसक है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि तू गुरुओं द्वारा... आहाहा! यह जो क्रियाकाण्डा कहा, उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़। ऐसा कहने में (ऐसा कहना है) कि जो गुरु इससे अन्य कहते हों, उनके पास सुन। ऐसा कहा न? तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़। आहाहा! वे गुरु ऐसे चाहिए कि जो राग से, क्रिया से धर्म नहीं मनावे। राग से, क्रिया से, धर्म मनावे तो मिथ्यादृष्टि कुगुरु है। इसलिए राग से धर्म न मनावे, ऐसी चीज़ जिनके पास है, उनके पास जा, तुझे अन्य प्रकार से बतायेंगे। अन्य प्रकार आया न? जो क्रियाकाण्ड है, उससे अन्य प्रकार से बतायेंगे। इसलिए अन्य प्रकार से उन सच्चे गुरु (के पास से) तुझे सत्य मिलेगा। आहाहा! अब ऐसे पुराने लोगों ने कुछ निवृत्ति भी न की हो। निर्णय नहीं। जिस वाड़ा में जन्मे, उसी और उसी में रहे तथा वह कुछ थोड़ा-बहुत जाना हो। यात्रा, भगवान की पूजा करने जाए, एकाध सामायिक करे, माला गिने। हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो सब बन्धन है, संसार है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! मार्ग बहुत अलग प्रकार का, बापू! आहाहा!

‘प्रभुता प्रभु तारि तो खरी’। यह हमारी पाठशाला में आता था। ७५ वर्ष पहले की बात है। ‘दलपतराय कदढा’ ‘कवि दलपतराय डाह्याभाई’ उन्होंने गायन बनाया कि ‘प्रभुता प्रभु तारि तो खरी मुज रो, मुज रोग ले हरि।’ संसार का रोग हर ले तो तेरी प्रभुता खरी है।

दलपतराय डाह्याभाई की कविता पहले पाठशाला में चलती थी। ७५ वर्ष पहले की बात है। मूल तो उसमें से सार-सार खोज लेते थे। वह तो कहते प्रभु अर्थात् कोई ईश्वर। मैं कहूँ, प्रभु अर्थात् यह (आत्मा) 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी मुज रो, मुज रोग — अज्ञान ले हरि...।' कठिन लगे।

तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य... इसमें दो-तीन सिद्धान्त (लिये हैं)। एक तो गुरु उसे कहते हैं कि जो ऊपर कहा, उससे अन्य कहने की बात हो और अन्य कहता हो, वह गुरु। ऊपर कहा तदनुसार कहे तो वह गुरु नहीं। आहाहा! यह ऐसे सिद्धान्त इसमें से निकलते हैं। न्याय-लॉजिक से कुछ विचार करेगा या नहीं? आहाहा! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़। ऐसा कहकर तो यह बात की है कि गुरु उसे कहते हैं कि जो क्रियाकाण्ड से धर्म नहीं मनावे। आत्मा का अनुभव करे, उससे धर्म मनावे, उसे गुरु कहते हैं और वह गुरु ऐसी क्रियाकाण्ड की बात नहीं करे। वह आत्मा की करेगा। ऐसे गुरु के पास जा और वह तुझे धर्म बतायेगा। आहाहा! शास्त्र के अर्थ भी कठिन है, बापू! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

(संवत्) १९६९ में बड़ी चर्चा चली थी। साधु के लिये बनाया हो और ले, तो कौन सी कोटि टूटेगी? कहा। हमारे गुरु के पास जाते, वह तो बहुत कषायवाले। ऐई! ऐसा किसने कहा? इसे ऐसा किसने कहा? गुलाबचन्दजी निन्दा की। गुलाबचन्दजी ने कहा, गुलाबचन्द गाँधी। भाई! चाहे जिसने कहा यह क्या है, इस बात का न्याय करो न! साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, रहने का मकान बनाया हो और उसे साधु प्रयोग करे। इसी तरह साधु के लिये आहार बनाया, पानी बनाया, एक पानी की बूँद में असंख्य जीव, वह दस सेर पानी बनाया (गर्म किया) और उसे साधु ले, वह साधु कहलायेगा? आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! पालीताणा धर्मशाला एक बनायी है। पहले जाते थे। साधु के लिये आहार-पानी बने। पहले जाते थे, इस ओर है। पूरी धर्मशाला ही साधु के लिये। अर..र..र..! ऐसी स्थिति! प्रभु! प्रभु! क्या करे? भाई! कोई शरण नहीं है। ऐसे समय दूसरे तुझे माननेवाले कोई लाखोंपति-करोड़पति मिले, वे मरते हुए तुझे मिथ्यात्व से मार डालेंगे। आहाहा! मरते हुए मिथ्याश्रद्धा से दुर्गति होगी। आहाहा! असाध्य हो जाएगा, प्रभु! तुझे आत्मा का साध्य नहीं रहेगा कि मैं चैतन्य हूँ। क्योंकि विपरीत श्रद्धा सेवन की है। इसलिए तेरा साध्य नहीं रहेगा। अभी असाध्य है। मिथ्यात्व की दृष्टि सेवन करता है, वह वस्तु से असाध्य है। उस समय शरीर से असाध्य हो जाएगा। आहाहा! इस भाषा में बात की है न!

हे भाई! इससे कुछ लाभ नहीं। इसलिए हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार



को ढूँढ़। आहाहा! यह तो हजारों वर्ष पहले की गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य की दो हजार वर्ष पहले की गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह श्लोक बनाया है। फिर टीका मुनि ने बनायी। हजार वर्ष हुए, पद्मप्रभमलधारिदेव, यह मुनि। समयसार की टीका अमृतचन्द्राचार्य और इसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है। महामुनि हैं। आहाहा! आनन्द में झूलते। छठवें-सातवें गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द में (झूलते थे)। मुनि तो उसे कहते हैं, सातवाँ गुणस्थान पहले आता है। मुनि को सातवाँ पहले आता है। चौथे से, पाँचवें से दीक्षा ले, तब पहले ध्यान में सातवाँ आता है। फिर वहाँ से विकल्प उठे तो छठवाँ आता है। आहाहा! फिर छठे-सातवें में, छठे-सातवें में हजारों बार जिन्दगी में रहते हैं। उनका नाम मुनि है। बाकी सब कोई मुनि-बुनि है नहीं। आहाहा! परन्तु यह खबर न हो और मुनि को माने, क्या करे? आहाहा! वेश धारण किया हो। जय महाराज! ऐसे के ऐसे अनादि से अज्ञान किये हैं। आहाहा! इस शब्द में बहुत भरा है।

तू गुरुओं द्वारा... आहाहा! अर्थात् कि गुरु यह बात नहीं करे। ऐसा इसका अर्थ हुआ न? यह व्रत, तप, क्रिया, पठन, जप से कल्याण होगा, यह बात नहीं करते। तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़। यह गुरु अन्य प्रकार से कहेंगे और तू भी अन्य प्रकार से अन्दर खोज। आत्मा को राग से भिन्न अन्य प्रकार से खोज। आहाहा!

अनशनादितपश्चरणैः फलं  
समतया रहितस्य यतेर्न हि ।  
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं  
भज मुने समताकुलमन्दिरम् ॥२०२ ॥

आहाहा! गाथा तो अमृत समान है।

श्लोकार्थ : वास्तव में समता रहित... समता अर्थात् आनन्द का सागर आत्मा, उसका अनुभव, वह समता है। बाकी सब असमता। महाव्रतादि सब असमता है। आहाहा! वास्तव में समता रहित... सम्यग्दर्शन की और सम्यग्ज्ञान की जो समता। आत्मा में वीतरागता और समता भरी है, उससे प्रगट की हुई समता। उस समता रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है;... उसे तपश्चरण आदि से धर्म का फल नहीं है। आहाहा! संसार का फल है। भटकने का फल मिलेगा। अरे! प्रभु! कोई शरण नहीं, कोई सहायक नहीं। आहाहा! देह में रोग आया हो, फिर अकेला तड़फता है। आहाहा! स्वयं आत्मकल्याण

तो किया नहीं। फिर अकेला तड़फे। तड़फकर मरकर चला जाए। कोई अकस्मात् मर जाए। कोई तड़फे नहीं और फिर फूँ... होकर मर जाए। आहाहा! अरे! ऐसा समय मिला। अनन्त काल में मनुष्य और जैन परमेश्वर की वाणी मिली। उसमें यदि इस प्रकार से नहीं समझे (और) दूसरे प्रकार से समझेगा तो मर जाएगा, भाई! वीतरागमार्ग में किसी की कुछ सिफारिश नहीं चलती। आहाहा! तीन लोक का नाथ विराजता है, वहाँ यह बात चलती है। बीस तीर्थकर विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। यही बात वहाँ चलती है। आहाहा! तीन काल में दूसरा मार्ग नहीं। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ' आहाहा!

यहाँ कहते हैं **वास्तव में समता...** अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान रहित यति को **अनशनादि तपश्चरणों से...** अनशन और सभी तपस्यायें करे। रस छोड़े, अमुक करे... आहाहा! बारह प्रकार की तपस्या करे, अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग... कायक्लेश... अभ्यन्तर जो तप हैं, वे भी बाह्य हैं। विनय, वैयावृत्य... यह भी बाहर की बात है। विनय करना, वह शुभभाव है। वैयावृत्य करना, वह शुभभाव है। आहाहा! अभ्यन्तर कहा है, वह तो क्या कि अन्दर का भाव है इसलिए (कहा है)। बाकी है तो बारह ही तप शुभभाव। आहाहा! अन्दर ध्यान भी आ गया न? ध्यान आ गया। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर सब क्रियाकाण्ड के क्लेश से भिन्न विराजता है। यह क्रियाकाण्ड तो क्लेश है, दुःख है। उसे किसके साथ दुःख को मिलान करना? आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी तो खबर नहीं तो यह राग दुःख है, उसे किसके साथ मिलान करे? एक ज्वार अच्छी हो तो दूसरे ज्वार के साथ तुलना करे कि इसकी अपेक्षा यह है। इसी प्रकार दुःख को मिलावे किसके साथ? आनन्द की तो खबर नहीं होती। जो करता है, वह ठीक करता है ऐसे अन्ध-अन्ध चला जाता है। आहाहा!

**समता रहित यति को...** समता अर्थात् यह, हों! वापस समस्त अर्थात् राग मन्द करके समता (करे), वह नहीं। वीतरागी परिणति, वह समता। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, वे तीनों वीतराग परिणति हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों वीतराग परिणति हैं। उस वीतराग परिणति की यहाँ बात कहते हैं। आहाहा! समतारहित—उस वीतराग परिणतिरहित यति को, साधु नाम धरावे। **अनशनादि तपश्चरणों से...** अनशन आदि तपस्या करे, देखो! अनशनादि सब कहा, हों! अनशन, ऊनोदरी, रस छोड़े, एक रस खाये, दो रस न ले, अमुक न ले, अमुक न ले, यह सब बाह्य क्रिया है। उन **तपश्चरणों से फल नहीं है;**... धर्म का फल नहीं है। आहाहा!

इसलिए, हे मुनि! समता का कुलमन्दिर... आहाहा! समता का कुलमन्दिर ( १ ) उत्तम घर; ( २ ) वंशपरम्परा का घर। आहाहा! है न? हे मुनि! समता का कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल... अनाकुल अर्थात् आनन्द निजतत्त्व। अनाकुल निज तत्त्व... आहाहा! उसे भज। आहाहा! भगवान अनाकुल तत्त्व है। क्रियाकाण्ड का जितना विकल्प उठे, वह सब आकुलता और दुःख है। आहाहा! अनाकुल ऐसा जो आत्मतत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर जो भगवान, उसे भज। आहाहा! उसकी सेवा कर तो तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा और उस अतीन्द्रिय आनन्द का धर्म, वह मुक्ति देगा। आहाहा!

समता का कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल निज तत्त्व... अनाकुल निज तत्त्व। क्रियाकाण्ड वह सब निज तत्त्व नहीं है। आहाहा! निज तत्त्व... अनाकुल निज तत्त्व... आनन्दस्वरूप ऐसा निज तत्त्व। उसका अर्थ कि जितना क्रियाकाण्ड किया, वह सब दुःखरूप है। पंच महाव्रत से लेकर अभव्य अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। अनन्त बार ऐसा क्रियाकाण्ड करके शुक्ललेश्या (की है)। शुक्ललेश्या... नौवें ग्रैवेयक गया, शुक्ललेश्या से जाता है। वह भी दुःख है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, अनाकुल निज तत्त्व, उसे भज। भगवान को भज। अन्दर आनन्द के नाथ को भज। इस आकुलता को छोड़ दे। आहाहा! विशेष कहेंगे....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )

२०

श्री परमात्मप्रकाश, द्वितीय अधिकार, गाथा-९७-९८  
प्रवचन - १६६, दिनांक - २३-१२-१९७६

परमात्मप्रकाश ९७ गाथा। आगे केवलज्ञानादि लक्षण से शुद्धसंग्रहनयकर सब जीव एक हैं, ऐसा कहते हैं :—

जीवा सयल वि णाणमय जम्मण-मरणविमुक्क।

जीव-पएसहिं सयल सम सयल वि सगुणहिं एक्क ॥९७॥

आहाहा! अन्वयार्थ :- सभी जीव ज्ञानमयी हैं,.... दृष्टि हुई है, वह आत्मा को परमात्मा जानता है। समझ में आया? इससे सब आत्मा को वह परमात्मा जानता है, ऐसा कहते हैं। उसका स्वरूप ही ज्ञानमय है। अकेला ज्ञानमय। प्रत्येक आत्मा अकेला ज्ञानमय है। आहाहा! व्यवहार का राग और भाग उसमें है नहीं, ऐसा कहते हैं। शुद्ध संग्रहनयकर। जीव ज्ञानस्वरूप, ज्ञानसूर्य सब आत्मायें हैं। आहाहा! यह कब ऐसा बैठे? कि जिसकी निमित्त, राग और पर्यायबुद्धि उड़ जाती है और स्वभावबुद्धि होती है, उसे यह जँचे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

‘जन्ममरणविमुक्ताः’ यह जन्म, जरा, मरण से तो भगवान आत्मा रहित है। आहाहा! परमस्वरूप, परमस्वरूप आनन्दघन, ज्ञानमय वस्तु जन्म, मरण से भिन्न चीज़ है। आहाहा! अपने-अपने प्रदेशों से सब समान हैं,.... यह प्रदेश लिये। प्रत्येक आत्मा असंख्य प्रदेशी है। अपने जो असंख्य प्रदेश हैं, वही सबके असंख्य प्रदेश हैं। प्रदेश से भी समान, गुण से भी समान और जन्म-मरण रहित से भी समान। आहाहा! समझ में आया? और सब जीव अपने केवलज्ञानादि गुणों से समान हैं। दृष्टि का विशाल स्वभाव, जो त्रिकाली विशाल स्वभाव, वह दृष्टि का विषय है। इसलिए दृष्टिवन्त को परमात्मा अपना स्वरूप भासित होता है। इस प्रकार दूसरे सब आत्मा भी परमात्मस्वरूप है। आहाहा! वस्तु है न पूरी ज्ञानमयी चीज़? अल्पज्ञपना जिसमें नहीं। राग तो नहीं, संयोग तो नहीं, अल्पज्ञपना भी नहीं। आहाहा!

पंचाध्यायी में लिया है न? हरि। आत्मा को हरि कहा है। वह भी हरते इति हरि। नास्ति से बात ली है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष का नाश करे, इसलिए हरि आत्मा है। आहाहा! आज सवेरे मीराबाई का एक टुकड़ा है वह याद आया। 'हरि ने भजतां हजु कोई नी लाज जाता नथी जाणी रे.... हरि भजतां हजु कोईनी लाज जातां नथी जाणी रे....' सेठ! हरि कौन? यह आत्मा, हों! उसे भजने से अभी दुनिया में किसी की लाज गयी नहीं। ऐसा जो भगवान आत्मा.... आहाहा! अल्पज्ञ की दृष्टिवाले को, राग की दृष्टिवाले को, निमित्त की दृष्टिवाले को, पर्याय की बुद्धिवाले को ऐसा आत्मा बैठता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह मीराबाई में आता है।

यहाँ तो हरि यह भगवान आत्मा, अल्पज्ञ और राग का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! निमित्त परद्रव्य का तो अभाव है,... आहाहा! परन्तु व्यवहार के विकल्प दया, दान, व्रतादि जिसे अभी लोग कहते हैं कि व्यवहार लोप होता है। सेठ! तुमने तो यह सब सुना है न? सोनगढिया व्यवहार लोप करते हैं। करे, बापू! कहो, दिक्कत नहीं। अरे! भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं, प्रभु! व्यवहार का तो अभाव है परन्तु अल्पज्ञपने का त्रिकाली ज्ञानमयी वस्तु में अभाव है। आहाहा! अरे! ऐसा निधान देखो न! किस प्रकार वर्णन करते हैं! यह परमात्मप्रकाश है। परम आत्मा प्रकाश की मूर्ति। अल्पज्ञपना नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं। आहाहा! ऐसी जिसकी दृष्टि... यह कहेंगे। वीतराग स्वसंवेदनज्ञान हुआ, वह तो ऐसे आत्मा को मानता है। समझ में आया? आहाहा! रागरहित... है न? अन्दर आयेगा। अन्दर आयेगा, फिर आयेगा। ९८ में आता है, नहीं? यहाँ है, देखो न! यहाँ ही आया। भावार्थ में।

**व्यवहार से लोक-अलोक का प्रकाशक....** भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, लोकालोक को प्रकाशित करे, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। आहाहा! है भावार्थ? **निश्चयनय से निज शुद्धात्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला....** आहाहा! अपना जो ज्ञान त्रिकाली स्वभाव, उसे ग्रहण करनेवाला वह आत्मा। पर को जाने वह तो व्यवहारनय का कथन है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ पर्यायबुद्धि को उड़ा देते हैं। क्योंकि वह सच्ची बुद्धि नहीं। आहाहा! द्रव्य भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु... आहाहा! पूर्ण ज्ञानमय; ज्ञानवाला - ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! बापू! मार्ग सूक्ष्म, भाई! व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, ऐसा कहते हैं न? तो कहते हैं कि निमित्त और व्यवहार का तो जिसमें अभाव है। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग से भी द्रव्यस्वभाव ज्ञात हो, ऐसा कहना वह पर्याय से है।

आहाहा! पर्याय से ज्ञात होता है द्रव्य, परन्तु जानता है कैसा द्रव्य? अकेला ज्ञानमय, आनन्दमय... आनन्दमय... बस!

**मुमुक्षु :** ऐसा आत्मा कब है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि का है। कब है क्या, परन्तु अभी है, ऐसा कहते हैं। वर्तमान में वह ज्ञानमय, आनन्दमय विद्यमान चीज़ है। उसे अविद्यमान बनायी है। एक समय की पर्याय और रागवाला माना, वह अविद्यमान बनायी है और जिसे पर्याय और राग नहीं, वह अविद्यमान है, उसे अविद्यमान कहकर विद्यमान चीज़ है, उसे विद्यमान बनायी है। आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहा? एक समय की पर्याय, राग वह है, उसे जिसने विद्यमान बनाया है, उसने त्रिकाली को अविद्यमान बनाया है। आहाहा! वीरचन्दभाई! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! और जिसने एक समय में भगवान केवलज्ञान का कन्द... ऊपर नहीं आया था? आया था न?

**केवलज्ञानवेलि के कन्द सुख-पंक्ति है,....** ९६ में आया थ न? ९६। सब जीव... आहाहा! ९६ (गाथा की) अन्तिम लाईन। **सभी जीव केवलज्ञानवेलि....** केवलज्ञान की वेलड़ी, उसका **कन्द सुख-पंक्ति है,....** आहाहा! केवलज्ञान का कन्द और सुख की धारा है। आहाहा! **सभी जीव....** अभव्य भी ऐसे ही हैं। आहाहा! पैसेवाले, कर्मवाले तो नहीं, रागवाला भी नहीं, अल्पज्ञपनेवाला भी नहीं, वह भगवान। आहाहा! **सभी जीव केवलज्ञानवेलि....** आहाहा! यह वह क्या कहलाता है? कोळा... कोळा। कोळा नहीं होता? साकरकोळा। उसकी वेलड़ी छोटी होती है। पके अध मण, अध मण के कोळा बड़े। कोळा कहते हैं न उसे? (काशीफल)। हाँ, वह। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहाहा! अकेले केवलज्ञान की वेलड़ी का कन्द और सुख की धारा भरी हुई है। सुख की पंक्ति है उसमें, कहते हैं। आहाहा! है न? ९६ में अन्त में। कल अन्तिम शीघ्रता से लिया गया था। यह लाईन। **कोई कम-बढ़ नहीं है।** आहाहा! पर्याय की अल्पज्ञता और राग का अस्तित्व विद्यमान है, उसे अविद्यमान कर डालता है। दृष्टि है, उसे अविद्यमान (अर्थात् कि) वह नहीं, (ऐसा करती है) और जो है, उसे विद्यमान करती है। अज्ञानी विद्यमान है, उसे अविद्यमान करता है और क्षणिक अविद्यमान चीज़ है, उसे विद्यमान करता है, यह वही है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात तो सुनने को कभी मिलती हो।

भाई! तू परमात्मा है। आहाहा! जिन शब्द में जीतना आता है। अज्ञान को और राग

को जीते, वह जैन। क्योंकि जैन शब्द है न? और मोक्ष (शब्द) है, उसमें भी दुःख से मुक्त होना, यह आता है। परन्तु अस्तिरूप से लें तो वह मुक्तस्वरूप ही है। अबन्धस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? उसकी चैतन्य महासत्ता—चैतन्य का महा अस्तित्व... आहाहा! जिसका महा अस्तित्व दृष्टि में आया है, उसे अल्पज्ञ और राग का अविद्यमानपना भासित होता है। वह मुझमें है ही नहीं। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है भाई यह तो। आहाहा! वस्तु जो है, वस्तु स्वयं परमात्मा स्वयं चिदानन्द। सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु, सहजात्मस्वरूप स्वयं, सर्वज्ञदेव स्वयं, परमगुरु (स्वयं)। महा प्रभु है। उसकी महिमा की इसे खबर नहीं, उसकी महिमा की इसे खबर नहीं। ऐसे मान लिया कि यह शुभराग दया, दान, व्रत करते हैं न, इससे मिलेगा। यह उसकी महिमा का नाश कर डाला। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वरूप अब। दया पालना और भक्ति करना, पूजा करना, व्रत पालना... बसन्तीलालजी! यह सब सुना था या नहीं? आहाहा! गजब बात है, बापू! आहाहा!

आज दिन की वृद्धि का दिन है। क्या कहा यह? कल अन्तिम बाईसवीं तारीख के दिन छोटे में छोटा और रात्रि बड़े में बड़ी (थी)। कल बाईस तारीख, दिसम्बर की। रात्रि बड़ी में बड़ी। अब आज शुरु होता है, वृद्धि। दिन मिनिट-मिनिट बढ़ेगा और रात्रि मिनिट-मिनिट घटेगी। आहाहा! समझ में आया? वह यह दिन वृद्धि है। चैतन्यमूर्ति दिनकर-दिवस का करनेवाला ऐसा सूर्य है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा केवलज्ञान के प्रकाश का सूर्य! यह ऐसी बातें हैं, बापू! पागल और गहल जैसी बातें हैं। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, व्यवहार से लोकालोक का प्रकाशक कहने में आता है। और निश्चयनय से निज शुद्धात्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला.... आहाहा! यह तो त्रिकाली को ग्रहण करनेवाला भगवान है। व्यवहार को जानना, ऐसा भी नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? इस निमित्त से तो नहीं, राग से तो नहीं, अल्पज्ञ से नहीं परन्तु पर को जाननेवाले से भी वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से अपने पूर्ण स्वरूप को ग्रहण करनेवाला वह भगवान है। आहाहा! उसे वह जाननेवाला है। संयोग में नहीं, राग में नहीं, अल्पज्ञपने में नहीं परन्तु पर को जाननेवाला भी वास्तव में नहीं। आहाहा! यह तो भगवान पूर्ण अपना स्वरूप है, उसे वह तो जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

ग्रहण करनेवाला जो केवलज्ञान.... यह केवलज्ञान है। यह तो केवलज्ञान तीन काल—तीन लोक का जाननेवाला, उसे वह जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! ऐसी बातें। निश्चय... निश्चय... निश्चय... परन्तु सत्य यह है। आहाहा! श्रद्धा में कितनी महत्ता की इसे श्रद्धा है, ऐसा कहते हैं। कितनी बड़े की इसे श्रद्धा है?—कि श्रद्धा में वह भगवान स्वयं को पूर्ण को जाने, उसकी श्रद्धा में वह है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया तो विश्राम का वाक्य है। आहाहा! भाई! इसका अन्तर माहात्म्य आये बिना, इसकी महत्ता जाने बिना दृष्टि सच्ची नहीं होगी। आहाहा! और सच्ची दृष्टि बिना जो कुछ करे, वह सब चार गति में भटकने के लिये है। आहाहा! खलबलाहट हो गया है न। निश्चय... निश्चय... निश्चय...

**निज शुद्धात्मद्रव्य का....** देखो? परद्रव्य को नहीं, केवली को जाननेवाला भी नहीं। आहाहा! मार्ग बापू! अलग प्रकार है। आहाहा! निज, **निश्चयनय से निज....** स्वयं अपने शुद्धात्मद्रव्य को जाननेवाला है। ग्रहण करनेवाला है अर्थात् जाननेवाला है। ऐसा जो केवल ज्ञान... केवल ज्ञान अर्थात् स्वयं अपना अकेला ज्ञान। **यद्यपि व्यवहारनय से केवल-ज्ञानावरणकर्म से ढँका हुआ है,....** यहाँ विवाद। आया देखो! (ऐसा वे लोग) कहते हैं। कर्म से आवरण है। उन्हें संक्षिप्त कहना है, इसलिए निमित्त से बात की है। बाकी वास्तव में तो अपनी पर्याय का विषय हीन स्वयं ने किया है, वह उसका आवरण है। आता है न? भाई! विषय प्रतिबद्ध। नहीं? पंचास्तिकाय। आहाहा! अपना जानना अल्पज्ञ विषयरूप परिणामा है, वही उसे विघ्न है, वही उसे आवरण है। आहाहा! जिसका सर्व विषय पूर्ण है और उसमें भी पूर्ण विषय स्वद्रव्य है। आहाहा! पर्याय में पूर्ण विषय सब है, परन्तु ऐसा करने पर भी यह द्रव्य जो पूर्ण है.... आहाहा! एक पर्याय में सर्व द्रव्य का प्रत्यक्षपना पूर्णपना है, इससे भी यह आत्मा पूर्णरूप से अपने को जाने, ऐसा पूर्ण है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! कहो, त्रिभुवनभाई! ऐसी बातें हैं, इसलिए लोगों को बेचारों को (कठिन पड़ता है)। आहाहा!

**मुमुक्षु :** फिर से फरमाओ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहा न। आहाहा! ऐसा केवल ज्ञानमय... केवल अर्थात् अकेला ज्ञानमय प्रभु और पर्याय को केवलज्ञान कहो तो उसे आवरणरूप से उसकी अपनी हीन भावघातिकर्म की परिणति अपनी है। उससे वह घात हुआ है। उससे वह पूर्ण ज्ञानमय ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

**मुमुक्षु :** द्रव्यकर्म से नहीं?



**पूज्य गुरुदेवश्री :** द्रव्य (कर्म) तो निमित्त का कथन है। सोलहवीं गाथा में नहीं आया? प्रवचनसार। द्रव्यघाति, भावघाति दो कर्म हैं। द्रव्यघाति तो पर है। भावघाति उसकी शुद्धता को घात करनेवाला वह है। आहाहा! सूक्ष्म बात पड़े। लोगों को सुनने को मिली न हो, वाँचन में आयी न हो और दृष्टि (न हो), इसलिए दूसरे प्रकार से शास्त्र पढ़ा हो, अब उसे यह बात बैठाना (कठिन पड़ती है)। ज्ञान का परिणमन स्वयं ने हीन कर दिया है, उससे ढँक गया है। समझ में आया? विवाद तो यह कर्म का है, व्यवहार के दो, और निमित्त के और क्रमबद्ध के (ऐसे) चार (विवाद) सोनगढ़ के सामने (चलते हैं)। आहाहा! उसके (स्वयं के) सामने हैं, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा!

**व्यवहारनय से केवलज्ञानावरणकर्म से ढंका हुआ है, तो भी शुद्धनिश्चय से केवलज्ञानावरण का अभाव होने से....** देखो? आवरण का अथवा अल्पज्ञपने का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कोई कहनेवाला निकला नहीं। आहाहा! नागा बादशाह से आघा। उन्हें दुनिया की पड़ी नहीं कि ऐसा कहूँगा (तो) समाज कैसे मानेगी? उसके घर रहा। घर रहा अर्थात् उसकी कल्पना के घर में, ऐसा। निजघर में नहीं आया। भगवान आत्मा केवलज्ञानावरणीय का जिसमें अभाव है, कहते हैं। है? अर्थात्? भावघातिरूप से जो ज्ञान हीनदशा हुई है, उसका त्रिकाली स्वभाव में अभाव है। समझ में आया? ऐसे अर्थ करना। फिर वे कहे, स्वयं को लगे वैसे अर्थ करते हैं। अरे! भगवान! बापू! तूने मार्ग सुना नहीं, हों प्रभु! आहाहा!

**सभी जीव केवलज्ञानमयी हैं।** यह घाति का अपना स्व का घात किया, उसका भी अभाव है। अकेले ज्ञानमय, परिपूर्ण रसकन्द, ज्ञानसूर्य ध्रुव आदि-अन्तरहित चीज, परिपूर्ण स्वभाव सम्पन्न ऐसा भगवान आत्मा, ऐसे सब आत्मा हैं। आहाहा! **यद्यपि व्यवहारनयकर सब संसारी जीव जन्म-मरण सहित हैं,....** पर्याय में। तो भी निश्चयनयकर वीतराग निजानन्दरूप.... देखो! आया यह। निश्चयनयकर वीतराग निजानन्दरूप अतीन्द्रिय सुखमयी हैं,.... यह वीतराग निजानन्द की पर्याय जहाँ प्रगट हुई, उसे यह पूरा वीतराग निजानन्दमय है, ऐसा भासित होता है। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयनयकर वीतराग निजानन्दरूप....** वापस, देखा? वीतरागी भी निजानन्दरूप अतीन्द्रिय सुखमयी हैं,.... आहाहा! वीतरागी निज आनन्दमय, निज सुखमयी स्वरूप भगवान आत्मा। आहाहा! ऐसे सब आत्मायें हैं। आहाहा! **अतीन्द्रिय सुखमयी हैं,....** आहाहा! जिनकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं ऐसे हैं,.... आहाहा! भगवान ज्ञान और सुखमय, जिसकी सत्ता—अस्तित्व ज्ञानमय और

सुखमय, जिसका अस्तित्व है, ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत जन्म-मरण के उत्पन्न करनेवाले जो कर्म उनके उदय के अभाव से जन्म-मरण से रहित हैं। लो। आहाहा! शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत जन्म-मरण के उत्पन्न करनेवाले जो कर्म उनके उदय के अभाव से जन्म-मरण से रहित हैं। उसमें है नहीं, उदय ही नहीं। आहाहा! गजब बात परन्तु, भाई! परमात्मप्रकाश।

हुकमीचन्द पण्डितजी के पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है। अपने पण्डितजी। जयपुर, हुकमीचन्दजी। उनके बड़े पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है। छोटे का नाम अध्यात्मप्रकाश है। लड़की का नाम कुछ ऐसा है। अध्यात्मप्रकाशी? प्रभा। लो, ठीक। लड़की का नाम अध्यात्मप्रभा। हुकमीचन्दजी क्षयोपशम अभी बहुत है। छोटी उम्र ४० वर्ष की, परन्तु उनका क्षयोपशम बहुत। परन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि यह तो सोनगढ़ का पण्डित है, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! भाई! भाग करना रहने दे, बापू! मार्ग है वह है। आहाहा!

ओहो! भगवान आत्मा वस्तुस्वभाव परिपूर्ण ज्ञान और सुख की धारा जिसमें पड़ी है। आहाहा! ऐसे भगवान में यह केवलज्ञानावरणीय आदि का अभाव है और जो जन्म-मरण का कारण कर्म, उसका भी अभाव है। आहाहा! यह जन्म-मरण रहित है तो पर्याय में जन्म-मरणरहित होता है। समझ में आया? यद्यपि संसार अवस्था में व्यवहारनयकर प्रदेशों का संकोच-विस्तार को धारण करते हुए.... प्रदेश लिया अब। पाठ में आया था न? 'जीवप्रदेशैः सकलाः समाः' आहाहा! संसार अवस्था में व्यवहारनयकर प्रदेश असंख्य हैं, वह संकोच-विस्तार होता है। निगोद में संकोच हो जाता है, हजार योजन मच्छ में अथवा केवलज्ञान समुद्घात में विकास होता है। यह व्यवहारनयकर देहप्रमाण है।

और मुक्त-अवस्था में चरम ( अन्तिम ) शरीर से कुछ कम देहप्रमाण हैं,.... यह सब भेद व्यवहार से है। तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी हैं,.... आहाहा! यह निश्चय। असंख्यप्रदेशी। संकोच हो तो भी असंख्य प्रदेश हैं, विकास हो तो भी असंख्य प्रदेश हैं। वे सामान्य एकरूप हैं। आहाहा! समझ में आया? तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी हैं, हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशोंकर सब समान हैं,.... आहाहा! यह हजार योजन का मच्छ ( हो ) और केवलज्ञान समुद्घात के समय जो ( विस्तार हो ) परन्तु असंख्य प्रदेश की अपेक्षा से सब समान है। आहाहा! आता है न उसमें? 'सर्व जीव है ज्ञानमय, धारे समता भाव' योगसार। योगसार में पीछे आता है। 'सर्व जीव है....' वहाँ सामायिक की व्याख्या की है। 'सर्व जीव है ज्ञानमय, धारे समता भाव।'

समताभाव से सब भगवान ज्ञानमय हैं। आहाहा! ऐसा शान्ति से जो अन्दर समझते हैं, उसे सामायिक होती है। आहाहा! श्रीमद् में ऐसा कहा, 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होय।' आहाहा! यह ज्ञानमयी कहा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** प्रत्येक द्रव्य-गुण समान....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भेद ही नहीं अब कोई। राग की तो बात भी कहाँ है! आहाहा!

अकषायस्वभाव मूर्ति प्रभु, सब आत्मा, हों! वीतरागस्वभावमूर्ति असंख्य प्रदेशी समान और गुण से भी समान। आहाहा! समझ में आया? हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशोंकर सब समान हैं,.... आहाहा! सभी जीव। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय और केवलज्ञानी, सिद्ध। एक अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य शरीर निगोद के और एक शरीर में अनन्त जीव, परन्तु असंख्य प्रदेश में सब समान। आहाहा! ऐसी बात। संख्या लोकाकाशप्रमाण उसकी संख्या। लोकाकाशप्रमाण किसी की संख्या कम-ज्यादा नहीं। संकोच-विकास क्षेत्र से-बाह्य क्षेत्र से हो, परन्तु अन्दर क्षेत्र से... आहाहा! गजब बात करते हैं न! बाह्य क्षेत्र से संकोच-विकास (होओ)। निगोद में इतना संकोचित हो जाये, वह हजार योजन (हो) परन्तु अन्तर क्षेत्र से देखो तो असंख्य प्रदेश हैं, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू!

केवलज्ञान समुद्घातवाला जीव और निगोद के जीव, प्रदेश से दोनों समान हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है, बापू! आहाहा! जिनवर के अतिरिक्त यह बात (कहीं नहीं है)। वह भी दिगम्बर धर्म। आहाहा! ऐसी गम्भीरता। एक-एक श्लोक में गम्भीरता तो देखो! कितनी गहराई की बातें। गहरा कुँआ उसे किस प्रकार बताते हैं! आहाहा!

और यद्यपि व्यवहारनय से संसार-अवस्था में इन जीवों के अव्याबाध अनन्त सुखादि गुण कर्मों से ढँके हुए हैं,.... लो, यहाँ कहते हैं, कर्म से ढँका है। तुम इनकार करते हो। भावकर्म—हीनदशा से पूरा ढँक गया है। आहाहा! समझ में आया? सोलहवीं गाथा में यही कहा, भावघाति और द्रव्यघाति दो लेना। द्रव्यघाति, द्रव्यघाति है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो निमित्त है। स्वयं ही उपादान की पर्याय में हीनपर्यायरूप भावघातिरूप से घात करता है। अपने.... आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अव्याबाध अनन्त सुखादि गुण.... अनन्त लिये। हीन परिणमन के कारण ढँके हैं। कर्म से ढँका है, यह निमित्त से कथन है। तो भी निश्चयनयकर कर्म के अभाव से....

आहाहा! जिसमें जड़कर्म का भी अभाव और हीन भावघाति के परिणमन का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! ढँके हुए हैं, तो भी निश्चयनयकर कर्म के अभाव से सभी जीव गुणोंकर समान हैं। आहाहा! शक्ति गुण का स्वभाव की सत्ता अस्तिरूप से भी सभी जीव समान हैं। आहाहा! कहो, अभव्य का जीव भी समान है। द्रव्यस्वभाव की बात लेनी है न। पर्याय में अन्तर है, वह तो व्यवहार से है। आहाहा! ऐसे लेख आवे स्पष्ट कि कर्म से ढँका हुआ है और तुम अर्थ दूसरे करते हो। संक्षिप्त भाषा में (कहना हो तो ऐसा कहा जाता है)। हमारे पण्डितजी ने पंचास्तिकाय में लिखा है। पंचास्तिकाय न! यह निमित्त का कथन संक्षिप्त बोलने का कथन है। लम्बा-लम्बा करने जाये कि हीन परिणमा है, उसमें कर्म का निमित्त है, दोनों उसमें नहीं, इसलिए पूर्ण है। यह लम्बा (हो जाता है)। भाषा तो ऐसी ही होने की। यह वाद-विवाद की कहाँ (बात है), बापू! आहाहा!

**सभी जीव गुणोंकर समान हैं। ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है,.... आहाहा!** उसका तात्पर्य—रहस्य बताया। **ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है, वही ध्यान करनेयोग्य है।** आहाहा! वह श्रद्धा में लेनेयोग्य है। आहाहा! ध्यान विषय कुरू। वर्तमान पर्याय का विषय इसे बना। आहाहा! असंख्य प्रदेशी समान, गुण से समान, आवरण से रहित ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! उसे वर्तमान में हीन पर्याय और रागवाली (पर्याय से) भिन्न कर, अधिक कर डाल। आहाहा! यह कहीं बात है, भाई! हीन पर्याय है, उसे निमित्त है, असंख्य प्रदेशी संकोच-विकास है। उससे तेरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ भिन्न है, उसका ध्यान कर, उसे ध्यान में ले, उसे ध्यान में ले। आहाहा! किसे ध्यान में ले? जो गुण से परिपूर्ण, असंख्य प्रदेश से परिपूर्ण, जन्म-मरणरहित.... आहाहा! जिसमें पर्याय की हीन अवस्था का भी अभाव है, उसे ध्यान में ले। ऐसा तो किसी दिन सुनने को मिले। आहाहा! यदि मध्यस्थता से आठ दिन सुने तो इसे खबर पड़े कि यह क्या है! परन्तु ऐसा का ऐसा विरोध करे। करो, बापू! क्या हो? उसे जँचा न हो, बैठा न हो। उसकी अपनी बात जिस प्रकार रुचि है, उस प्रकार वह बात करे। दूसरा क्या करे? आहाहा! **‘जामें जितनी बुद्धि है, इतनी दिये बताय। वांको बुरो न मानिये, और कहाँ से लाय।’** आहाहा!

**मुमुक्षु :** आवरणवाली पर्याय निरावरण स्वभाव को किस प्रकार ढँके....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो पर्याय में आवरण और हीन दशा है, वस्तु में कहाँ है? आहाहा! वह पर्यायनय का विषय है, ऐसा सिद्ध किया। है अवश्य, परन्तु अन्दर वस्तु में

नहीं। निश्चय में निषेध हो गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ९७ बहुत अच्छी आयी, लो। आहाहा! कुदरत का आज बढ़ने का दिन है, उसमें यह गाथा आयी। आहाहा! और सवेरे यह आया था कि यह सब खलबलाहट करते हैं.... 'हरि भजतां हजी कोईनी लाज जाता नथी जाणी रे....' इसी प्रकार भगवान को भजने से किसी की हीन दशा हो, ऐसा जगत में है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! यह ९७ पूरी हुई। आहाहा!

यहाँ व्यवहार में असंख्य प्रदेश संकोच-विकास है। जन्म-मरण सहित है, अल्पज्ञ सहित है, यह सब निमित्त है, वह है, परन्तु यह वापस उड़ा दिया। इसी प्रकार व्यवहार के काल में व्यवहार है, परन्तु व्यवहार का स्वभाव में अभाव है, इसलिए उससे स्वभाव की प्राप्ति हो—ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा है, वारियाजी! ऐसा मार्ग है।

**मुमुक्षु :** ऐसा सुनने ही आये हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, आये हैं न। इन्हें प्रेम है और रस है। आहाहा! यह तो प्रभु! तेरे घर की बात है न, भाई! तेरे घर कितना बड़ा! आहाहा! बड़े के घर में जाना हो तो कितनी तैयारी करके जाया जाता है। इसी प्रकार पर्याय में योग्यता से अन्दर जाया जाता है। आहाहा! यह प्रथा टूट गयी थी। लोगों को दूसरा दृढ़ बैठ गया।

**मुमुक्षु :** निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, बस बात यह। यह कहे बराबर है, परन्तु ऐसा कहे वह ठीक नहीं। सोनगढ़वाले परस्त्री को सेवे तो पाप नहीं, ऐसा कहते हैं, अररर! यह नहीं होता भाई! ऐसी बात नहीं की जाती। ऐसा कहे कि व्यवहार से निश्चय हो, यह मानते नहीं। मात्र निश्चय से ही होता है, ऐसा एकान्त (कहते हैं), ऐसा कह सके। तत्त्व की अपेक्षा में ऐसा कहे परन्तु ऐसी बात तो नहीं कहनी चाहिए। अररर! यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को पाप कहना है। अररर! स्त्री के सेवन की बातें, बापू! अरे! प्रभु... प्रभु! वापस वाममार्गी ठहराते हैं। गजब करते हैं न! यह कहे तो बराबर है कि व्यवहार से होता है, उसकी तो बातें ही करते नहीं और व्यवहार को उड़ा देते हैं। यह बात सच्ची है। निमित्त से होता है, ऐसा नहीं कहते।

यह तो भाई कैलाशचन्द्रजी ने स्पष्टीकरण कर दिया है कि सोनगढ़वाले निमित्त का निषेध करते हैं परन्तु निमित्त नहीं—ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त से कर्ता (कार्य) हो, इसका निषेध करते हैं। यह बात तो ऐसी ही है। निमित्त नहीं? निमित्त है, परन्तु निमित्त पर के कार्य

का कर्ता नहीं होता। इसी तरह व्यवहार नहीं? व्यवहार है, परन्तु व्यवहार निश्चय का कर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** (निमित्त का निषेध करने से) उपकारी का उपकार ढँक जाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तब ही उस निमित्त से नहीं होता, तब ही उसका उपकार माने, वह व्यवहार है। आहाहा! उसे ऐसा विकल्प आवे। बन्ध का कारण है परन्तु विनय का (विकल्प) आवे। ९८।

**आगे जीवों का ज्ञान-दर्शन लक्षण कहते हैं :—**

**जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।**

**तेण ण किज्जइ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु॥९८॥**

भगवान जिनवर ने जीव का लक्षण ज्ञान-दर्शन कहा तो फिर ऐसा भेद नहीं करना कि यह जीव ऐसा और यह जीव ऐसा। सब ज्ञान, दर्शन (स्वरूप है)। गजब काम किया है न! देखो! कहते हैं कि तेरा सूर्य उग गया है? ज्ञानरूपी सूर्य उग गया तो अब भेद करना नहीं। सब ज्ञान, दर्शनवाले समान हैं। आहाहा!

**अन्वयार्थ :- जीवों का लक्षण जिनेन्द्रदेव ने दर्शन और ज्ञान कहा है,.... देखना और जानना वह इसका स्वभाव, वह इसका लक्षण कहा। आहाहा! इसलिए उन जीवों में भेद मत कर,.... कि यह अल्पज्ञानी है और यह अल्पदर्शी है, ऐसा अब रहने दे। आहाहा! कितना समभाव! भगवान ने ज्ञान-दर्शन कहे हैं। उन जीवों में भेद मत कर, अगर तेरे मन में.... आहाहा! 'विभातः जातः' ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है,.... आहाहा! यदि सम्यग्ज्ञान तुझे उगा हो तो यह भेद न कर। आहाहा! यह आया है, हों! यह पहले कहना था न, वह इसमें आया। निचली लाईन है। तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,.... नीचे (टीका में) आयेगा। यह तो अभी शब्दार्थ है। ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् हे शिष्य! तू सबको समान जान। आहाहा! फिर टीका लेंगे।**

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२१

श्री समयसार ( १३ ), स्याद्वाद के बोल, प्रवचन - ३४४  
दिनांक - २३-०८-१९६२

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार । उसमें यहाँ अनेकान्त तत्त्व की बात चलती है । अनेकान्त । पहले बात आयी न । जो वस्तु तत् है, वही अतत् है । जो कोई जगत के पदार्थ हैं, सब-सब पदार्थ पहले सामान्य बात । तत् है, वही अतत् है, जो ( वस्तु ) एक है, वही अनेक है; जो सत् है, वही असत् है; जो नित्य है, वही अनित्य है—इस प्रकार.... सामान्य की-वस्तु की बात (करके) फिर आत्मतत्त्व में उतारेंगे । एक वस्तु में वस्तुत्व की उपजानेवाली.... उसमें वस्तुपना हो और वस्तुपना प्राप्त हो, ऐसी विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है । समझ में आया ? उसमें जो विरुद्ध शक्ति वस्तु को वस्तुपने को निपजानेवाली वस्तुपना जैसा है वैसा सिद्ध करनेवाली, ऐसी अन्तर में विरुद्ध शक्तियों का प्रकाशित होना, इसका नाम अनेकान्त है ।

इसलिए.... यहाँ तक आया था । अपनी आत्मवस्तु को.... पहले सामान्य बात थी । सर्व वस्तु । देखो ! सामान्य में तो तत्-अतत् में परपने नहीं इतना कहा था । अब यह वस्तुपने में आत्मवस्तु दूसरी बात की । इसलिए अपनी आत्मवस्तु को.... आत्मा एक वस्तु है । लो ! कोई तो बहुत वर्ष पहले प्रश्न करते थे । (संवत्) १९८९ में । वस्तु ? आत्मवस्तु ? वस्तु क्या ? वस्तु हो तो नाशवान होगी । वस्तु यदि कहो तो नाशवान (होगी) । सर्व व्यापक हो तो अविनाशी (होगी) । ऐसा है नहीं । क्षेत्र से व्यापक हो तो ही अविनाशी है, ऐसी कोई वस्तु नहीं । अपना आत्मा अपने क्षेत्र में रहता है । वस्तु कहो, उसे यहाँ वस्तु कहते हैं ।

ज्ञानमात्रता होने पर भी,.... वह ज्ञानमात्र कहने से भी तत्-अतत्पना, एकत्व-अनेकत्व,.... कल आ गया है । सत्-असत् और नित्यत्व-अनित्यत्वपना प्रकाशता ही है;.... ज्ञान आत्मा ऐसा कहने पर भी यह चौदह बोल ज्ञान है, ऐसा कहने में चौदह बोल को प्रकाशित करता है, कोई बाकी नहीं रहता । क्यों ? अब इसका उत्तर देते हैं ।

उसके ( -ज्ञानमात्र आत्मवस्तु के ) अन्तरंग में चकचकित प्रकाशते.... अन्तरंग में

चकचकाहट प्रकाशते हुए ज्ञानस्वरूप के द्वारा तत्पना है,.... ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा उससे तो अपनापना है, तत्पना है, वहपना है। और बाहर प्रगट होते.... आत्मा से बाहर प्रगट होते अनन्त आत्मायें और अनन्त जड़। अनन्त ज्ञेयत्व को प्राप्त,.... सब पदार्थ अनन्त ज्ञेयपने को प्राप्त हैं। अपने ज्ञान से भिन्न अनन्त ज्ञेयत्व-ज्ञेयपने को प्राप्त, ज्ञान में आनेयोग्य ऐसे ज्ञेयत्व को प्राप्त स्वरूप से.... यह प्राप्त परन्तु स्वरूप से भिन्न.... अपने स्वरूप से वे भिन्न हैं, सर्व आत्मा और सर्व परमाणु, अनन्त द्रव्य (भिन्न हैं)। ऐसे पररूप के द्वारा ( -ज्ञानस्वरूप से भिन्न ऐसे परद्रव्य के रूप द्वारा ) अतत्पना है.... समझ में आया ? यहाँ भी सामान्य बात की है। फिर आगे लेंगे। फिर अतत् अर्थात् ज्ञेय से अतत् ऐसा लेंगे। हाँ। ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में ज्ञात हो इतने से तत्पना। इसका विशेष स्पष्ट बाद में करेंगे। यहाँ इतना अनन्त ज्ञेयतत्त्व को प्राप्त। पर जो ज्ञेय हैं, उनसे ज्ञान नहीं है। ज्ञान है, वह ज्ञान से है और ज्ञेय से ज्ञान नहीं। ऐसे चौदह बोल विस्तार से लेंगे।

अतत्पना है ( अर्थात् ज्ञान उसरूप नहीं है; ).... ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं। समझ में आया ? यह शास्त्र शास्त्ररूप ज्ञेयरूप है, ज्ञान ज्ञानरूप है, परन्तु शास्त्र-ज्ञेयरूप से ज्ञान नहीं। शास्त्र से ज्ञान नहीं, वाणी से ज्ञान नहीं। ज्ञान ज्ञानपने से है, ज्ञान ज्ञेयपने से नहीं। भगवान भी ज्ञान में ज्ञेय हो गये। भगवान भी ज्ञेय हो गये। ज्ञेयरूप से भगवान हैं, वे ज्ञेयरूप से आत्मा नहीं। अपना ज्ञान ज्ञानरूप से है और ज्ञेयरूप से नहीं। लोकालोक ज्ञेयरूप से है, उस ज्ञेयरूप से केवलज्ञान नहीं। यह जानने का ( भाव इतना है कि ) स्वयंसिद्ध आत्मा अपने से है और परज्ञेय से नहीं, ऐसी बुद्धि होती है, उसे सम्यग्ज्ञान, सत्ज्ञान, शान्ति का ज्ञान कहते हैं। इस अनेकान्त में अमृत पड़ा है। ओहो ! मैं आत्मा अपने से हूँ और ज्ञेय से नहीं। तो पर से हटकर अपने ज्ञायकस्वभाव में दृष्टि हुई तो अनेकान्तपना प्रगट होने पर पररूप से नहीं और स्वरूप से है, ऐसी बुद्धि प्रगट होने पर अपना अमृत आनन्द का अनुभव-वेदन हो, वह इसका फल है। समझ में आया ? अनेकान्त, यह धर्म है।

**मुमुक्षु :** कहते हैं न इस पुण्य से धर्म होगा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुण्य से धर्म तीन काल में नहीं है। पुण्य से पुण्य (बँधता है)। वह ज्ञेय है। ज्ञेयरूप से ज्ञान नहीं है। ज्ञान ज्ञेयरूप से नहीं है। ज्ञान ज्ञेयरूप से नहीं ऐसा निश्चय होने पर अपने आत्मा में श्रद्धा-दर्शन-ज्ञान-चारित्र सम्यकरूप से परिणमने पर अन्दर आनन्द आता है, उसका नाम यहाँ अनेकान्त कहा जाता है। समझ में आया ? ...बात फिर विशेष आयेगी।



सहभूत ( साथ ही ) प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशों के समुदायरूप अविभाग द्रव्य के द्वारा एकत्व है,.... एकपना लेना है न? आत्मा में एकपना है। एकपना किस प्रकार है? कि भगवान आत्मा सहभूत प्रवर्तमान तथा क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशरूप.... सहभूत प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य अंशों ऐसा। किससे प्रवर्तमान? आत्मद्रव्य में एक ज्ञान है, वहाँ दर्शन है, वहाँ चारित्र है, वहाँ आनन्द है। सहवर्त, सहप्रवर्त। एक गुण के साथ अनन्त गुण सहप्रवर्त। एक गुण के साथ अनन्त गुण का सहप्रवर्तमान है। प्रवर्तमान अर्थात् अस्ति है, ऐसा। प्रवर्तमान अर्थात् परिणमन की अभी बात नहीं है।

( साथ ही ) प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशों के.... यह गुण और क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य अंश वह पर्याय। समझ में आया? देखो! यहाँ क्रमशः आया। अनन्त-अनन्त गुण में क्रमशः-क्रमशः परिणमन। एक समय पश्चात् दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, ऐसा क्रमबद्ध जो चलता है। क्रमशः कहो, क्रमबद्ध कहो, क्रमवर्ती कहो, क्रमसर कहो, क्रमभावी कहो, क्रमपरिणामी कहो। समझ में आया? क्रमानुपाती कहो। यह आया न क्रमानुपाति? समझ में आया? क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशों के समुदायरूप.... यह अनन्त सहवर्ती गुण और अनन्त क्रम से प्रवर्तनेवाली पर्याय, उनका समुदाय, उनका एकरूप द्रव्य, उसे एक कहते हैं। लो, यह बात तो मानो लुखी लगे उसकी अपेक्षा। और इसमें वास्तविक तत्त्व की बुद्धि और अस्तित्व कैसा है, ऐसा समझने में शान्ति और दृष्टि प्रगट होती है और पर का आधीनपना और पर का आश्रय उसमें छूट जाता है। एकरूप हूँ, मेरे गुण और पर्याय। गुण साथ में वर्तते हैं। द्रव्य के साथ ऐसे नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहना है न? सहप्रवर्तमान गुण, क्रमशः प्रवर्तमान पर्याय, ऐसा चैतन्य अंश। दोनों को अंश कहा। गुणों को भी अंश कहा और पर्याय को भी अंश कहा। उसका समुदायरूप अविभाग.... जिसके दो भाग नहीं हो सकते। ऐसे द्रव्य के द्वारा.... ऐसा द्रव्य के द्वारा एकत्व है,.... एकरूप है। ऐसी एकरूप दृष्टि करने से उसे अनेकपने के आश्रय का विकल्प छूट जाता है। अनेकपना रहता है, परन्तु अनेकपने का विकल्प छूटकर एकपने के बोध में सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। और अनेकपना भी इसमें अमृत है।

अविभाग एक द्रव्य में व्याप्त,.... समझ में आया? उसमें कहा कि सहभूत प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशों के समुदायरूप अविभाग द्रव्य के द्वारा एकत्व है,.... समुदायरूप। यहाँ अविभाग एक द्रव्य। एक द्रव्य पूरा अविभाग-जिसका भाग भी

नहीं, असंख्य प्रदेश अखण्ड। व्याप्त.... अविभाग-भाग न पड़े ऐसे द्रव्य में व्याप्त। सहभूत प्रवर्तमान तथा क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशरूप ( चैतन्य के अनन्त अंशोंरूप ) पर्यायों के द्वारा.... अनन्त गुणरूप और पर्यायरूप, दोनों बात ली। सहभूत प्रवर्तमान तथा क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशरूप पर्यायों के द्वारा.... यह सब भेद। इन द्वारा अनेकत्व है;.... लो, यहाँ सहभूत को भी पर्यायभेद कहा न? सहभूत प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान।

मुमुक्षु : प्रवर्तमान गुण या पर्याय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों, दोनों। भेद है न वह ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिया एकरूप, इसमें अनेकरूप। दो बातें ली हैं।

पर्यायों के द्वारा.... अनन्त सहभूत प्रवर्तमान तथा क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य-अंशरूप.... दो अंश हुए। उसके पर्यायों के द्वारा अनेकत्व भगवान आत्मा में है;.... जिस समय एक है, उसी समय अनेक है। एकत्व है, ऐसा अनेकत्व का ज्ञान भी करने से अनेक अनेकरूप गुण और पर्याय से है। बस, इतना। अस्ति इतनी है। ऐसा लक्ष्य करने से एकपने का लक्ष्य भी उसमें आ जाता है। परन्तु यह बात आयी जरा सूक्ष्म। वह तो अभी तत्-अतत्, एक-अनेक ( की ) बात कही। अब इसमें यह सिद्धान्त बड़ा है।

भगवान आत्मा और सभी आत्मा और सभी द्रव्य। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से होने की शक्तिरूप जो स्वभाव है, उस स्वभाववानपने के द्वारा सत्त्व है,.... क्या कहा ? यहाँ तो आत्मा में उतारे, परन्तु पहले.... चौदह ? प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश। अपने द्रव्य.... अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु क्षेत्र.... अर्थात् चौड़ाई। चौड़ाई कहते हैं न तुम्हारे ? हमारी भाषा में अवगाहन। उसकी सत्ता-भूमि। वस्तु की सत्ता भूमि। काल.... प्रत्येक द्रव्य अपने काल होने की शक्तिरूप जो स्वभाव.... प्रत्येक द्रव्य और प्रत्येक क्षेत्र से द्रव्य अपने अस्तित्व की शक्तिरूप स्वभाव है। प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक द्रव्य का अपनी शक्तिरूप स्वभाव है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य का काल, वर्तमान पर्याय, वर्तमान दशा, अनन्त द्रव्य की वर्तमान... वर्तमान... चाल-गति-दशा, वह काल अस्तित्व की शक्तिरूप स्वभाव है। समझ में आया ? अपनी पर्याय में अनन्त द्रव्यरूप से अपनी शक्ति से उत्पाद होता है, ऐसा उसका स्वभाव है। प्राणभाई ! पर से नहीं।

**मुमुक्षु :** परन्तु कोई सहारा मिले ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु सहारा मिले तो फिर अपनी शक्ति से उत्पन्न होने का रहा कहाँ? प्रत्येक पदार्थ अपने काल-भाव से, अर्थात् काल की शक्ति से होने का स्वभाव उस-उस पर्याय में प्रत्येक द्रव्य में है। उसमें अपनी पर्याय निमित्त से होती है और पर के आधार से होती है, ऐसा नहीं रहता। समझ में आया? यह तो निमित्त उड़ जाता है इसमें। यह निमित्त साबित होता है इसमें।

प्रत्येक पदार्थ.... समझ में आया? देखो! यह लकड़ी है, वह स्वयं के कारण से परिणमन करती हुई ऊँची होती है। अपने काल की शक्ति। है न? काल-अस्ति की शक्तिरूप। काल-अस्ति की। भाव फिर लेना। काल अर्थात् वर्तमान पर्याय अस्तित्व की शक्तिरूप जो स्वभाव। स्वयं से पर्याय परिणमती है। अपनी शक्ति से उसमें पर्याय होती है, अँगुली से नहीं, हाथ से नहीं, इच्छा से नहीं, ज्ञान से नहीं।

**मुमुक्षु :** दिखती तो है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या दिखती है ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वह तो हाथ उसकी पर्याय में है, यह इसकी पर्याय में है। समझ में आया ?

प्रत्येक पदार्थ वर्तमान काल, उसका कार्य काल, उसकी पर्याय का काल, उसकी अवस्था का काल होने की, पर्याय होने की शक्तिरूप स्वभाव उसमें है। धन्नालालजी! लो, यह तो बड़ा विवाद करते थे। ऐसा नहीं.... ऐसा नहीं.... ऐसा नहीं.... दुर्घटना हुई, यदि न हुई होती तो व्यक्ति जीता, लो! ऐसे तो लेख आये। ९४ लोग मर गये। दुर्घटना हुई न अभी कुछ? दुर्घटना नहीं होती तो जीते, परन्तु उस समय वह पदार्थ अपने काल अर्थात् पर्याय काल की शक्ति का स्वभाव उसमें है। दूसरे से (हुआ, ऐसा) आया कहाँ से? देवीलालजी! ऐसा है ?

ओहोहो! भगवान की प्रतिमा अपने स्वकाल की पर्याय शक्ति होने से उसकी पर्याय से वह मूर्ति वहाँ स्थापित होती है। सेठी! समझ में आया? स्वकाल—प्रत्येक द्रव्य अपना क्षेत्र और काल स्वयं का काल द्रव्य होने की शक्तिरूप स्वभाव, क्षेत्र होने का शक्तिरूप स्वभाव, काल होने की शक्तिरूप स्वभाव। एब पदार्थ के एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में

वर्तमान कालरूप चाल, चालरूप परिणमन, अपना परिणमन अपने में होने की शक्तिरूप वह द्रव्य का स्वभाव स्वतः है। समझ में आया ? इसमें कहाँ रहा पर की दया पाल सकता है या मार सकता है या बोल सकता है, यह है कहाँ ?

अपना ज्ञानगुण है, उसकी पर्याय वर्तमान में यहाँ पढ़ते हैं या सुनते हैं, उससे पर्याय उत्पन्न हो—ऐसी शक्ति उसमें है नहीं। यह बाद में कहेंगे। इसमें ज्ञान पर्याय हो, ऐसी शक्ति है नहीं। अपनी पर्याय शक्ति होने की उसमें स्वभाव शक्ति पर्याय में है। पर्याय में है, हों! समझ में आया ? दिखता है न ? भाई! ऐसे देखो चाबी घुमावे तो वहाँ घड़ी घूमती है। बराबर है या नहीं ? नहीं ? हजारीमलजी ! परन्तु यह पगड़ी। देखो ! अभी दो दिन से पहन नहीं सकते। अब पहनते हैं। तो पगड़ी पहनने की इच्छा हुई तो आयी या नहीं ? देखा था, वहाँ यह पूजा करते थे। ठीक, यह पगड़ी पहले नहीं थी। खबर है न हमें। हमें सबकी खबर तो होती है न ! समझ में आया ? तो पहले पगड़ी नहीं थी और पगड़ी पहनने की इच्छा हुई तो यह पगड़ी आयी, ऐसा नहीं है। इस पगड़ी के प्रत्येक परमाणु में वर्तमान पर्याय होने की शक्तिरूप पर्याय में स्वभाव है। अँगुली से आयी और हजारीमलजी को इच्छा हुई तो पगड़ी यहाँ से आयी, ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भारी बात, भाई ! व्यवहार तो उड़ा देते हैं। परन्तु उड़ जाता है, उसमें क्या है ? अर्थ क्या ? वह निमित्त साथ में हो, उसका ज्ञान करे, परन्तु उस पर्याय का काल चूककर दूसरी पर्याय का काल लावे, निमित्त आकर दूसरी पर्याय करे, ऐसी तीन काल में पर में शक्ति नहीं है और स्व में पर से हो, ऐसी अपने में शक्ति नहीं है। समझ में आया ? लो, और वापस कहते हैं, बात करे। वापस प्रतिमा स्थापित करे, विशाल.... क्या कहलाता है ? समझे न ? शोभायात्रा निकाले। वापस सब करते हैं, परन्तु मानते नहीं। बाहर का शोभता भी दिखाई दे। लाखों रुपये उड़ाते हैं। बड़ी-बड़ी शोभायात्रा, बड़े-बड़े मन्दिर, २५-२५ मन्दिर, चार-चार लाख के मन्दिर मुम्बई में। और यह नया होता है। बनाते हैं न वहाँ मणिभाई, दादर में। और ऐसे खर्च करना है मुझे, ऐसा है। (वापस) ऐसा कहे, कर नहीं सकते। कहाँ गये, भीखाभाई ? लो, भीखाभाई के गाँव में मन्दिर बनता है। उसके काल की पर्याय की शक्ति से-स्वभाव से होता है, पर से नहीं होता। आहाहा ! ऐसा निश्चय किये बिना उसकी सम्यक्ता प्राप्त नहीं होती और सम्यक् अर्थात् सत्य और सत्य की प्राप्ति बिना सुख नहीं मिलता। समझ में आया ?

कहाँ से असत्य का नाश हो ? सत्य की सत्यता जाने बिना असत्य का नाश कहाँ से होगा ? अपना काल होने की, अपनी पर्याय होने की, प्रत्येक द्रव्य में अपना कार्य होने की,

अपने में कार्य होने की शक्तिरूप जो स्वभाव। देखो! अब काल आया। लो, कार्य के दो कारण.... कार्य के दो कारण.... कार्य के दो कारण। यहाँ तो कार्य का एक कारण कहते हैं। समझ में आया? क्या है? कपूरचन्दजी! यहाँ कहते हैं, कार्य स्वयं से होता है, पर से नहीं होता। गजब बात, भाई! सेठी! आहाहा!

प्रत्येक आत्मा, निगोद का आत्मा, परमाणु स्कन्ध में पड़ा, वह परमाणु, पृथक् परमाणु, सिद्ध हुए सिद्ध, निगोद में रहे हुए जीव। अपना काल होने की, अपना कार्य होने की, अपनी दशा होने की, उस समय की होने की, हों! आहाहा! उस-उस समय में वह सत् पर्याय होने की शक्तिरूप जो स्वभाव है, शक्तिरूप जो स्वभाव है, उस स्वभाववानपने द्वारा, उस स्वभाववानपने द्वारा, कार्य स्वभाववानपने द्वारा, स्वयं का कार्य-काल स्वभाववानपने द्वारा स्व से है, सत्त्व है। समझ में आया? कितना स्पष्ट किया है! तो भी जहाँ हो वहाँ हमने किया.... हमने किया.... हमने किया। यह नहीं होता तो नहीं बनता, नहीं होता तो नहीं बनता।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कहा न। काल में डाला। लड़कों को पूछा था कल सबको। लड़के सब यह कहते हैं। क्या है यह? यह दुर्घटना न हुई होती तो लोग नहीं मरे। कहे, नहीं। तब वह बनने का काल था, इसलिए बना है। कोई नहीं था काल और बना है, ऐसा नहीं है। यहाँ के लड़कों को पूछा। आते हैं न। समझ में आया?

यह एक सिद्धान्त अमृत है। अपना आत्मा, पर का आत्मा, पर के परमाणु या स्कन्ध में रहे हुए परमाणु वह स्कन्ध परिणमता है तो परमाणु परिणमते हैं, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? एक परमाणु कर्मरूप पर्यायरूप होता है तो कहते हैं कि उस परमाणु में स्वकाल से अपनी शक्ति से अपने कार्यकाल की शक्ति से स्वभावरूप होने का स्वभावपना उसमें है। यह राग जीव ने किया तो कर्म परमाणु परिणमित हुए, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** राग न करे तो परमाणु कर्मरूप नहीं परिणमेंगे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं परिणमते, ऐसा कहते हैं। राग अपने कार्यकाल में अपनी शक्ति से... राग जीव में अपने कार्यकाल में अपनी शक्ति से स्वभावरूप होने का स्वभाव है, वह सत्त्व है और परमाणु में कर्मरूप होने की, एक-एक परमाणु में उस समय में कर्मरूप

एक-एक परमाणु में विभावरूप परिणमने के काल से अपनी शक्ति से परिणमते हैं। समझ में आया ?

यह स्कन्ध है, देखो! एक परमाणु यहाँ पृथक् है, वह यहाँ आवे तो स्थूल हो जाता है, स्थूल हो जाता है, सूक्ष्म नहीं रहता। समझ में आया ? एक परमाणु इन्द्रियगम्य नहीं और वह इन्द्रियगम्य हो जाता है। देखो! यह स्थूल हुआ तो इतना है न? स्थूल। मूल परमाणु सूक्ष्म। इसमें स्निग्धता, रूक्षता (होती है) ऐसी शक्ति है, परन्तु भारी-हल्का एक परमाणु में, भारी, हल्का, कठोर और कोमल नहीं, पर्याय में नहीं। गुण में स्पर्श पड़ा है। यहाँ आया तो एकदम स्थूल हो गया। तो कहते हैं कि वह परमाणु, स्वकाल की शक्ति (वैसे) होने की शक्तिरूप का स्वभाव है, उससे वह स्थूलपर्यायपने को प्राप्त हुआ है। स्कन्ध में आया तो प्राप्त हुआ, ऐसा है नहीं।

**मुमुक्षु : ....**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिला है ही कहाँ? वह तो मिलने का तो व्यवहार का सम्बन्ध बतलाना है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी यथार्थ में है कहाँ परमाणु-परमाणु के बीच? कोई परमाणु किसी परमाणु को स्पर्श नहीं करता, स्पर्शते नहीं। समझ में आया? भारी कठिन लगता है लोगों को। कितने विद्वानों को लगता है कि यह तो एकान्त है। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही। भगवान क्या कहते हैं? सर्वज्ञ परमात्मा सन्त अनेकान्त वस्तु की क्या स्थिति है? कि प्रत्येक अनन्त एक समय में अनन्त पदार्थ हैं। अनन्त है न एक समय में? और अनन्त के अनन्त गुण का परिणमन, एक-एक गुण का परिणमन (होता है)। तो कहते हैं कि उसके गुण के स्वकाल की शक्ति होने की शक्तिरूप स्वभाव, पर्यायरूप अस्तित्व की शक्तिरूप स्वभाव, ज्ञानपर्याय वर्तमान उघाड़रूप शक्ति होनेपने की शक्तिरूप स्वभाव है। नहीं कि कर्म का उघाड़ हुआ तो शक्तिरूप स्वभाव परिणमा, ऐसा है नहीं। समझ में आया? तो कहे नहीं, ज्ञानावरणीय नहीं करता, ऐसा नहीं। '...'! ज्ञानावरणीय कुछ करता है। अरे! भगवान उसमें करता है। ज्ञानावरणीय के उदय में अनन्त परमाणु है। अनन्त परमाणु, उदय में अनन्त परमाणु अनन्त स्कन्ध है। अनन्त स्कन्ध में अनन्त परमाणु हैं। वे एक-एक परमाणु अपने स्वकाल से, स्वकाल में होने की शक्तिरूप, कार्य होने की शक्तिरूप उनका स्वभाव है। समझ में आया? और अपने में ज्ञानगुण की वर्तमान पर्याय के कार्यकाल में अपनी अस्तित्व की शक्तिरूप स्वभाव है। कर्म का क्षयोपशम हुआ तो यहाँ

हुआ, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? उस समय में हो अर्थात्? जिस समय उसकी पर्याय है, उस समय में होती है।

**मुमुक्षु** : दोनों हो?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : दोनों नहीं, अनन्त। अनन्त पदार्थ की पर्याय एक साथ हो। कोई भविष्य में हो और कोई भूत में, ऐसा होता है? क्या कहा?

फिर से, एक समय में अनन्त परमाणु हैं, अनन्त जीव हैं, असंख्य कालाणु हैं, तो सर्व का परिणमन एक समय में है या आगे-पीछे है? क्या कहा? अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। वर्तमान लो वर्तमान। तो वर्तमान में सबका परिणमन साथ में है या आगे-पीछे है? आगे-पीछे होता ही नहीं। भविष्य में किसी का परिणाम हो अनन्त द्रव्य में और किसी को पहले हो, ऐसा है? वर्तमान में सर्व द्रव्य की अपनी पर्याय काल की शक्ति होने के स्वभाव से वर्तमान में स्वयं से परिणमता है। पर भी वर्तमान में, पर भी वर्तमान में अपना काल, शक्ति होने के स्वभावरूप परिणम रहा है। वर्तमान में न परिणमे तो क्या भूत-भविष्य में परिणमे? समझ में आया? कोई वर्तमान और कोई भविष्य ऐसा होगा? किसी द्रव्य में? किसी काल में?

जहाँ-जहाँ अनादि से एक समय में ही सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त द्रव्य, क्षेत्र अपना और अपने कार्यकाल में अपना परिणमन करता है। परमाणु भी उस कार्यकाल में अपनी पर्याय का कर्ता है। अनन्त का एक ही समय है। अनन्त का एक (समय) है, परन्तु भिन्न-भिन्न है। समझ में आया? यह अनन्त है या नहीं? ऐसे ऊँचे होते हैं तो अनन्त हुए या नहीं? एक समय में हुए या नहीं? अपने से हुआ या दूसरे परमाणु से हुआ? समझ में आया? यह अँगुली है, देखो! अनन्त परमाणु की है। अनन्त है या नहीं? कितने अनन्त परन्तु? बहुत अनन्त। यह अनन्त परमाणु ऐसे हुए, देखो! तो एक समय में हुए या दो समय में? अनन्त हुए या एक? अनन्त एक-एक समय में अपने कालचक्र की शक्ति के स्वभाव होने से होते हैं, परमाणु से नहीं, दूसरे से नहीं और आत्मा की इच्छा से तो है ही नहीं। समझ में आया? यह जैन सिद्धान्त की....

वस्तु के वस्तुपने को निपजानेवाली। भाई! क्या कहा? यह उसका काल उसकी शक्तिरूप होने का स्वभाव है, वह वस्तुपने को निपजानेवाली शक्ति है। इससे विरुद्ध कहो तो वस्तु की शक्ति निपजानेवाली का नाश होता है। समझ में आया? एक समय में यह आत्मा और अनन्त परमाणु स्वयं का काल होने की, कार्य होने की, पर्याय होने की

शक्तिरूप जो स्वभाव है, वह स्वभाववानपने द्वारा सत् है। यदि ऐसा न मानो तो वस्तुपने की पर्याय की उपजानेवाली (शक्ति) दूसरे द्रव्य की मानो तो वस्तुपना नहीं रहता। एक समय में अपने काल में कार्य हो, वह वस्तुपने की निपजानेवाली चीज़ है और अपना कार्यकाल दूसरे से हो तो वह वस्तुपने का नाश करने का काल है। समझ में आया? बात न माने तो क्या करे? विवाद.... विवाद करे।

भगवान! यह विवाद का काल नहीं है, यह तो विवाद तोड़ने का काल है। समझ में आया? मुश्किल से समय मिला अनन्त काल में कहाँ से निकला? आहाहा! कहाँ मनुष्य देह और कहाँ.... कहाँ आत्मा? कहीं गुलांट खाकर अनन्त निगोद, आलू, शकरकन्द में पड़ा है न? बटाटा समझते हो? आलू-आलू। उसमें तो इतने जीव हैं कि अनन्त सिद्ध से अनन्त गुणे। सिद्ध से एक शरीर में अनन्तगुणे। एक टुकड़ा राई जितना लो, आलू का, कन्दमूल का एक राई जितना टुकड़ा, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर हैं और उसमें अनन्त तो तैजस और कार्मणशरीर और ऐसे एक टुकड़े में अनन्त आत्मा। अब वह कब दो इन्द्रिय हो, कब त्रीन्द्रिय हो। आहाहा!

कहते हैं कि अरे! प्रभु! तुझे काल ऐसा मिला। सब अवसर आ गया, लिखा है या नहीं? टोडरमलजी ने लिखा है। तेरा सब अवसर आ गया है, नकार न कर। लक्ष्मी टीका करने आवे तो मुँह धोने जाये। करने दे न टीका। मुँह धोने जायेगा तो वह चली जायेगी। समय चला जायेगा। ऐसी अमूल्य चीज़, चक्रवर्ती के छह खण्ड के राज्य मिले, इन्द्र के इन्द्रपद मिले, वह तो समकित्ता है, परन्तु उससे भी एक समय अनन्तगुणी कीमतवाला है। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा और परमाणु भी जड़ प्रभु है। प्रत्येक परमाणु भी प्रभु है, प्रभु है। प्रभुत्वगुण से भरपूर है। धर्मास्ति भी प्रभुत्वगुण से भरपूर है। छहों द्रव्य अनन्त एक समय में अपनी प्रभुत्वशक्ति से भरपूर हैं। वे अपने स्वकाल के कारण अपना कार्य होने की शक्तिरूप, काल कहो या कार्य कहो, प्रत्येक पदार्थ के कार्य होने की शक्तिरूप जो स्वभाव (है, वह स्वयं से है)। अब कहाँ आया इसमें निमित्त हो तो कार्य हो, नहीं तो न हो? यह ऐसा कहते हैं कि वह (निमित्त) उसमें है नहीं, इसलिए होता है। निमित्त उसमें है नहीं, इसलिए होता है। निमित्त है, इसलिए होता है, ऐसा नहीं। निमित्त उसमें नहीं, इसलिए होता है। समझ में आया? ऐसा कहे, दिखता है न। प्रत्यक्ष भासित होता है न! कोई ऐसा कहे। प्रत्यक्ष दिखता है निमित्त का प्रभाव। यह लकड़ी पड़ी है, वह अपने आप ऊँची नहीं होती,



यह पृष्ठ अपने आप नहीं बदलता, ऐसे ऊँचा नहीं होता, ऐसा कहे। हम प्रत्यक्ष (देखते हैं)। अरे! भगवान! तू क्या देखता है? दो द्रव्य के बीच पृथक्ता दृष्टि में आये बिना दो द्रव्य की एकताबुद्धि से देखता है कि देखो, प्रभाव पड़ता है। समझ में आया? वस्तु के स्वरूप में ऐसा नहीं है। यह एक बात भी इसके हृदय में-ज्ञान में बैठ जाये तो पर से अत्यन्त निवृत्त-फुरसत इसे मिल जाये। मैं पर से तो भिन्न हूँ। तीनों काल। कर्म से भी अपनी पर्याय भिन्न है, ऐसा कहते हैं या नहीं? कर्म के उदय से विकार होता है, यह इसमें आता है? धनालालजी! यह देखो! अपना काल अर्थात् उदयरूपी काल, उदयभावरूपी कार्यकाल, अनन्त गुण का कार्यकाल है न? अनन्त गुण का कार्यकाल उस समय का है या नहीं? तो अनन्त गुण में भी विकारी-अविकारी परिणमन जो होता है, वह अपना काल होने की शक्तिरूप जो स्वभाव है, उससे वह पर्याय है - ऐसा कहते हैं। उससे वह पर्याय है, ऐसा कहते हैं। निमित्त से वह पर्याय है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

ऐसा कोई कथन है कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्तों का कि थोड़े में पूरा-पूरा ( भर दिया है )। गागर में सागर। एक स्वचतुष्टय है और पर से नहीं। निकाल कर दिया। अनन्त द्रव्य के और एक-एक समय के स्वतन्त्र कार्य। वापस वह वर्तमान स्वकाल में है, वह पूर्व के -बाद के काल से नहीं। पहले के काल से नहीं। समझ में आया? निमित्त से तो है ही नहीं। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक पदार्थ.... यहाँ .... अपना कार्य अर्थात् चाल। देखो! चाल आयी थी न भाई उसमें? बनारसीदास में। ख्याल में आया था कि वह.... इसलिए मुझे... चाल। प्रत्येक पदार्थ की चाल। ऐसा बनारसीदास ने लिया है। वह चलता है पदार्थ। पदार्थ चलता है। वह क्रमसर चलता है, पैर से चलता है-पर्यायरूपी पैर से चलता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु से कूटस्थ है, पर्याय से द्रव्य चलता है-परिणमता है, चलता है... चलता है।

कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु का वर्तमान समय का अपने काल से अपने कार्य से ऐसे होने की शक्तिरूप कार्य से होता है। वह कार्य कोई पर की अपेक्षा रखकर होता है, ऐसा नहीं है। तो कहे, निरपेक्ष हो जाये और निरपेक्षनय मिथ्या है। अरे! सुन तो सही! समझ में आया? पर से नहीं, ऐसा ज्ञान तो उसमें आ जाता है। पर से नहीं। कहो, समझ में आया? माणेकलालभाई! क्या है अब यह तुम्हारे दवा का और वह? कहाँ गये हमारे डॉक्टर? यह रहे। दुर्गादासभाई! क्या है यह? तुम्हारी दवा से क्या हुआ? घट गया दवा से। देखो! बात ऐसी है।

एक-एक परमाणु जो अपनी पर्याय की चाल का काल है, वह पक्का काल है। उस

पद का, जो पर्याय का वह कार्यकाल है तो अपनी शक्ति से होता है। तीन काल, तीन लोक में। उसमें ऐसा नहीं आया। सिद्ध की पर्याय अपने काल की शक्ति होने से वहाँ रहे हैं। धर्मास्तिकाय नहीं, इसलिए वहाँ रहे हैं, ऐसा कहाँ से आया? वहाँ ही रहने की योग्यता है। अपनी शक्ति होने से स्वभाव ऐसा है। गजब भाई! यह धर्मास्तिकाय का तो मानो ऐसा हो गया। पहले आये थे वे इन्दौरवाले पण्डित। समझे? वे कहे, देखो! धर्मास्तिकाय का अभाव है, इसलिए ऊपर नहीं जाते। पहली चर्चा। (संवत्) २००१ (के) वर्ष। १७ वर्ष हुए। तो भी अभी १७ वर्ष में मिटता नहीं। परन्तु सुन तो सही। अपनी पर्याय के काल से वहाँ सिद्ध रहे हैं या धर्मास्तिकाय नहीं, इसलिए वहाँ रहे हैं? वहाँ ही उनके रहने का काल सादि-अनन्त है। समय-समय की चाल, पर्याय चाल पर्याय। उस चाल का काल वहाँ है। उस चाल का ऊँचे जाने का काल है ही नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-वस्तु गुण-पर्याय का पिण्ड, क्षेत्र-अपनी चौड़ाई-अवगाहन। देखो! आत्मा में भी व्यंजनपर्याय की चौड़ी-संक्षिप्त संकोच होता है या नहीं? संकोच-विकास। क्षेत्र में संकोच-विकास होता है न। चींटी में चींटी जितना संकोच, हाथी में हाथी जितना विकास, उस क्षेत्र में अपने प्रदेशगुण में अपने स्वकाल की शक्ति होने से, वह स्वभाव इतना है, कर्म के कारण से नहीं। दीपक का कहते हैं न? दीपक जहाँ रखा हो, वहाँ छोटा बर्तन हो तो उतने में प्रकाशित होता है, बड़ा हो तो उतने में प्रकाशित होता है। ऐसा और कहते हैं। शरीर देखो तो निगोद का इतना मिले तो उसमें संकुचित होकर रहे। केवली समुद्घात हो तो लोकप्रमाण हो जाता है। क्या है? एक क्षेत्र अपना, उसमें प्रदेशत्वगुण, उसकी वर्तमान काल की चाल का कार्यकाल अपने स्वभाव से वहाँ रहता है। कोई कर्म वहाँ था, कर्म खिरना था, इसलिए केवली समुद्घात का काल पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? तो केवली को अघातिकर्म है तो रुकना पड़ता है, यह बात बराबर है या नहीं? खोटी-सच्ची है। खोटी है, वह सच्ची है। खोटी रीति से सच्ची है बराबर।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव.... भाव अर्थात् शक्ति, त्रिकाली शक्ति। काल-वर्तमान पर्याय, भाव-त्रिकाल शक्ति, क्षेत्र-उसकी चौड़ाई। प्रत्येक पदार्थ परमाणु आदि या आत्मा अपनी-अपनी व्यंजनपर्याय से अपने काल की चाल से शक्ति का स्वभाव उसमें है। वह होने की शक्तिरूप जो स्वभाव है,.... देखो! शक्तिरूप जो स्वभाव। जो स्वभाव है, उस स्वभाववानपने के द्वारा.... वह शक्तिरूप स्वभाव स्वभाववानपने के कारण अस्ति है। अपना स्वभाव शक्तिरूप होने से अस्ति है, पर के कारण से नहीं। समझ में

आया ? यह कहाँ सिद्धान्त में अब पर से होता है—ऐसा इसमें रहता है ? वह तो उस समय दूसरा निमित्त क्या था, उसका ज्ञान कराने को वह बात थी। कहो, समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** समुद्घात करते हैं न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ करते हैं न। होता है। क्या बने ? वह तो पर्याय होने की थी, स्वयं के कारण से, भाषा ऐसी आती है। केवली समुद्घात करते हैं। क्या करते हैं ? करने की इच्छा है ? होती है और परिणमन हुआ, इस कारण करते हैं—ऐसा कहने में आता है। करे किसे ?

**मुमुक्षु :** घटाते हैं न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्थिति-बिथति घटे, वह व्यवहार से कथन है।

**मुमुक्षु :** ....बराबर करते हैं, इसलिए समुद्घात करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह करने की वहाँ वेदनीय में इतनी पर्याय योग्यता थी, उसके कारण से, इस कारण से नहीं। यह बात ही दूसरी है। तब कहते थे न कि देखो! अपकर्षण, उपकर्षण, संक्रमण, विसंयोजन, निद्धत, निकाचित.... इतने सब भेद। यह तुम क्रमबद्ध कहकर सब उड़ा देते हो। अरे! सुन तो सही। यह भी क्रमबद्ध में आनेवाली पर्याय है। अपकर्षण होने का काल था अपनी पर्याय में, उस समय उससे हुआ है, आत्मा के कारण से नहीं। समझ में आया ?

कर्म के प्रत्येक परमाणु अपने काल की चाल से कार्यकाल होने की शक्ति का स्वभाव, उस स्वभावपने की अस्ति है। अपना स्वभाव होने की शक्तिरूप स्वभाव, उसके स्वभाव के कारण से होता है, पर के कारण से अस्ति नहीं है। कहो, समझ में आया ? कहा न ? समन्तभद्राचार्य। कौन न चाहे ? कौन ऐसा प्राणी है कि अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और पर से नहीं, ऐसा कौन न माने ? कौन न माने ? लो, न माने, वह मूर्ख है। समन्तभद्राचार्य ने लिया है। कौन न चाहे ? स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं, ऐसा कौन न माने ? ऐसा कहते हैं। वहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह कहे कि हम बहुत मानते हैं। तुम न करते हो, हम बहुत मानते हैं। तुम तो कुन्दकुन्दाचार्य की बात करते हो, परन्तु यह समन्तभद्राचार्य क्या कहते हैं ? ऐसा कि समन्तभद्राचार्य तो दो नय माननेवाले हैं। और एक व्यक्ति ऐसा कहता था, कुन्दकुन्दाचार्य तो एक नय की मुख्यता से कथन करते हैं, समन्तभद्राचार्य तो दो नय की बात करते हैं। सुन तो सही। यह तो भक्ति करने का विकल्प है तो सामने लक्ष्य है तो दो की बात करते हैं,

परन्तु भक्ति के परिणाम अपने काल से हुए हैं ? या भगवान सामने हैं, उनके काल से हुए हैं ? यहाँ क्या कहते हैं ? समन्तभद्राचार्य ने स्वयंभूस्तोत्र बनाया और भगवान के पास बड़ी स्तुति (की)। इन्द्र एकावतारी भी जानते हैं, अपनी वर्तमान पर्याय का कार्य अपने से अपना अस्तित्व रखता है। वह भगवान है तो इस पर्याय का अस्तित्व आया और अस्तित्व रखते हैं, ऐसा नहीं है। कहो, धर्मचन्द्रजी! जैन के अतिरिक्त कहाँ ऐसा होगा ? जैन में भी खबर नहीं अभी चीज़-वस्तु क्या है। जैन का ओढ़ना ओढ़कर (विपरीत मानते हैं)। ओढ़ना समझे ? पति की चुनरी और पत्नी की आज्ञा क्या समझ में नहीं आयी ? वैसे भगवान की आज्ञा, भगवान सत्य है... ओहोहो! अपने परमात्मा सर्वज्ञदेव न हुए और न होंगे। अपने देव! परन्तु तुझे क्या है ? तेरा दिव्य स्वभाव और अनन्त पदार्थों का दिव्य स्वभाव, अपना वर्तमान भाव उसके वर्तमान काल से परिणमता है, उससे वह अस्ति धराता है। पर के कारण पर्याय का अस्तित्व है, ऐसा तीन काल में नहीं है। यह परमात्मा कहते हैं। उसकी तो तुझे प्रतीति नहीं। कहाँ से तुझे देव की प्रतीति आयी ?

गुरु की प्रतीति। हमारे कुन्दकुन्दाचार्य गजब, ओहोहो! 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो।' फिर आये मंगलं कुन्दकुन्दाचार्यो। देखो! तीसरे नम्बर में आये। परन्तु वे क्या कहते हैं, यह समझते हो ? भगवान जाने, बापू! अपने कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान के पास महाविदेहक्षेत्र में गये थे। साक्षात् इस देह से भगवान के पास गये थे। परन्तु वह क्या कहते हैं, यह तुझे समझ में आता है ? समझ में आया ? यह वहाँ गये थे और वे जानते थे और विशेष स्पष्ट किया, करके यह कहते हैं।

प्रत्येक पदार्थ निज द्रव्य अर्थात् वस्तु; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई, अवगाहन; काल अर्थात् वर्तमान पर्याय, कार्यकाल, कार्य दशा और भाव अर्थात् त्रिकाल शक्तिरूप गुण, उसरूप होने की शक्तिरूप जो स्वभाव है, जो स्वभाव है, वापस ऐसा करके उस स्वभाववानपने के द्वारा सत्त्व है,.... निमित्त द्वारा सत् है, ऐसा नहीं। देखो! द्वारा आया है न भाई! इसमें ? सब कहते हैं न कि निमित्त द्वारा... निमित्त द्वारा... निमित्त द्वारा। यहाँ तो कहते हैं कि स्वभावपने द्वारा सत्पना है। प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान पर्याय स्वभावपने द्वारा अस्ति है। समझ में आया ? मूल ऐकड़ा की खबर न हो और फिर कहे मुझे भगवान की आज्ञा, तुम... हे भगवान आप कहते हो... क्या कहते हैं, इसकी खबर बिना भगवान सच्चे तुझे कहाँ से आया ?

दूसरी बात, और पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप न होने की.... देखो! प्रत्येक पदार्थ परद्रव्यरूप न होने की शक्तिरूप जो स्वभाव.... परक्षेत्ररूप नहीं होने की शक्तिरूप

स्वभाव, परकार्य-पर का कार्यकाल, उसमें नहीं होने की शक्तिरूप जो स्वभाव। समझ में आया? **भावरूप न होने की शक्तिरूप जो स्वभाव....** है। स्वभाव है। पर के कार्यकाल नहीं होने की शक्तिरूप स्वभाव है। समझ में आया? आत्मा की ज्ञानपर्याय के काल से परिणामे और कर्म का उदय कार्यकाल उसका है, उसरूप नहीं होने की शक्ति है। उसरूप न होने की शक्तिरूप स्वभावपने से स्वतत्त्व है। समझ में आया? भारी कठिन, भाई! यह सब कुछ स्त्री, पुत्र को ऐसा समझ में आता होगा? यह किसके लिये करता है? आत्मा स्त्री-पुत्र कब है? आत्मा तो आत्मा अरूपी चिद्घन आनन्दकन्द है। समझे? उसकी पर्याय में भूल हो तो भी वह आत्मा है। वह कहीं भूल पर के कारण है? और पर में प्रविष्ट हो गया, इसलिए है? ऐसा है? भूल भी अपने अस्तित्व के काल से है, पर के अस्तित्व से भूल नहीं। कर्म के अस्तित्व से भूल नहीं। कर्म के अस्तित्व से जीव में संसार नहीं। कर्म के अस्तित्व से कर्म का कार्यकाल अनुभाग का आया, कर्म में अनुभाग-फलदान शक्ति का कार्यकाल कर्म में आया। उस काल होने की शक्तिरूप स्वभाव कर्म का है और उसरूप न होने की शक्तिरूप स्वभाव आत्मा का है। यह तो कर्म का भारी जोर, भाई! कठोर कर्म हो तो ऐसा हो, कठोर कर्म में ऐसा हो। यह बहुत लिखते हैं।

अन्तरंग कारण बाधक। भगवान के पास गये थे। उपादान उल्टा क्यों रहा? भगवान के पास गये और आत्मा सम्यग्दर्शन पाया नहीं, ऐसा उपादान में उल्टापना क्यों रहा?— दर्शनमोह के उदय के कारण उल्टापना रहा, ऐसा कितने ही पण्डित लोग समाचारपत्र में छपाते हैं। समझ में आया? अपनी प्रसिद्धि करते हैं कि हम कहाँ हैं और कैसे मानते हैं। यह अभी वह रखा है। एक अकालमृत्यु, एक धर्मास्ति का अभाव, एक स्याद्वाद-अनेकान्त। देखो! अनेकान्त में सब... अगड़बगड़ का नाम अनेकान्त।

यह तो अनेकान्त कहते हैं कि अपने काल, भाव से सब द्रव्य होने की शक्ति है और **पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप न होने की शक्तिरूप जो स्वभाव....** है, पररूप न होने की शक्तिरूप स्वभाव है, उस स्वभावपने द्वारा, वह अपना स्वभाव पररूप नहीं होने की शक्तिरूप स्वभाव द्वारा अतत्त्व है। अपना स्वभाव पररूप नहीं होने के स्वभावपने के कारण अतत्त्व है। समझ में आया? सब द्रव्य को लागू पड़े या एक आत्मा को ही? परन्तु इसमें जैसा मुख हो, वैसा फोटो खींचे वहाँ, लो! इस मुख के अस्तित्व से कोई फोटो में अस्तित्व आता है या नहीं? समझ में आया? ऐसा ही पड़ता है या नहीं उसमें? यह आया या नहीं? कान्तिभाई आये होंगे। अब आयेंगे? क्या कहा यह? ... तब तो लाख, करोड़, पाँच करोड़,

पचास करोड़ ऐसा और ऐसा लगा दे न तो वहाँ से परमाणु यहाँ आवे तो वह मर जाये। स्थूल मनुष्य पतला होने का एक उपाय करना चाहिए। वहाँ से यदि आता हो। वहाँ से क्या आवे? उस समय में वहाँ के परमाणु में, पर्याय में वह कार्य होने की शक्ति से वहाँ होता है, सामने शरीर है तो होता है, ऐसा नहीं है।

देखो! यहाँ भी शब्द पड़ते हैं या नहीं? समझ में आया? वहाँ भी उसकी पर्याय का स्वकाल परमाणु से है और इस शब्द से वहाँ काल है नहीं। शब्द से उसमें उतरता नहीं। गजब विवाद, भाई! बोले तो वापस शब्द ऐसे ही आवे। परन्तु वे कहाँ थे? वह तो नये शब्द की पर्याय हुई थी। उस समय पर्यायरूप से स्कन्ध का परिणमन हुआ, वह स्वयं से हुआ है। पहले पड़ा था, इसलिए हुआ है, यहाँ शब्द निकले इसलिए वहाँ पड़ता है और निकलेगा, ऐसा वस्तु में है नहीं। गजब भाई! यह तो पागल जैसा कहें लोग, नहीं? ज्ञान करने का रहता है। फिर यह मैंने किया... यह मैंने किया... यह रहता नहीं। कहो, समझ में आया?

जैन परमेश्वर ने वस्तु का स्वभाव कैसा देखा और कैसा है, वह समझने की भी तकलीफ नहीं लेते। समझने की तकलीफ नहीं। भगवान कहते हैं। प्रत्यक्ष दिखता है, देखो! अभी बन्द होगा तो घड़ी बन्द होगी तो व्याख्यान बन्द हो जायेगा। घड़ी बन्द होगी तो व्याख्यान बन्द हो जायेगा। घण्टा पड़े तो व्याख्यान बन्द। खबर नहीं पड़ती प्रत्यक्ष? निमित्त से कार्य होता है। और घण्टा बजा वहाँ शुरु हो गया। खबर नहीं? वहाँ भी मधुवन में हुआ था.... देखो! निमित्त आ पड़ा। अरे रे! उपादान है या नहीं उस समय? अपनी पर्याय काल के उपादान कारण से परिणमता है या निमित्त दो घण्टे से परिणमता है? धरमचन्दजी!

**पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप....** भगवान के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप भी भगवान के पास रहे। उस समय नहीं होने की शक्तिरूप, प्रतिमा के पर्यायरूप नहीं होने की शक्तिरूप, भगवान की दिव्यध्वनि की पर्याय न होने की शक्तिरूप, भगवान के केवलज्ञानरूप आत्मा न होने की शक्तिरूप, **होने की शक्तिरूप जो स्वभाव है, उस स्वभाववानपने के द्वारा....** अपने में स्वभाव है, वह अपने स्वभावपने द्वारा। ऐसा यहाँ तो कहा। पररूप नहीं होने का स्वभाव, ऐसी शक्ति, ऐसे स्वभावपने द्वारा असत्त्व है;.... प्रत्येक पदार्थ पर से असत्त्व पररूप होने का स्वभाव उसमें नहीं है। ऐसा स्वभावपने द्वारा असत्त्व है। समझ में आया? अपने स्वभावपने द्वारा असत्त्व है। उसमें नहीं होने की शक्तिरूप स्वभाव, उस स्वभावपने द्वारा असत्त्व है। आहाहा! गजब स्पष्ट। कहो, यह धर्म करने की रीति है। शान्तिभाई! धर्म करने की यह रीति है। कहो, बुजुर्गों को यह बैठाना पड़ेगा। सबको बैठाना

पड़ेगा कि यह लड़के-जवान बाबूभाई, चन्दुभाई, बाबूभाई का यह मानते हैं। बुजुर्गों का हमारे जैसा है। सबको यह निर्णय करना पड़ेगा। यह निर्णय किये बिना एक कदम चलेगा नहीं। समझ में आया या नहीं? आहाहा! कहा न? कितने बोल हुए? बारह हुए, बारह। बारह हुए न?

पहले आया तत् और अतत्, एक और अनेक—ये चार हुए और ये आठ हुए। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और परद्रव्य से नहीं, आठ हुए। आठ और चार बारह हुए। दो रहे। क्या कहा? नित्य आया अब। **अनादिनिधन....** प्रत्येक पदार्थ और आत्मा अनादि—आदि बिना, निधन—अन्त बिना। नि-धन अर्थात् अन्त। अ-नहीं आदि, नहीं अन्त। **अविभाग...** जिसके दो भाग नहीं ऐसी **एक वृत्तिरूप....** एकरूप टिकने से। एकरूप टिकने के **परिणतपने के द्वारा....** एकरूप परिणत द्वारा, उसरूप होनेरूप भाव द्वारा प्रत्येक पदार्थ को **नित्यत्व है,....** स्वयं के कारण से नित्यपना है। क्योंकि अनादि-अनन्त भाग बिना एकपना, वृत्ति अर्थात् एकपने टिकना, एकपने टिकने के परिणतपने द्वारा। परिणति का अर्थ उसरूप होने द्वारा नित्यपना है। नित्यपना—कायम प्रत्येक पदार्थ है।

**और क्रमशः.....** देखो! **प्रवर्तमान,.... क्रमशः प्रवर्तमान,....** यह पर्याय क्रमशः प्र-विशेष वर्तमान, वर्तमान। **एक समय की मर्यादावाले....** देखो! प्रत्येक द्रव्य में अनित्य की एक समय की मर्यादा है। कोई कहे, नहीं। व्यंजनपर्याय का अधिक समय है। यह विवाद (करते हैं)। धवल में ऐसा आता है। मिथ्यात्व को व्यंजनपर्याय कहकर... समुदाय करके स्थूल व्यंजनपर्याय की बात की। स्थूल ऋजुसूत्रनय की बात की है। सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का एक ही समय है। अब यह विवाद करे। परन्तु अब खलबलाहट तो हुई। विवाद में तो खलबलाहट हुई। ऐसा का ऐसा चलता था पोलमपोल। नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा है। देखो!

**क्रमशः प्रवर्तमान, एक समय की मर्यादावाले....** प्रत्येक द्रव्य की पर्याय की मर्यादा कितनी? एक समय। 'क' बोलने में असंख्य समय जायें, उसमें एक समय। **अनेक वृत्ति-अंशोरूप से....** अनेक वृत्ति अर्थात् अनेकपने की परिणति का अस्तित्व। **अंशोरूप से परिणतपने के द्वारा अनित्यत्व है। लो!** ( इस प्रकार ज्ञानमात्र आत्मवस्तु को भी, तत्-अतत्पना इत्यादि दो-दो विरुद्ध शक्तियाँ स्वयमेव प्रकाशित होती हैं, इसलिए अनेकान्त स्वयमेव प्रकाशित होता है। ) पदार्थ ही पुकार करता है, ऐसा कहते हैं। पदार्थ पुकार करता है कि हमारा स्वरूप स्व से है और पर से नहीं। दूसरे प्रकार से माने वह स्वतन्त्र है।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )

२२

श्री परमात्मप्रकाश, द्वितीय अधिकार, गाथा-१०७

प्रवचन नं. - १७४, दिनांक - ०१-०१-१९७७

परमात्मप्रकाश, १०६ गाथा पूरी हुई। १०७। आगे ऐसा कहते हैं,....

**मुमुक्षु** : दो लाईन बाकी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : यह हो गया पूरा। यह हो गया था। सब आ गया। टंकोत्कीर्ण आ गया था।

**मुमुक्षु** : पढ़ लिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : हाँ, यह तो उसमें आ गया।

वह तो यह कहना है कि जितने कर्मजनित भेद हैं, वे जीवस्वरूप नहीं। प्रत्येक जीव का स्वरूप पूर्ण आनन्द और द्रव्यस्वभाव से वीतरागस्वरूप प्रत्येक आत्मा है। अपने को जब पर से, भेद से, पर से, राग से भिन्न जानता है, वह आत्मा जैसे ही आत्मा सब हैं, ऐसा जानने से भेद के लक्ष्य से राग-द्वेष होता है, वह इसे नहीं होता। क्या कहा? कि यह आत्मा.... सोलहवीं गाथा है। सोलहवान सोने के दृष्टान्त से पूर्णानन्द प्रभु प्रत्येक जीव है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, नारकी से लेकर देव सब जीव जो हैं, जिसे जीव कहते हैं, वह तो अनाकुल आनन्दकन्द वीतरागसमूह का पिण्ड है। ऐसे ही सब जीव हैं। आहाहा! ऐसा जिसे अपना स्वभाव शुद्ध अखण्ड अभेद, यह आत्मा ऐसा जिसने जाना, उसने अपने में भी जो पर्यायभेद है, वह जाननेयोग्य रहा, आदरणीय नहीं रहा। वैसे ही दूसरे जीव को भी इस प्रकार से पूर्ण शुद्ध है, ऐसा जानने से उसे भेदवाली दशा से उसे यह ठीक है या अठीक है—ज्ञेयभेद, उसके कारण से उसे राग-द्वेष नहीं होता। निर्बलता के कारण राग-द्वेष हो, वह अलग बात है, परन्तु भेद के (कारण से अर्थात्) यह स्त्री का शरीर और यह पुरुष का शरीर, यह मनुष्य का शरीर और यह नारकी का शरीर, ऐसे भेद से और प्रेम से जो राग-द्वेष था, वह राग-द्वेष ज्ञानी को, अपने पूर्ण स्वभाव को देखने से और दूसरे सब आत्मा भी



पूर्ण हैं, ऐसा जानता हुआ, उसके भेद के लक्ष्य से जो राग-द्वेष होता था, वह उसे राग-द्वेष नहीं होते। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** आप तो ऐसा कहते हो कि स्वरूप में लीन हो, उसे ही राग-द्वेष नहीं होते।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह स्वरूप में लीन न हो तो उसे पर के कारण राग-द्वेष नहीं है। राग-द्वेष कमजोरी के कारण हों, वह अलग चीज़ है और पर की अनुकूलता और प्रतिकूलता, सुन्दरता और असुन्दरता, ठीक और अठीक, ऐसे ज्ञेय को जानकर राग-द्वेष हो, वह मिथ्या राग-द्वेष है। समझ में आया ? आहाहा! स्त्री का शरीर, पुरुष का शरीर, नारकी का शरीर, देव का शरीर, वह सब भिन्न-भिन्न चीज़ जड़ की है, वह कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु मैं हूँ—ऐसे ही सब वे भगवानस्वरूप जीव विराजते हैं। आहाहा! वे मेरे साधर्मी हैं। डाह्याभाई! आहाहा! भेद है, वह अपने को जैसे जाननेयोग्य है, वैसे दूसरे के भेद भी जाननेयोग्य है, उसमें ठीक-अठीक करनेयोग्य नहीं है। ऐसी बात है। समझ में आया ? आहाहा! लो! १०७।

**आगे ऐसा कहते हैं कि तू शुद्धसंग्रहनयकर जीवों में भेद मत कर....** अनन्त आत्मा के संग्रह को एकरूप देखकर उसमें भेद न मान। जीव में भेद न मान। समझ में आया ? भेद है, वह सब कर्मजनित के संयोग से भेद है, वह अजीव का स्वरूप है। आहाहा! उस अजीव को जाननेयोग्य है, परन्तु अजीव में आदरणीय यह ठीक है और यह अठीक है, ऐसा उसमें रहता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह कहते हैं, देखो! १०७

**एक्कु करे मण विणिण करि मं करि वण्ण-विसेसु।**

**इक्कइँ देवइँ जँ वसइ तिहयणु एहु असेसु॥१०७॥**

आहाहा! हे जीव! हे आत्मन्... गजब बात है, भाई! यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा! हे आत्मन्, तू जाति की अपेक्षा सब जीवों को एक जान,.... आहाहा! जैसा अपना आत्मा ज्ञायकभाव से पूर्ण स्वरूप है, वह जीव है। उसी प्रकार सभी भगवान आत्मायें ज्ञायक और आनन्द के स्वभाव से परिपूर्ण हैं, वे जीव हैं। ऐसे सभी जीवों को वीतरागभाव से देख और वीतरागस्वरूप है, ऐसा देखा, ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह ? कि इस आत्मा को भी वीतरागभाव से वीतरागस्वरूप देख। पर्याय की वीतरागपर्याय से वीतरागस्वरूप देख। वह पूर्णस्वरूप है, ऐसे सभी भगवान आत्मा को तेरी वीतरागपर्याय से वह पूर्ण वीतरागस्वरूप है, ऐसा देख। आहाहा! क्योंकि ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है तो स्व को ऐसा

जैसा जाने, वैसा पर को भी परप्रकाश में ऐसा वह जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

इस प्रकार शरीर की सुन्दरता और भेद और छोटे और रोगिष्ठ, ये सब भेद कोई जीव के नहीं हैं। यह तो आ गया था न? कल आ गया यह। कर्म के भेद हैं ये, और कर्म है, वह आत्मा से भिन्न चीज़ है। आहाहा! तो उस कर्म के कारण से पड़े हुए भेद जीव से भिन्न हैं। इस प्रकार अपनी तरह कर्म के कारण पड़े हुए भेद जीव से भिन्न हैं, वैसे सब आत्मा के स्वभाव में समान होने पर भी, कर्म से भिन्न पड़ी हुई चीज़ यह स्त्री, पुरुष, नारकी, एकेन्द्रिय और दोइन्द्रिय सब, उसे तू जीव न मान। आहाहा! उसे जाननेयोग्य है, ऐसा जान। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा है न? आहाहा! है? ऐसी बात है, बापू! यह परमात्मप्रकाश है।

जो कोई आत्मा में पूर्ण स्वरूप भगवान, यह आत्मा, ऐसा जिसने जाना, उसने जो कुछ बाकी पूर्णतादि, रागादि रहा, वह जाननेयोग्य है। अस्तिरूप से जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! इसी प्रकार सभी आत्मा को भगवानस्वरूप जो देखता है, वह अपने को भगवानस्वरूप देखा, इस प्रकार सबको देखता है; इसलिए उसमें से जो कर्म के कारण भेद दिखते हैं, उसे जाननेयोग्य जाने, आदरनेयोग्य नहीं। आदरनेयोग्य उसका भगवान आत्मा है, यह यहाँ आत्मा आदरनेयोग्य, ऐसा आत्मा पूर्ण शुद्ध, वह आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग की गम्भीरता अलौकिक है।

यह कहते हैं, हे आत्मन्, तू जाति की अपेक्षा सब जीवों को एक जान, इसलिए राग और द्वेष मत कर,.... देखा! आहाहा! सर्व जीव जहाँ परमात्मस्वरूप जाने, उसे फिर राग-द्वेष करने का रहा नहीं। आहाहा! परचीज़ की अनेकता के, भिन्नता के भाव को देखकर यह ठीक है—ऐसा राग करना रहा नहीं और यह अठीक है—ऐसा द्वेष करना रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा स्वयं अल्पज्ञदशा में भी, अल्पज्ञदशा में.... आहाहा! पूर्ण स्वरूप हूँ, ऐसा जो देखता है, आहाहा! देखो तो सही। आहाहा! अल्पज्ञ पर्याय की दशा में, अल्पज्ञ पर्याय में यह पूर्ण है, ऐसा जो देखता है, वह वीतरागीपर्याय से वीतरागभाव को देखता है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार सब आत्मायें भगवान परमानन्द से भरपूर हैं। यह अभी कहेंगे।

इसलिए राग और द्वेष मत कर,.... आहाहा! क्योंकि यह जो भेद है, वह कर्मजनित

है, वह ज्ञेय है। वस्तु जो है आत्मा और उसका आत्मा, वह आदरणीय है। यह कहा है न? सब आत्मायें शुद्ध हैं, इस प्रकार आदरणीय हैं। उसमें से भी पंच परमेष्ठी हैं, वे आदरणीय हैं। उनमें से भी अरिहन्त और सिद्ध दो आदरणीय हैं। उनमें से भी सिद्ध एक आदरणीय है। उसमें से भी भगवान आत्मा, वह आदरणीय है। वापस एक अपना। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बातें हैं। यह वीतराग की बातें जगत से अलग हैं, भाई! आहाहा! तुझे तेरा भगवान आत्मा यदि परिपूर्ण भासित हो तो वैसे ही सब भगवान आत्मा परिपूर्ण हैं, वह तुझे भासे तो कुछ राग-द्वेष करना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह लक्ष्मीवाला है और यह गरीब है, यह रूपवान है और यह काला है, यह सब रहता नहीं। वह तो सब कर्म के भेद में जाते हैं। यह आदरणीय रहता नहीं। ठीक-अठीक में भी रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने काम....

यह १६वीं गाथा चलती है। सोलहवान सोना जैसे पूर्ण है। सोलहवान सोना। इसीलिए तो सोलहवान कहते हैं न! सोलहवान। वैसे पूर्ण भगवान सोलह शक्ति से पूर्ण परमात्मा सब हैं। अल्पज्ञ होने पर भी अल्पज्ञ को गौण करके, अभाव करके पूर्णानन्द है, उसे देखता है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में परमात्मा पूर्ण स्वयं है, ऐसा भासित होता है। है पर्याय में अल्पज्ञ, आहाहा! तथापि जिसे सर्वज्ञस्वरूपी भगवान हूँ, ऐसा भासित होता है, उसकी दृष्टि वीतराग हो गयी। आहाहा! सम्यग्दर्शन कहो या वीतरागदृष्टि कहो। समझ में आया? वह सब भगवान आत्मा, सुन्दर और असुन्दर शरीर, नारकी और देव के शरीर, चींटी और कौवे के शरीर, रोगी और अरोगी शरीर की दशायें, वह सब ज्ञानी को जाननेयोग्य में (रहती है), राग-द्वेष करनेयोग्य नहीं।

अज्ञानी अपना पूर्ण स्वरूप जानता नहीं और ऐसे ही सब पूर्ण स्वरूप है, उसे जानता नहीं, उसे सामने की अल्पज्ञता देखकर दीन होता है, उसे दीन मानता है और शरीर आदि की अनुकूलता देखकर उसे महत् मानता है, वह सब मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष के करनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग मार्ग! आहाहा! देखो! यह वीतरागता! जिसका स्वभाव ही परिपूर्ण वीतरागस्वरूप है, उसे वीतरागपर्याय से जिसने मानकर जाना है, उसी वीतरागपर्याय से सब पूर्ण वीतरागस्वरूप है, ऐसा जिसे जानने में आया, उसे निमित्त के कारण भेद पड़ी हुई चीज़ को जाननेयोग्य माने, परन्तु यह ठीक है और यह अठीक है, ऐसा उसमें नहीं रहता। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं।

जवान शरीर, सुन्दर शरीर, वह तो जड़ की दशा है, वह आत्मा की नहीं। अपनी जैसे

जड़ की दशा है, उसी प्रकार दूसरे सबकी कर्म के निमित्त से हुई दशायें हैं। आहाहा! अरे! उसमें अल्पज्ञपना और राग हुआ, वह भी कर्म के कारण से है। वस्तु में परिपूर्णता है। आहाहा! ओहो! परमात्मप्रकाश है। यह १६वीं गाथा है। यह पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सब करते-करते १६वीं गाथा में पूर्ण कर देंगे। आहाहा!

पर्याय में अल्पज्ञता होती होने पर भी और पर्याय में राग-द्वेष और संयोगों में भिन्न-भिन्नता होने पर भी, उस अस्तित्व की अस्ति स्वीकार न करके... आहाहा! पूर्ण अस्तित्व का जो स्वीकार पूर्णानन्द का नाथ भगवान, उसका जहाँ स्वीकार आता है, तब सब पूर्णानन्द से भरपूर भगवान हैं, (ऐसी दृष्टि होती है)। आहाहा! उसके साथ रमूँ या उसके साथ विषय लूँ, यह बात नहीं रहती। वह तो भगवान है न! आहाहा! है? आहाहा! स्त्री और पुरुषादि के भेद तो जड़ के और कर्म के कारण से है; वह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इससे धर्मी को... यह सब पन्द्रह गाथा से चलता है। उसका यह योगफल किया यह कि सब समान हैं.... समान हैं.... क्या चलता है यह? पहले कहते हैं कि एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय नहीं; त्रस स्थावर नहीं; स्त्री-पुरुष नहीं; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि नहीं। क्या कहते हैं यह? भाई! यह भेद तो सब वीतरागस्वरूप विराजमान आत्मा में अल्पज्ञता में जो वीतरागता भासित हुई, वह अल्पज्ञ पर के प्रकाश से जानने का उसे रहता है, बस! समझ में आया? क्या कहा यह?

यह आत्मा की ज्ञानपर्याय स्व-परप्रकाशक स्वरूप है। इससे जिसे पर्याय में ज्ञायक ही भासित होता है.... यह तो अपने १७-१८ (गाथा, समयसार) में आ गया। ज्ञान की पर्याय का स्वभाव... भाई! यह तो गम्भीर बात है, प्रभु! आहाहा! जिसके वर्तमान ज्ञान की एक समय की पर्याय में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। आहाहा! अर्थात् कि परिपूर्ण वस्तु है, वह ज्ञात होती है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी की दृष्टि वहाँ नहीं है, इसलिए उस पर्याय में परिपूर्ण ज्ञात होता है, ऐसा न मानकर पर्याय ज्ञात होती है और राग ज्ञात होता है, ऐसा मानता है। आहाहा! क्या कहा यह?

ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव प्रत्येक आत्मा का है। बराबर है? अब जब पर्याय में स्वप्रकाशक आत्मा है, ऐसा भासित हुआ। है, तथापि भासित नहीं... समझ में आया? उस ज्ञान की पर्याय में विद्यमान चीज़ प्रभु सर्वज्ञ पूर्णानन्द प्रभु, उस पर्याय में स्व-परप्रकाश का स्वभाव होने से पर्याय में स्व-प्रकाशक पूरा आत्मा आता है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी को उसके ऊपर दृष्टि नहीं है, इसलिए वह ज्ञात होता है, वह मैं नहीं।

ज्ञात होता है, वह राग और पर्याय ज्ञात होती है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? यह सब १६ गाथा से चला आता है। सब समान.... समान.... क्या है परन्तु यह? आहाहा!

भाई! तेरी पर्याय में ज्ञायक ज्ञात होता है, ऐसा स्वरूप ही है। अब वह ज्ञायक है, ऐसी दृष्टि हुई अन्दर... आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय में ज्ञायक पूरा जहाँ ज्ञात हुआ; ज्ञात तो होता था परन्तु दृष्टि वहाँ नहीं थी। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उस ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ, जाननेवाला ज्ञात होता है, वह ज्ञात हुआ। वह परिपूर्ण वस्तु है, ऐसा पर्याय में ज्ञात हुआ। आहाहा! अब उसमें परप्रकाशकभाव रह गया। यह स्वप्रकाश तो यह आया। अब परप्रकाश में भी सब आत्मा समान हैं, ऐसा वह जानता है और जो भेद है, उसे भी परप्रकाश में जानता है, परन्तु वह जाननेयोग्य है, आदर करनेयोग्य नहीं। वह जो परिपूर्ण पर्याय में स्वयं जाना और पर जाना, वह सब तो आदरनेयोग्य हुए। समझ में आया? आहाहा! १५ गाथा से चलता है। यह १६वीं है। अब यहाँ पूरा करेंगे। सब समान... समान... आहाहा!

क्यों.... देखो, है? 'वर्णविशेषम्' मनुष्य जाति की अपेक्षा ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को.... जो अपने पहले आ गया था, वह वर्ण, रागादि, उस वर्ण में रंग-गन्ध-रस था। रंग-गन्ध का वर्ण था कि आत्मा में नहीं। यह वर्ण / जाति का है—ब्राह्मण, क्षत्रिय यह। 'वर्णविशेषम्' आया था न पहले अपने, नहीं? समयसार में। समयसार में। वर्ण, रागादि, गुणस्थान आदि भेद आत्मा में (नहीं है)। उस वर्ण में यह नहीं। वहाँ वर्ण में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श था। क्योंकि गाथा यह आयी है न? यहाँ वर्ण में मनुष्य जाति को इसमें ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को भी मत कर,.... यह ब्राह्मण है और यह क्षत्रिय है और यह बनिया है और यह चण्डाल है। आहाहा! यदि तुझे तेरी वस्तु की पूर्णता भासित हो तो तुझे सब जीवों की पूर्णता भासित हो और उनका भेद जो यह वर्णादि है, वह कोई आत्मा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जो चीज-कर्म का जीव में अभाव है, कर्म का जीव भगवान में अभाव है तो कर्म के कारण से हुए भावों का भी जीव में अभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म व्याख्या है, लो! बापू! मार्ग सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग.... क्या हो? जानने में न आवे और ऐसा उसे एकान्त लगे, एकान्त लगे। प्रभु! एकान्त ही है। स्वपर्याय जहाँ एकान्त में आयी, एक ही धर्म में पूर्णानन्द में आयी, तब उसे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे पर्यायादि के भेद और दूसरे के भेद जाननेयोग्य रहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**वर्ण विशेष मत कर।** आहाहा! यह ब्राह्मण है और यह क्षत्रिय है। तीर्थकर हों, वे क्षत्रिय ही होते हैं। जितने तीर्थकर होते हैं, वे क्षत्रिय होते हैं। कोई बनिया, ब्राह्मण तीर्थकर नहीं होता। आहाहा! तो कहते हैं कि यह भेद लक्ष्य में न ले, कहते हैं। क्षत्रिय और ब्राह्मण को लक्ष्य में ही न ले। आहाहा! भगवान आत्मा कहाँ ब्राह्मण या क्षत्रिय है? वह तो कर्मजन्य प्रकारों के भेद हैं। आहाहा! परद्रव्य जो उसका नहीं, ऐसे द्रव्य के वे भेद हैं। आहाहा! समझ में आया? तेरी चीज़ में तो वह भेद नहीं और तेरी चीज़ से दूसरी चीज़ में—आत्मा में भी तू भेद न देख। आहाहा! डाह्याभाई! यह ऐसी चीज़ है। वे लोग ईश्वरकर्ता है और एक ही व्यापक है, (ऐसा कहते हैं), उसका यहाँ निषेध करके, एक-एक भगवान पूर्णानन्द है, उसकी सिद्धि करके, सब भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अनन्त है, ऐसा जानकर... आहाहा! जो उसमें नहीं ऐसा जो कर्म, उस कर्म के कारण पड़े भेद, वे स्वरूप में नहीं हैं, आहाहा! वह पर्याय में जाननेयोग्य है, बस। आदरनेयोग्य तो तीन लोक का नाथ परमात्मा अपना और दूसरे के आत्मा हैं, परन्तु इस प्रकार आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि परप्रकाश में भी दूसरे पर पूर्ण हैं, ऐसा परप्रकाश में भी आ जाता है और बाकी जो रहा, वह परप्रकाश जो अपूर्णता और कर्म के भेद, वे भी जानने में आ जाते हैं। आहाहा!

**क्योंकि ( एकेन देवेन ).... है ? ( एकेन देवेन ) अभेदनय से शुद्ध आत्मा के समान....** एक देव। आहाहा! देव शक्तिवन्त भगवान केवलज्ञानादि शक्तिवाले परमात्मा सब। आहाहा! एक देव है वे सब। जाति की अपेक्षा से, हों! संख्या अपेक्षा से, ऐसा नहीं। **अभेदनय से शुद्ध आत्मा के समान.... ( एकेन देवेन )** आहाहा! ये सब तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि.... ( त्रिभुवनं ) आहाहा! तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि ( वसति ) ठहरी हुई है,.... पूरे लोक में शिवस्वरूप भगवान विराजता है, कहते हैं। आहाहा! कहो, यहाँ भी अनन्त भगवान हैं। यहाँ क्षेत्र। अनन्त जीव हैं न? आहाहा! भवसिन्धु। पानी का सिन्धु, वैसे यह भगवान का सिन्धु। पूरा भगवान सिन्धु से भरपूर लोक है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि ठहरी हुई है, अर्थात् जीवपने से सब एक हैं। आहाहा!

**भावार्थ :-** सब जीवों की एक जाति हैं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव सत् चैतन्यस्वभाव, उन सबकी एक जाति है। एक रूप है, एक जाति है। आहाहा! कहो, अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास निगोद के जीव को है, उसे न देख, पर्यायबुद्धि को न देख, पर्याय से न देख। आहाहा! यह सब शक्ति से केवलज्ञानकन्द हैं, भगवत्स्वरूप है। आहाहा! अभव्य

का जीव भी स्वरूप से भगवत्स्वरूप है। समझ में आया? श्रीमद् में नहीं आता? 'सर्व जीव है सिद्धसम।' उसमें कहाँ निकाल डाले? अभव्य निकाल डाले? पर्याप्त-अपर्याप्त सब! सर्व जीव भगवान सिद्धस्वरूप विराजते हैं। आहाहा! तुझे किसे स्त्री, पुरुष, देव-नारकी, ऐसा मानना है? आहाहा! समझ में आया?

**सब जीवों की एक जाति हैं। जैसे सेना और वन एक है,....** सेना। लश्कर की सेना, सेनारूप से एक कहलाती है। भले लोग अलग-अलग हैं, परन्तु सेना तो एक कहलाती है न? वन रूप से एक कहलाता है, भले वहाँ वृक्ष अनेक हों, परन्तु वन, वन कहने से सभी वृक्ष उसमें एक-एक रूप से आ गये। **वैसे जाति की अपेक्षा सब जीव एक हैं।** आहाहा! सेना में कोई वृद्ध हो, जवान हो, सब होते हैं न! अरे! १८-१८ वर्ष के भी सेना में होते हैं। लश्करी लोगों में। लश्कर में रखते हैं। अपने यहाँ नहीं था? वह बाबूभाई का लड़का लश्करी में जाता था न। अभी भी उसमें है। बाबूभाई त्रिभुवन, भावनगर। उनका लड़का है न? दूसरे नम्बर का। वह लश्कर में है। छोटी उम्र का था, तब लश्कर में गया था। अभी बहुत वर्ष हो गये। वह अठारह वर्ष का (था) परन्तु लम्बा शरीर और जवान हो तो लश्कर में रखते हैं। परन्तु तो भी वे सब छोटे-बड़े मनुष्यरूप से जैसे एक हैं, वैसे जातिरूप से अन्दर के भगवान आत्मा तो एक ही है, कहते हैं। वन कहने से छोटे-बड़े वृक्ष, पीपल, नीम, सब हो, उसे वन कहा जाता है। वन में भिन्न-भिन्न है, उसे न देख। यह तो पूरा वन है। उसी प्रकार छोटे-बड़े वृक्ष हों, तथापि उसमें ऐसा न देख। वन। इसी प्रकार सेना में छोटे-बड़े शरीरवाले जवान-वृद्ध आदि हों, उन्हें न देख। वन-सेना, बस। इसी प्रकार जीव में एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदि के भेद हों। वस्तुरूप से आत्मा भगवानरूप से सब एक ही जाति है। आहाहा!

विद्यमान पर्याय को-राग को अविद्यमान कर डाल और अविद्यमान जो पर्याय में है, उसे विद्यमान कर। आहाहा! क्या कहा यह? पर्याय में अल्पज्ञता के भेद और राग के भेद होने पर भी, यह विद्यमान चीज है, उसे अविद्यमान कर, वह तुझमें नहीं है और जो तू अविद्यमान पर्याय में है, उसे अब विद्यमान कर। यह भगवान पूर्णानन्द प्रभु है। आहाहा! ऐसा स्वरूप कठिन, भाई! इसलिए लोग कहते हैं कि यह लोग सोनगढ़वाले तो द्रव्यानुयोग ही पढ़ते हैं परन्तु द्रव्यानुयोग मुख्य वस्तु यह है, मोक्ष का मार्ग इसमें है। मुख्य इसमें है। लिखा नहीं भाई ने? टोडरमलजी ने। मोक्ष का मार्ग तो द्रव्यानुयोग में है, और सभा में मुख्य उपदेश तो यह होना चाहिए, ऐसा लिखा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। परन्तु इसे ऐसा लगता

है। प्रभु! क्या करते हैं तू? भाई! अरे! प्रभु! ऐसा नहीं शोभता, भाई! आहाहा! इस प्रकार ऐसा शोभता नहीं, नाथ!

**मुमुक्षु** : सब भगवान ही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : भगवान है, नाथ! प्रभु तू है न। आहाहा! वीतरागता रेलमछेल की है। वीतराग भगवान ने (और) मुनि भी वीतरागता की रेलमछेल करते हैं।

जहाँ आगे भेदों से उदास हुआ है, और जहाँ पूरी चीज़ है, उसका आदर किया है। आहाहा! क्या कहा यह? पर्यायादि, रागादि, जाति आदि के बाहर वर्णादि के भेद हैं, उसे छोड़कर, जो वस्तु है उसे दृष्टि में विद्यमान किया है। आहाहा! यह वीतरागता प्रगट हुई है, यह वीतरागता के सब लक्षण हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्योंकि भगवान स्वयं ही जिनस्वरूप है। 'जिन सो ही आत्मा अन्य सो ही है कर्म।' लो! वहाँ यह आया? 'यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' आहाहा! श्रीमद् ने भी संक्षिप्त शब्दों में बहुत कहा है। वे तो एकावतारी हो गये हैं। ओहोहो! एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। भले गृहस्थाश्रम में थे। आहाहा! 'शेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे।' कोई राग बाकी लगता है। हटता नहीं है। 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' आहाहा!

यह प्रश्न (संवत्) १९७७ में लोगों ने किया था, कि ऐसा होगा? गृहस्थाश्रम में इतना बड़ा जोर दे? एक भव में मोक्ष... अब सुन न। कहा श्रुतज्ञान में तो अनन्त सब ज्ञात होता है। श्रुतज्ञान क्या न जाने? श्रुतज्ञान में सर्व जानते हैं, उसमें यह ज्ञात न हो उन्हें स्वयं का? कि मैं एक भव में मोक्ष जानेवाला हूँ। स्वरूप में स्थिर होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति में मेरे बीच में एक भव मनुष्य का है। मनुष्य का। देव का, वह तो गिना नहीं जाता। समझ में आया? आहाहा! श्रुतज्ञान की इतनी ताकत है कि कब मोक्ष जायेगा, इसका भी उसे निर्णय आ जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, नर-नारकादि भेद.... मनुष्य, नारकी, देव और तिर्यच, ये सब भेद और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्रादि वर्ण-भेद सब कर्मजनित हैं,.... आहाहा! तेरे द्रव्य से भिन्न द्रव्य के यह तो सब प्रकार हैं। आहाहा! समझ में आया? तेरी जो चीज़ है, उससे कर्म तो दूसरी चीज़ है। उसके सब भेद हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग। अरे! **कर्मजनित हैं, अभेदनय से सब जीवों को एक जानो।** ओहोहो! वापस बात भी जो जैन परमेश्वर ने व्यवहार देखा, वह बात करके उसका निषेध करते हैं। सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, नरक, नारकी—ऐसे व्यवहार



के भेद तो भगवान ने देखे हैं न! अन्यमती में ऐसा भेद है कहाँ? आहाहा! कर्म और कर्म के भेद और भगवान अभेद और... आहाहा!

ऐसा कहकर... आहाहा! **अनन्त जीवोंकर वह लोक भरा हुआ है।** आहाहा! क्योंकि वह चीज़ ही पर है। उसके सब प्रकार उसमें तुझमें कहाँ आये वह? और उनमें यह कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया? क्या कहा यह? तुझमें द्रव्यकर्म है ही नहीं। यह द्रव्य अर्थात् कर्म, वह चीज़ ही परवस्तु है। अब परवस्तु से हुए भेद पर है। इसलिए परजीव में वे नहीं और इस जीव में वे नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**अनन्त जीवोंकर वह लोक भरा हुआ है।** आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड, चौदह राजू लोक अनन्त परमात्मस्वरूप भगवान से विराजमान है सब। आहाहा! **उस जीव-राशि में भेद ऐसे हैं....** अब जीवराशि के भेद बताते हैं। **जो पृथ्वीकाय सूक्ष्म,.... सूक्ष्म पृथ्वीकाय है न?** यहाँ सर्वत्र पूरे लोक में सूक्ष्म पृथ्वीकाय है। एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में एक-एक जीव। पूरे लोक में पृथ्वीकाय सूक्ष्म है। देखो! यह चीज़ सर्वज्ञ के ज्ञान में आये हुए पर्याय का व्यवहार, उसका वर्णन करके वह आत्मा में नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी व्यवहार की बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र पृथ्वीकाय और पानी ऐसा है? आहाहा!

**जलकायसूक्ष्म,....** पानी का जीव सूक्ष्म। यहाँ पृथ्वी है, वहाँ ही पानी है। सूक्ष्म जल। सूक्ष्म जल के काय। **अग्निकायसूक्ष्म,....** अग्निकाय का सूक्ष्म अग्नि है। यहाँ भी इसी जगह। पूरे लोक में। आहाहा! **वायुकायसूक्ष्म,....** सूक्ष्म वायु। यह जो पवन है, वह बादर वायु है। अन्दर सूक्ष्म वायु है। सर्वत्र पूरे लोक में। **नित्यनिगोदसूक्ष्म,....** नित्य निगोद है। वे तो सब प्रत्येक कहे, प्रत्येक। यह नित्यनिगोदसूक्ष्म। कायम नित्य निगोदवाले, पर्यायवाले परन्तु वे सूक्ष्म जीव सब इस लोक में हैं। आहाहा! **इतरनिगोदसूक्ष्म....** वह भी लोक पूरे में हैं। इतर अर्थात् नित्य में से निकलकर वापस ऐसे दूसरे में जाये, उसे इतरनिगोद कहा जाता है। **इन छह तरह के सूक्ष्म जीवोंकर तो यह लोक निरन्तर भरा हुआ है,....** आहाहा! वह एक आत्मा कहते हैं न वेदान्त, सर्व व्यापक (कहते हैं)। यहाँ तो ऐसे अनन्त आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर पूरे लोक में हैं। आहाहा! कितनों को यह कहते हैं न कि यह समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है। परन्तु वेदान्त में यह बात कब थी? आहाहा!

**यह लोक निरन्तर भरा हुआ है, सब जगह इस लोक में सूक्ष्म जीव हैं। पूरे लोक में।**

सिद्ध भगवान हैं, वहाँ पाँचों सूक्ष्म जीव हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्य निगोद.... सिद्ध भगवान विराजते हैं न, वहाँ भी यह है। आहाहा! और पृथ्वीकायबादर,.... यह तो पूरे लोक में भरे हैं। अब पृथ्वीकाय बादर, वह पूरे लोक में नहीं होते। समझ में आया? जलकायबादर,.... पानी बादर। यह समुद्र और जो यह दिखता है, बादर पानी। अग्निकायबादर, वायुकायबादर, नित्यनिगोदबादर,.... वापस देखा! आहाहा! यह अमुक स्थान में ही होते हैं, आधार हो वहाँ (होते हैं)। वे सूक्ष्म हैं, वे पूरे लोक में होते हैं। आहाहा!

इतरनिगोदबादर.... यह भी आधार हो, वहाँ होते हैं। और प्रत्येक वनस्पति.... नीम, पीपल। ये जहाँ आधार है, वहाँ हैं। उस सूक्ष्म को कोई आधार की आवश्यकता नहीं है। वह तो पूरे लोक में खचाखच भरे हैं। इस अंगुल के असंख्यवें भाग में अनन्त जीव वहाँ भगवानस्वरूप विराजते हैं। आहाहा! कहो, इस अंगुल का असंख्यवाँ भाग, हों! जहाँ अनन्त सूक्ष्म जीव विराजते हैं। प्रत्येक भगवानस्वरूप है। आहाहा! यह विशाल दृष्टि! समझ में आया? सब धर्म समान हैं, यह विशाल दृष्टि—ऐसा लोग कहते हैं। वह विशाल दृष्टि है या एकान्त दृष्टि है?

श्रीमद् ने तो समभाव की व्याख्या करते हुए ऐसा भी कहा। समभाव आता है न? क्या श्लोक? ....समदर्शिता विचरे उदय प्रयोग। श्रीमद् ने समदर्शिता की व्याख्या की है कि भाई! समदर्शिता अर्थात् सबको समान मानना यह?—नहीं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्ररूप से बतलावे। इस समभाव में यह विषमभाव नहीं है। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को बराबर बतलावे। आहाहा! समझ में आया? वह समभाव है। सबको समान मानना, वह तो मूर्खता है। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** अभी आपने कहा, सब जीव समान है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह किस प्रकार? वह तो स्वभाव की अपेक्षा से, परन्तु सभी धर्म समान हैं, वेदान्त और यह सब, ऐसा कहाँ है? समझ में आया? एक न्याय बदलने से पूरा न्याय बदल जाता है। कहते हैं, समभाव में तो सब कहे। देव को देव सिद्ध करे, सत्देव को। सत्शास्त्र को सत्शास्त्र सिद्ध करे, सद्गुरु को सद्गुरु से पहिचान करावे। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को उत्थापे, यह समभाव है। समझ में आया? आहाहा! छद्मस्थ है, इसलिए जरा 'यह नहीं', ऐसा होने पर, ऐसा विकल्प उठता है परन्तु वह विकल्प तो जाननेयोग्य कहा है। समझ में आया? यह खोटा है, रागी है न, इसलिए जरा यह (सत्य)

है, वह राग का अंश है। यह नहीं, यह खोटा है। तथापि समभाव में रहकर वह विकल्प उठता है। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसी बातें हैं।

जहाँ आधार हो, वहाँ बादर होते हैं, ऐसा कहना है। सूक्ष्म है, उसे आधार की आवश्यकता नहीं है। चौदह राजू लोक में ठसाठस भरे हैं। आहाहा! हीरा होता है न मजबूत? तो उसमें वहाँ अन्दर सूक्ष्म जीव है। यह दीवार है दीवार, संगमरमर की दीवार, इसके अन्दर में अनन्त सूक्ष्म जीव हैं। संगमरमर की जाति, वह अलग जाति है। आहाहा! पूरे लोक में है न। आहाहा! देखो, यह लकड़ी है, इसके अन्दर में भी है। अँगुली है, (इसमें) अन्दर अनन्त है।

**मुमुक्षु :** रोटी के टुकड़े में?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रोटी के टुकड़े में। सब क्षेत्र में है। रोटी में नहीं परन्तु रोटी जहाँ है, उसके स्थान में अनन्त जीव हैं। रोटी में, ऐसा नहीं, रोटी के क्षेत्र में। आहाहा! ऐसा मार्ग तो देखो! आहाहा! वीतराग परमेश्वर ने... लोगों को बेचारों को मिला नहीं। फिर यह ऐसा लगे कि अरे! एकान्त है... एकान्त है... आहाहा! शाहूजी को लिखते हैं। तुम हम सबको कहो परन्तु वहाँ भी सलाह दो न कि ऐसा खोटा करते हैं एकान्त। बापू! कहाँ है? भाई! एकान्त किसे कहना?

यहाँ तो भगवान एकान्त में तो परमात्मस्वरूप ही ज्ञात होता है, कहते हैं। यह निश्चयनय के विषय में तो यह एकान्त ही है। आहाहा! व्यवहारनय का विषय मिलावे, तब अनेकान्त होता है, परन्तु यह तो अनेकान्त दो मिले, इसलिए यह अनेकान्त हुआ। इससे अनेक पर्याय द्रव्य में है, ऐसा अनेकान्त नहीं हुआ। पर्याय पर्याय में है, ऐसा जानकर द्रव्य में नहीं है, ऐसा अनेकान्त हुआ। वैसे व्यवहार, व्यवहार में है, ऐसा रखकर निश्चय में नहीं, ऐसा अनेकान्त हुआ। परन्तु व्यवहार से भी निश्चय होता है और निश्चय से भी होता है, यह अनेकान्त, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या हो?

वे कहते थे। आये थे न जुगलकिशोर। दिल्ली से जुगलकिशोर मुख्त्यार। यह जुगलकिशोर कोटा के, वे अलग। वे मुख्त्यार अलग। पानी अग्नि के कारण गर्म हुआ, वह दृष्ट-इष्ट है। प्रत्यक्ष दिखता है और तुम उसका निषेध करो, ऐसा कहते हैं। दृष्ट-इष्ट। भगवान! यह पानी गर्म हुआ है, वह तो स्वयं की पर्याय से हुआ है, अग्नि ने तो उसे स्पर्श भी नहीं किया है। आहाहा! उसकी पर्याय में अग्नि की पर्याय का अभाव है। यह अभाव

है, उसके कारण गर्म पानी होगा ? आहाहा ! ऐसी बात कठिन पड़े। यह तो अन्दर सूक्ष्मरूप से है, उसका स्पष्टीकरण है। यह सब लिखकर विशाल जहरवाला पुस्तक कर दिया, ऐसा लिखा है। बापू ! ऐसा नहीं है, भाई ! तुझे न जँचे, इसलिए ऐसा हो गया ? आहाहा !

यहाँ सो कहीं पाये जाते हैं, कहीं नहीं पाये जाते,.... कौन ? बादर। सूक्ष्म है, वह पूरे लोक में है और बादर कहीं हो और कहीं न हो। परन्तु यह भी बहुत जगह हैं। बादर बहुत जगह है। पूर्ण सबमें नहीं। सूक्ष्म है तो पूरे लोक में है। ठसाठस भरे हुए हैं भगवान सब। आहाहा ! वह कहता है कि ईश्वर एक है। दूसरा ईश्वर होता है तो मतभेद होता है। वर्षा बरसाना है या नहीं बरसाना ? लो अब ऐसी चर्चा। ईश्वर कहता है कि वर्षा बरसाओ। ईश्वर एक ही है, दो नहीं। वर्षा बरसावे ? कौन बरसावे ? अनन्त ईश्वर हैं। स्वभाव से, शक्ति से, सामर्थ्य से। आहाहा !

इस प्रकार स्थावर तो तीनों लोकों में पाये जाते हैं,.... है न ? भले वे पूर्ण रीति से प्राप्त करे और वे बादर कोई कोई हो, परन्तु हैं तीनों लोक में। बादर भी तीनों लोक में हैं। तीन लोक में पूरे क्षेत्र में नहीं। समझ में आया ? और स्थावर जो सूक्ष्म हैं, वह तीन लोक में पूरा पूरे तीन लोक में है। देखो ! यहाँ वापस तीन इकट्टे किये। इकट्टे किये अर्थात् तीन लोक इकट्टे किये। पूरे लोक में बादर है, ऐसा नहीं। तीन लोक में है। मध्य-तिरछे में कहीं-कहीं है। मध्य में है, ऊर्ध्व में है और अधो में भी है। आहाहा !

दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यच ये मध्यलोक में ही पाये जाते हैं,.... वे बादर हैं, ये तीन लोक में थोड़े-थोड़े होते हैं और यह है वह मध्यलोक में ही पाये जाते हैं। बस ! बीच के लोक में। अधोलोक-ऊर्ध्वलोक में नहीं। दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अधोलोक में नहीं, ऊर्ध्वलोक में नहीं। उसमें से दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीव कर्मभूमि में ही पाये जाते हैं,.... कर्मभूमि है न, यह उसमें होते हैं। 'भोगभूमि में नहीं।' जुगलिया में नहीं। भोगभूमि में जुगलिया है न ? देवकुरु, उत्तरकुरु, वहाँ दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय नहीं। आहाहा ! भोगभूमि में गर्भज पंचेन्द्रिय सैनी थलचर.... भोगभूमि। जुगलिया। गर्भज पंचेन्द्रिय सैनी थलचर या नभचर ये दोनों जाति-तिर्यच हैं। तिर्यच होते हैं वहाँ। देवकुरु, उत्तरकुरु, हरिवंशकुरु, है न छह कुरुवंश ? वहाँ पंचेन्द्रिय, जलचर, थलचर दोनों जाति-तिर्यच हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, बस इतने हैं।

मनुष्य मध्यलोक में ढाई द्वीप में पाये जाते हैं, अन्य जगह नहीं,.... लो ! नभचर कहा है न ? स्थलचर और नभचर दोनों भोगभूमि में हैं वहाँ। देवलोक में स्वर्गवासी देव-देवी पाये जाते हैं,.... देवलोक में देव-देवी हैं। अन्य पंचेन्द्रिय नहीं,.... मनुष्य और तिर्यच वहाँ नहीं है। पाताललोक में ऊपर के भाग में भवनवासीदेव तथा व्यन्तरदेव और नीचे के भाग में सात नरकों के नारकी पंचेन्द्रिय हैं, अन्य कोई नहीं.... वहाँ कोई मनुष्य और देव आदि है नहीं। और मध्यलोक में भवनवासी, व्यन्तरदेव तथा ज्योतिषीदेव ये तीन जाति के देव और तिर्यच पाये जाते हैं। इस प्रकार त्रस जीव किसी जगह हैं, किसी जगह नहीं हैं। आहाहा!

इस तरह यह लोक जीवों से भरा हुआ है। आहाहा! सूक्ष्मस्थावर के बिना तो लोक का कोई भाग खाली नहीं है, सब जगह सूक्ष्मस्थावर भरे हुए हैं। ये सभी जीव शुद्ध.... यह सब जीव.... आहाहा! शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानादि गुणरूप हैं। सब जीव शुद्ध द्रव्यदृष्टि से... आहाहा! शुद्ध पारिणामिक सहजभाव से अनन्त केवलज्ञानादिक गुणरूप विराजमान हैं। आहाहा! केवलज्ञान पर्याय नहीं। केवलज्ञानादि गुणरूप सब विराजमान हैं। परमभावग्राहक स्वभाव.... आहाहा! इस प्रकार सब जीवों को समान जान। इस प्रकार शक्ति के स्वभाव की अपेक्षा से। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२३

श्री परमात्मप्रकाश, द्वितीय अधिकार, गाथा-१९७  
प्रवचन नं. - २३६, दिनांक - १२-०५-१९७७

१९७ गाथा बहुत सरस है। १९७ आगे ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान ही आत्मा का निजस्वभाव है,.... प्रत्येक आत्मा को केवलज्ञान ही स्वभाव है, शाश्वत स्वभाव है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो नहीं, कर्म नहीं, राग नहीं, अल्पज्ञपना नहीं। आहाहा! प्रत्येक... है न? केवलज्ञान ही आत्मा का निजस्वभाव है, और केवली को ही परमात्मा कहते हैं। शक्तिरूप से प्रत्येक केवलज्ञानस्वभावी भगवान ही है। वहाँ इसे दृष्टि देनी पड़ेगी। पूरा बारह अंग और शास्त्र का सार यह है। कहा कि भूतार्थ त्रिकाल आत्मा शक्तिरूप से स्वभावरूप से केवलज्ञानमय ही है, परमात्मा ही है। आहाहा! प्रत्येक आत्मा। आहाहा! उसे पर्यायबुद्धि उड़ाकर द्रव्यबुद्धि कराते हैं। आहाहा! कराते हैं, इसका अर्थ कि ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! केवलज्ञान, उसका निज स्वभाव है।

**मुमुक्षु** : स्वभाव हो तो तीनों काल रहना चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : तीनों काल है। तीनों काल ही है। केवल-अकेला ज्ञानस्वरूप, उसके साथ आनन्द लेंगे। गाथा बहुत अच्छी है। आहाहा!

तू परमात्मा ही है। यह परमात्मप्रकाश है। ऐसा कहते हैं। प्रत्येक आत्मा अभव्य और भव्य, अनन्त काल में सिद्ध नहीं हो, ऐसे जीव भी परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, वस्तु ऐसी है। द्रव्यदृष्टि का अर्थ—द्रव्य अर्थात् वस्तु। स्वभाव ही ऐसा है। आहाहा! उसमें अल्पज्ञपना जहाँ नहीं, वहाँ फिर राग, पुण्य और व्यवहार और निमित्त तो कहाँ रहे? आहाहा! ऐसी बात है।

**केवलज्ञान ही....** ऐसा शब्द है न? केवलज्ञान ही आत्मा का निजस्वभाव है,.... आत्मा का निजस्वभाव ही ऐसा है। आहाहा! कितनी दृष्टि को कहाँ सर्वत्र बाहर से खींचकर अन्दर ले जानी पड़ेगी। आहाहा! पूरी दुनिया उसने एक ओर रखकर, राग भी एक ओर रखकर प्रगट वर्तमान व्यक्त पर्याय है, उसे भी एक ओर रख। आहाहा! एक समय की

अवस्था प्रगट है, अस्ति है, उसकी अस्ति की रुचि भी छोड़ दे। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। लोगों को यह परमार्थ बैठना कठिन पड़ता है। व्यवहार के कथन शास्त्र में बहुत आते हैं। यह व्यवहार लिखा। सब लिखा, बापू! सब कहा है। अल्पज्ञ भी कहा है, निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग भी उघाड़ कहा है। वह तो पर्याय की वर्तमान अवस्था की बातें हैं। आहाहा! है, भले हो। उसे उल्लंघकर। त्रिकाल ज्ञानस्वभाव, केवलज्ञान अकेला ज्ञानस्वभाव अर्थात् कि परमात्मस्वभाव ही आत्मा है। आहाहा! और केवली को ही परमात्मा कहते हैं। व्यक्त है। केवलज्ञानी व्यक्त पर्याय में है। दूसरे सब आत्मायें शक्तिरूप स्वभावरूप परमात्मा हैं। आहाहा!

जो जिणु केवल-णाणमउ परमाणंद-सहाउ।

सो परमप्यउ परम-परु सो जिय अप्प-सहाउ ॥१९७॥

लो! यह जीव का अपना स्वभाव ही है, अन्तिम पद में ऐसा कहा। आहाहा!

अन्वयार्थ :- जो अनन्त संसाररूपी वन के भ्रमण के कारण.... 'यः जिनः' जो अनन्त संसाररूपी वन के भ्रमण के कारण ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूपी वैरी.... यह निमित्त से कथन है। वैरी तो उसका अपना अशुद्ध विपरीत परिणाम, वह वैरी है, परन्तु संक्षिप्त कहने में उसका निमित्त है, उसे वैरी कहा गया है। समझ में आया? यह निमित्त और कोई आत्मा को उल्टी दशा कराता नहीं। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप... आहाहा! सम्यग्दर्शन, उसका विषय जो त्रिकाल, वह तो परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और केवली ने किया क्या? कहते हैं। शक्तिरूप से तो वह भगवान स्वयं थे। अब पर्याय में कैसे आये? प्राप्त की प्राप्ति। वह चीज़ थी, वह दशा में आयी। परमात्मस्वरूप था, वह शक्तिरूप से स्वभावरूप से उसमें सत्त्वरूप से ध्रुव था।

ज्ञानावरणादि भवभ्रमण के कारणरूप, उसे जीतनेवाला 'यः जिनः' जिन की व्याख्या है न? उन्होंने जीता है। कर्म को जीता, यह कहना तो एकदम असद्भूत व्यवहार है, परन्तु अशुद्धता को जीता, यह भी एक अशुद्धनय का व्यवहारनय का कथन है। 'जिन' शब्द है, इसलिए इसका अर्थ 'जीतना'। आहाहा! बाकी तो परमात्मस्वरूप है, उसमें जहाँ स्थिर होता है, परमात्मस्वरूप स्वयं है, उसका सम्यग्दर्शन करके और उसमें स्थिर होता है, तब विकार की पर्याय उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न सर्वज्ञपना होता है, इसलिए उन्होंने अशुद्धतारूपी भावकर्म को जीता, तब जड़कर्म को जीता, ऐसा असद्भूत व्यवहार लागू पड़ा। आहाहा! समझ में आया? जिन शब्द है न, जिन। जिन सो ही आत्मा, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। सब

भगवान जिनस्वरूप है। और केवली हुए, वे किस प्रकार से जिन हुए? उनके केवलज्ञान स्वभाव से विरुद्ध भाव जो पर्याय में था, अल्पज्ञ मानता था, रागवाला मानता था, मलिन हूँ मानता था, अपूर्ण हूँ—ऐसी जो मान्यता थी, उसे पूर्ण हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, ऐसा विकल्प नहीं, परन्तु इस प्रकार श्रद्धा-ज्ञान करके और अन्दर स्थिर हुए, तब भावकर्म की अशुद्धता का जो भाव था, वह उत्पन्न हुआ नहीं; इसलिए उसका नाश किया, ऐसा कहने में आता है। तब उसका निमित्त जो कर्म था, वह तो नाश उसके होने के काल में उसके कारण से हुआ है। समझ में आया? कहीं परद्रव्य का आत्मा स्वामी नहीं कि उसे बाँधे और उसे तोड़े। समझ में आया? आहाहा!

उनको जीतनेवाला वह.... 'केवलज्ञानमयः' केवलज्ञानादि.... पाठ में अकेला केवलज्ञानमय है। केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी है.... ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्तियों का समूह है। क्षेत्र भले थोड़ा हो, असंख्य प्रदेशी और शरीरप्रमाण परन्तु उसके अन्दर शक्तियाँ जो हैं—ज्ञान, दर्शन आदि, वह तो अनन्त और अपार और अपरिमित है, संख्या से और स्वभाव से। समझ में आया? संख्या से भी अनन्त है और उस शक्ति का स्वभाव वर्तमान भी अनन्त और अपरिमित है। आहाहा! ऐसा उपदेश, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। वह व्रत पालने का कहे, दया का कहे, व्यवहार में कर्म बाधक है और यह कर्म बाधक है (तो समझ में भी आये)। गोम्मटसार में आता है न कि ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को हनन करता है, ऐसी बातें लोगों को अच्छी लगती हैं। बाकी हनन किसका करे?

अस्ति स्वरूप महाप्रभु अनन्त बेहद ज्ञान और अनन्त आनन्द, ऐसा साथ में आनन्द लिया है। यहाँ केवलज्ञानमय, ऐसा लिया है। और परमानन्दस्वभाव। आहाहा! यह बाहर के भभका तो भूल जा, परन्तु अन्दर की अल्पज्ञ पर्याय जितना भी भूल जा। आहाहा! और शुभ रत्नत्रय को राग जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, बारह व्रत के विकल्प या शास्त्र का पठन, वह सब भूल जा। आहाहा! भगवान को याद करना हो तो भी वह सब भूल जा। आहाहा! चार ज्ञान की दशा प्रगट हुई हो तो भी उसे भूल जा और त्रिकाली है, वहाँ दृष्टि को रख। दृष्टि तो वहाँ है ही उसकी। आहाहा! ऐसा मार्ग।

केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी है.... गुणमय कहा है, गुणवाला भी नहीं। गुणमय। अभेद है। ऐसा कहा है न? है न? केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी.... अनन्त गुणवाला, ऐसा नहीं। अनन्त गुणवाला तो भेद पड़ जाता है। अनन्त गुणमय है। आहाहा! ऐसा जो भगवान



आत्मा,.... आहाहा! शरीर के संसर्ग से उत्पन्न होता विकल्प, उसे भी भूल जा, भाई! तूने संसर्ग तो किया ही नहीं। एक देह दूसरे देह को संसर्ग छूता ही नहीं। परन्तु यहाँ तो भगवान ज्ञानमय कहा। अनन्त ज्ञानमय आदि अनन्त शक्तियाँ, वह राग को छूता नहीं और वर्तमान एक समय की पर्याय को भी वह त्रिकाली ज्ञानमय, ज्ञानमय है, वह उस एक समय की पर्याय को स्पर्श नहीं करता। चिमनभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग। और वह भी ऐसा कहा कि अनन्त ज्ञानमय और परमानन्दस्वभाव। प्रभु! तेरा परम आनन्दस्वभाव है। आहाहा! तेरे आनन्द की क्या बात करना! कल आया था उसमें। परन्तु किसी का लेकर उधार। जैनप्रकाश में। वह अमरचन्द है न? आत्मा तो अमृत का सागर उछलता है। परन्तु प्रभु! यह तू कहाँ से लाया?

**मुमुक्षु :** दिगम्बर में से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहाँ था? बापू! आहाहा! और फिर वापस वहीं का वहीं कहा कि गृहस्थलिंग से भी मोक्ष होता है। वेश गृहस्थ का हो तो भी मोक्ष होता है। और वहाँ ऐसा कहे। कुछ मेल (है)?

**मुमुक्षु :** वस्त्रसहित हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, लिखा है। भाई ने पढ़ा। चेतनजी ने। मैंने पहले पढ़ा। गृहस्थलिंग से, अन्य लिंग से मोक्ष होता है। अरे! प्रभु! आहाहा!

**मुमुक्षु :** श्वेताम्बर में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** श्वेताम्बर में पन्द्रह भेद से होता है। यह छोटी बात है।

जिसे पूर्णानन्द का नाथ जहाँ अन्दर दृष्टि में आया और जिसमें जिसकी रमणता की जमवट जमी... आहाहा! अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुणमय और परमानन्द, परम अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान जहाँ... आहाहा! उसमें जिसकी रमझट लगी... आहाहा! उसे लिंग तो नग्न ही होता है, उसे दूसरा लिंग (वेश) होता नहीं। भाई! यह लिंग कहीं केवलज्ञान प्राप्त नहीं कराता, परन्तु निमित्तरूप से होवे तो यह है। निमित्तरूप से होवे, इसका अर्थ कि निमित्त है, परन्तु निमित्त करता नहीं, तब उसे निमित्त कहा जाता है। नग्नपना निमित्त हो, परन्तु निमित्त की व्याख्या यह। स्वयं हो, परन्तु पर को कुछ कर सके, वह निमित्त नहीं कहलाता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म!

**परमानन्द और इन्द्रिय विषय से रहित....** आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ। स्पर्श इन्द्रिय,

जिह्वा इन्द्रिय, नाक, कान, आँख यह पाँचों स्पर्श आदि इन्द्रियों के विषयों से रहित। आहाहा! विषयों से रहित। आहाहा! जिसके शरीर के स्पर्श से दूसरे के स्पर्श के साथ स्पर्श नहीं सकता, परन्तु उसे ऐसा मानता है कि मैं पर शरीर को और माँस को स्पर्श करता हूँ और उसे भोगता हूँ, ऐसा मानता है। यह मान्यता झूठी है और यह जो भाव है, वह जहर का प्याला है। आहाहा! यह कैसे बैठे? ऐसे अनुकूल लगे, विषय अनुकूल लगे, माँस, हड्डियाँ, चमड़ी कोमल, रूपवान (लगे) और जवानी फूटी प्रस्फुटित, पच्चीस-तीस वर्ष की उम्र हो... चिमनभाई! उसे ऐसा कहना, बापू! यह तेरे पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का जो भाव है, वह जहर है, वह दुःख है, वह आनन्द को गला डालकर शान्ति को जलाता है। आहाहा! यह केवलज्ञानमय तो है, परन्तु परम आनन्दस्वभाव है जिसका। भाषा देखी? परम आनन्द उसका स्वभाव है। जैसे केवलज्ञान स्वभाव है, वैसे परम आनन्द स्वभाव है। दो बात ही जहाँ हो, वहाँ लेते हैं। ज्ञान और आनन्द, ज्ञान और आनन्द। बस! फिर दूसरे सब साथ में आ जाते हैं। अरे! इसे पलटा कितना मारना पड़े, भाई! परम केवलज्ञानमय भगवान और परम आनन्द जिसका स्वभाव।

**इन्द्रिय विषय से रहित आत्मिक रागादि विकल्पों से रहित....** आहाहा! उसमें होता विकल्प जो राग, चाहे तो शुभराग हो। आत्मिक क्यों कहा? कि उसकी पर्याय में होता है न। रागादि विकल्पों से रहित परमानन्द ही जिसका स्वभाव है,... आहाहा! यह तो अरिहन्त की व्याख्या करते हैं, परन्तु इस प्रकार आत्मा का स्वभाव ऐसा है। जितने विशेषण केवली को लागू पड़े, उतने ही विशेषण आत्मस्वभाव भगवान को लागू पड़ते हैं। आहाहा! कहते हैं कि पर के संसर्ग में रहना, वह तो तुझे शोभा नहीं देता, परन्तु राग के संसर्ग में रहना, वह भी शोभा नहीं देता। एक पर्याय के अंश के प्रगट पर्याय के प्रेम में रहना, वह तुझे शोभा नहीं देता। आहाहा! बापू! तेरी शोभा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्दमय है, अरिहन्त ऐसे हैं। यहाँ तो अभी चलता है। पश्चात् कहेंगे कि तू ही इतना है। आहाहा! ऐसा अरिहन्तपद केवलज्ञानमय और परमानन्दस्वभाव प्रगट हुआ कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? आहाहा!

**परमानन्दस्वभाव आत्मिक रागादि विकल्पों से रहित परमानन्द ही जिसका स्वभाव है, ऐसा जिनेश्वर केवलज्ञानमयी अरहन्तदेव...** ऐसा कहकर कहा है कि कोई जिनेश्वर, जिन ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं कुछ, वह तो वस्तु से केवलज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसमें अन्दर लीनता की रमझट लगायी है। आहाहा! उसमें से इसमें राग और द्वेष की उत्पत्ति छोड़ दी और उन्हें जीता, ऐसा कहकर, वह जिनेश्वर वस्तु का स्वरूप है। यह तो

वस्तु का स्वभाव है। जिनमार्ग कोई एक है और अन्य ईश्वर का कोई दूसरा मार्ग है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा जिनेश्वर.... जिन-ईश्वर। 'जिन' के ईश्वरता जिन्हें प्रगट हुई है। केवलज्ञानमयी अरिहन्तदेव वही.... परम-परम आत्मा। परम... परम। उत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादि गुणरूप लक्ष्मीवाला.... परम आत्मा की व्याख्या की। आहाहा ! अरिहन्तदेव जिनेश्वरदेव कैसे हैं ? परमात्मा णमो अरिहन्ताणं। वह अरिहन्तपद कैसा है, उसका यह वर्णन है। जिन्हें परम केवलज्ञान प्रगट हुआ है और जिन्हें परम अतीन्द्रिय आनन्द (प्रगट हुआ है)। आहाहा ! वे कैसे हैं ? उत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादि गुणरूप लक्ष्मीवाला.... हैं। उसमें भी वापस लक्ष्मी है। यह धूल की लक्ष्मीवाले जो सेठिया कहलाते हैं, वह पाँच-पच्चीस लाख धूल हो न, मिट्टी पैसा, उसके वे सेठिया कहलाते हैं। मिट्टी के, धूल के... धूल के। धूल के धणी ! यह केवलज्ञान लक्ष्मी के धणी आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अरिहन्त परमेश्वर णमो लोए सव्व अरिहंताणं। संक्षिप्त किया है, णमो अरिहंताणं। है शब्द यह णमो लोए सव्व अरिहंताणं। णमो लोए सव्व त्रिकाल अरिहंताणं। आहाहा ! ऐसे भगवान का स्वरूप अकेला ज्ञान और अनन्त आनन्द। आहाहा ! ऐसे केवलज्ञानरूपी अरिहन्तदेव परमात्मा हैं। उनका नाम परम आत्मा अर्थात् परमात्मा है। परमात्मा अर्थात् परम उत्कृष्ट आत्मा है। आहाहा ! जिनकी दशा में अनन्त ज्ञान, केवलज्ञान, आनन्द आदि प्रगट हुए, वे परम उत्कृष्ट आत्मा हैं। आहाहा ! उन्हें यहाँ अरिहन्तपद में कहने में आया है। उसे णमो अरिहंताणं कहते हैं। यह तो पहिचानकर है। समझे बिना ऐसे का ऐसा किया करे, णमो अरिहंताणं... अनन्त बार।

यह तो ज्ञानादि अनन्त गुणरूप लक्ष्मी... गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। ज्ञानादि अनन्त गुणरूप उत्कृष्ट परम अर्थात् उत्कृष्ट लक्ष्मीवाला आत्मा परमात्मा है। उसी को वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं,.... उसे वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। जो भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान सीमन्धर भगवान आदि तीर्थकर विराजते हैं वर्तमान मनुष्यरूप से। लाखों केवली अभी मनुष्यरूप से विराजते हैं। आहाहा ! अरे ! जिनका भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। कोई केवली नहीं, कोई तीर्थकर नहीं। किसी को केवल (ज्ञान) उत्पन्न हो, ऐसी योग्यता नहीं। वहाँ तो केवलज्ञान उत्पन्न हो, ऐसे आत्मायें सैकड़ों हैं। उत्पन्न हों ऐसे, हों ! (उत्पन्न) हुए तो लाखों हैं। आहाहा ! यह आत्मा की शक्ति की जो प्रगट दशा की, उसे अनन्त लक्ष्मी आयी। उसे अन्तर में लक्ष्मी भरी थी, वह प्रगट दशा में अनन्त लक्ष्मी प्रगट की। ऐसे लक्ष्मीवाले आत्मा, वह परमात्मा हैं। उसे वीतराग सर्वज्ञ (कहते हैं)।

हे जीव.... अब कहते हैं। वही संसारियों से उत्कृष्ट हैं,.... संसारी प्राणियों से यह परमात्मा-परम आत्मा, परम अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा अरिहन्त है। संसारी प्राणी अल्पज्ञ और विपरीत ज्ञानवाले कितने ही हैं। कितने ही भले अल्पज्ञ और चार ज्ञानवाले हों, परन्तु उस संसारी से यह आत्मायें परम आत्मा-उत्कृष्ट आत्मा है। आहाहा! ऐसा जो भगवान वह तो व्यक्तिरूप है,.... क्या कहते हैं? ऐसे परमात्मा लाखों, अनन्त सिद्ध व्यक्ति (रूप से है)। अनन्त सिद्ध णमो सिद्धाणं में अनन्त सिद्ध हैं। अरिहन्त अनन्त नहीं होते। अरिहन्त बीस तीर्थकररूप से (होते हैं), केवलीरूप से लाखों होते हैं। महाविदेह में। वे सब व्यक्तिरूप से परमात्मा हैं, कहते हैं। व्यक्ति अर्थात् प्रगटरूप। आहाहा! अब कहते हैं, और.... 'स आत्मस्वभावः' वह आत्मा का ही स्वभाव है। शक्तिरूप सब आत्मा भगवान ही है, कहते हैं। आहाहा! यदि शक्तिरूप भगवान स्वयं न हो तो व्यक्तिरूप भगवानपना आये कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? आहाहा! प्राप्त की प्राप्ति है। जो हो, वह आता है। तो प्रत्येक आत्मायें परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! कैसे जँचे? एक अच्छी सब्जी तेल में तलकर, घी में तलकर (बनायी) हो और उसमें उसके साथ पूरणपोली या बर्फी या चूरमा हो और खाता हो तो मानो... आहाहा! क्या जाने मजा आता हो, ऐसा लगे! अकेला जहर है। राग के जहर के प्याले पीता है।

**मुमुक्षु :** वह तो परपदार्थ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसके ऊपर राग होता है। उसके साथ कहाँ है? उसका राग होता है, उसका प्याला वह पीता है। परपदार्थ को तो छूता ही कहाँ है? आहाहा! मैसूर को कभी छूता है? स्त्री का शरीर माँस, हड्डियाँ, चमड़ी है, उसे छूता है कोई जीव? वह तो मिट्टी, जड़ है। मात्र उसे छूने पर यह मानता है कि यह ठीक है, ऐसी मान्यता में जो राग खड़ा करता है, उस राग को अनुभव करता है, शरीर को नहीं। वह तो मिट्टी है, वह तो माँस की हड्डियाँ, चमड़ी है। आहाहा! स्त्री का शरीर कुछ आत्मा भोग सके तीन काल में? तीन काल में नहीं। तथा पुरुष के शरीर को भोग सके, यह तीन काल में नहीं। मात्र राग उत्पन्न करके 'यह ठीक है' ऐसी राग की वृत्तियाँ विकार की उत्पन्न करके उसे भोगता है, वह जहर का अनुभव है। आहाहा! वह आत्मा के स्वभाव में नहीं, कहते हैं। तेरे स्वभाव में वह नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान को तो नहीं (परन्तु तेरे स्वभाव में नहीं)। आहाहा! यह अन्तिम शब्द है 'स आत्मस्वभावः' वह आत्मा का ही स्वभाव है। यह कहना है, हों!

अन्तिम पद में। जैसे सर्वज्ञ वीतराग व्यक्तिरूप से प्रगटरूप से हुए, ऐसे सब आत्मायें शक्तिरूप से ऐसे ही हैं। आहाहा!

परमानन्द और परम केवलज्ञानमय प्रभु आत्मा है। अन्तर में जिसका स्वभाव मात्र ज्ञान और मात्र आनन्द, अतीन्द्रिय, ऐसा जिसका—प्रत्येक आत्मा का वास्तविक स्वरूप और स्वभाव ही यह है। उसे न जँचे, इसलिए कहीं वस्तु चली जाती है? आहाहा! ऊपर-ऊपर से देखनेवाले वह राग को और पर्याय को देखते हैं। आहाहा! पानी में ऊपर तेल की बूँद पड़ी हो, तेल की बिन्दु, उसे देखनेवाले तेल को देखते हैं, परन्तु पानी का दल है, उसे नहीं देखते। उस पानी के दल में तेल की बूँद ने प्रवेश भी नहीं किया है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर ज्ञान और आनन्दमय पानी जैसा है, वैसा आनन्दमय स्वभाव जिसका है, उसमें शरीर, वाणी, मन तो ऊपर-ऊपर है। कहीं वह तो जड़, मिट्टी धूल है, परन्तु उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, विषयभोग वासना, यह सब विकार ऊपर-ऊपर है, अन्दर में नहीं, उसके स्वभाव में नहीं। आहाहा! निकल जाये, वह उसके स्वभाव नहीं; रहता है, वह उसका स्वभाव। शुभ और अशुभभाव तो निकल जाते हैं। सिद्ध भगवान हों, उन्हें वे होते नहीं। उनका स्वभाव जो है ज्ञान, आनन्द वह रह जाता है। आहाहा! ऐसा धर्म का उपदेश! ऐसी बात है। वीतरागमार्ग, बापू! वीतराग जिनेश्वर ऐसा फरमाते हैं, तू भी जिन है न, नाथ! आहाहा!

तेरा स्वभाव.... कहा न, 'स स्वभाव—स आत्मस्वभाव:' तेरा स्वरूप ही भगवान, तू परमात्मस्वरूप ही अन्दर है। अरे! कैसे जँचे? ऐसे तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में आवाज उपदेश में—वाणी में यह आयी कि तू आत्मस्वभाव है, प्रभु! जैसे मुझे प्रगट पूर्ण दशा हुई है, ऐसा ही तेरा अन्दर पूर्ण स्वभाव है। मेरे स्वभाव में और तेरे स्वभाव में जरा भी अन्तर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अन्तिम शब्द में ऐसा कहते हैं। व्यक्तरूप से प्रगट दशा मुझे हुई, अरिहन्तपद केवलज्ञान परम आनन्द, परन्तु प्रभु! तू वही है, वैसा ही है, मुझसे कमी और न्यून नहीं है। आहाहा! भाई! तेरे सामर्थ्य की तुझे खबर नहीं है। भगवान तुझे भगवानरूप से बुलाते हैं। तेरे अन्तर के स्वभाव का सामर्थ्य क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं और खबर बिना धर्म कहीं हो जाये, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! कहो, रायचन्दभाई! क्या इस पैसे की कीमत है कि किसकी यह कीमत है, यह सब? आहाहा! करोड़ों, अरबों रुपये दे न दान में, तो भी कहते हैं कि यदि कदाचित् राग घटावे तो पुण्य हो; धर्म नहीं। आहाहा! क्योंकि धर्म ज्ञान, आनन्द तो आत्मा के स्वभाव

में पड़ा हुआ है। उसकी दृष्टि और रुचि और उसे झेले, वर्तमान दशा में परमात्मा को झेले, परमात्मस्वरूप मेरा ऐसा दृष्टि स्वयं स्वीकार करे.... आहाहा! यह वह सम्यग्दृष्टि, समकित। सम्यग्दृष्टि; सम्यग्दृष्टि अर्थात् सत्य दृष्टि। सत्य दृष्टि अर्थात् जो पूर्ण ज्ञान और आनन्दमय परमसत्य, सत्यस्वरूप है, विद्यमान पदार्थ है, भूतार्थ वस्तु है, यथार्थ चीज़ है, ऐसा आत्मस्वभाव जैसा सर्वज्ञ परमात्मा को प्रगट हुआ, वैसा ही तुझमें है। आहाहा! ऐसे सत्य को सत्यदृष्टि से स्वीकार करे, आहाहा! तब तो उसे धर्म की पहली ऐकड़ा की शुरुआत होती है। आहाहा! अभी चारित्र और वह तो कहीं रह गये। समझ में आया?

**भावार्थ :- संसार अवस्था में निश्चयनयकर....** संसारदशा में निश्चय अर्थात् सत्य, सच्ची / सत्य दृष्टि से देखें तो संसारदशा में भी जीव जो अनन्त हैं... आहाहा! लहसुन की एक कली में अनन्त जीव, प्याज की एक कली में, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव, वे सब जीव भगवानस्वरूप है। आहाहा! कौन माने? यह यहाँ कहते हैं। शक्तिरूप से भगवानस्वरूप ही है। व्यक्तरूप से एनलार्ज नहीं। एनलार्ज सर्वज्ञ हो, उसे होता है। आहाहा! यह छोटा चित्र होता है न! फिर लोग एनलार्ज करते हैं न; उसी प्रकार यह भगवान आत्मा प्रत्येक अनन्त... आहाहा! संसारदशा में निश्चय अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखें तो **शक्तिरूप विराजमान है,....** आहाहा! गाथा बहुत सरस है। आहाहा!

तुझे जहाँ दृष्टि देनी है, वह भगवान पूर्णानन्द अन्दर स्थिर है, कहते हैं। आहाहा! तुझे परम सत्य वस्तु है, उसका स्वीकार करना है, वह परम सत्य अन्दर विराजता है। आहाहा! कहाँ जाये? किसे देखे? कहीं निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! भाई! तुझे सत्य स्वीकारना हो, सम्यग्दर्शन सम्यक् अर्थात् सत्य दृष्टि, सत्यदृष्टि, सत्य-सम्यक् देखना। वह सम्यग्दर्शन और सम्यक् देखना हो तो वह भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरपूर पदार्थ है, वह सत्य है, उसका स्वीकार कर और उसके सन्मुख में जा। आहाहा! ऐसी बात। वे तो इच्छामि पडिकमणा... हो गया, जाओ! सामायिक हो गयी, लो। भाई! सामायिक का मुख बड़ा है, बापू! आहाहा!

जो परमानन्द के नाथ को, केवलज्ञानमय प्रभु को सत्य की दृष्टि से सत्य को स्वीकार और फिर आनन्द में लीन होता है, अतीन्द्रिय आनन्द शक्तिरूप से है, वह व्यक्तरूप से अतीन्द्रिय आनन्द आवे, तब उसे सामायिक कहा जाता है। वीतरागदेव उसे सामायिक कहते हैं। यह तो कहीं ठिकाना नहीं होता और खबर नहीं होती। बेगार करके दो घड़ी बैठकर चल निकाल, जाओ! दुकान में जाना पहले। कहते हैं, संसारदशा में द्रव्य तो द्रव्य

है। उसकी संसार अवस्था में, ऐसा कहते हैं। यह जीव की संसारपर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि की दशा के काल में भी... आहाहा! निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखें तो, जैसा उसका वास्तविक स्वरूप है, उस रीति से-दृष्टि से देखें तो शक्तिरूप से विराजमान हैं। शक्तिरूप से भगवान् जिनस्वरूप विराजमान है। आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म; यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर केवली तीर्थंकर की वाणी का सार जानना हो तो यह है, कहते हैं। आहाहा! '**जिन सो ही है आत्मा....**' जिन सो ही आत्मा, अन्य कर्म। पुण्य और पाप आदि सब दूसरी चीज है, आत्मा नहीं। आहाहा!

यह कहते हैं, शक्तिरूप से विराजमान है। इसलिए संसारी को शक्तिरूप जिन कहते हैं,.... देखो! संसार अवस्था में भी उसकी शक्ति सामर्थ्य है। छोटी पीपर की वर्तमान अवस्था में चरपराहट थोड़ी हो और रंग में काली हो, परन्तु उस काल में भी उसकी शक्ति है, वह चौसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। चौसठ पहरी अर्थात् रुपया। चौसठ पैसा, सोलह आना, रुपया। इतनी पीपर में सोलह आने, रुपया-चौसठ पहरी चरपराहट, चरपरा रस और हरा रंग अन्दर पड़ा है; उसी प्रकार इस संसार विकारीदशा के काल में भी भगवान् आत्मा में... आहाहा! शक्तिरूप से परमात्मा विराजता है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात!

विद्यमान वस्तु है, उसे अविद्यमान की है और एक समय की पर्याय और राग, वह अविद्यमान-नाशवान है, उसे इसने विद्यमान और नित्य बनाया है। चिंमनभाई! आहाहा! भगवान्! मार्ग ऐसा है। तीर्थंकर अरिहन्त परमेश्वर सत्य को इस रीति से फरमाते हैं। लोगों को बेचारों को मिलता नहीं। कान में सच्ची बात पड़ती नहीं। ऐसे के ऐसे जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शक्तिरूप से सर्व संसारी को 'जिन' कहते हैं,.... उन्हें 'जिन' कहते हैं। चौसठ पहरी चरपरे रसवाली छोटी पीपर, भले बाहर चौसठ पहरी न आयी हो, परन्तु अन्दर में चौसठ पहरी शक्ति तो है। चौसठ अर्थात् रुपया, सोलह आना। उसी प्रकार आत्मा में बाहर में अज्ञानी को राग, द्वेष और मिथ्या भ्रान्ति हो, परन्तु अन्दर में शक्ति में तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानरूपी शक्ति पड़ी है। आहाहा! यह तो दिशा पलटने की बातें हैं, बापू! जो दशा पर के ऊपर झुकी हुई है। राग, द्वेष, दया, दान, व्रत और भक्ति यह सब बाहर की बातें। उस दशा को अन्तर में झुका, अन्दर में प्रभु विराजता है। आहाहा! अरिहन्तपद तुझमें भरा हुआ है। सिद्धपद तुझमें भरा हुआ है। पाँचों पद तेरे स्वरूप में हैं। आहाहा!

संसारी को शक्तिरूप जिन कहते हैं और केवली को व्यक्तिरूप कहते हैं। अरिहन्त परमात्मा प्रगट हुए, वह व्यक्ति अर्थात् प्रगट दशा हुई और दूसरे सब हैं, वह अन्दर शक्तिरूप से भगवान हैं। आहाहा! बात तो बहुत मीठी है। अरे! किसी को सुनने को मिले नहीं, ऐसी बात। अरे! इसे जीवन में जाना कहाँ? मनुष्यपना मिला हो, भले पाँच-पच्चीस लाख रुपये धूल मिली हो। आहाहा! इस सत्य को इस प्रकार से समझे बिना... सुनने को मिले (नहीं), वह समझे कब? वह मरकर ढोर में-पशु में जानेवाले हैं। मनुष्यपना गँवाकर ढोर में जायेंगे, ऐसा परमात्मा का फरमान है। जैसी सत्य वस्तु है, वैसी न मानकर इसने वक्रता बहुत की है। यह राग है और पुण्य है और यह मैं हूँ और मुझे लाभ है, अल्पज्ञ है और वही मेरा स्वरूप है। इस वक्रता में मरकर आड़ा तिर्यच होगा। मनुष्य खड़ा है, गाय, भैंस, गिलहरी, नेवला, कोण ऐसे आड़े हैं। बनिये माँस, शराब खाते (पीते) न हों तो नरक में तो न जाये। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि मैं परमात्मा हूँ, वैसा ही तेरा स्वभाव अन्दर परमात्मा है। आहाहा! सर्व जीवों का। लहसुन, प्याज के जीव भी शक्ति से परमात्मा है। कैसे जँचे? अभी तो इसे जीव है या नहीं, मानना मुश्किल पड़े। एक बार कहा नहीं था? क्योंकि इसने मनुष्यपना पाकर या पशुपना पाकर आत्मा को लाँछन बहुत दिया। लाँछन दिया। अर्थात्? यह बड़ा... नहीं। मैं तो पुण्यवाला हूँ और पापवाला हूँ और मूर्ख हूँ, पण्डित हूँ, तिर्यच हूँ और मनुष्य हूँ और... ऐसी जो मान्यता इसकी थी... आहाहा! ...इस मान्यता ने इसे वहाँ रोक रखा है। अन्दर वस्तुस्वरूप है, वहाँ जाने नहीं दिया। आहाहा! ...अवतार होता है। पशु हो बेचारे। आहाहा! आत्मा कहाँ नाश हो ऐसा है। यहाँ बड़ा करोड़पति सेठ दिखता हो। दस-दस लाख की आमदनी। अरे! देह छूटकर... भाई! जिसे ऐसा आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं होती, उसकी शक्ति के सामर्थ्य की प्रतीति नहीं होती और अल्पज्ञ और राग तथा उसके फलरूप से, पुण्यरूप से धूल मिले, आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख पुण्य के फल की इसे कीमत। कुछ मैं बढ़ा हूँ। माँगीलालजी! इन सबको लागू पड़ता होगा या नहीं जवान, वृद्ध सबको?

जैसे हम, वैसा तू। आहाहा! कहा न? संसारी को शक्तिरूप जिन कहते हैं,.... है? केवली को व्यक्तिरूप कहते हैं। द्रव्यार्थिकनयकर जैसे भगवान हैं,.... देखो! क्या कहते हैं! देखो अब। द्रव्य अर्थात् वस्तु, शक्ति त्रिकाली। त्रिकाली शक्ति की दृष्टि से देखें तो, वर्तमान अवस्था और राग की दृष्टि से न देखें तो, आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! न



समझ में आये ऐसा नहीं। भाषा तो बहुत सादी है, भाव भले ऊँचे हों, परन्तु यह वस्तु से तो यह है। भगवान तीन लोक के नाथ केवली जिनेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भाई! आहाहा! उन लोगों को मिले नहीं। ईरिया... तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। देखो, हो गया। तस्सूतरी करणेन... हो गयी सामायिक। अरे! भगवान! बापू! यह कहीं धर्म भी नहीं और यह सामायिक भी नहीं। तुझे खबर नहीं, भाई! वह तो सब राग की क्रियायें हैं। उनमें तू (धर्म) मानता है, वह मिथ्याभ्रान्ति है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, द्रव्यार्थिकनय अर्थात्? द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसका अर्थी अर्थात् प्रयोजन। जिस ज्ञान का प्रयोजन त्रिकाली वस्तु को देखने का है, जिस ज्ञान की दशा को त्रिकाली वस्तु देखनी है, उस नय से देखो तो जैसे भगवान हैं, वैसे सब जीव हैं,... आहाहा! 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होय' आता है न, श्रीमद् में आता है। आत्मसिद्धि (में), सर्व जीव है सिद्धसम। परमात्मशक्ति से पड़ा है, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! है?

द्रव्यार्थिक अर्थात् द्रव्य अर्थात् वस्तु। वस्तु का स्वभाव। असली कायमी चीज़। उस कायमी चीज़ को देखनेवाली दृष्टि से यदि कहें तो जैसे भगवान केवली हैं, वैसे ही सब जीव हैं,... आहाहा! वह तो पर्याय में, अवस्था में, हालत में अन्तर है। वस्तु तो वस्तु है। इस तरह निश्चयनयकर जीव को परब्रह्म कहो,... इस प्रकार सच्ची, निश्चय अर्थात् सत्य। सत्य दृष्टि से यदि देखे तो जीव को परमब्रह्म कहो, वह परमब्रह्म आत्मा है। परमब्रह्म कोई दूसरा ईश्वर कर्ता है, वह कोई नहीं। परमशिव कहो, जितने भगवान के नाम हैं, उतने ही निश्चयनयकर विचारो तो.... आहाहा! जितने परमात्मा के अनन्त नाम पड़ते हैं। केवली तीर्थकर को। आदिपुराण में (एक) हजार (और आठ) नाम तो दिये हैं। इन्द्र जब समवसरण में परमात्मा की-प्रभु की स्तुति करता है (तब) एक हजार (आठ) नाम से बुलाता है, (एक) हजार (आठ) नाम से। एक हजार (आठ) नाम है। अरिहन्त परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। इन्द्र वहाँ जाते हैं। सीमन्धर भगवान मनुष्यरूप से विराजते हैं। एक हजार आठ नाम। परन्तु कहते हैं कि अनन्त नाम, हजार क्या? जितने भगवान के उतने निश्चयनयकर विचारो तो सब जीवों के हैं,... आहाहा! सभी जीव जिनसमान हैं,... भारी गाथा, भाई! और जिनराज भी जीवों के समान हैं,... सभी जीव जिनसमान हैं और जिनराज भी जीवों के समान हैं,... परस्पर ऐसा जानना। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२४

श्री समयसार, गाथा-३६, श्लोक-३०  
प्रवचन नं. - १०४, दिनांक - १०-१०-१९७८

भावार्थ है, जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी। यह मोहकर्म.... एक जड़ मोहकर्म है। आत्मा के क्षेत्र में; जहाँ आत्मा है, वहाँ एक क्षेत्रावगाही मोहकर्म जड़ है। वह जड़ पुद्गलद्रव्य है;... वह मोहकर्म, आत्मा है, वहाँ एक क्षेत्र में रहनेवाला मोहकर्म जड़ है। उसका उदय क्लुष ( मलिन ) भावरूप है;.... अर्थात् मोहकर्म का उदय है, वह तो जड़ की पर्याय भले, परन्तु आत्मा में उसका दिखाव होता है - उपयोग में, वह मलिन परिणाम है। आहा! चाहे तो शुभ-अशुभभाव हो, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव हो या दया, दान का भाव हो परन्तु वह भाव, मोहकर्म के फलरूप मलिनभाव है - ऐसी बात है। आहा!

है? वह मलिनभाव है। वह भाव भी, मोहकर्म का भाव होने से,.... जड़ कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में यह शुभ-अशुभभाव जो मलिनभाव, वह जड़ कर्म का भाव होने से वह जड़ का है; आत्मा का नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम। विकार, वह भावक का भाव है। जड़कर्म है, वह भावक — भाव करनेवाला और शुभ-अशुभभाव, वह भाव, मलिनभाव, यह भावक का भाव है, कर्म का भाव है, जड़ का भाव है; चैतन का स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, बापू!

यह मोहकर्म का भाव, पुद्गल का ही विकार है, यह भावकभाव जब चैतन्य के उपयोग के अनुभव में आता है,.... चैतन्य जो शक्ति है, वह तो ध्रुव त्रिकाल है परन्तु उसकी व्यक्ति जो प्रगट ज्ञान; जैसे कर्म के निमित्त का व्यक्तपना मलिनता है, वैसे भगवान चैतन्यशक्ति का प्रगटपना जानन-देखन पर्याय है। सूक्ष्म विषय है, भाई! जैसे, इस जड़कर्म का फल मलिन भाव है, वह जड़ का व्यक्तभाव है; वैसे भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप की व्यक्ति ( अर्थात् ) जानने-देखने की मति-श्रुत की पर्याय व्यक्त पर्याय है, उसके उपयोग के अनुभव में आता है, जब यहाँ चैतन्य के उपयोग में अनुभव में आता है। आहाहा! अर्थात्? जानन-देखन जो शक्ति की व्यक्ति / प्रगटदशा, उसके उपयोग में जब मलिनभाव आता है, आहाहा! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व है।

साधारण लोगों को तो पता ही नहीं पड़ता! भक्ति करो, और व्रत करो, पूजा करो, हो जायेगा धर्म! वहाँ धूल में भी नहीं है... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करो, बस! वह तो राग है। राग तो कर्म के निमित्त का-भावक का भाव है; वह तेरा भाव नहीं है। आहाहा!

**श्रोता :** राग तो जीव की पर्याय है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पर्याय है परन्तु वह द्रव्य का स्वभाव नहीं... द्रव्य का-चैतन्य का वह स्वभाव नहीं। चैतन्य शक्ति का व्यक्तपना तो जानना-देखना, वह उसका व्यक्तपना है। उसका व्यक्तपना, राग का व्यक्तपना हो - ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा!

**श्रोता :** स्वरूप न हो तो होवे कैसे ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होता है, वह कहा न? वह पर्याय में होता है, वह पर के कारण होता है, पर का लक्ष्य लेता है, जानने-देखने के उपयोग में, वह विकार-कर्म का, भावक का भाव परन्तु उपयोग वहाँ है; इसलिए वहाँ मलिन उपयोग दिखता है।

**श्रोता :** दिखता है या होता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिखता है, वास्तव में वस्तु कहाँ होती है ?

**श्रोता :** द्रव्य तो नहीं होता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय में दिखता है परन्तु पर्याय में दिखता है, वह जड़ का भाव दिखता है, वह चैतन्यस्वभाव का भाव नहीं। सूक्ष्म बात है बापू!

**श्रोता :** दिखता है और उसका भाव नहीं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं; उसका नहीं। जैसे चैतन्य जाननस्वभाव-देखनस्वभाव का व्यक्तपना तो जानने-देखने का उसका व्यक्तपना है। उसका व्यक्तपना, विकार का व्यक्तपना (नहीं होता)। सूक्ष्म बात, भाई! सूक्ष्म मार्ग, बापू! आहा!

वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! यहाँ दो प्रकार कहे हैं। कहते हैं देखो! उपयोग भी विकारी होकर रागादिरूप मलिन दिखायी देता है। देखा? भगवान आत्मा!... भाई! यह तो जैनधर्म, यह वस्तु का स्वभाव (है)। आहाहा! इसे समझने के लिए तो अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! यह कोई साधारण रीति से मिल जाये? आहाहा! यह क्या कहते हैं? चैतन्य के उपयोग के अनुभव में आता है, तब उपयोग भी विकारी होकर.... देखा? पर्याय विकारी होकर, रागादिरूप मलिन दिखायी देता है। पर्याय में मलिनता है -

ऐसा दिखायी देता है। वास्तव में इस चैतन्यशक्ति की व्यक्तता का वह भाव नहीं है। कर्म के उदय की व्यक्तता का वह भाव मलिन है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? फुर्सत कहाँ लोगों को! कौन है और क्या है?

एक ओर भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, ज्ञान और दर्शन के स्वभाव से भरपूर भण्डार, उसकी व्यक्तता,... वह कहते हैं देखो! इस चैतन्य की शक्ति की व्यक्ति ( प्रगटता) विकारी दिखती है। जब उसका भेदज्ञान हो... देखा? क्या भेदज्ञान हो अर्थात्? चैतन्य, वह ज्ञान-दर्शन स्वभाववन्त परिपूर्ण प्रभु, उसकी व्यक्तता तो जानना-देखना, ऐसी उसकी व्यक्तता-प्रगटता हो, तब यह पर्याय में कर्म के निमित्त के संग से जो मलिनता हो-भाव, वह भावक का भाव है, वह चैतन्य के स्वभाव का भाव नहीं है। आहा! अब ऐसा कहाँ समझना? ऐसा है प्रभु!

**श्रोता : अपूर्व है!**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपूर्व है, भाई! आहा! इसने कभी किया नहीं। आहाहा! अनन्त काल... अनन्त काल.. व्यतीत हो गया, भाई! आहा! परन्तु एक ओर भगवान, आहाहा! कलश में कहेंगे 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' आत्मा तो शुद्ध चैतन्य ज्ञान-सिन्धु सागर भरा है, आहाहा! उसकी व्यक्तता — वह कहते हैं, देखो! 'चैतन्य की शक्ति की व्यक्ति'.... चैतन्य ज्ञान और दर्शन और ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव से भरपूर भगवान, उस चैतन्य की शक्ति, उसकी व्यक्ति, उसकी विशेष प्रगट दशा तो ज्ञानदर्शनोपयोगमात्र है.... धीरे से समझना, भाई! यह तो अनन्त काल में नहीं की हुई बात है। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कथित मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! यह बहुत धीरज से समझ में आये ऐसी चीज है। आहाहा! क्या कहा?

**श्रोता : समझ में आ जाये ऐसा है।**

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, समझ में आये ऐसी ही चीज है। बराबर! यहाँ दो प्रकार वर्णन किये। एक ओर भगवान चैतन्यस्वरूप परमात्मस्वरूप विराजमान है। चैतन्यशक्ति कहो, परमात्मस्वरूप कहो, ज्ञान और दर्शन के स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा की व्यक्ति अर्थात् प्रगटता, पर्याय में जानने-देखने के उपयोग की पर्याय, वह उसकी व्यक्तता है और कर्म जो है, जड़-भावक, उसकी व्यक्तता अर्थात् पुण्य-पाप का मलिनभाव। आहाहा! गजब बातें हैं, भाई! यह कर्म के भावक का भाव! इस चैतन्य की शक्ति का जानना-देखना

उपयोग, वह उसका भाव, परन्तु अनादि से... आहाहा! इस जानन-देखन उपयोग में यह मलिनता, मन का भाव अन्दर जो उपयोगरूप दिखता है, वह उसका नहीं है। आहाहा!

**श्रोता :** होता है उसकी पर्याय में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय में होता है, तथापि वह उसके स्वभाव में से हुआ नहीं है, उसकी शक्ति के सत्त्व में से हुआ (भाव) नहीं है, ऐसा है भगवान! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! मार्ग ऐसा सूक्ष्म! आहाहा! गाथा ऐसी आ गयी न, आहाहा!

**श्रोता :** भाग्यशाली को तो सुनने को मिले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिले, ऐसा। बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा! क्या कहें? ओहो!

भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वभावी, ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभावी प्रभु, उसकी व्यक्तता - प्रगटता तो जानन-देखन उपयोग और आनन्द पर्याय, वह उसकी प्रगटता होती है। आहाहा! उसके बदले कर्म जो भावक-जड़कर्म, उसका व्यक्तपना जो पुण्य-पाप और मलिन भावक का भाव, वह (आत्म) द्रव्यस्वभाव का भाव नहीं है। आहाहा! पाटनीजी! समझ में आवे ऐसा तो है, बापू! प्रभु! यह तेरे घर की बात है न, नाथ! आहाहा! यह जानक स्वभाव भगवान का प्रगटपना तो जानने-देखने का उपयोग है। उसमें यह कर्म के भावक का भाव, उपयोग वहाँ जुड़ने से मलिन दिखता है। आहाहाहा!

ऐसा उपदेश अब यह कहाँ! ऐसा कहते हैं कि भगवान की भक्ति करो, गुरु की भक्ति करो, तब तो समझ में आये, अब भक्ति-भक्ति करे, वह सब तो राग है। सुन न अब!

**श्रोता :** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह सब राग है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह राग है, वह कर्म के भावक का भाव है, भाई! तुझे पता नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! आहा! गाथा बहुत सरस! चैतन्य की शक्ति की व्यक्ति... भगवान सामर्थ्य तो उसका - आत्मा का चैतन्य सामर्थ्य ज्ञान-दर्शन सामर्थ्य है। उसकी व्यक्ति-प्रगटता ज्ञान-दर्शन-उपयोगमात्र है। उसकी प्रगटता तो जानना-देखना उपयोगमात्र उसकी प्रगटता है। आहाहा! उसके उपयोग की प्रगटता में रागरूप उपयोग हो, ऐसा उसका उपयोग ही नहीं है। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप भगवान ज्ञान का सागर प्रज्ञाब्रह्म प्रभु की प्रगटता को जानने-देखने के उपयोग की प्रगटता है; उसकी प्रगटता शुभ-अशुभभाव, वह उसकी प्रगटता नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसकी (आत्मा की) खान में वह विकार भरा नहीं है कि जिसका विकारपना भावक-भाव्य हो — वह भावक जीव का

भाव हो। आहाहा! कठिन बात बापू! अरे! धर्म क्या चीज है!

यह कलुषता राग-द्वेष-मोहरूप है... है? आहाहा! भगवान चैतन्य शक्ति अर्थात् जानने-देखने की सामर्थ्यवाला वह तत्त्व है। भगवान आत्मा तो जानने-देखने के स्वभाव की सामर्थ्यवाला वह तत्त्व है। उसके सामर्थ्य में से प्रगट हो तो जानने-देखने की व्यक्त पर्याय-उपयोग प्रगट हो; उसमें से मलिन पर्याय उपयोग में प्रगट हो - ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु उस उपयोग में कर्म के निमित्त से हुआ भावक का भाव — पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति आदि का भाव... आहाहा! वह उसके उपयोग में मलिनरूप दिखाई देता है। उसकी वस्तु पर्याय और गुण कोई मलिन नहीं। पुण्य-पाप के मलिनभाव पर्याय में इसे दिखाई देते हैं, आहाहा! वह पर का भाव है, पर के संग से हुआ है। पर की शक्ति की व्यक्तता प्रगट होने से वह मलिनभाव हुआ है। भगवान की (आत्मा की) शक्ति से प्रगट होने पर वह मलिनभाव हुआ नहीं, उसकी प्रगटता में तो जानने-देखने की पर्याय, वह उसकी प्रगटता है। आहाहा! उस जानने-देखने की प्रगट पर्याय उपयोग में कर्म के भावक का भाव मलिनरूप दिखाई देता है। आहाहा! है? वह द्रव्यकर्म का जड़-पुद्गल द्रव्य का भाव है। कलुषितता कहा है न? वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है,... आहाहा! ऐसा है। क्योंकि जो शुभ-अशुभभाव है, वह अचेतन है-जड़ है, उसमें चैतन्य के प्रकाश की कोई पर्याय (किरण) उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सम्प्रदाय में पड़े हुए को यह बात कठिन लगती है। मार्ग ऐसा सूक्ष्म है।

बापू! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! कहते हैं कि यह कलुषता राग-द्वेष-मोह... पुण्य-पाप और मिथ्यात्वरूपी भाव वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है,... आहाहा! इतना धीरजवान हो, तब उसके उपयोग में मलिनता है - ऐसा दिखे। आहाहा! वह मलिनता मेरी चीज नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति करे, देव-गुरु की भक्ति करे, वह सब रागभाव (है)। आहाहा! गजब बात है! वह भावककर्म का भाव है। जीवशक्ति का वह भाव नहीं। उसके स्वभाव में वह भरा नहीं; स्वभाव में तो जानना-देखना और आनन्द भरा है। उसकी प्रगट दशा हो तो जानना-देखना और आनन्ददशा हो। आहाहा! ऐसा है! तो भी फिर लोग बेचारे कितने ही... एक भव्यसागर है, (उन्होंने) बहुत प्रसन्नता बतायी। आहाहा! बहिनश्री के वचनामृत हमें... दिगम्बर साधु है, बीस वर्ष की दीक्षा... आहाहा! हमने कभी ऐसी बात सुनी नहीं। हमें पता नहीं ऐसा। हम मुनि नहीं, बापू! मुनि किसे कहते हैं? आहाहा!

कल दो पत्र आये थे, इससे पहले आये थे। आहाहा! लोग ऐसा कि माँग बहुत करते हैं। बहिन की पुस्तक की; स्थानकवासी लोग आते हैं, वे भी माँग करते हैं। परन्तु अपने आप पकड़ना कठिन। आहाहा!

भगवान आत्मा, वह तो चैतन्य अर्थात् जानना-देखना जिसका त्रिकाली स्वभाव, वह उसकी सामर्थ्य है। उसमें राग करना, ऐसी सामर्थ्य उसमें नहीं है। यह पुण्य-पाप, दया, दान का भाव करना, यह कोई जीव के स्वभाव की सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! यह भाव तो जड़कर्म-भावक जो जड़ है... यह कर्म सिद्ध किया। एक ओर भगवान सिद्ध किया, दो। भावक का भाव उसकी पर्याय मलिन है, ऐसा भी सिद्ध किया। यह भावक जो ज्ञायकभाव है, उसका भाव जानना-देखना उपयोग, वह सिद्ध किया। आहाहा! अब उस उपयोग में जो वह मलिनता दिखती है, कहते हैं। आहाहा! वह **पुद्गलद्रव्य की है**,... आहाहा! इसमें से निकाले कि यह पर्याय है, वह जड़ के कारण होती है, वह आत्मा की नहीं। किस अपेक्षा? अभी द्रव्यस्वभाव की बात चलती है। जो द्रव्यस्वभाव है - वस्तु का - भगवान आत्मा का, उस स्वभाव में से व्यक्तता (प्रगटता) कोई राग की होगी? उसके स्वभाव के भण्डार में कोई विकार भरा है? उसके स्वभाव के भण्डार में तो निर्विकारी शक्तियाँ भरी हैं। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, शान्तिभाई! ऐसा कलकत्ता में कहीं मिले ऐसा कहीं नहीं है।

**श्रोता :** कलकत्ता में मिले वह यहाँ नहीं मिलता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कलकत्ता में पैसे मिलते हैं, कहते हैं। ऐसा जो यहाँ मिलता है। धूल में क्या? यह हमारे रहे अजितभाई, वहाँ नैरोबी में बहुत पैसा मिलता है। आहाहा! यह कहते हैं, पैसा यहाँ नहीं मिलता, वहाँ पैसा मिलता है - ऐसा कहते हैं, भाई! यह पैसा किसे मिलता है? कहाँ मिलता है?

**श्रोता :** किसी को नहीं मिलता?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसे मिले प्रभु! पैसा तो पैसे में रहा। किसे मिले? आहाहा! आत्मा भगवान आत्मा है वहाँ अन्दर पैसा आता है? वहाँ घुस जाता है? पैसा, वह जड़ की दशा जड़ में रहती है। भगवान आत्मा की दशा में भी वह नहीं आता तो उसके द्रव्य-गुण में तो कहाँ से हो? आहाहा!

यहाँ तो पर्याय में आती है, वह चीज क्या है? वह वस्तु तो आती ही नहीं। यहाँ तो पर्याय में शक्ति की व्यक्तता जो उपयोग है, उसके उपयोग में जो जड़कर्म के भावक का

भाव मलिनरूप दिखायी देता है, उसका भेदज्ञान करना। आहाहा! भाई! भगवान सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव परमात्मा का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह कलुषितता जो राग-द्वेष-मोहरूप है, वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है। यहाँ द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से बात चलती है। द्रव्य का स्वभाव है, वह तो ज्ञान चैतन्यशक्ति... चैतन्यशक्ति, ज्ञानसिन्धु - ज्ञान-दर्शन का सिन्धु, समुद्र, सागर, भगवान (आत्मा) है। उसमें से लहर का उछाला आवे, वह उछाला आवे तो उसमें से क्या आवे? यह जानने-देखने की पर्याय का उछाला आवे। आहाहा! उसमें से उसके उपयोग में जो यह कर्म का भावक का पुण्य-पाप का जो मलिनभाव है, पुद्गल का भाव है, उसके स्वभाव का वह भाव है; जीव के स्वभाव का वह भाव नहीं है। आहाहा! वह पुद्गलद्रव्य का है।

तब भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह का भाव, भावकर्म, उसका भाव शुभ-अशुभराग है, वह द्रव्यकर्मरूप मोह का भाव है। उससे अवश्य भेदभाव होता है, क्योंकि वह पर का है, इसलिए भेदभाव होता है - ऐसा कहा है। वह स्व का नहीं, इसलिए भेदभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग और ऐसा उपदेश! क्या कहते हैं, अभी यह पकड़ना कठिन पड़ता है। आहाहा! अरे! भटकते हुए अनन्त काल गया, इसे सत्य मिला नहीं। सत्य मिले तब इसे (समझने की) दरकार की नहीं। आहाहा! यह भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप जो मोह का भाव, उससे अवश्य भेदभाव होता है, क्योंकि उसके स्वभाव में और उसके स्वभाव की व्यक्तता में यह विकार नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव का सागर है। उसमें व्यक्तता होवे तो उसके स्वभाव की शक्ति की व्यक्तता हो परन्तु पुण्य और पाप के मलिनभाव की व्यक्तता इस (आत्म) शक्ति की व्यक्तता नहीं है, वह द्रव्य के स्वभाव की व्यक्तता नहीं है। आहाहा! वह कर्म के भावक का भाव का भाव है इसलिए है? उससे अवश्य भेदभाव होता है। इस कारण उससे भेदभाव होता है - ऐसा कहते हैं। यह क्या कहा? भगवान आत्मा चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... सिन्धु सागर! यह खारा समुद्र हो, उसकी लहरें खारी होती हैं, मीठा समुद्र हो उसकी लहरें मीठी होती हैं; वैसे भगवान तो आनन्द और ज्ञानसागर का सागर भरा है। उसकी लहरें जो व्यक्तता होवे तो उपयोग-ज्ञान-दर्शन के उपयोग की उसकी व्यक्तता होती है। उस उपयोग में जो कर्म के भावक का भाव दिखता है, वह जड़कर्म का भाव है, इसलिए उससे पृथक् हो सकता है। आहाहा! ऐसी बात है। ओहो! क्या आचार्यों ने काम किया है! दिगम्बर सन्तों ने! हम तो उनके दास हैं! आहाहा! और यह तो क्या बात की, क्या



कहें प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? मैं तो ज्ञान-दर्शन स्वभाव से भरपूर तत्त्व वहाँ मैं हूँ और वहाँ मैं हूँ, ऐसा जिसने माना, उसकी शक्ति में से व्यक्तता तो जानने-देखने और आनन्द की होती है। आहाहा! ऐसे जानने-देखने के भाव में जो मलिनता दिखती है, वह जड़कर्म के भावक का भाव है, वह तेरे स्वभाव का भाव (नहीं)। आहाहा!

**श्रोता :** वह जड़कर्म की दोस्ती का भाव...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दोस्ती स्वयं ने की है, उस ओर के झुकाव में उपयोग में मलिनता होती है, वह चैतन्य का उपयोग नहीं है। आहाहा! वह जड़कर्म के भाव का भास अन्दर होता है, वह मलिनभाव है। जिससे वह जड़कर्म का भावक का भाव ज्ञात हो, वह चैतन्य के स्वभावभाव में से नहीं आया; इसीलिए चैतन्य के स्वभाव की व्यक्तता को लक्ष्य में लेने से अथवा द्रव्य को कायम लक्ष्य में लेने से वह मलिनभाव पृथक् पड़ जाता है - ऐसा है। आहा!

सम्प्रदाय में यह चलता है कि यह सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, यह करो और वह करो। भक्तिवाले को यह आवे कि भक्ति करो देव-गुरु की। बापू! मार्ग अलग है, भाई! आहाहा!

**श्रोता :** सब परसन्मुखता के भाव है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव परसन्मुखता का भाव है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** राग है, वह परसन्मुख है, वह वास्तव में भावक का भाव है; इस चैतन्यद्रव्य के स्वभाव का वह भाव नहीं है। आहाहा! भगवान सिन्धु चैतन्य, चैतन्य सिन्धु-यह आयेगा इस कलश में। आहाहा! चैतन्य का सिन्धु का ज्वार पर्याय में आवे, तब तो ज्ञान-दर्शन और आनन्द का आवे, भाई! आहाहा! और भावककर्म है, उसका भाव तो मलिनभाव, वह उसका ज्वार है परन्तु यहाँ ज्ञान के उपयोग में ज्ञात होने पर, लक्ष्य वहाँ है, इसलिए मलिनता दिखाई देती है। आहाहा! परन्तु लक्ष्य को बदल डाल! भगवान ज्ञानसिन्धु है, उस पर लक्ष्य कर तो इस राग की भिन्नता का तुझे अन्दर भास होगा। आहाहा! कहो, ऐसा है।

**श्रोता :** आपने बहुत माल निकाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसी वस्तु है। आहाहा!

इसे पहले समझ में तो बात को ले, पहले ज्ञान में इसका निर्णय तो करे कि मेरा प्रभु

शुद्ध चैतन्यशक्ति के स्वभाव से भरपूर भगवान में मलिनता के परिणाम कहाँ से आये ? आहाहा ! आहाहा ! शक्कर के परिणाम पतले पड़े परन्तु कहीं रागरूप हो ? चिरायतेरूप हो ? वह शक्कर का पानी पतला पड़े तो भी मीठा रहता है । है ? आहाहा ! वैसे भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप-जानन-देखन-आनन्द आदि शक्ति की सामर्थ्यवाला प्रभु है, उसकी पर्याय में लहर आवे तो निर्मल ज्ञान-दर्शन आनन्द की आवे, भाई ! आहाहा ! इस द्रव्य का जिसे लक्ष्य हो, उसे पर्याय में आनन्द और ज्ञान की पर्याय की व्यक्तता / लहर आवे । आहाहा ! परन्तु इसे द्रव्यस्वभाव का लक्ष्य नहीं, इसलिए द्रव्य की जो व्यक्तता है, ज्ञान-दर्शन उपयोग की (उसकी) उसे खबर नहीं है । इसलिए उसके जानने-देखने के उपयोग में भावक का भाव भासित हो, वह मैं हूँ — ऐसा मानकर वहाँ अटक गया है । आहाहा !

बहिन की पुस्तक की माँग बहुत आती है । अब जगत का भाग्य, आहाहा ! अवसर पर आया, आहाहा ! अवसर पर आया, बापू ! भाई ! परन्तु समझना महापुरुषार्थ है । यह कोई भगवान की भक्ति कर दे या देव-गुरु-शास्त्र की प्रशंसा... आहाहा ! ऐसा किया... आहाहा ! इसलिए वह समझ में आ जाये — ऐसी वह चीज नहीं है । आहाहा ! बड़े गजरथ निकाले-पाँच-पाँच लाख का खर्च करके रथयात्रा निकाले, पच्चीस-पच्चीस, पचास-पचास घोड़े... ऐसे इक्कीस-इक्कीस हाथी... हमारे हुआ था न ? जब जयपुर में भगवान की रथयात्रा निकली, मैं वहाँ था और भगवान के रथ में बैठा था । इक्कीस हाथी, चालीस हजार लोग साथ में और चालीस हजार लोग साथ में तथा गाँव के तो लाखों लोग ऊपर से देखें... क्या है यह कोई ? कोई राजा आया है ? जयपुर, इक्कीस-इक्कीस हाथी, सामने शृंगार किये हुए और हजार-हजार लोगों के बाद एक-एक बैण्डबाजा, बड़ा लश्कर, देखने निकले लोग-गाँव-दिगम्बर साधु, देखने निकले परन्तु यह क्या है प्रभु ! यहाँ यह सब तो बाहर की चीज है । यह तो जड़ की क्रिया-बाहर की है और उसमें भाव होवे तो कदाचित् राग की मन्दता हो तो वह शुभ है और वह शुभ भी मलिनभाव है । आहाहा ! ऐसा ! वह भी भावक का भाव है, ज्ञायक का भाव नहीं । ज्ञायक का भाव नहीं, भावक का भाव है ।

**तब भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह के भाव, उससे अवश्य भेदभाव होता है....** क्योंकि भावक का भाव है, वह द्रव्यस्वभाव-ज्ञायक का भाव नहीं । आहाहा ! क्या शैली ! गजब शैली है ! ऐसी टीका अभी भरतक्षेत्र में कहीं नहीं है । दिगम्बर धर्म के सिवाय ऐसी बात कहीं नहीं है । आहाहा ! और उसका आत्मा जरा सा मध्यस्थ हो जाये तो उसे स्वीकार आवे कि बात तो यही है । आहाहा ! **भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह के भाव, उससे**

अवश्य भेदभाव होता है और आत्मा अवश्य अपने चैतन्य के अनुभवरूप स्थित होता है। आहाहा! यह मलिनभाव, यह भावक का भाव, ज्ञायक का नहीं है - ऐसा भेद करने पर ज्ञायकभाव की परिणति शुद्ध हो जाती है। आहाहा! इस राग से भिन्न पड़ने पर द्रव्यस्वभाव की शक्ति पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में ज्ञानी के ज्ञान का अनुभव होता है। इसका नाम धर्म है! अब ऐसी व्याख्या! समझ में आया? कहो, बाबूभाई! ऐसा सुना नहीं कहीं, वहाँ मांगरोल में! ऐसी बातें, बापू! आहाहा! मीठी मधुर वीणा बजती है। आहाहा!

यह ज्ञायकभाव... इसमें पुनरुक्ति लगे ऐसा नहीं है। आहाहा! यह ज्ञायकभाव भगवान, इसका व्यक्त भाव-प्रगट भाव तो ज्ञायक की परिणतिरूप भाव होता है, यह जानना-देखना, आनन्द आदि... और उस भावक का भाव विकार है, वह पर्याय में ऐसा दिखता है, वह भिन्न है - ऐसा जिसने भेदज्ञान किया, आहाहा! उसे ज्ञान में स्वभाव की अनुभूति रही, जो राग का-मलिनता का अनुभव था, उससे भेद किया तो अराग का अनुभव हुआ। शुद्ध चैतन्य की अनुभूति हुई। आहाहा!

अरे! लोग बेचारे विरोध करते हैं। बापू! माफ करना भाई! मार्ग तो यह है। तुम्हें दुःख लगे तो क्या करें, भाई! आहाहा! आहाहा! वस्तु तो यह है। तीन काल तीन लोक में यही वस्तु की स्थिति है। इसे दृष्टि में न लेकर जो मलिन परिणाम-जो भावक का भाव, उसे दृष्टि में लेना, वह तो मिथ्यात्वभाव - संसारभाव है। आहाहा! परन्तु उससे भिन्न पड़कर... क्योंकि वह पर का भाव है, स्व का भाव नहीं, इसलिए भिन्न हो सकता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! उपयोग में यह झलक दिखती है, वह तो शुद्ध उपयोग, उपयोग की चीज ऐसी है। (मलिन) भी दिखती है परन्तु वह है परभाव, उसे भिन्न पाड़कर प्रभु चैतन्य के स्वभाव सन्मुख होना, उसे ज्ञान की और शान्ति की अनुभूति हो, उसे परमात्मा यहाँ धर्म कहते हैं। ऐसी धर्म की शर्त है, बापू! आहाहा! यह भावार्थ हुआ।

कलश ३०

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम्।

नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३०॥

इसका हिन्दी बनाया है न, भाई! इस कलश में, बनारसीदासजी ने।

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं। अपने रससौं भर्यौ अनादि टेक हौं॥

मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमकूप है। सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है॥३३॥

यह मलिनता का परिणाम तो भ्रम का कुँआ है, आहाहा! जबकि मैं 'सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।' 'सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।'

भाषा कैसी की है? 'मोहकर्म मम नहीं नहीं भ्रमकूप है।' यह भ्रम भी मर्यादित कुँए जैसी है। आहा! आहा! परन्तु शुद्ध चेतना सिन्धु हमारा रूप है। आहाहा! यह है देखो! इस लोक में मैं.... श्लोक का (हरिगीत) बनारसीदास ने बनाया। इस जगत में अर्थात् जगत् सिद्ध किया। मैं स्वतः... स्वयं अपने से ही अर्थात् कोई उपदेश मिला, इसलिए पाता हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान और गुरु का उपदेश मिला, इसलिए मैं स्वयं अनुभवरूप होता हूँ ऐसा नहीं। ऐसा है। देशनालब्धि मिली, इसलिए मैं होता हूँ? कि नहीं। आहाहा! स्वयं से ही, स्वयं है न? मैं तो मेरे स्वरूप से ही प्रकाशित हूँ। एकं स्वं।

**श्रोता :** यह अपने से तो ठीक है परन्तु 'ही' कहाँ से निकाला ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह 'ही' निकाला वह स्वयं से 'ही' पर से नहीं — ऐसा सिद्ध करने को निकाला (कहा)। 'स्वयं एकं स्वं' ऐसा आया न, देखो न! एकं स्वं अपने एक.... स्वरूप को, भिन्न रागादि को नहीं, भिन्न भाव को नहीं। आहाहा!

मेरा प्रभु! एक आत्मस्वरूप प्रभु है। आहाहा! चैतन्यबिम्ब परमात्मस्वरूप मैं आत्मस्वरूप, मैं एकरूप हूँ। भिन्न-भिन्न प्रकार जो है, उन रूप मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। भाई! आहाहा! अरे! सुनने को मिले नहीं वे बेचारे कब विचारे और कहाँ जायें! अरे! उनकी भटकन कैसे मिटे? आहाहा! इस लोक में मैं... अर्थात् क्या? जगत का अस्तित्व है, उसमें मेरा अस्तित्व स्वयं से अपने एक आत्मस्वरूप का अनुभव करता हूँ,... आहाहा! मैं मेरे आनन्द का सागर नाथ, चैतन्यस्वभावी भगवान को पर के अवलम्बन और अपेक्षा बिना मेरे स्वभाव को मैं एकरूप अनुभव करता हूँ। मैं आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, शान्ति हूँ, स्वच्छ हूँ, प्रभु हूँ। आहाहा! यह जीव अधिकार है न? इसलिए जीव का स्वरूप पृथक् करके जीवपना यह है - ऐसा बतलाया है। आहा! इसलिए राग को अजीव कहा, जड़ कहा; चैतन्यस्वरूप नहीं, इसलिए जड़। आहाहा! क्योंकि राग है वह — चाहे तो भगवान की भक्ति हो या गुरु की भक्ति हो परन्तु राग है, वह अचेतन है। राग में स्वयं को जानने की ताकत नहीं (क्या कहा)? राग में स्वयं को जानने की ताकत नहीं; राग पर द्वारा-आत्मा द्वारा जानने में आता है, इसलिए वह राग अचेतन और जड़ है। आहाहा! कहो ईश्वरलालजी! ऐसी ईश्वरता है। आहाहा!

अब लोग बेचारे क्या करें? विरोध करें। भगवान! तत्त्व का विरोध करते हैं, प्रभु! तेरा तत्त्व ही ऐसा है। भाई! तुझे एकान्त लगे कि यह तो व्रत, नियम, तप, और भक्ति के भाव को राग कहकर उड़ा देते हैं। आहाहा! भाई! तुझे पता नहीं। तेरा चैतन्य भगवान अकेले ज्ञान-दर्शन आनन्द के स्वभाव से भरपूर प्रभु है, उसके उपयोग में राग कहाँ से आवे? (नहीं आवे)।

त्रिकाली उपयोगस्वरूप... उपयोग में उपयोग है। संवर (अधिकार) में आया है न, भाई! आहाहा! अर्थात्? निर्मल उपयोग परिणति में आत्मा है; राग में आत्मा नहीं। आहाहा! गजब शैली! दिगम्बर सन्तों की बातें परमात्मा को जाहिर / प्रसिद्ध करके पुकार करती है। ढिंढोरा पीटकर पुकारती है। दुनिया मानो या न मानो, समाज में संगठन रहो या न रहो! ये नागा बादशाह से आघा... आहाहा! आहा! दिगम्बर सन्त पुकार करते हैं ऐसे। आहाहा!

यह स्वयं से ही 'एक' और 'स्व' एक, एक रूप में भेद भी नहीं; राग तो नहीं परन्तु पर्याय का भेद भी नहीं ऐसा एक स्वं, एक स्वं, एक स्वं, एक हूँ, एक स्वयं, एक स्वयं, आहाहा! है न? एक अपना... एक और स्वं का अर्थ आत्मस्वरूप, एकरूप स्वं। एक अर्थात् अपना एक और स्वं अर्थात् अपना स्वरूप 'आत्मस्वरूप'। आहाहा! भाग्यशाली को कान में पड़े, ऐसी बात है बापू! रामजीभाई कहते हैं न... आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

**श्रोता :** अब भाग्य लेकर आये हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो इसे करना है न?

**श्रोता :** यह तो करना तो स्वयं को ही होता है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो कहा था यहाँ, स्वयं एकं एवं करता है, बताया इसलिए करता है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

**श्रोता :** गुरु तो बताकर निर्लिप्त रहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दूसरा क्या करे? वस्तु तो यह है। गति तो इसे करनी है न? चलना तो इसे है न? दूसरा मार्ग बतावे कि देखो, यह मार्ग है, यहाँ से जा। इन दो बाड़ के बीच से, परन्तु चलना तो इसे है न? कोई साथ आयेगा? और साथ आवे तो भी चलना तो स्वयं को है न? आहाहा!

**मैं,** 'कहे विचच्छन पुरुष', विचच्छन अर्थात् ज्ञानी, उसे विचच्छन कहते हैं। जगत के चतुर, वे सब पागल जैसे हैं।

**श्रोता :** पागल ही हैं, पागल जैसे ऐसा नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जगत के सब वकील और... यह बड़े वकील थे, तीस वर्ष पहले दो सौ रुपये लेते थे, बड़े पागल — एल.एल.बी. वाले बड़े पूंछड़े लगाये हों वकालात के... हजार-हजार रुपये दिन के लेते हों... बड़े पागल हैं। आहाहा!

यहाँ तो विचच्छन उसे कहते हैं कि जिसने राग से भिन्न पड़कर, मेरा चैतन्यस्वरूप शुद्ध है — ऐसा अनुभव हुआ, उसे विचच्छन और चतुर कहते हैं, बाकी सब पागल हैं। आहाहा! जिसके फल में चार गति मिले-भटकना (मिले), वह क्या चीज है, बापू? आहाहा! अरे...रे! भवभ्रमण करता कहाँ भव जाये... अरे...रे! एक सबेरे उस दिशा को जाते हैं और वहाँ रखते हैं, क्या कहलाता है? प्रकाश, हों! बैटरी रखते हैं, वहाँ एकदम छोटे जीव ऐसे आते हैं छोटे जीव, जंगल में। बेचारे चौइन्द्रिय लगते हैं। ऐसा छोटा शरीर, ऐसे हों ऐसे हों, उन्हें कुछ पता नहीं। कहाँ क्या करते हैं? कौन हैं यह? अरे! कब मनुष्य हो, इन्हें ऐसा सुनने कब मिले और सुनने के बाद भी भेद कब करे? आहाहा! बहुत दुर्लभ वस्तु, भाई! आहाहा!

**इस लोक में मैं सम्यग्दृष्टि जीव, धर्मी जीव ऐसा अपने को मानता है कि मैं स्वयं से ही एक 'स्व' एक 'स्व' आत्मस्वरूप का अनुभव करता हूँ... पर के कारण नहीं, उपदेश के कारण नहीं, राग के कारण नहीं — ऐसा कहते हैं। मेरा नाथ भगवान चैतन्यस्वरूपी, उसे मैं एकरूप हूँ, उसे मैं अनुभव करता हूँ। आहाहा! इसका नाम विचच्छन और सम्यग्दृष्टि! आहाहा!**

**'सर्वतः स्व-रस-निर्भर-भावं' जो स्वरूप... मेरा। सर्वतः... चारों ओर से अपने निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से पूर्ण भरे हुए.... आहाहा! मेरा प्रभु तो शुद्ध चैतन्यसिन्धु - सागर, बड़ा सागर, आहाहा! ज्ञानादि गुणों का तो गोदाम,... मेरा नाथ तो ज्ञानादि गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय और स्वभाव का सागर (है)। आहाहा! ऐसा जो स्वरूप सर्वतः अपने निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से.... अर्थात् स्वभाव से यहाँ बात है। स्वभाव पूर्ण भरपूर भाववाला है। परिणमन शब्द अर्थात् पारिणामिक स्वभाव से भरपूर परिपूर्ण है। परिणमन अर्थात् पर्याय नहीं लेना। समझ में आया? आहाहा!**

अरे! समय चला जा रहा है। बिजली की चमक सी आयु पूर्ण हो जायेगी, भाई! यह चमक चली जायेगी। आहाहा! उसमें यह मोती पिरो ले। आहाहा! बिजली की चमक में

मोती पिरो ले तो पिरो ले। आहाहा! मेरा नाथ चैतन्यस्वरूप एक स्वरूप से विराजमान है। निजरसरूप चैतन्य के परिणामन से पूर्ण भरे हुए भाववाला है;.... मैं ज्ञान-दर्शन आनन्द के भाव से पूर्ण भरपूर हूँ। विकार तो नहीं परन्तु अल्पज्ञपना भी नहीं। आहाहा!

इसलिए यह मोह मेरा.... कश्चन अस्ति-नास्ति कुछ भी नहीं लगता.... आहाहा! यह शुभाशुभ रागादिभाव... यह मोहभाव क्योंकि यह परतरफ की सावधानीवाला भाव (है), मेरे स्वरूप के सावधानी के भाव से यह भिन्न भाव है। इसका और मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! चैतन्य के स्वभाव से भरपूर मैं, उसे यह राग जो पर तरफ का मोहभाव, वह मेरा कुछ नहीं। नास्ति, नास्ति कश्चन अर्थात् कुछ भी नहीं लगता। इसका और मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। नास्ति, नास्ति दो बार है न? कुछ भी नहीं कोई भी नहीं... मेरे और इसके... आहाहा! आहाहा!

तब अस्ति क्या है अब? मेरा अस्तित्व मेरा प्रभु, उसका अस्तित्व क्या है? इसकी (मोह की) तो मुझमें नास्ति है; अस्तित्वरूप मेरी अस्ति चीज प्रभु है, वह क्या है? 'शुद्ध-चिद्घन-महः-निधिः अस्मि' आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्य के समूहरूप.... है? 'शुद्ध-चिद्घन' समूह... 'महः-निधिः' तेजः पुंज का निधि हूँ। महः अर्थात् तेज। आहाहा! मैं तो शुद्ध चिद्घन चैतन्य का समूह, चैतन्य का समूह भगवान तो मैं हूँ। आहाहा! एक बात। तेजपुंज की निधि। महः-निधि, महः अर्थात् तेज; निधि अर्थात् समुद्र; अस्मि अर्थात् मैं हूँ। आहाहा! ऐसी बात है। भावकभाव के भेद द्वारा ऐसा अनुभवन करे, तब उसे सम्यग्दृष्टि और धर्मी कहने में आता है, बापू! आहाहा! समझ में आया? विशेष कहा जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२५

श्री बहिनश्री के वचनामृत, बोल - ५९ से ६१  
प्रवचन - १८, दिनांक - २३-०६-१९७८

वचनामृत ५९, ५९ है न? ५८ हो गया। जिस जीव का ज्ञान अपने स्थूल परिणामों को पकड़ने में काम न करे... क्या कहते हैं? जो शुभ और अशुभपरिणाम हैं, वे स्थूल हैं। उन्हें जो अभी पकड़ने में न आवे, इसे ख्याल में न आवे, वह सूक्ष्म परिणाम को तो कैसे पकड़ेगा? धीरज की बातें हैं यह। जिस जीव का ( ज्ञान ) अपने स्थूल परिणामों को... पर की तो बात ही छोड़ दी, वरना शरीर की पर्याय प्रतिक्षण होती है, वह जड़ का परिणाम है, उसे भी अपना माने और भिन्न करना न आवे, वह तो बहुत स्थूलबुद्धि है। आहा...हा...!

अपने जो कुछ शुभ-अशुभभाव होता है, वह स्थूल है। उन स्थूल परिणामों को पकड़ने में अपना ज्ञान काम न करे वह जीव अपने सूक्ष्म परिणामों को कहाँ से पकड़ेगा?... सूक्ष्म अर्थात् ज्ञान के परिणाम। शुभाशुभभाव स्थूल परिणाम हैं, उन्हें भी अभी पकड़ना न आवे, उसे ज्ञान की वर्तमान पर्याय सूक्ष्म है, उसे वह पकड़ नहीं सकेगा। आहा...हा...! सार है। यह तो बहुत धीरे से धीरज से पकड़े, समझे उसकी बात है भाई! आ...हा...! स्थूल परिणामों को पकड़ने में अपना ज्ञान... अपना ज्ञान काम न करे तो वह सूक्ष्म परिणाम को नहीं पकड़ सकता। वह सूक्ष्म परिणामों को कहाँ से पकड़ेगा?... आहा...हा...! अर्थात् ज्ञान के परिणाम, जो पर्याय सूक्ष्म है, उसे कहाँ से पकड़ेगा? आहा...हा...! वर्तमान जो परिणाम, आत्मा के गुण के जो परिणाम... स्थूल परिणाम तो शुभ-अशुभ में गये, अब जो अनन्त गुण का परिणामन — सूक्ष्म पर्याय है, उसे पकड़े नहीं, वह परिणाम कहाँ से पकड़ेगा?

और सूक्ष्म परिणामों को न पकड़े तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा? आहा...हा...! तीन बातें ली हैं — एक-शुभाशुभभाव, वह स्थूल। यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हैं, वे तो स्थूल परिणाम हैं। (समयसार के) पुण्य-पाप अधिकार में है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, अशुभभाव स्थूल है, उस स्थूल को जानना न आवे, पकड़ना न आवे,



वह उसकी वर्तमान पुण्य-पाप के रागरहित पर्याय को कैसे पकड़ सकेगा ? आहा...हा... ! जिसे यह सूक्ष्म परिणाम पकड़ना नहीं आता, उसे पूरा तत्त्व-स्वभाव शुद्ध है, (वह कहाँ से पकड़ में आयेगा ?) वह तो प्रगट है — सूक्ष्म परिणाम तो प्रगट है। ऐसे परिणाम को भी अन्दर में पकड़ना न आवे तो उसे सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली सूक्ष्म, अखण्ड सूक्ष्म में सूक्ष्म... ओहो...हो... ! और वह भी अव्यक्त है, पर्याय में वह नहीं आता। आहा...हा... ! ऐसा जो सूक्ष्म स्वभाव... परिणाम सूक्ष्म को न पकड़े, वह सूक्ष्म त्रिकाली स्वभाव को कैसे पकड़ सकेगा ? बहुत मुद्दे की बात है। आहा...हा... !

**तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा ?** चैतन्य का स्वभाव अरूपी है। वह स्थूल शुभ-अशुभ परिणाम (भी) है तो अरूपी परन्तु स्थूल है और इसकी पर्याय का परिणाम है, वह सूक्ष्म है, उस पर्याय का भी ज्ञान करना न आवे, वह त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, जो पर्याय के समीप में है, वह तत्त्व अनन्त काल में अनजान रह गया, उसे कैसे पकड़े ? समझ में आया ? शरीर आदि जड़ हैं, उनकी तो जो पर्याय होती है, वह तो पर-परिणाम है, उसे भी जो अपना परिणाम मानता है, वह तो बहु स्थूल मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! अब यहाँ शुभ-अशुभ स्थूल परिणाम है, उन्हें भी जानना न आवे और जानकर अपना माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। अब एक समय के जो परिणाम, जो राग को जाननेवाली वर्तमान प्रगट पर्याय है, उसे पकड़ना न आवे... आहा...हा... ! तो उसकी पर्यायबुद्धि का भी ठिकाना नहीं होता। आहा...हा... ! भाषा सादी है परन्तु गम्भीर है।

यह तो प्रतिष्ठित हो, और इसे पढ़े तो ऐसा हो जाता है कि बात कुछ दूसरी है। आहा...हा... ! कहा न उसने चित्रभानु ने (मन्दिरमार्गी साधु ने) हाथ में पुस्तक आयी तो (बोला) ओ...हो... ! यह क्या ? भाई ! मुझे दो न। ले जाओ, जाओ, ले जाओ, हम दूसरा ले लेंगे। लो, वह साधु था, फिर विवाह किया, स्त्री की, वहाँ भाषण करता है, वहाँ संस्था में बड़ा अध्यक्ष है, मन्दिरमार्गी साधु था। अमेरिका में उसने विवाह किया है, यहाँ बीस - पच्चीस... उसके भक्त लेकर आया था, उसने यह देखा और जहाँ यह पढ़ा। ओ...हो... ! बहुत प्रसन्न हुआ।

यहाँ तो तीन सूक्ष्म कहे। हैं तो शुभ-अशुभ वह सूक्ष्म, क्योंकि वह अरूपी है, उसमें कहीं रजकण नहीं हैं। क्या कहा ? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, यह परिणाम कहीं रूपी नहीं हैं, इनमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है परन्तु निमित्त जो रूपी है, उसके संग से

हुए; इस कारण इन्हें रूपी कहा गया है और इन्हें अजीव कहा गया है। आहा...हा... ! यह व्रत के, तप के, भक्ति के भाव जो शुभ हैं, वे स्थूल हैं और अजीव हैं। आहा...हा... ! क्योंकि अपने परिणाम जो हैं, जिनमें चैतन्यस्वरूपी स्वभाव, चैतन्यस्वभाव का जिनमें अभाव है, उन्हें भी पकड़ना नहीं आता, क्योंकि वह तो अनादि का किया हुआ है और अनादि का अभ्यास है। आहा...हा... ! तो इसके वर्तमान ज्ञान की पर्याय के परिणाम-पर्याय वह कैसे पकड़ सकेगा ? और जब उस सूक्ष्म प्रगट परिणाम को नहीं पकड़ सकता तो जो अप्रगट पूरा तत्त्व ज्ञायकस्वरूप परमात्मा स्वयं प्रभु है, उसे वह कैसे पकड़ सकेगा ? कहो देवीलालजी ! माल है यहाँ तो, भाई ! आहा...हा... ! यह करना और यह करना और... आहा...हा... !

यह विकल्प शुभ हो परन्तु इसे करता हूँ और करने योग्य है (— ऐसा जो मानता है), वहाँ तो आत्मा की मृत्यु है, क्योंकि जो ज्ञानस्वभाव है, उसका जाननेवाला, जानना स्वरूप है, ऐसे जानन स्वभाव को राग का और क्षणिक का और विकृत का, स्थूल परिणाम का कर्तृत्व सौंपना... आहा...हा... ! वह आत्मा की हिंसा है। आहा...हा... ! क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह तो जानने-देखनेवाला है — ऐसा इसने नहीं माना और इसने इस राग का कर्तृत्व स्वीकार किया, यह ज्ञाता-दृष्टा इसका त्रिकाली स्वभाव, उसका जिसने नकार किया, उसने अपनी हिंसा की है। यह बात कैसे जँचे ? कन्नूभाई ! ये सब ऐसी बातें हैं। तुम्हारे जज के नियम की अपेक्षा ये सब नियम अलग हैं। आहा...हा... !

जिसे अपने परिणाम... ऐसा कहना है न ? पर का तो एक ओर रख — शरीर, वाणी, कर्म, जड़। अपने में होनेवाले शुभाशुभभाव को भी जानने में और पकड़ने में जो ज्ञान काम नहीं करता, वह ज्ञान, ज्ञान के परिणाम को पकड़ने में काम कैसे करेगा ? आहा...हा... ! और जो ज्ञान के परिणाम, इसके अपने परिणाम को पकड़ने में काम नहीं कर सके, वह स्वयं से पर भिन्न महा भगवान पूर्ण है, उसे कैसे पकड़ सकता है ? ठीक है देवीलालजी ? आहा...हा... !

तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा ? आहा...हा... ! एक तो बड़ा पढ़ा हुआ — ग्यारह अंग का पढ़ा हुआ हो तो भी एक बार चोट खा जाये ऐसा है कि आ...हा... ! क्या है यह ? थोड़े शब्दों में क्या कहते हैं यह ? आहा...हा... ! जिसे प्रगट पर्याय है, जिसमें अनादि से रमा है, उसमें इसका तत्त्व पूरा टिका है (ऐसा) मानकर (रमा है), उसके परिणाम का भी जिसे पता नहीं, ज्ञान उन्हें पकड़ नहीं सकता — ऐसे परिणाम को, अपने सूक्ष्म परिणाम

को ज्ञान पकड़ नहीं सकता, वह ज्ञान त्रिकाली स्वभाव को कैसे पकड़ सकेगा ? आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं।

इसलिए **ज्ञान को सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके...** आहा...हा... ! वर्तमान ज्ञान की पर्याय को... आहा...हा... ! सूक्ष्म और तीक्ष्ण — बारीक... आहा...हा... ! करके **स्वभाव को पकड़े...** त्रिकाली प्रभु अस्ति चीज प्रभु स्वयं है। आहा... ! ऐसा प्रभुत्व स्वभाव को सूक्ष्म, तीक्ष्ण ज्ञान द्वारा **स्वभाव को पकड़े तो भेदविज्ञान हो**। आहा...हा... ! राग से तो भेदज्ञान हो परन्तु पर्याय सूक्ष्म होकर उसे पकड़े तो ज्ञान से, पर्याय से भी द्रव्य का भेदज्ञान हो। आहा...हा... ! समझ में आया इसमें कुछ ?

**प्रश्न :** ज्ञान को पहले सूक्ष्म कैसे करना ? यह पहले बताईये।

**समाधान :** अन्दर सूक्ष्म (करना)। अन्दर अन्दर में सूक्ष्मता, अन्दर जो स्थूल है, उसे सूक्ष्म करना, उपयोग बहुत सूक्ष्म करना। करना है यहाँ तो उसकी बात है न ? आहा...हा... ! पर के उपयोग में जो जुड़ गया है, वह तो स्थूल में जुड़ गया है। यहाँ तो उससे मन्द करके, धीर, सूक्ष्म, ज्ञान को बारीक करके, करना है, वह कैसे करना ? यह प्रश्न (कहाँ है) ? करना है। आहा...हा... ! अब ऐसी बात ! अन्तर में त्रिकाली स्वभाव पकड़ में आये — ऐसे परिणाम करना। ऐसे करना। क्योंकि ऐसा करना। आहा...हा... ! थोड़े शब्दों में बहुत गम्भीर भरा है।

**ज्ञान को सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके...** परिणाम, हों ! ज्ञान की पर्याय को, जो स्थूल है, उसे सूक्ष्म—धीर करके **स्वभाव को पकड़े तो भेदविज्ञान हो**। तो सम्यग्दर्शन हो। यह सम्यग्दर्शन की विधि ! आहा...हा... ! मूल चीज की यह विधि है। अब इसका तो कुछ पता नहीं पड़ता और व्रत ले लो, तपस्या करो, भक्ति करो, हो गया कल्याण ! आहा...हा... ! तू कहता है, ये सब स्थूल परिणाम हैं, ये भी स्थूल हैं—ऐसे भी जिस ज्ञान को जानने की ताकत नहीं। ज्ञान पर्याय तो स्वयं की है। आहा...हा... ! उस ज्ञान की पर्याय को ज्ञान सूक्ष्म किस प्रकार जाने ? वह ज्ञान का परिणाम, वह ज्ञान की पर्याय उस ज्ञान के सूक्ष्म परिणाम को वह ज्ञान किस प्रकार जाने ? और ज्ञान के सूक्ष्म परिणाम को भी जब न जाने, जो व्यक्त है, उसमें कार्य हो रहा है, प्रगट है - ऐसे सूक्ष्म परिणाम को भी पकड़ने की शक्ति न हो, वह अन्दर सूक्ष्म त्रिकाली प्रभु... आहा...हा... ! चैतन्य परमात्मस्वरूप भगवान स्वयं... आहा...हा... ! जो एक समय की पर्याय में भी नहीं आता, (उसे कहाँ से पकड़ेगा) ? जो एक समय की पर्याय

में नहीं आता, एक समय की पर्याय को जो स्पर्श नहीं करता और स्वभाव का ध्रुवपना कायम रखता है, वह सूक्ष्म परिणाम ऐसा कर... आहा...हा... ! अर्थात् बहिर्मुख में से हटकर अन्तर्मुख जाने के जो परिणाम, वे सूक्ष्म और तीक्ष्ण करके पकड़े तो वास्तव में राग से तो भिन्न होता है, परन्तु पर्याय जिसे जानती है, उस पर्याय से भी वस्तु भिन्न है — ऐसा भेदज्ञान हो, भोगीरामजी ! ऐसा राम है ।

क्या करे ? अभी प्रभु के मार्ग का बहुत वैसा कर डाला है - सबने मिलकर कुचल डाला है, जैसे वह गोदड़ा होता है न गोदड़ा ? रजाई... रजाई । आहा...हा... ! वह गुड़ के रस के पास रजाई पड़ी हो, गुड़ का रवा... गुड़ का रवा होता है न ? बड़े-बड़े चार-चार मण के हो उसमें से पिघले, गुड़ पिघले, तो रजाई या गोदड़ा सब मीठे हो जाएँ; उसे कुत्ता आवे तो स्वाद लेने के लिये पूरी रजाई को फाड़ डालें । आहा...हा... ! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अखण्ड अभेद में विश्राम लेने जैसा है - उसमें रहने जैसी चीज है, उसे इस पर्यायबुद्धिवाले, रागबुद्धिवाले ने नोंच डाला है, उसे कुचल डाला है । आहा...हा... ! कठिन बात बापू ! यह तो सत्य के उद्घाटन के लिये है । किसी व्यक्ति के अनादर के लिये यह नहीं है । प्रभु ! वह आत्मा भगवान है, भाई ! आहा... ! किसी व्यक्ति का अनादर ( करने के लिये या ) उसकी निन्दा करने के लिये यह बात नहीं है, प्रभु ! यह तो सत्य कैसा होता है और सत्य कैसे पकड़ में आये ? यह तो सत्य के उद्घाटन का समय है । है ? आहा...हा... ! अरे ! मनुष्यपना अनन्त काल में मिला, उसमें इस प्रकार सूक्ष्म परिणाम से त्रिकाली सूक्ष्म (स्वभाव) अनुभव में न आवे तो करने का तो यह था । आहा...हा... !

**मुमुक्षु :** त्रिकाली को सूक्ष्मरूप से पकड़े किस प्रकार ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह ज्ञान के परिणाम सूक्ष्म है । इस राग जैसे ये परिणाम नहीं हैं । राग जैसे ये जानने के परिणाम नहीं हैं । इस कारण इसे परिणाम में जरा लक्ष्य जाये तो उसकी सूक्ष्मता हो । आहा...हा... !

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तब इसे पकड़े । यह परिणाम है, उसका जाननेवाला यह है अथवा इसका जाननेवाला इस प्रकार है । आहा...हा... ! ऐसा अटपटा है । यह ५९ ( बोल पूरा ) हुआ । ५९ हुआ न ! आहा...हा... !

अब, ६० — अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में भटकते-भटकते,... गति-

गति की, जन्म-मरण की गति में लाईन में... आहा...हा... ! परिभ्रमण करते-करते एकेन्द्रिय के, दोइन्द्रिय के, त्रिइन्द्रिय के, चतुरिन्द्रिय के, पंचेन्द्रिय के मनुष्य के, नारकी के; चींटी के, कौवे के, पशु के ऐसे अवतार अनादि से किये हैं। **भटकते-भटकते, सुख की लालसा में...** आत्मा में सुख है, उसका पता नहीं; मेरा प्रभु ही सुखरूप है, मेरे सुख के लिये किसी परपदार्थ की अपेक्षा नहीं है — ऐसा जिसे पता नहीं है, वह **सुख की लालसा में विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते...** आ...हा... ! सुन्दर रूप, प्रशंसा की भाषा... आहा...हा... ! पैसा प्राप्त करने में, अनुकूल स्त्री प्राप्त करने में, लड़के ठीक जगह हों, उसमें दौड़ते-दौड़ते स्वयं उनमें से सुख मिलेगा, इस प्रकार विषयों की लालसा में अनादि से दौड़ता फिर रहा है। आनन्द का सागर तो स्वयं है, वहाँ तो जाता नहीं, वहाँ देखने को निवृत्ति-फुरसत लेता नहीं, आहा...हा... !

**सुख की लालसा...** सुख की भावना, इच्छा। **विषयों के पीछे...** निन्दा-प्रशंसा के शब्द, रूप-कुरूप-सुरूप, ऐसे रस अनुकूल-प्रतिकूल, स्पर्श अनुकूल-प्रतिकूल, आहा...हा... ! इन विषयों के पीछे... आहा...हा... ! **दौड़ते-दौड़ते...** आहा...हा... ! वहाँ गति कर रहा है। परन्तु जहाँ भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप अन्दर है, वहाँ गति करने की सूझ नहीं पड़ती है। आहा...हा... ! भगवान को नजर से-आँखों से देखना, वह भी विषय है, इन्द्रिय का विषय है। भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है और इन्द्रिय है। भगवान स्वयं साक्षात् तीन लोक का नाथ हो परन्तु वह भी इन्द्रिय का विषय और इन्द्रिय है। आहा...हा... ! इन पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुख के लिये, धर्म के लिये... धर्म के लिये अर्थात् सुख के लिये आहा...हा... ! **विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखों को सहता रहा है।** अनादि काल से इसका एक भी पल अनन्त दुःखों को सहन किये बिना नहीं गया है। आहा...हा... !

अरबोंपति हो या जैन का पंच महाव्रत पालनेवाला साधु हो... आहा...हा... ! उसे वास्तव में पर की लालसा है। आहा...हा... ! उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते, आहा...हा... ! भगवान के पीछे दौड़ते-दौड़ते, वह भी पीछे दौड़े तो यह तो राग है। आहा...हा... ! गिरनार, शत्रुंजय और सम्मेदशिखर।

**मुमुक्षु :** सोनगढ़ आवे...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु यहाँ कहाँ उसका सुख पड़ा है ? सुख के लिये वहाँ दूँढकर जाऊँ तो सुख मिलेगा - ऐसा है ? आहा...हा... ! उन केशुभाई ने कहा था न ? वढ़वाण में

नहीं ? (केशुलाल) आता है न ? उसे किसी ने पूछा कि अरे, तुम निमित्त से नहीं होता, ऐसा तो मानते हो, फिर भी तुम बारम्बार सोनगढ़ जाते हो तो वह निमित्त है, यह क्या ? तब उन्होंने जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता और निमित्त कुछ नहीं करता — ऐसा निर्णय करने के लिये वहाँ जाते हैं। आहा...हा... ! जरा चतुर व्यक्ति है। दूसरे एक भाई थे वे स्वर्गस्थ हो गये, नहीं ? वे दिशाश्रीमाली ( थे ), यह दशाश्रीमाली है। आहा...हा... !

वह अनन्त दुःखों को सहता रहा है। समयसार की ७४ गाथा में तो ऐसा कहा है कि जो शुभराग है वह वर्तमान दुःखरूप है और भविष्य में दुःख का कारण है — ऐसा कहा है। आहा... ! गजब बातें हैं, बापू ! अर्थात् क्या ? कि तू जो शुभभाव करे — दया, दान, व्रत, तप आदि शुभ ( भाव करे ), उससे पुण्य बँधेगा। पुण्य बँधेगा, उससे संयोग मिलेंगे, चाहे तो वीतराग की वाणी मिले और वीतराग मिले तो वह संयोग है और तुझे शुभभाव वर्तमान दुःखरूप है तथा उसके फलरूप में भी दुःखरूप है, क्योंकि तू सुनने जायेगा, वहाँ राग होगा और राग दुःखरूप है। आहा...हा... ! ऐसी बात ! कठिन बात है, प्रभु ! क्या हो ? आहा...हा... !

अनन्त दुःखों को सहता रहा है। आहा...हा... ! कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले... सच्चा सुख। सुख तो आत्मा में है, भाई ! पाँच इन्द्रिय के विषय, अर्थात् ? विषय अर्थात् यह भोग और पैसा और इतना — ऐसा नहीं। आहा...हा... ! जो कुछ कान से और आँख से देखने में चीज आती है, वे सब विषय हैं। आहा...हा... ! इसने पर को देखने के लिये और पर को प्राप्त करने के लिये तेरी लगन, वह सब दुःख सहन किया है। आहा...हा... ! ऐसी बात सुनने में कठिन पड़ती है। अरे ! कभी इसने वीतराग परमेश्वर का मार्ग क्या है अर्थात् तेरा स्व-आश्रय मार्ग क्या है ? ( — यह समझने की दरकार नहीं की है )। आहा...हा... ! ( स्व आश्रय से मार्ग है ) ऐसा न मानकर पर आश्रय में दौड़ता हुआ, पर आश्रय में जहाँ हो वहाँ भटकता-भटकता ( भ्रमता है )। आहा...हा... ! शत्रुंजय जायें तो धर्म हो, गिरनार जायें तो हो, सम्मेदशिखर से तो बहुत भगवान मोक्ष पधारे, वहाँ जायें तो हो... वहाँ जायें तो वहाँ कहाँ धर्म है ? वहाँ कहाँ सुख है ? धर्म और सुख तो यहाँ अन्दर है। आहा...हा... !

कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शङ्का रखकर अटक गया,... ( कोई ऐसा कहे कि ) ऐसी बातें क्या करते हो ? ऐसा सूक्ष्म ? लो, सुख मेरे आत्मा में है, तो हम तो अनादि से हैं, क्यों हमको सुख नहीं आता ? सुख आत्मा में है ? तो हम तो अनादि के हैं

और हमें सुख तो कुछ मिला नहीं। ऐसे बतलानेवाले मिले तो भी ऐसी शंका करता है परन्तु वह सुख जहाँ है, वहाँ तू गया नहीं। उसका आदर नहीं किया तो किस प्रकार मिले? आहा...हा...! मिले तो शङ्का रखकर अटक गया,... एक बात। अटकने की बात है।

**कभी सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके...** यह तो बहुत सूक्ष्म बातें किया करते हैं - ऐसा कहकर छोड़ दिया। कहाँ आत्मा और आत्मा के अन्दर में सुख है, अन्दर में जा तो तुझे आनन्द मिलेगा, ये सब बातें करते हैं। कुछ करने को नहीं कहते और यह देखो (ऐसा कहा करता है)। करने को कहते नहीं, करने को कहे तो कर भी सकते हैं। यह तो कहते हैं, कुछ करने जायेगा तो तुझे दुःख, मिथ्यात्व होगा। आहा...हा...! ऐसा वीतराग का मार्ग होगा? आ...हा...! **सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके...** आहा...हा...! **अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करने से वंचित रहा,....** ऐसा मार्ग, ऐसा नहीं होता। ऐसा कुछ अभी पकड़ में नहीं आता, समझ में नहीं आता, ऐसा मार्ग? आहा...हा...! बापू! यह मार्ग ऐसा है। आहा...हा...! दो बातें हुई।

**कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा,...** अन्तर में जाने का जो पुरुषार्थ है, वह नहीं किया और बाहर के इस पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति, यह पुरुषार्थ करके वहाँ अटक गया। उसमें आत्मा प्राप्त नहीं किया। **कभी पुरुषार्थ किये बिना भटका रहा.... कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए वहाँ से अटका और गिरा।** शुभ में अटका, वह तो वापस गिरा, अन्दर जाना है, वह पुरुषार्थ नहीं किया। आहा...हा...! शुभभाव का पुरुषार्थ किया - वाँचन का, मनन का, वह पुरुषार्थ किया परन्तु अन्दर जाने के लिये जो पुरुषार्थ चाहिये, वह पुरुषार्थ नहीं किया। बहुत सूक्ष्म बात है। आहा...हा...!

**पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए...** अन्दर में जाने का जो कुछ पुरुषार्थ चाहिये, वह नहीं किया। वहाँ से अटका और गिरा। आहा...हा...! द्रव्यसंयम पालन किया — 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक उपज्यो फिर पीछे पटक्यो' — सज्जाय में आता है। पंच महाव्रत हजारों रानियाँ छोड़कर, दया, दान, अपने लिये बनाया हुआ आहार न ले — निर्दोष आहार ले, हमें यह नहीं चलता, हमें यह नहीं चलता,... (जैसे) चाण्डाल का लड़का था, (वह) ब्राह्मण के घर गया तो (कहता है) हमारे यह नहीं चलता, हमारे यह नहीं चलता। इसी प्रकार शुभभाव में आया तो यह हमारे नहीं चलता, पुत्र नहीं चलता, स्त्री नहीं चलती (ऐसा कहता है) परन्तु शुभभाव वह स्वयं चाण्डालनी का पुत्र है। उसमें

लिखा है, कलश टीका में। आहा...हा...! जैसे वह चाण्डालनी के घर में उत्पन्न हुए दो लड़के, एक वहाँ घर में रहा, एक ब्राह्मण के घर गया। वह कहता है, हमारे यह नहीं चलता, हमारे यह नहीं चलता; हैं तो दोनों चाण्डालनी के पुत्र। इसी प्रकार शुभभाववाला... चाण्डालनी के घर में रहा वह तो अशुभभाव (में रहा)। शराब पीवे, शराब में नहाये — ऐसा करे और यह कहता कि हमारे यह नहीं चलता। विषय-कषाय चलते हैं — ऐसा माननेवाला तो अशुभ में जाता है परन्तु यह विषय-कषाय नहीं चलते, यह हमारे नहीं चलता, परन्तु वह सब तो शुभभाव है। आहा...हा...! आत्मा चलता है, इसमें यह सब नहीं चलता — ऐसा आ गया परन्तु यह आत्मा चलता है, इस ओर नहीं आया। आहा...हा...! कितनों ने ही तो ऐसा पहली-पहली बार सुना हो... ऐसा क्या होगा यह ? बापू! मार्ग तो यह है, भाई! आहा...हा...!

इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। आहा...हा...! किसी समय ऐसा हुआ कि अभी थोड़ा समय है, अभी तो जवानी है, बाद में करेंगे। आहा...! कल समाचार-पत्र में आया था, पढ़ा था? बिहार में देश है। कैसा सहेद गाँव! भाई कहते थे, विवाह का दिन था, मण्डप (बँधा हुआ) था। विवाह के दिन दोनों आये। पति-पत्नी दोनों बैठे, मन्त्र जपते हैं, तुरन्त मन्त्र जपते-जपते वहाँ हार्टफेल, वहाँ वर का हार्टफेल, कल आया है। आहा...हा...! ऐसा तो अनन्त बार हो गया है, एक बार नहीं हुआ। यह किसी को होता है, ऐसा अनन्त बार हो गया है। अनन्त काल में अनन्त बार तुझे भी हो गया है। इसका दृष्टान्त देकर उसे ही हुआ है — ऐसा नहीं। आहा...हा...! वह युवा व्यक्ति होगा। आहा...हा...!

एक तो पहले यह सुना था कि विवाह के समय पैर नीचे था और मण्डप में सर्प आया, काटा, और वहीं स्वामी मर गया — वर वहीं का वहीं मर गया। ऐसा तो सुना था परन्तु यह तो एकदम हार्ट बन्द हो गया। आहा...हा...! नाशवान चीज में क्या नहीं होगा? आहा...हा...! उसे जरा पहले दर्द तो उत्पन्न हुआ होगा परन्तु विवाह करने के उत्साह में... आहा...हा...! एकदम हृदय बन्द हो गया, हार्ट बन्द हो गया। आहा...हा...! लग्न के मण्डप के नीचे। चिट्ठी थी, कोई लाया था, किसमें थी वह? हिन्दी? गुजराती। गुजरात समाचार। ठीक, आहा...हा...! कैसी स्थिति! आहा...हा...! ऐसे भाव में मरकर बेचारा कहाँ जाये? तिर्यच हो, क्योंकि बेचारा आर्य मनुष्य हो, माँस तो खाता न हो... शराब-माँस खाता न हो तो नरक में तो नहीं जायेगा परन्तु आहा...हा...! यहाँ वर विवाह करने का प्रसंग और



मरकर मुर्गी और बकरी का बच्चा हो... आहा...हा...! ऐसे अवतार किये बापू! ऐसे अनन्त अवतार किये। आहा...हा...! ऐसा कहते हैं न? देखो न?

यह जीव इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। आहा...हा...! अभी जवानी है, कुछ वृद्धावस्था आयेगी तब करूँगा। आहा...हा...! उसमें यह वृद्धावस्था आवे, रोग आवे, आहा...हा...! हो गया। अब हम क्या करें? ऐसे कई-कई प्रसंग में स्वरूप में जाने में अटका है, कहते हैं। आहा...हा...! अटकने के अनन्त कारण और अन्तर जाने का एक ही कारण। आहा...हा...! अन्तर भगवान पूर्णानन्द का आश्रय लेना, वह एक ही कारण और अटकने के तो अनन्त कारण हैं। हमने इतना तो किया, ब्रह्मचर्य तो पालते हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य है, हमने स्त्री को कभी छुआ नहीं, स्त्री ऐसा कहे कि हमने पुरुष को छुआ नहीं, इतना तो किया है या नहीं? परन्तु उसमें तूने क्या किया? यह तो कोई राग की मन्दता रखी हो तो उसे शुभभाव कहा जाता है। यह ऐसा मानकर अटका और अन्दर नहीं गया। आहा...हा...! हमें इतना ज्ञान तो है न! बस, जानपना है तो धीरे-धीरे काम करेंगे — ऐसा करके भी अटका है।

इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। पुण्योदय से यह देह प्राप्त हुआ,... अब देह की बात करते हैं। पूर्व के पुण्य के कारण देह मिला... यह दशा प्राप्त हुई... सुनने की... ऐसे सत्पुरुष का योग मिला;... धर्मात्मा (का योग प्राप्त हुआ)। अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा... आहा...हा...! कब करेगा? प्रभु! आहा...हा...! पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा? आहा...हा...! अभी नहीं, अभी नहीं; बाद में करूँगा, बाद में करूँगा (ऐसा माननेवाला) का बाद में ही रहेगा। यहाँ तो शास्त्र के शब्द ऐसे हैं, आज ही कर! आहा...हा...! और हमने देह तथा आत्मा को भिन्न करके बतलाया है... किसे यह भिन्न अनुभव नहीं होगा? आहा...हा...! वाणी तो देखो! एक श्लोक आता है न? देह, काया... आहा...हा...! काया में तो रागादि आ जाते हैं। राग और काया दो (से) भिन्न प्रभु अन्दर है। आहा...हा...! ऐसा जिनने बताया और जिसने सुना तथा जिसके लक्ष्य में आया... आहा...हा...! ऐसा कौन जीव है कि अब प्राप्त न करे? ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! दिगम्बर सन्तों की वाणी... आहा...हा...! उसके समक्ष दूसरे भरे पानी! ऐसी वाणी है। आहा...हा...!

अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर;...

आहा...हा...! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी ओर का प्रयत्न कर। शुभराग और पर्यायबुद्धि में अटका है, तो अब उस बुद्धि को छोड़। आहा...हा...! महाप्रभु अनन्त गुण की राशि! आहा...हा...! ऐसा चैतन्य हीरा, जिसमें अनन्त चैतन्य रत्नाकर-समुद्र! चैतन्यरत्न का पूरा सागर भरा है! ओ...हो...! उसे (प्राप्त करने के लिये) अब तो पुरुषार्थ कर। आहा...हा...!

ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप... आहा...हा...! बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप और ऐसा योग अनन्त काल में मिलता है, उस समय नहीं करे तो कहाँ करेगा? कब (करेगा)? आहा...हा...! परन्तु करना क्या? राग से भिन्न करके स्वरूप में दृष्टि करना, वह करना है। आहा...हा...! कठिन बातें हैं, बापू! शास्त्र की जानकारी लाख करोड़ की हो तो भी उसे छोड़कर अन्तरवस्तु में जाना, वह करना है। उसका नाम सम्यग्दर्शन, आहा...हा...! यहाँ तो देव-गुरु और शास्त्र मिले तथा भक्ति हुई तो समकित हो गया। अरे... बापू! ऐसा तो अनन्त बार माना है, तूने किया है, वहाँ अटका है। अटकने का साधन, वहाँ फिर अटका। आहा...हा...! ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे। आहा...हा...! ६० (बोल पूरा) हुआ।

६१। जिसे सचमुच ताप लगा हो,... भव-भ्रमण का ताप-दुःख (लगा हो)। सबेरे आया था न? भ्रमण — द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। आहा...हा...! जिसे भ्रमण प्रगट हुआ है। भटकाऊ जीव, उसे भ्रमण प्रगट हुआ है। आहा...हा...! सबेरे आया था। सभी जीवों को — इस प्रकार लिया। समस्त जीव, कितने ही तो अभी सभी संयोगों को प्राप्त नहीं — ऐसे जीव हैं। सभी क्षेत्र में जन्मे नहीं — ऐसे भी जीव हैं। प्रत्येक काल में प्रति समय जन्में नहीं — ऐसे भी जीव हैं। कोई अनन्त भव बाहर के किये नहीं — ऐसे भी जीव हैं। आहा...हा...! शुभाशुभभाव किये — ऐसे भी जीव हैं। आहा...हा...! इन सब को, ऐसा किया — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

जिसे सचमुच ताप लगा हो,... भव का दुःख लगा हो। आहा...हा...! जो संसार से ऊब गया हो... संसार शब्द से नरक और तिर्यच गति — ऐसा नहीं; चारों गति। ये चारों गतियाँ संसार हैं। स्वर्ग भी संसार है। आहा...हा...! पंचास्तिकाय में आता है न? उस गाथा में नहीं? चार गति परावलम्बन। आहा...हा...! उससे छूटने का उपाय भगवान बताते हैं। चारों गति। उसमें आता है, (योगसार) दोहा में आता है 'भव भय से डरि चित्त' भव भय

से, हों! नरक के दुःख और तिर्यच के दुःख से — ऐसा नहीं। आहा...हा...! भव करना, वह भव, 'भव भय से डरि चित्त' चित्त में भव (करने का) डर। आहा...हा...! ऐसा जिसका चित्त भव-भय से डरा है, जो जीव संसार से ऊब गया... ऐसा। उसकी यह बात है। जिसे संसार में मजा लगता हो... आहा...हा...! उसकी यह बात नहीं। पैसा है, शरीर ठीक है, निरोगता है, पुत्र अच्छे हैं—ऐसा कुछ भी जिसे ठीक लगता है और उससे ताप न लगा हो, वह सब ताप और दुःख है, उसके लिये यह बात नहीं है। उसे यह विचार करने का अवसर ही कहाँ है? आहा...हा...! और जगत के प्राणी जन्मने के बाद बालक और फिर विवाह करे, और फिर कमाये; इस प्रकार का पूरी दुनिया का अभ्यास। उसके सन्मुख देखने से यह दुनिया करे — ऐसा मुझे करना है (ऐसा होता है)। सब बड़े राजा, बड़े पैसेवाले करोड़पति के लड़के दुकान में बैठते हैं, फिर विवाह करते हैं, नौकरों को सम्हालते हैं और पूरी दुनिया करती है, उस प्रकार का मुझे करना है। आहा...हा...!

**विभाव से ऊब जाये और संसार का त्रास लगे... देखा? पुण्य-पाप का भाव है, वह विभाव है, उससे-विभाव से ऊब गया हो। आहा...हा...! और संसार का त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता। आहा...हा...! कारण दे तो कार्य प्रगट होता ही है। आहा...हा...!** जितना स्वरूप की दृष्टि का, स्थिरता का कारण दे, उतना कार्य होता ही है। कारण कम दे, कार्य अधिक आवे — ऐसा नहीं हो सकता। आहा...हा...! अन्तर के लिये राग से भिन्न पड़कर और भेदज्ञान का कारण दे, उसे कार्य हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा...! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा...! कारण दे और कार्य न हो, यह वस्तु है नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि हम बहुत पढ़ते हैं, निवृत्ति भी है परन्तु होता नहीं, (उससे कहते हैं) परन्तु जितना कारण देना चाहिये, उतना कारण दिया नहीं, इसलिए कार्य नहीं होता। आहा...हा...! जितना कारण अन्दर में देना चाहिए, उतना कारण दिये बिना कार्य करना चाहे (तो वह) भ्रम में पड़ा है। आहा...हा...! ऐसी बात! ऐसा उपदेश!

**जिसे जिसकी रुचि — रस हो, वहाँ उसका समय कट जाता है;... जिसमें जिसका रस हो, उसे कितना काल गया — इसका पता नहीं पड़ता — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!** जिसे जिसकी रुचि अर्थात् रस हो, वहाँ... काल कट जाता है, पता नहीं पड़ता, दिन गये। आहा...हा...! अपने स्वरूप के रस में आवे तो कितना काल गया, इसका पता नहीं पड़ता। आहा...हा...! रुचि - रस हो, वहाँ उसका समय कट जाता है;...

‘रुचि अनुयायी वीर्य’। देखो! देखो! देवचन्दजी! जिसकी रुचि है, जिसकी आवश्यकता ज्ञात होती है, वहाँ पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! दुनिया की इसे आवश्यकता लगी है, दूसरे जिस प्रकार करते हैं, उस प्रकार हम करें — ऐसी रुचि लगती है तो यह पुरुषार्थ किया करता है। पूरे दिन कमाना और यह और यह और यह पाप... आहा...हा...! पुत्र को सम्हालना, स्त्री को सम्हालना... आहा...हा...! जिसमें जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! इसी प्रकार आत्मा की आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ अन्दर में पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! है ?

निरन्तर ज्ञायक के मन्थन में रहे,... आहा...हा...! ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकभाव दिन-रात उसके पीछे पड़े,... रात और दिन उसके पीछे पड़े। तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। विशेष कहेंगे...

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )